वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 288

चारित्रश्रमणी
आर्यिका श्री अभयमती-जीवन यात्रा

♦ प्रस्तुतकर्त्री ♦

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

♦ निर्देशन ♦

पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज

♦ प्रधान सम्पादक ♦

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

♦ सहसम्पादिका ♦

ब्र. कु. बीना जैन **ब्र. कु.आस्था जैन** **ब्र. कु. सारिका जैन**

पूज्य चारित्रश्रमणी आर्यिकारत्न श्री अभयमती माताजी के
40वें आर्यिका दीक्षा दिवस, फाल्गुन शु. अष्टमी–14 मार्च 2008 के शुभ अवसर पर प्रकाशित

♦ प्रकाशक ♦

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र., फोन नं.- (01233) 280184, 280236
Website : www.jambudweep.org
E-mail : ravindrajain@jambudweep.org

प्रथम संस्करण	फाल्गुन शुक्ला अष्टमी, वीर नि. सं. 2534	मूल्य
1100 प्रति	14 मार्च 2008	200/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

♦ *संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत* ♦

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

♦ *मार्गदर्शन* ♦

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

♦ *निर्देशन* ♦

धर्मदिवाकर पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज

♦ *सम्पादक* ♦

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग-ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

-कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन

बात सन् 1962 की है, मैं मात्र 12 वर्ष का था। घर में मनोवती जीजी कुछ अस्वस्थ चल रही थीं, लखनऊ के डॉक्टर का इलाज चल रहा था, एक बार माँ मोहिनी देवी मुझे और मनोवती जीजी को लेकर लखनऊ गई थीं, वहाँ चौक के मंदिर में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा की कुंकुमपत्रिका देखी, उसमें लिखा था कि आचार्यश्री शिवसागर जी महाराज का संघ लाडनूँ (राज.) में है तथा पूज्य ज्ञानमती माताजी भी वहीं विराजमान हैं, ऐसा पढ़कर उनके मन में तीव्र इच्छा हुई कि यहाँ से लाडनूँ चलें। घर में किसी प्रकार की सूचना दिए बिना, मुझ अबोध बालक के ऊपर विश्वास करके माँ लाडनूँ चल दीं। वहाँ पहुँचकर पिताजी को तार द्वारा सूचना भिजवाई गई।

आज जब मैं इस बात को याद करता हूँ तो मुझे प्रसन्नता होती है कि वे ही मनोवती जीजी, जो आज चारित्रश्रमणी आर्यिकाश्री अभयमती माताजी के रूप में हम सबके सामने विराजमान हैं, उनको गृहबंधन से निकलने में मेरा भी किंचित् सहयोग रहा है।

पूज्य अभयमती माताजी को दीक्षा लेकर आज 44 वर्ष हो गए हैं, इन वर्षों में उन्होंने अपने ज्ञान का सदुपयोग करके अनेक ग्रंथों की रचना की है, जगह-जगह पदविहार करके खूब धर्मप्रभावना की है तथा अपने कमजोर शरीर के द्वारा ''बुन्देलखण्ड की यात्रा'' करके उन्होंने बहुत ही साहस का परिचय प्रदान किया है।

मैं अपने आपको महान सौभाग्यशाली समझता हूँ कि मुझे ऐसे परिवार में जन्म लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ, जिसमें से मेरी तीन बहनें आज आर्यिका दीक्षा लेकर आत्मकल्याण कर रही हैं। विशेष बात तो यह है कि आत्मकल्याण के साथ ही साथ वे आर्यिका के व्रतों का निर्दोषतया परिपालन करते हुए तीर्थ निर्माण, साहित्यलेखन आदि अनेक कार्यों में भी योगदान प्रदान करके अपनी अहम् भूमिका का निर्वाह कर रही हैं।

प्रसन्नता की बात है कि पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी के त्यागमयी जीवन से जन-जन को परिचित कराने हेतु प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी ने इस ग्रंथ का सृजन किया है। आप सभी पाठकगण ग्रंथ को पढ़कर समुचित जानकारी प्राप्त करके पूज्य अभयमती माताजी के जीवन से कुछ न कुछ प्रेरणा अवश्य ग्रहण करें, यही मंगलकामना है।

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का मंगल-आशीर्वाद

मुझे प्रसन्नता है कि मेरी शिष्या आर्यिका अभयमती माताजी दीर्घकाल से अपने ज्ञान और चारित्र के द्वारा धर्मप्रभावना कर रही हैं। मुझे आज भी अच्छी तरह से याद है कि मेरी दीक्षा के बाद जब सन् 1958 के ब्यावर चातुर्मास में सर्वप्रथम कैलाशचंद अपने लघु भ्राता सुभाषचंद के साथ आये, मैं दोनों को पहचान भी नहीं पायी पुनः परिचय होने के बाद अगले दिन कैलाशचंद ने कहा–बहन मनोवती आपके दर्शनों के लिए बहुत ही रोया करती है। चूँकि वे भी दीक्षा लेना चाहती है।

तब मैंने बड़े प्रेम से कैलाश से बात किया और 'उसे ले आवो' ऐसी प्रेरणा दी।

पुनः सन् 1962 में माता मोहिनी ने हिम्मत की और छोटे पुत्र रवीन्द्र और कु. मनोवती को लेकर संघ में आईं, संघ उस समय लाडनूँ में था। मैंने देखा, मनोवती जब भी मेरे पास बैठती, तब वैराग्य की ही बातें किया करती थी तथा दीक्षा लेने की भी उनकी अति तीव्र इच्छा देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता होती थी, आखिर उनकी उत्कृष्ट भावना को देखकर मैंने सन् 1964 में उन्हें क्षुल्लिका दीक्षा देकर ''क्षुल्लिका अभयमती'' बना दिया पुनः सन् 1969 में उन्होंने आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा प्राप्त करके अपने जीवन के चरम लक्ष्य की सिद्धि कर ली।

दीक्षा के बाद राजस्थान एवं बुन्देलखण्ड में पदविहार करते हुए उन्होंने खूब धर्मप्रभावना की है, उनकी चारित्रिक दृढ़ता आदि देखकर मैंने उन्हें ''चारित्रश्रमणी'' की उपाधि से अलंकृत किया था। वर्तमान में उनके जीवन से जन-जन को परिचित कराने के उद्देश्य से मेरी शिष्या आर्यिका चन्दनामती जी ने आर्यिका अभयमती-जीवन यात्रा नामक यह ग्रंथ तैयार किया है, इसमें उन्होंने बहुत परिश्रम करके अभयमती जी के जीवन के हर पहलू को अभिव्यक्त किया है। आर्यिका चन्दनामती पिछले कई वर्षों से अनेक प्रकार का सुन्दर साहित्य लिखकर समाज को प्रदान करती आ रही हैं जो कि सभी के द्वारा प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय रहता है।

आर्यिका श्री अभयमती जी के लिए मेरा वात्सल्यपूर्ण मंगल आशीर्वाद है कि वे आगे भी अपने ज्ञान और दृढ़ चारित्र के द्वारा समाज को लाभान्वित करती रहें तथा जीवन में शारीरिक स्वस्थता के साथ ही साथ आध्यात्मिक स्वस्थता को प्राप्त करें।

ग्रंथ की प्रस्तुतकर्त्री आर्यिका चन्दनामती आगे भी अपने अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग के द्वारा देश व दुनिया के समक्ष अपनी अलग पहचान बनावें तथा इस निर्दोष-निष्कलंक परम्परा को खूब वृद्धिंगत करते हुए अपनी आत्मा का कल्याण करें, यही मेरा उनके उज्ज्वल भविष्य के लिए मंगल आशीर्वाद है।

पूज्य चारित्रश्रमणी आर्यिका श्री अभयमती माताजी का परिचय-एक दृष्टि में

प्रस्तुति-ब्र. कु. बीना जैन (संघस्थ)

जन्मस्थान	–टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.
जन्मतिथि	–मगशिर शुक्ला सप्तमी, ईसवी सन् 1942
पूर्व नाम	–कु. मनोवती देवी जैन।
माता-पिता	–श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन।
भाई	–4 (कैलाशचंद, स्व. प्रकाशचंद, सुभाषचंद एवं कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र जैन)।
बहन	–8 (गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी एवं आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी सहित)।
लौकिक शिक्षा	–कक्षा 5 तथा संस्कृत तृतीय शास्त्रीय खण्ड तक।
धार्मिक अध्ययन	–पूज्य माताजी के मुखारविंद से धर्म, व्याकरण, सिद्धान्त, न्याय आदि विषयों का ज्ञान।
आजीवन ब्रह्मचर्य	–आरा (बिहार) में।
सप्तम प्रतिमा	–ज्येष्ठ कृ. सप्तमी, सम्मेदशिखर, ईसवी सन् 1963, पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी से।
क्षुल्लिका दीक्षा	–श्रावण शुक्ला सप्तमी, सन् 1964, हैदराबाद में पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी से।
आर्यिका दीक्षा	–फाल्गुन शु. अष्टमी, सन् 1969, श्री महावीर जी में आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज से।
उपाधि	–पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा सन् 2000 में 'चारित्रश्रमणी' की उपाधि। ललितपुर दिगम्बर जैन समाज द्वारा 'आर्यिकारत्न' की उपाधि।
साहित्यिक योगदान	–समयसार, रयणसार, पुरुषार्थसिद्धि उपाय आदि ग्रंथों की पद्यावली रचना एवं अनेक मौलिक कृतियों का लेखन आपकी लेखनी से हुआ है।

धर्मप्रभावना के कार्यों में निरन्तर तत्पर रहकर पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने विशेषरूप से बुन्देलखण्ड की यात्रा करके अनेक स्थानों पर शिविर आयोजन के साथ महिला मण्डल एवं पाठशाला की स्थापना की। वे इसी प्रकार सदैव स्व-परकल्याण करती रहें, यही मंगलकामना है।

ग्रंथ के संदर्भ में

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

कुछ धुंधली स्मृतियाँ आज भी मुझे याद आ रही हैं कि जब मैं लगभग चार-पाँच वर्ष की थी, तब सन् 1962-63 में एक बार किसी माताजी के साथ घर से हमारी एक बहन सफेद साड़ी पहनकर कहीं जा रही थीं, घर में माता-पिता इन्हें नहीं रोक पाने के कारण रो रहे थे, उन्हें देखकर हम बच्चे भी रोने लगे थे लेकिन वे चली गई थीं, पुनः कुछ दिनों बाद सब बातें समाप्त हो गईं और घर के धार्मिक वातावरण में हम पलने-बढ़ने लगे। उसके बाद घर में केवल यह सुना करती थी कि हमारी दो बहनों ने दीक्षा धारण कर ली है। दीक्षा क्या होती है? हमारी बहनों ने दीक्षा क्यों धारण की है? इसे मेरी बालबुद्धि समझ नहीं पाती थी।

टिकैतनगर कस्बे में यदा-कदा साधु-संतों का आगमन होता ही रहता था, उनमें सन् 1969 में मैंने अपनी पूर्ण स्मृति के साथ परमपूज्य मुनि श्री सुबलसागर जी महाराज (आचार्यश्री देशभूषण महाराज के शिष्य) के संघ का चातुर्मास देखा, उस समय मेरी उम्र 11 वर्ष की थी। मुनिश्री के मुख से भी मैंने अनेकों बार गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी की बहुत प्रशंसा सुनी थी किन्तु तब तक भी यह समझ में नहीं आया था कि ज्ञानमती माताजी कौन हैं? उनकी चर्या क्या होगी?

उसी चातुर्मास के मध्य एक बार भाई प्रकाशचंद जी के साथ मुझे भी जयपुर (राज.) में जाकर पूज्य ज्ञानमती माताजी के दर्शनों का प्रथम सौभाग्य प्राप्त हुआ। परमपूज्य आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज के संघ में उस समय पूज्य ज्ञानमती माताजी एवं अन्य अनेक माताजी थीं। वहाँ पहुँचने पर आचार्यश्री एवं मुनियों के दर्शनों के पश्चात् दूसरी धर्मशाला में (बक्सी चौक की धर्मशाला) विराजमान आर्यिकाओं के पास पहुँचकर भैया ने दो माताओं की ओर संकेत करके मुझे बताया कि ये दोनों माताजी हमारी बहनें हैं।

तब तक चूँकि मैंने किसी भी आर्यिका के दर्शन नहीं किए थे अतः इन माताओं को देखकर मन में कुछ अजीब सा लगा, एक-दो दिन बाद कुछ परिचय स्थापित हुआ। परमपूज्य दोनों माताओं ने मुझसे छोटी-छोटी बातें भी कीं कि तुम्हारा नाम क्या है? तुम किस कक्षा में पढ़ती हो? तुमने धार्मिक अध्ययन क्या किया है.....आदि।

उन दिनों पूज्य ज्ञानमती माताजी अष्टसहस्री ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद करने में व्यस्त थीं फिर भी उन्होंने अपने मुख से मुझे गोम्मटसार जीवकाण्ड की 34 गाथाएं पढ़ाईं, जो मेरे धार्मिक जीवन के उत्थान में मूलकारण बनीं, उसी समय से मैंने पूज्य माताजी के पास रहने की धारणा मन में बना ली थी।

पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी के पास एक दिन जब मैं बैठी थी, तब इन्होंने मुझसे पूछा कि माधुरी! तुम्हें याद है कि मैंने बचपन में तुम्हें गोद में खिलाया है? उस समय मुझे अपनी चार साल की अवस्था का दृश्य कुछ स्मरण में आया, अनन्तर वार्तालाप के मध्य जब अभयमती माताजी ने बताया कि सन् 1962 में पूज्य ज्ञानमती माताजी के संघ को सम्मेदशिखर यात्रा कराते हुए जब मैं संघ के साथ टिकैतनगर पहुँची थी, उस समय मैं घर में ही रहती थी, तब तुम चार साल

की थी। तब मुझे लगा कि चार साल की अवस्था में मैंने अपनी जिस जीजी को सफेद वस्त्रों में देखा था, वो ही आज अभयमती माताजी बन गई हैं।

पुनः ब्रह्मचर्य व्रत लेने के बाद मैं पूज्य ज्ञानमती माताजी के पास रहने लगी। तब अभयमती माताजी बुन्देलखण्ड प्रान्त में भ्रमण कर रही थीं।

आर्यिका श्री अभयमती माताजी के पास मुझे बुन्देलखण्ड में भी दो-तीन बार जाने का अवसर प्राप्त हुआ है तथा सागर एवं ग्वालियर में भी मैंने स्वयं देखा है कि आत्मसाधना के साथ धर्मप्रभावना के कार्यों में तथा महिला मण्डल, स्वाध्याय मण्डल आदि खुलवाने में अभयमती माताजी प्रेरणा दिया करती थीं। आपने बहुत ही दृढ़तापूर्वक बुन्देलखण्ड के बीहड़ जंगलों में अकेले विहार करके अपनी पूर्ण दृढ़ता का परिचय देते हुए अपने अभयमती नाम को सार्थक किया है।

सन् 1969 से सन् 1982 तक यदा-कदा दर्शनों के अनन्तर सन् 1986 में जब से जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में आपका मंगल-पदार्पण हुआ, उसके बाद नजदीकी से आपके पास रहने का भी अवसर मिला। इन वर्षों में पश्चिमी उत्तरप्रदेश में भ्रमण करने के अन्तर्गत नौ चातुर्मास आपने जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के साथ किए, उस मध्य कुछ वैयावृत्ति भी करने का अवसर मिला तथा सन् 1989 में दीक्षा लेने के पश्चात् मुझे आप दोनों माताजी के साथ रत्नत्रय-त्रिवेणी के रूप में जुड़कर बहुत ही आनन्द की अनुभूति हुई। इस रत्नत्रय के संगम को प्राप्त करके निश्चित ही पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी का स्मरण हो आता है कि उस जन्मदात्री माँ मोहिनी ने हम सबको ऐसे संस्कार प्रदान किए कि इस पंचमकाल में हमें मोक्ष का मार्ग प्राप्त हुआ।

पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी के पास भी मुझे 13 वर्षों तक रहकर उनकी सेवा-वैयावृत्ति करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे कई बार कहा करती थीं कि देखो! मेरी कुक्षि से ज्ञानमती माताजी जैसी एक महान पुण्यशाली रत्न का जन्म हुआ, उन्हीं के कारण हमें इस कलिकाल में भी संयम धारण करने का सुयोग प्राप्त हुआ है।

आज आर्यिका रत्नमती माताजी अपने भौतिक शरीर से इस संसार में नहीं हैं वरना शायद अपनी तीन पुत्रियों को दीक्षित अवस्था में देखकर अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव करतीं। आज मैं अपने को पुण्यशाली समझती हूँ कि मुझे पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी के आदर्श जीवन को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त हुआ है। ग्रंथ की सामग्री संकलन एवं प्रूफ संशोधन आदि में संघस्थ ब्रह्मचारिणी बहनों का मुझे पूरा सहयोग तो प्राप्त हुआ ही है तथा सर्वाधिक सहयोग कु. सारिका बहिन जी का रहा है, उसके लिए उन सभी को मंगल आशीर्वाद है। इस ग्रंथ के माध्यम से आप सभी पाठकगण आर्यिका श्री अभयमती माताजी के व्यक्तित्व और कृतित्व के साथ ही एक संयमी की आत्मसाधना का स्वरूप देख सकेंगे। आर्यिकाश्री ने अपने सम्पूर्ण आर्यिका दीक्षा के 39 वर्ष पूर्ण किए हैं तथा क्षुल्लिका दीक्षा सहित जीवन के 44 वर्ष पूर्णता की ओर हैं, इस अवसर पर पूज्य अभयमती माताजी के चरणों में मेरी विनम्र विनयांजलि है और पाठकों के लिए यही प्रेरणा है कि वे इस ग्रंथ की पूरी सामग्री का अध्ययन कर अपने जीवन को भी निरन्तर आत्मकल्याण की ओर अग्रसर करें।

आर्यिका श्री अभयमती माताजी के प्रति

-पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर

अनंत संसार में चारों गतियों में मनुष्य गति को श्रेष्ठ माना गया है। मनुष्यगति की श्रेष्ठता संयम धारण करने के कारण है। मनुष्यगति में भी उत्तमकुल, इन्द्रियों की पूर्णता, जिनधर्म की प्राप्ति, धर्म में बुद्धि का होना एक से एक दुर्लभ है। इन सबके प्राप्त होने के बाद भी संयम धारण करने का अवसर अति दुर्लभ है। जिन्हें यह अवसर प्राप्त होता है वे अतिशय पुण्यशाली हैं।

भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् भी मुनि परम्परा बराबर चली आ रही है। बीच में कुछ काल ऐसा भी निकला, जिसमें मुनि-आर्यिका, क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओं के दर्शन दुर्लभ हो गये थे। कुछ थे भी तो दक्षिण भारत में ही विचरण करते थे। ऐसे में बीसवीं सदी में चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज (दक्षिण) का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने उत्तर भारत में विचरण करके मुनि परम्परा का पुनरुद्धार किया। अनेक धर्मनिष्ठ पुरुषों ने मुनि, ऐलक, क्षुल्लक की दीक्षाएँ धारण की। वहीं महिलाओं ने आर्यिका एवं क्षुल्लिका की दीक्षा धारण की।

उसी परम्परा में उन्हीं के प्रथम शिष्य आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज से प्रथम कुंवारी कन्या के रूप में आर्यिका दीक्षा धारण करके पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने बीसवीं-इक्कीसवीं सदी में कुंवारी कन्याओं के लिए दीक्षा का मार्ग प्रशस्त किया।

पूज्य गणिनी माताजी ने अनेक महिलाओं के साथ-साथ अपनी लघु सहोदरा कुमारी मनोवती को प्रेरणा देकर सन् 1964 में हैदराबाद में अपने करकमलों से क्षुल्लिका दीक्षा प्रदान करके क्षुल्लिका अभयमती नाम प्रदान किया था।

सन् 1967 में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का चातुर्मास मेरी जन्मनगरी सनावद (म.प्र.) में सम्पन्न हुआ। उस समय तक मैं घर में ही निवास करता था। उस समय संघ में 4 आर्यिका माताजी – ज्ञानमती माताजी, जिनमती माताजी, पद्मावती माताजी तथा आदिमती माताजी तथा दो क्षुल्लिका माताजी – क्षुल्लिका श्रेयांसमती माताजी तथा क्षुल्लिका अभयमती माताजी थीं।

तब पूज्य अभयमती माताजी को क्षुल्लिका दीक्षा लिए केवल 3 वर्ष हुए थे। उस समय उनकी आयु 25 वर्ष की थी। स्वास्थ्य ठीक न होते हुए भी अध्ययन में तत्पर रहती थीं। पूज्य अभयमती माताजी से मेरा वहाँ प्रथम परिचय हुआ था। सन् 1967 में चातुर्मास समापन के पश्चात् संघ के साथ ही उन्हें मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र की यात्रा कराई। सन् 1968 में संघ का विहार राजस्थान में आचार्यश्री शिवसागर जी महाराज के संघ में प्रवेश के लिए हुआ। शुभयोग सन् 1968 से मुझे भी संघ में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तब से अब तक 40 वर्ष से पूज्य श्री अभयमती माताजी के सम्पूर्ण क्रियाकलापों से भलीप्रकार से परिचित हूँ।

सन् 1971 से धर्मप्रभावना हेतु संघ से अलग होकर राजस्थान तथा मध्यप्रदेश में विहार किया। जगह-जगह धार्मिक पाठशालाएँ खुलवाईं, अनेक नगरों में महिला मंडलों का गठन कराया। उनमें से अब भी कई स्थानों पर पाठशालाएँ तथा महिला मंडल चल रहे हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने कविताएँ, मुक्तकतथा लेख लिखना भी प्रारंभ किया। ज्ञानवृद्धि होने पर पूजाएँ तथा मंडल विधान भी लिखें। दिनभर माला जापने में भी इनकी विशेष रुचि रहती है। सन् 1987 से इनका विहार विशेषकर पश्चिमी उत्तरप्रदेश में मेरठ तथा मुजफ्फरनगर जिलों के तीर्थों तथा नगरों में हो रहा है। कई बार गणिनी माताजी के संघ में आना-जाना रहा। इधर कुछ वर्षों से स्वास्थ्य अधिक कमजोर हो जाने से अधिक लम्बा विहार नहीं कर पाती हैं। फिर भी प्रबल भावना है कि अहिच्छत्र, अयोध्या, कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) होते हुए परमपावन सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर के दर्शन हों।

पूज्य माताजी स्वास्थ्य लाभ करते हुए खूब धर्म की प्रभावना करती रहें, यही भगवान जिनेन्द्र से मंगल प्रार्थना है।

ग्रंथ की प्रस्तुतकर्त्री

आर्यिका श्री चंदनामती माताजी का परिचय

प्रस्तुति-ब्र. कु. स्वाति जैन
(संघस्थ-गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी)

''वात्सल्य की अविरल धारा, जिनमें बहती नित है,
गुरुभक्ति की प्रबल भावना, जिनमें सदा निहित है,
सामंजस्य प्रेम मैत्री जो, सिखलाती नित-प्रति हैं,
ऐसी माँ ''चंदनामती' जी, नित ही अभिवंदित हैं।''

अनंतानंत जीवों से परिपूरित संसार सागर में जो विरले जीव जन्म-मरण के चक्र से छूटकर शाश्वत सुख की प्राप्ति के प्रयास में संलग्न होते हैं, वे ही अपने जीवन को भासफल करते हैं और अन्य जीवन रूपी दीपकों को प्रकाशित करने में भी निमित्त बनते हैं। ऐसा ही एकमधुरिम व्यक्तित्व है– **प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी**का, जो जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की अनन्य समर्पित शिष्या होने के साथ-साथ अपेन वात्सल्यमयी व्यवहार से सभी पर अपनी अमिट छाप छोड़ने में सक्षम हैं। किसी भव्य जीव को जिनेन्द्र भगवान प्रणीत शाश्वत मोक्षमार्ग के प्रति आसक्त करने में जो प्रयासरत रहे, वास्तव में वह स्तुत्य है, क्योंकि अनदिकाल से जीव ने न जाने किन-किन भौतिकताओं में बंधकर स्वयं को कल्याण के पथ से वंचित रखा है।

जन्म, शिक्षा एवं वैराग्य पथ पर बढ़े बाल कदम–बाराबंकी जिले के टिकैतनगर ग्राम में 18 मई सन् 1958, ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या को गणिनी ज्ञानमती माताजी जैसे महानरत्न को प्रसूत करने वाली माता मोहिनी की कोख से 12वीं संतान के रूप में जन्म लेने वाली ''कु. माधुरी'' बालपन से ही पिता श्री छोटेलाल जी सहित समस्त परिवार एवं परिजनों की लाडली बिटिया के रूप में सर्वप्रिय थीं। माँ ने दूध पिलाने से लेकर पालन-पोषण करने तक प्रत्येक संतान पर अभिन्न धार्मिक संस्कार तो डाले ही थे, जिससे कु. माधुरी भी अछूती नहीं रहीं।

तीक्ष्ण बुद्धि वाली इस बालिका ने लौकिक शिक्षा की ओर कदम बढ़ाये तो सदैव अपनी सहपाठियों सहित समस्त शिक्षक वर्ग को भी विशेष प्रभावित करते हुए क्रमशः मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। अकादमिक उपलब्धियाँ कु. माधुरी की प्रतिभा से कहीं भी परे नहीं थीं, तथापि शाश्वत उन्नति का मार्ग इस कन्यारत्न के भविष्य का निर्माता बनकर समक्ष खड़ा था अतः उसी होनहार के अनुरूप अपनी बड़ी बहन कु. मैना के ''आर्यिका ज्ञानमती माताजी'' के रूप में दर्शन प्राप्त कर वैराग्य को प्राप्त इस बालिका ने मात्र 13 वर्ष की अल्प आयु में सन् 1971 में सुगंधदशमी के दिन अजमेर में उनसे आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लिया। जिस आयु में बालक-बालिकाएँ खाने-खेलने में ही संलग्न रहते हैं, उस अल्पवय में बालब्रह्मचर्य व्रत को धारण करना कु. माधुरी के स्वर्णिम भविष्य का ही परिचायक था। माता मोहिनी की सन्तानों ने ये विशिष्ट धार्मिक संस्कार मानों विरासत में ही पाये थे।

धार्मिक अध्ययन एवं गुरुसेवा बना जीवन का प्रमुख ध्येय—वैराग्यपथ पर बढ़ चली इस बाला ने अब धार्मिक अध्ययन एवं गुरु सेवा को ही अपना प्रमुख लक्ष्य बना लिया। शास्त्री, विद्यावाचस्पति इत्यादि धार्मिक शिक्षा को प्राप्त करते हुए आपने जैनागम संबंधी हजारों गाथाएँ, श्लोक इत्यादि कंठाग्र करके अपनी मेधा शक्ति का परिचय प्रदान किया। वस्तुतः इस क्षयोपशम विशेष के अतिरिक्त अविरल सेवा भावना, पूर्ण अनुकूलता, वैयावृत्ति, परिपूर्ण समर्पण, संघ में सभी के प्रति वात्सल्यमयी सौहार्दभाव इत्यादि गुणों से आपने पूज्य माताजी को विशेष प्रभावित किया था। 'गुरु यदि दिन को रात कहें तो रात, यदि रात को दिन कहें तो दिन' इस भावना का परिपालन करने वाली कु. माधुरी शास्त्री ने क्रमशः 18 वर्षों तक ब्रह्मचारिणी अवस्था में रहकर पूज्य माताजी की भरपूर सेवा की। विशेष बात यह थी कि अध्ययन के साथ-साथ भजन, पूजन, चालीसा, लेख इत्यादि लिखने का प्रवाह भी निरंतर चलता रहा।

आर्यिका दीक्षा धारण कर बनी 'चंदनामती'—चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज की गुरु परम्परा में प्रविष्ट भव्य जीव संयम धारण करना अपना आभूषण समझते हैं, तद्नुसार राजधानी दिल्ली में पूज्य ज्ञानमती माताजी से सन् 1982 में दो प्रतिमा के व्रत एवं हस्तिनापुर में सन् 1987 में सप्तम प्रतिमा के व्रतों को क्रमशः धारण करते हुए आपने नारी जीवन के सर्वोत्कृष्ट पद की प्राप्ति के क्रम में जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में श्रावण शुक्ला ग्यारस, 13 अगस्त 1989 को पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी के करकमलों से आर्यिका दीक्षा प्राप्त कर **''आर्यिका चन्दनामती''** नाम प्राप्त किया। आर्यिका श्री रत्नमती माताजी एवं आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी रूप शिल्पियों से सुसंस्कारित, व्यवहार में माधुर्य गुण की धनी 'माधुरी' जी को अपने शिष्ट आचरण के अनुरूप ही नाम प्राप्त हुआ था।

प्रभावी लेखनी से सुसज्जित व्यक्तित्व—आपकी लेखनी बाल्यकाल से ही अत्यंत प्रभावी, ओजपूर्ण एवं सारगर्भित रही है, पद्य लेखन आपके लिए क्षणों का काम रहता है अतः अब तक आप सैकड़ों भजन, आरती, चालीसा, पूजन, स्तुति, मुक्तक इत्यादि का लेखन कर चुकी हैं। समयसार के कलश काव्यों का पद्यानुवाद, भक्तामर विधान, नवग्रहशांति विधान, मनोकामना सिद्धि महावीर विधान, तीर्थंकर जन्मभूमि विधान, महावीर स्तोत्र की संस्कृत-हिन्दी टीका, ज्ञानज्योति की भारत यात्रा, अवध की अनमोल मणि, भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर, ज्ञान रश्मि, ज्ञानमती माताजी के अमूल्य प्रवचन इत्यादि कितनी ही कृतियाँ आपके ज्ञानगुण को प्रदर्शित करने में सक्षम हैं। आर्यिका रत्नमती अभिनंदन ग्रंथ, आचार्यश्री वीरसागर स्मृति ग्रंथ, गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती अभिनंदन ग्रंथ, कुण्डलपुर अभिनंदन ग्रंथ, भगवान महावीर हिन्दी-अंग्रेजी जैन शब्दकोश, गणिनी ज्ञानमती गौरव ग्रंथ इत्यादि ग्रंथों का लेखन, सम्पादन एवं समायोजन आपके कठोर परिश्रम का ही सुफल है। आपका सृजनात्मक मस्तिष्क धर्मप्रभावना के नये-नये आयामों को साकार धरातल देते हुए सदैव उत्साहपूर्ण होकर पठन-पाठन-लेखन में ही दत्तचित्त रहता है, यह गुण आपने अपनी महान गुरु पूज्य ज्ञानमती माताजी से विरासत में ही प्राप्त किया है। आप मात्र वार्तालाप के स्थान पर सदैव कार्यरत रहने की नीति में ही विश्वास रखती हैं, जो विशेष अनुकरणीय है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के मुखपत्र 'सम्यग्ज्ञान' का समायोजन भी प्रतिमाह आपके द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। वर्तमान में आप महान सिद्धांत ग्रंथ 'षट्खण्डागम' की पूज्य ज्ञानमती माताजी द्वारा लिखित सिद्धांतचिंतामणि टीका के हिंदी अनुवाद के कार्य में संलग्न हैं, हिन्दी टीका सहित तीन पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है। चौथी पुस्तक का अनुवाद पूर्ण हो चुका है और आगे ग्रंथों का अनुवादकार्य निरन्तर चल रहा है। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अंग्रेजी इत्यादि भाषाओं की विद्वान पूज्य माताजी द्वारा जिनवाणी की जो विशिष्ट सेवा की जा रही है, वह निःसंदेह ही सभी के लिए पथ प्रदर्शन का कार्य करेगी।

वक्तृत्व कला की धनी पूज्य माताजी—पूज्य चंदनामती माताजी के विशिष्ट गुण के रूप में अवस्थित है उनकी वक्तृत्व एवं गायन क्षमता। आपकी ओजपूर्ण एवं प्रभावक प्रवचन शैली से श्रोता प्रभावित हुए बिना रह नहीं पाता है और जिन संस्कृति तथा गुरु परम्परा के प्रति अनुरक्त होकर ही प्रवचनसभा से उठता है। पूज्य ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित भक्ति विधानों की पूजा को जब आप अपनी मधुर आवाज में सम्पन्न कराती हैं तो सभी भक्तगण जिनेन्द्र भगवान की भक्ति के रस का वास्तविक आस्वादन कर हर्ष विभोर हो उठते हैं।

गुरुभक्ति की विशिष्ट भावना—पूज्य चंदनामती माताजी छाया की भाँति पूज्य ज्ञानमती माताजी के साथ रहते हुए उनकी प्रत्येक कार्ययोजना में सहभागी बनकर अपना सौभाग्य समझती हैं, अयोध्या-मांगीतुंगी-प्रयाग-कुण्डलपुर (नालंदा) इत्यादि तीर्थों के विकास एवं सभी राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों को अपनी गुरु की भावना के अनुरूप सफलता के उच्च शिखर तक पहुँचाने हेतु आप हर क्षण प्रयत्नशील रही हैं, वस्तुतः ऐसे शिष्यरत्न ही अपने भविष्य को भी उज्ज्वल बना लेते हैं। स्वयं में प्रतिभा की परिपूर्णता होते हुए भी ख्याति-पूजा-लाभ की कामना से अपना अलग व्यक्तित्व बनाने की किसी आकांक्षा ने आपको स्पर्श नहीं किया है, यह विशेष अनुकरणीय बात है। वरन् जैसे-जैसे आपकी प्रतिभा में निखार आया है, वैसे-वैसे पूज्य माताजी के प्रति आपके समर्पण की भावना में अभिवृद्धि ही हुई है। संघस्थ सभी शिष्य-शिष्याओं को पूज्य ज्ञानमती माताजी की ज्ञान एवं चारित्र रश्मियों के प्रति अधिकाधिक समर्पित होने की शिक्षा ही आपसे सर्वदा प्राप्त हुआ करती है, जो उनकी अनन्य गुरुभक्ति का ही परिचायक है। सभी के बीच सामंजस्य कैसे स्थापित हो, सभी लोग प्रसन्नचित्त होकर गुरुआज्ञा के पालन में कैसे निरत रह सकें, यही प्रयास वह सदैव किया करती हैं। यही कारण है कि हृदय के समस्त मनोभावों को आपके समक्ष व्यक्त करके सभी को विशेष संतुष्टि की अनुभूति होती है।

गुरु परम्परा का कट्टर पोषक—पूज्य ज्ञानमती माताजी के साथ हजारों कि.मी. की पदयात्रा करके आपने जनमानस में अहिंसा, शाकाहार, सदाचार की भावनाओं को आरोपित करने का विशेष पुरुषार्थ किया है, जो कि आज के समाज की प्रमुख आवश्यकता है। जैन युवावर्ग को मांसाहार से सर्वदा दूर रहने एवं रात्रि भोजन के त्याग की विशेष प्रेरणाएँ आपसे सदैव प्राप्त हुआ करती हैं। चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज की गुरु परम्परा के प्रति आपका विशेष समर्पण सदा से रहा है, अतः अपने सानिध्य में आने वाले प्रत्येक बालक-बालिका पर इस गुरु परम्परा के

संस्कार डालने में आपको विशेष आनंद की प्राप्ति होती है। वास्तव में भौतिकता की होड़ में नेत्र बंद कर दौड़ रहे युवावर्ग को यदि कोई वात्सल्यपूर्ण भव्य जीव शाश्वत धर्म के मार्ग के प्रति अनुरक्त करता है, तो इसे विशेष सौभाग्य ही मानना चाहिए।

प्रज्ञाश्रमणी पद से अलंकरण—आपकी प्रखर मेधा एवं इस गुण-विभूषित व्यक्तित्व के सम्मानार्थ पूज्य ज्ञानमती माताजी ने सन् 1997 में राजधानी दिल्ली में आयोजित विशाल कल्पद्रुम महामण्डल विधान के समापन अवसर पर आपको **'प्रज्ञाश्रमणी'** की उपाधि से अलंकृत किया। पुनश्च आप सदा यही कहा करती हैं कि पूज्य ज्ञानमती माताजी का वात्सल्यमयी वरदहस्त ही मेरे जीवन की सबसे बड़ी सौगात है और इन्हीं गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञानामृत ने ही मेरा श्रृँगार किया है अतः इस महान जिन संस्कृति, तीर्थ संरक्षण एवं गुरुसेवा में मेरे शरीर का रोम-रोम भी समर्पित होकर काम आ जाये, तो वह ही मेरे लिए सर्वाधिक आनंददायी अनुभूति है।

ऐसे आदर्श व्यक्तित्व को धारण करने वाली पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी प्रतिक्षण साधना के उच्च सोपानों पर आरोहण करते हुए कतिपय ही भवों में रत्नत्रय की पूर्ण विशुद्धि के साथ मोक्षलक्ष्मी का वरण करें, यही मंगलभावना है। साथ ही जिनेन्द्र प्रभु से यह प्रार्थना भी है कि जिन परमपूज्य प्रातःस्मरणीय राष्ट्रगौरव गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी एवं परमपूज्य श्री चंदनामती माताजी की जो महान उपकारी छत्रछाया मुझे प्राप्त हुई है, वह मोक्षप्राप्ति तक रक्षाकवच की भाँति मुझे सांसारिक विषय भोगों से पूर्णतया रक्षित करते हुए जिनशासन में अवगाहन के योग्य बनाएँ, ताकि एक दिन ऐसा आ सके कि अपने अनंत चतुष्टय में निमग्न होकर सदैव के लिए मेरे चतुर्गति परिभ्रमण की भी निवृत्ति हो सके।

प्रस्तावना

-ब्र. कु. सारिका जैन (संघस्थ)

बचपन में घर में प्रायः यह चर्चा सुनने को मिलती थी कि मेरी माँ की तीन बहनें यानि कि मेरी तीन मौसियाँ गृहत्याग करके ब्रह्मचर्यव्रत एवं दीक्षा लेकर आत्मकल्याण कर रही हैं, उनके नाम हैं – 1. मैना, जो कि ज्ञानमती माताजी हैं 2. मनोवती, जो कि अभयमती माताजी हैं और 3. माधुरी मौसी, जो कि अभी ब्रह्मचारिणी हैं और वे भी दीक्षा लेकर माताजी बन जाएंगी तथा मेरी माँ की माँ मोहिनी देवी अर्थात् हमारी नानी दीक्षा लेकर रत्नमती माताजी बन चुकी हैं और हमारे एक मामा रवीन्द्र कुमार जी ने भी घर का त्याग करके ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया है।

गर्मी की छुट्टियों में हर बार हम लोग सपरिवार पूज्य ज्ञानमती माताजी के पास (हस्तिनापुर या जहाँ भी माताजी होती थीं) आते थे और पन्द्रह-बीस दिन रहकर दर्शन-पूजन-आहारदान-ज्ञानार्जन आदि का लाभ लिया करते थे, उस समय भी संघ में सुनते थे कि आर्यिका श्री अभयमती माताजी कभी बरनावा में हैं, सरधना में हैं अथवा महलका में हैं, उनका स्वास्थ्य ज्यादा ठीक नहीं रहता है....आदि, परन्तु आज से लगभग 15-16 वर्ष पूर्व ही पूज्य अभयमती माताजी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तब से तो अब तक कई बार उनके दर्शन किए तथा अब तो वे प्रायः हस्तिनापुर में रहकर ज्ञानाराधना कर रही हैं।

पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने सन् 1942 में जन्म लेकर सन् 1962 में गृहबंधन से निकलकर सन् 1964 में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी से हैदराबाद में क्षुल्लिका दीक्षा तथा आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज से सन् 1969 में अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी में आर्यिका दीक्षा धारण की तथा दीक्षा लेने के बाद बुन्देलखण्ड की सम्पूर्ण यात्रा अपने रुग्ण शरीर के द्वारा करके अपने आत्मिक बल का परिचय प्रदान किया। अनेकों बार विषम परिस्थितियाँ आने पर भी वे अपने चारित्र से कभी विचलित नहीं हुईं, यह उनके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है। उनका दृढ़ चारित्र देखकर ही पूज्य ज्ञानमती माताजी ने उन्हें ''चारित्रश्रमणी'' की उपाधि प्रदान की।

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी ने पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी के जीवन की अनेक विशेषताओं को संकलित कर इसे ग्रंथ का आकार प्रदान करके बहुत प्रशंसनीय कार्य किया है। प्रस्तुत ग्रंथ जिसका नाम है – ''चारित्रश्रमणी आर्यिका अभयमती – जीवन यात्रा''।

इसमें उन्होंने पाँच अध्यायों के द्वारा विषय वस्तु को विभाजित किया है। सर्वप्रथम श्री अभयमती माताजी का जीवन दर्शन सुन्दर शब्दों में लिपिबद्ध है पुनः इसी प्रथम अध्याय में पूज्य अभयमती माताजी द्वारा लिखित ''बुन्देलखण्ड यात्रा'' को ज्यों की त्यों प्रस्तुत किया है, अध्याय के अन्त में आर्यिका श्री की पूजन और आरती है।

द्वितीय ''साहित्य-साधना'' नामक अध्याय में पूज्य अभयमती माताजी द्वारा लिखित समस्त साहित्य का नामोल्लेख करते हुए उनमें से कुछ प्रमुख ग्रंथों का सुन्दर विवेचन किया है।

आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने जिस निर्दोष-निष्कलंक परम्परा में दीक्षा धारण की, उस परम्परा के पुनरुद्धारक चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज, उनके प्रथम पट्टाधीश आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज, द्वितीय पट्टाधीश आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज एवं अभयमती माताजी के आर्यिका दीक्षा गुरु तृतीय पट्टाधीश आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज के परिचय के साथ ही उनके गृहस्थावस्था के माँ-पिताजी, भाई-बहनों के परिचय भी क्रम-क्रम से तृतीय अध्याय में प्रकाशित हैं तथा श्री छोटेलाल जी व मोहिनी देवी की सन्तान परम्परा का भी उल्लेख किया गया है। पूज्य ज्ञानमती माताजी के संघस्थ शिष्य क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज एवं पूज्य अभयमती माताजी की संघस्थ शिष्या क्षुल्लिका श्री शांतिमती माताजी का परिचय है तथा इसी अध्याय के अंत में प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी द्वारा लिखित माता मोहिनी जी के जीवन पर आधारित एक ''असली दहेज'' नामक नाटक एवं ''मातृभक्ति'' नामक सुन्दर पद्यरचना भी प्रकाशित है।

पुनः चतुर्थ अध्याय में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के समसामयिक प्रवचन, पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी के सप्तव्यसन त्याग के परिप्रेक्ष्य में मंगल प्रवचन तथा प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी के ध्यानसाधना के संदर्भ में मंगल प्रवचन संकलित हैं पुनः इसी अध्याय में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा बताये गये अक्षय तृतीयाव्रत, रक्षाबंधनव्रत, नवनिधि व्रत, शांतिनाथ व्रत (शांतिभक्ति व्रत), शारदा व्रत इन पाँच व्रतों को संकलित किया गया है।

अंतिम पंचम अध्याय में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा मूलाचार आदि ग्रंथों के आधार से लिखित ''आर्यिकाओं के अट्ठाईस मूलगुण'' नामक विषय को प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार से पूज्य आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी ने इस ग्रंथ को तैयार करने में, इसको सुन्दर-आकर्षक स्वरूप प्रदान करने में काफी परिश्रम किया है।

जब कोई मकान सुन्दररूप में बनकर तैयार हो जाता है, तब उसमें रहने वाले लोग बिना किसी परिश्रम के ही उसमें निवास करके आनंद का अनुभव करते हैं, स्वादिष्ट भोजन अथवा व्यंजन बनने के बाद उसको खाने वाले बिना किसी परिश्रम के ही उसको खाकर प्रसन्न होते हैं तथा किसी भी ग्रंथ अथवा पुस्तक के तैयार होने के बाद पढ़ने वाले बिना किसी मेहनत के उसको पढ़कर अपने ज्ञान की वृद्धि कर लेते हैं परन्तु इन सबके पीछे यह चिंतन अवश्य होना चाहिए कि इन सबको तैयार करने वालों ने इसमें कितना परिश्रम किया होगा!

यह सच है कि इस प्रकार का चिन्तन करने में हमें भी इसी प्रकार का परिश्रम करने की प्रेरणा प्राप्त होती है और इस प्रेरणा के बल पर हम अपने जीवन को उद्यमशील बना सकते हैं। इससे पूर्व भी समय-समय पर आपको पूज्य आर्यिका श्री चंदनामती माताजी की अनुपम कृतियों से परिचित होने का अवसर प्राप्त होता रहता है।

इसी शृँखला में पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी के जीवन पर आधारित इस ग्रंथ को पढ़कर आप सब उनके जीवन से परिचित हों, यही मंगलकामना है तथा अंत में ग्रंथ की रचयित्री पूज्य चंदनामती माताजी के चरणों में नमन करते हुए यह भावना भाती हूँ कि उनकी गुरु भक्ति के कुछ अंश मुझे भी प्राप्त हों ताकि मैं भी अपने जीवन को उच्चता के शिखर तक ले जा सकूँ।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

–पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् 1974 में हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं–

1. सन् 1972 से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के माध्यम से लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं।

2. सन् 1974 से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।

3. सन् 1974 से 1985 तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।

4. सन् 1974 से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है–कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद मंदिर, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना एवं नवग्रहशांति जिनमंदिर।

5. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग 15000 ग्रंथ सहित अनेक पाण्डुलिपियाँ संग्रहीत हैं।

6. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।

7. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन किये जाते हैं।

8. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।

9. यात्रियों के ठहरने के लिए आधुनिक सुविधायुक्त डीलक्स फ्लैट्स वाली कई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।

10. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी तथा मनोरंजन हेतु मिनी ट्रेन, झूले आदि हैं।

11. ज्ञानमती कला मंदिरम् में हस्तिनापुर के प्राचीन इतिहास से संबंधित झाँकियाँ हैं।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तक आने के लिए दिन भर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य नंद्यावर्त महल तीर्थ तथा भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञानकल्याणक भूमि प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित भगवान ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का भी संचालन होता है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य रचनाओं के दर्शन हेतु हस्तिनापुर पधारकर आध्यात्मिक एवं भौतिक सुख की प्राप्ति करें।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के सहयोगी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत ''वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला'' की स्थापना सन् 1974 में हुई। तब से अब तक लाखों की संख्या में ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है और निरन्तर हो रहा है। ग्रंथमाला से पाठकों को ग्रन्थ कम कीमत में प्राप्त हो सकें, इस दृष्टि से ग्रन्थमाला में एक संरक्षक योजना अगस्त सन् 1990 से प्रारंभ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न महानुभाव अब तक संरक्षक बनकर अपना सहयोग प्रदान कर चुके हैं।

शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खारी बावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली

परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।

16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली

संरक्षक

1. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन एवं स्व. श्रीमती आदर्श जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, मेरठ।
2. श्रीमती राजूबाई मातेश्वरी श्री शिखर चन्द भाई देवेन्द्र कुमार लखमी चन्द जैन, सनावद (म.प्र.)।
3. श्री चिमनलाल चुन्नीलाल दोशी, कीका स्ट्रीट, मुम्बई।
4. श्रीमती अरुणाबेन मन्नूभाई कोटड़िया, सी.पी. टैंक रोड, मुम्बई।
5. श्रीमती ताराबेन चन्दूलाल दोशी, फ्रेन्च ब्रिज, मुम्बई।
6. श्री रतिलाल चुन्नीलाल दोशी, मुम्बई।
7. स्व. श्रीमती मथुराबाई खुशाल चन्द्र जैन, द्वारा-श्री रतन चन्द खुशाल चन्द्र गाँधी के सुपुत्र श्री धन्य कुमार, अशोक कुमार, शिरीश कुमार, धर्मराज गाँधी फलटन (महा.)।
8. श्री शांतिलाल खुशाल चन्द गाँधी, फलटन (सातारा) महा.।
9. श्री अनन्त लाल फूलचन्द फड़े, अकलूज (सोलापुर) महा.।
10. श्री हीरालाल माणिकलाल गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
11. श्री जयकुमार खुशालचंद गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
12. श्रीमती बदामी देवी मातेश्वरी श्री पदम कुमार जैन गंगवाल, कानपुर (उ.प्र.)।
13. श्रीमती कमलादेवी ध.प. स्व. श्री महेन्द्र कुमार जैन, घण्टे वाले हलवाई, दरियागंज, नई दिल्ली।
14. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री श्रवण कुमार जैन, चावड़ी बाजार, दिल्ली।
15. श्री मुकेश कुमार जैन, कटरा शहंशाही, चाँदनी चौक, दिल्ली।
16. श्री हुकमीचंद मांगीलाल शाह, धानमंडी, उदयपुर (राज.)
17. श्री किरण चन्द्र जैन, कटरा धूलियान, चाँदनी चौक, दिल्ली।
18. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री महावीर प्रसाद जैन इंजी. विवेक विहार, दिल्ली
19. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री अशोक कुमार जैन (खेकड़ा निवासी), बहराइच (उ.प्र.)।
20. श्रीमती लीलावती ध.प. श्री हरीश चन्द्र जैन, शकरपुर, दिल्ली।
21. श्री दुलीचन्द जैन, बाहुबली एन्कलेव, दिल्ली।
22. श्री रतिलाल केवलचन्द गाँधी की पुण्य स्मृति में, पापुलर परिवार, सूरत (गुज.)।
23. श्रीमती भंवरीदेवी ध.प. श्री सदासुख जैन पांड्या की समृति में इन्दर चन्दुमेसमल जैन पांड्या शिलांग (मेघालय)।
24. श्रीमती सोहनीदेवी ध.प. श्री तनसुखराय सेठी, फैन्सी बाजार, गौहाटी (आसाम)।
25. श्रीमती धापूबाई ध.प. श्री कस्तूर चन्द जैन, रामगंज मण्डी (राज.)।
26. श्री मिट्ठनलाल चन्द्रभान जैन, कविनगर गाजियाबाद (उ.प्र.)।
27. श्रीमती शकुन्तलादेवी ध.प. श्री सुरेशचंद जैन (बर्तन वाले), खुड़बुड़ा मोहल्लका, देहरादून (उ.प्र.)।
28. श्री देवेन्द्र कुमार गुणवन्त कुमार टोंग्या, बड़नगर (म.प्र.)।
29. श्री दिगम्बर जैन समाज, तहसील फतेहपुर (बाराबंकी) उ.प्र.।
30. श्री मन्नालाल रामलाल जैन डूंगरवाला, भानपुरा (मन्दसौर) म.प्र.।
31. श्री इन्दर चन्द कैलाश चंद चौधरी, सनावद (म.प्र.)।
32. श्री प्रकाश चन्द अमोलक चन्द जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।

33. स्व. श्री विमल चन्द जैन, रखबचन्द दसरथ सा, सनावद (म.प्र.)।
34. श्री आजाद कुमार जैन शाह (सनावद वाले), इन्दौर (म.प्र.)।
35. श्रीमती सुषमा देवी ध.प. श्री राकेश कुमार जैन, मवाना (मेरठ) उ.प्र.।
36. श्रीमती कुसुम जैन ध.प. श्री रमेशचन्द जैन, किशनपुरी, बागपत रोड, मेरठ।
37. श्रीमती किरण जैन ध.प. श्री पदम प्रसाद जैन एडवोकेट, मेरठ (उ.प्र.)।
38. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री जिनेन्द्रप्रसाद जैन ठेकेदार, टोडरमल रोड, नई दिल्ली।
39. श्रीमती क्षमादेवी जैन, मधुबन, दिल्ली।
40. श्रीमती कमलादेवी ध.प. श्री राजेन्द्र कुमार जैन टोडरका, ठाणे (महा.)।
41. श्री अजित प्रसाद जैन बब्बेजी, श्री राजकुमार श्रवण कुमार जैन, लखनऊ।
42. श्री प्रभा चन्द गोधा, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर-6 (राज.)।
43. श्री गोपीचन्द विपिन कुमार जैन, सरधना टैन्ट हाउस, गंजमंडी, सरधना।
44. श्रीमती रतनसुन्दरी देवी ध.प. श्री वीरचन्द जैन (चिकन वाले), चूड़ीवाली गली, चौक बाजार, लखनऊ।
45. डॉ. सुभाषचन्द जैन, रातानाड़ा क्लीनिक, रातानाड़ा बाजार, जोधपुर (राज.)।
46. श्री प्रमोद कुमार जैन (मुजफ्फरनगर वाले) 35 एच.वी.रोड, न्यू मार्केट, थरपकना, रांची (बिहार)।
47. श्री विजेन्द्र कुमार जैन, के.-1/20 मॉडल टाउन, दिल्ली।
48. श्री कैलाश चंद जैन, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर (राज.)।
49. श्री सुभाषचंद जैन, श्री दि. जैन पार्श्वनाथ चैत्यालय, 405 डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली।
50. श्री सुभाष चन्द जैन सर्राफ, टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.।
51. श्री चन्द्रसेन जैन, द्वारा-सुमेरचन्द, चन्द्रसेन जैन, सब्जी मण्डी, नहटौर (बिजनौर)।
52. श्री सुधीर कुमार जैन जे.ई., नन्द किशोर जैन, शारदा नहर खण्ड, शाहजहाँपुर।
53. श्री सुकुमालचंद जैन, मोती ट्रेडिंग कम्पनी, टी.आर. फुकन रोड, फैन्सी बाजार, गौहाटी।
54. श्री अनिल पुलकित सेठी, बी 1/122, फेज-2, अशोक विहार, दिल्ली-110052।
55. श्री चन्द्रमोहन बंसल, 11, पूसा रोड, करोलबाग, नई दिल्ली-5।
56. श्री गिरधर प्रसाद आमोद प्रसाद जैन, जैन वस्त्रालय, काली मार्केट, सिवान (बिहार)।
57. श्री सतीश चन्द जैन, 31 सिविल लाइन, म.नं.-10, सेक्टर-2, टाइप-5 झांसी।
58. श्री स्वरूप चन्द कासलीवाल, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
59. श्री हुलास चन्द सेठी, अयोध्या शुगर मिल्स, राजा का सहसपुर, बिलारी (उ.प्र.)।
60. श्रीमती किरण देवी जैन ध.प. श्री नरेन्द्र कुमार जैन, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
61. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री प्रवीण कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
62. श्री सूरजमल पुत्र श्री विनीत कुमार जैन, मोहल्ला गंजकटरा पूरणटरा पूरणजाद्यैन विला, मुरादाबाद (उ.प्र.)।
63. स्व. श्री शिखर चन्द जैन, 'टिम्बर कमीशन एजेन्ट', शंकरगंज, हापुड़ (उ.प्र.)।
64. श्रीमती राजेश्वरी जैन मातेश्वरी श्री राकेश जैन 31, सिविल लाईन, सीतापुर।
65. श्री राजकुमार जैन, मैसर्स रविदत्त प्रेमचन्द जैन बारदाने वाले, श्यामगंज, बरेली।
66. श्री बलवीर जैन, द्वारा-जानकी एक्सटेंशन रिफाइनरी, गाँधीगंज, शाहजहाँपुर।
67. श्री पन्नालाल सेठी, डीमापुर (नागालैंड)।
68. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, ईदगाह कालोनी, आगरा (उ.प्र.)।
69. श्री पोखपाल जैन, द्वारा-नावेल्टी मेटल इंडिया, मानसिंह गेट, अलीगढ़ (उ.प्र.)।
70. श्रीमती रश्मि जैन ध.प. श्री विजय कुमार जैन, दरियागंज, नई दिल्ली।

71. श्रीमती विमला देवी ध.प. श्री प्रमोद कुमार जैन इंजी., शाहजहाँपुर (उ.प्र.)।
72. स्व. श्रीमती कैलाशवती जैन ध.प. श्री कैलाश चन्द जैन इंजी., तोपखाना बाजार, मेरठ।
73. श्रीमती अरुण कुमार नांद्रेकर ध.प. भाऊ साहेब नांद्रेकर, मुलुन्ड (वेस्ट) मुम्बई।
74. श्री भागचन्द मनीष कुमार ठोलिया, द्वारा-किरन एजेंसी, पो. बुरहानपुर, (म.प्र.)।
75. श्री कैलाशचन्द राजकुमार जैन रावंका, पो. बिसवां (सीतापुर) उ.प्र.।
76. श्रीमती विद्यावती जैन, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली।
77. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) एवं सुपुत्र श्री मदन कुमार, प्रदीप कुमार एवं प्रवीण कुमार जैन, धर्मपुरा, गाँधीनगर, दिल्ली।
78. श्रीमती अरुणा जैन, ध.प. प्रवीन्द्र कुमार जैन, प्रीतमपुरा, दिल्ली।
79. श्रीमती पुष्पादेवी, ध.प. महेन्द्र कुमार जैन, पुष्पांजली एन्क्लेव, दिल्ली।
80. श्री बाबूलाल तोताराम जैन, भुसावल (महा.)।
81. डॉ. अनुपम जैन, सुदामा नगर, इंदौर (म.प्र.)।
82. श्री विनय कुमार जैन, ज्वैलर्स, दरीबाकलां, दिल्ली।
83. स्व. श्री आनन्द प्रकाश जैन 'शान्तिप्रिय', जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.।
84. श्रीमती राजुलबाई ध.प. श्री नेमीचन्द जैन लोहाड़े, पो. कोपरगाँव (महा.)।
85. श्री धन्नालाल गोधा, मल्हारगंज, इंदौर (म.प्र.)।
86. श्री सुनील कुमार मनोज कुमार जैन, झिलमिल कालोनी, दिल्ली।
87. श्रीमती आशा जैन ध.प. श्री राजेश कुमार जैन बरुआ सागर (उ.प्र.)।
88. श्री पारसमल डूंगरमल जी पाटनी पो. मेड़तासिटी, नागौर (राजस्थान)।
89. श्री अनिल कुमार जैन (गुड़गांव वाले) प्रियदर्शनी विहार, दिल्ली-92।
90. श्रीमती कृष्णा बाई नेमीनाथ जैन, पी. वाले, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
91. श्रीमती मंजूलता जैन ध.प. श्री प्रभात चन्द गोधा, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
92. श्री प्रमोद कुमार जैन, पारस प्रिन्टर्स, शाहदरा-दिल्ली।
93. श्री चांदमल अनिल कुमार सरावगी, किशनगंज (बिहार)।
94. कुमारी अदिती सुपुत्री श्री अपोलो जी जैन सौगानी, इंदौर।
95. श्रीमती मंजूलता ध.प. प्रभाचन्द गोधा-नया बाजार, अजमेर।
96. श्री सुचेद्र कुमार शैलेन्द्र कुमार जैन, डाल्टनगंज (झारखंड)।
97. श्रीमती जतनदेवी लक्ष्मीचंद जैन, चेन्नई (तमिलनाडु)।
98. श्रीमती सखाई जैन ध.प. श्री जीतमल जैन, मड़ाना (कोटा) राज.।
99. श्री मोहित जैन पुत्र मुकेश जैन, जगन्नाथ जैन पहाड़िया, फतेहपुर (शेखावटी) राज.।
100. श्री नरेश जैन बंसल, गुड़गाँवा (हरि.)।
101. श्रीमती रतनबाई ध.प. राजेन्द्र प्रकाश कोठिया, कोटा (राज.)।
102. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री अजीत कुमार जैन, भिवाड़ी (राज.)।
103. श्रीमती प्रेमलता जैन ध.प. श्री सुशील कुमार जैन, मलाड़ (मुम्बई)।
104. श्री राजेन्द्र कुमार पचौलिया, इंदौर (म.प्र.)।
105. स्व. श्री मोहनलाल हेमचंद गांधी, सतारा (महा.)।
106. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ

प्रथम अध्याय

चारित्रश्रमणी आर्यिका अभयमती-जीवन यात्रा

1.	चारित्रश्रमणी आर्यिका अभयमती-जीवन दर्शन	1
2.	आर्यिका श्री अभयमती जी की बुंदेलखण्ड यात्रा	13
3.	आर्यिका श्री अभयमती माताजी द्वारा किए गए चातुर्मास की सूची	38
4.	पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी की पूजन	40
5.	पूज्य आर्यिकारत्न श्री अभयमती माताजी की मंगल आरती	43
6.	भजन (अरे, जग जा रे चेतन.....)	44

द्वितीय अध्याय

साहित्य-साधना

1.	पूज्य अभयमती माताजी द्वारा लिखित समस्त साहित्य की सूची	45
2.	कुछ प्रमुख ग्रंथों के परिचय	
	(1) समयसार-अमृतकलश पद्यावली	46
	(2) आत्मानुशासन	48
	(3) धर्मचक्र विधान	51
	(4) श्री रयणसार सरस काव्य पद्यावली	52
	(5) पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय	53
	(6) अभय गीतांजलि	57
	(7) श्री भक्तामर काव्य पद्यावली एवं मण्डल विधान	58
	(8) मृत्युंजय विधान	58
	(9) श्रुतस्कंध विधान	59
	(10) एक वृक्ष सात डालियाँ	60
	(11) सोलहकारण भावना	60
	(12) दशधर्म	61
	(13) भगवान महावीर का अमर संदेश	62
	(14) पावन तीर्थ हस्तिनापुर का प्राचीन इतिहास	62
	(15) अतिशय क्षेत्र बिहारी का चमत्कारिक इतिहास	63
	(16) सप्तव्यसन	64
	(17) बाल विज्ञान ज्योति के प्रश्नोत्तर	64
3.	भजन (माता तेरे चरणों में)	84

तृतीय अध्याय

दीक्षागुरु एवं आचार्य श्री शांतिसागर जी पट्टावली परिचय

1. **चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज का जीवन परिचय** 85
2. **प्रथम पट्टाधीश आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज** 103
3. **द्वितीय पट्टाधीश आचार्यश्री शिवसागर महाराज** 118
4. **तृतीय पट्टाधीश आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज** 121
   (पूज्य अभयमती माताजी के आर्यिका दीक्षागुरु)
5. **स्वर्णिम व्यक्तित्व की धनी गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय** 125
   (श्री अभयमती माताजी की क्षुल्लिका दीक्षागुरु)
6. **पूज्य अभयमती माताजी की जननी श्रीमती मोहिनी देवी** 132
   (जो बनीं आर्यिका श्री रत्नमती माताजी)
7. **आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी का परिचय** 139
8. **पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर महाराज का परिचय** 140
9. **क्षुल्लिका श्री शांतिमती माताजी का जीवन परिचय** 143
10. **कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन का परिचय** 144
11. **पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी के जनक चैतन्यरत्नाकर लाला श्री छोटेलाल जी** 146
12. **तेरह भाई-बहनों के नाम** 151
14. **गृहस्थ भाई-बहनों के परिचय** 152
15. **माता मोहिनी एवं पिता छोटेलाल जी की तेरह सन्तानों की सन्तान परम्परा** 154
16. **''असली दहेज'' नाटक** 156
17. **मातृभक्ति** 166

चतुर्थ अध्याय

अमृत-प्रवचन

1. **पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी के अमृत-प्रवचन**
   प्रवचन 1–सम्यग्दर्शन की महिमा 173
   प्रवचन 2–जनवाणी नहीं जिनवाणी के अनुरूप बोलो 180
   प्रवचन 3–आर्यिकाओं की पूजा एवं शासन देव-देवियों की आराधना आगम के अनुकूल है। 189

प्रवचन 4–यदि चतुर्थकालीन मुनि की भावना भाते हो, तो पहले चतुर्थकालीन श्रावक बनकर दिखाओ 195
प्रवचन 5–समवसरण की महिमा 204

2. आर्यिका श्री अभयमती माताजी के सप्तव्यसन त्याग के परिप्रेक्ष्य में मंगल-प्रवचन

व्यसन मुक्ति संदेश 212
(1) जुआ खेलने से हानि 213
(2) मांस भक्षण से हानि 215
(3) शराब पीने से हानि 216
(4) शिकार खेलने से हानि 217
(5) वेश्या गमन से हानि 218
(6) चोरी करने से हानि 219
(7) परस्त्री सेवन से हानि 220

4. आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी के ध्यान-साधना पर प्रवचन

(1) ध्यान कैसे करें? 221
(2) ॐ का ध्यान 227
(3) ह्रीं का ध्यान 229
(4) पिण्डस्थ ध्यान की पाँच धारणाएँ 230
(5) ध्यान के सूत्र पद 233

5. व्रत-विधि

(1) अक्षय तृतीया व्रत (श्री ऋषभदेव-आहार व्रत) 234
(2) रक्षाबंधन व्रत 235
(3) नवनिधि व्रत 236
(4) शांतिनाथ व्रत (शांति भक्ति व्रत) 238
(5) शारदा व्रत 239

पंचम अध्याय

आर्यिकाओं के 28 मूलगुण

1. आर्यिकाओं के 28 मूलगुण आदि चर्या 241-256

भजन

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

तर्ज-फूलों सा चेहरा तेरा.....

सार्थक हो जीवन मेरा, पाया जो वरदान है।
पुण्यकार्य कर सकूँ, भव समुद्र तर सकूँ, मन में ये अरमान है।।
इस तन में है इक चैतन्य आत्मा,
उसका ही सारा चमत्कार है।
जिस दिन निकल जाय तन से वो आत्मा,
रह जाता पुद्गल का संसार है।।
नरजनम को पाके, आत्मतत्त्व ध्याके, पाना परममुक्ति का धाम है।
जड़ चेतन को समझूँ अलग, यही ज्ञानी की पहचान है।
पुण्यकार्य कर सकूँ, भवसमुद्र तर सकूँ, मन में ये अरमान है।।1।।

चारों गती में मानुषगती ही,
कहलाती सबसे उत्तम यहाँ।
क्योंकि उसी के द्वारा सभी जन,
करते हैं आतमचिंतन यहाँ।।
सिद्ध जो बने हैं, सिद्ध जो बनेंगे, नरतन से ही पाते निजधाम हैं।
विषयों में फंसना नहीं, देते गुरु ज्ञान है।
पुण्यकार्य कर सकूँ, भवसमुद्र तर सकूँ, मन में ये अरमान है।।2।।

जिनवर की पूजा, गुरुओं की भक्ती,
स्वाध्याय करके संयम धरूँ।
शक्ती के अनुसार करके तपस्या,
दानी बनूँ कुछ नियम भी करूँ।
चन्दनामती ये, कर्म षट् कहे हैं, हो इनसे आतम का कल्याण है।
क्रम क्रम से पाना है फिर, संयम सकल धाम है।
पुण्यकार्य कर सकूँ, भवसमुद्र तर सकूँ, मन में ये अरमान है।।3।।

भजन

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

तर्ज - जरा सामने तो.....

जय जय बोलो अभयमति मात की, जय जय हो इनके तप और त्याग की।
धर्मसागर व ज्ञानमति मात से, दीक्षा ले जो हुईं विख्यात जी।।टेक.।।

छोटेलाल पिता एवं माता मोहिनि से जन्म लिया।
बचपन में ही त्याग भाव से अपना जीवन धन्य किया।।
ब्रह्मचर्य की महिमा अपार थी, क्वांरी कन्या ने किया गृहत्याग भी।
जय जय बोलो अभयमति मात की, जय जय हो इनके तप और त्याग की।।1।।

पक्षी पिंजरे से बाहर आकर स्वतंत्र उड़ता जैसे।
कन्या मनोवती वैसे ही निकल पड़ीं गृह पिंजरे से।।
कोई शक्ती चली ना राग की, जीत होती सदा वैराग की।
जय जय बोलो अभयमति मात की, जय जय हो इनके तप और त्याग की।।2।।

दीक्षा दिवस के शुभ अवसर पर, विनयांजली समर्पित है।
शब्दमाल ''चन्दनामती'', कर रही चरण में अर्पित है।।
मेरा वन्दन करो स्वीकार जी, जिओ युग-युग यही है आश भी।।
जय जय बोलो अभयमति मात की, जय जय हो इनके तप और त्याग की।।3।।

प्रथम अध्याय

चारित्रश्रमणी

आर्यिका अभयमती–जीवन यात्रा

परमपूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी के जीवन परिचय को प्रारंभ करते हुए मुझे अत्यन्त गौरव हो रहा है कि एक ही माँ से उत्पन्न हम तीन बहनें (गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी, पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी, मैं–आर्यिका चन्दनामती) पूर्व जन्म के किसी विशेष पुण्य के कारण दीक्षा लेकर अपनी आत्मा का कल्याण करने में तत्पर हैं।

किसी कवि ने कहा है–

सत् नारी का बलिदान कभी, इस जग में व्यर्थ नहीं जाता।
उनके बलिदानों के बल पर, हर देश नया गौरव पाता।।

वास्तव में जब-जब नारी ने अपनी बलिदानी शक्तियों का उपयोग किया, तब-तब इस धरती पर क्रान्तिकारी परिवर्तन देखने को मिले हैं, युद्धक्षेत्र में बलिदान, सामाजिक क्षेत्र में कर्तव्य एवं पारिवारिक स्थिति में पातिव्रत्य धर्म का परिपालन करके जहाँ नारी ने अपने सम-सामयिक धर्म का परिचय प्रदान किया है, वहीं त्याग के क्षेत्र में भी अनेक गौरवमयी उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। इसी शृँखला में पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने दर्शन, ज्ञान, चारित्र की आराधना करते हुए महान आदर्श उपस्थित किया है।

माता मोहिनी के द्वारा प्रदत्त 13 रत्नों में से अभयमती माताजी पाँचवीं सन्तान हैं। सन् 1942 में आपका जन्म हुआ। पिता श्री छोटेलाल जी को प्रारंभ से ही कन्याओं के प्रति अत्यन्त स्नेह था। उनके हृदय में हमेशा यह भाव रहता था कि पुत्र तो कदापि आगे चलकर माँ-बाप से नाता तोड़ सकता है किन्तु कन्या के हृदय में पराये घर जाकर भी माँ-बाप के प्रति जो स्नेह होता है, वह सच्चा होता है। अपनी इस पुत्री का नाम भी उन्होंने बड़े प्यार से 'मनोवती' रखा।

मनोवती ज्यों-ज्यों बड़ी होती गई, माँ के धार्मिक संस्कारों को ग्रहण करने लगी। गाँव का प्राकृतिक वातावरण, घर का स्नेहिल वातावरण, पाठशाला का धार्मिक वातावरण सब कुछ उसके हृदय में प्रवेश कर गया। 4-5 क्लास तक लौकिक अध्ययन के बाद वहाँ उस समय कोई साधन नहीं था अतः दस-ग्यारह वर्ष की उम्र के बाद लड़की के लिए घर ही विद्यालय के रूप में होता था। घर के कामकाज से जब फुर्सत मिलती तो माँ कहतीं कि शीलकथा, दर्शनकथा पढ़ो। उनको पढ़ते-पढ़ते ही मानों आपने अपने मनोवती नाम को सार्थक करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था कि "अपनी प्रतिज्ञा पर हमेशा दृढ़ रहना।"

जब 1952 में आपकी बड़ी बहन मैना ने अनेक संघर्षों को सहन करके त्यागमार्ग पर कदम रखा, उस समय उनके इस साहस को आपने भी देखा था। आपका जीवन प्रारंभ से ही अत्यन्त सादगीपूर्ण रहा। बच्चों की स्वाभाविक चंचलता से दूर हमेशा गंभीर मुद्रा, शान्त स्वभावी, धार्मिक अध्ययन ही आपके जीवन का मूल अंग बन चुका था। हमेशा मन में यही भावना रहती कि किसी तरह ज्ञानमती माताजी के पद चिन्हों पर मैं भी चलूँ।

समय बीतता जा रहा था। आपकी भावनाओं को साकार रूप मिलने की काललब्धि आई। सन् 1962 में आप अपनी माँ और सबसे छोटे भाई रवीन्द्र कुमार के साथ लाडनू (राज.) में आचार्य शिवसागर जी महाराज के संघ के दर्शन करने गईं। पूज्य आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी उसी संघ में थीं। फिर क्या था, आपने दृढ़तापूर्वक आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लेने का कदम उठाया। माँ ने बहुत समझाया, लेकिन सब बेकार, ऐसे स्वर्ण अवसर को पाकर आप कब चूकने वाली थीं अतः ब्रह्मचर्य व्रत लेकर पूज्य माताजी के पास ही स्वाध्याय-अध्ययन-वैयावृत्ति आदि करने लगीं।

सन् 1962 में ही आर्यिका ज्ञानमती माताजी आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज सेआज्ञा लेकर सम्मेदशिखर यात्रा के लिए निकल पड़ीं। साथ में आर्यिका जिनमती जी,पद्मावती जी, आदिमती जी एवं क्षुल्लिका श्रेयासंमती जी, ये 4 साध्वियाँ थीं जो पूज्य माताजी की ही शिष्याएँ थीं। साधु के विहार में कुशल संघ संचालक की भी आवश्यकता होती है। बिना श्रावकों के उनकी गाड़ी सुचारूरूप से नहीं चल सकती इसीलिए साधु और श्रावक ये दोनों धर्मरूपी गाड़ी के दो पहिये कहे गये हैं। सम्मेदशिखर की यात्रा के समय ब्रह्मचारी श्री सुगनचंद जी एवं ब्रह्मचारिणी मनोवती जी ने कुशलतापूर्वक संघ संचालन किया।

सम्मेदशिखर की यात्रा–उस यात्रा के मध्य एक दिन घर में मनोवती का पत्र आया। उसे पहले पिताजी ने पढ़ा पुनः सबको सुनाया। उसमें विस्तार से लिखा हुआ था कि–

पूज्य आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी का संघ सम्मेदशिखर जी की यात्रा के लिए विहार कर चुका है। संघ में आर्यिका पद्मावती जी, आर्यिका जिनमती जी, आर्यिका आदिमती जी, क्षुल्लिका श्रेयांसमती माताजी ऐसी चार साध्वियाँ हैं। ब्र. सुगनचंद जी संघ की व्यवस्था में प्रमुख हैं। उनकी एक बहन ब्रह्मचारिणी जी साथ में हैं। एक महिला मूलीबाई और ब्र.भंवरीबाई भी साथ में हैं। जयपुर से एक श्रावक सरदारमल जी साथ में

हैं। एक चौका ब्र.सुगनचंद जी का है और एक मेरा है। हम लोग कल यहाँ मथुरा में पहुँचे हैं। संघ यहाँ से आगरा, फिरोजाबाद, मैनपुरी, कन्नौज, कानपुर, लखनऊ होते हुए अयोध्या पहुँचेगा। टिकैतनगर यद्यपि कुछ बाजू में है फिर भी मेरी इच्छा है कि संघ का पदार्पण टिकैतनगर अवश्य हो। संघ में मुझे कुछ असुविधाएँ हो जाती हैं, चूँकि सरदारमल जी माताजी के साथ चलते हैं अतः मैं चाहती हूँ कि यात्रा में भाई प्रकाशचंद को आप भेज दें तो मुझे बहुत ही सुविधा रहेगी। माताजी ने भी ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणियों को नियम दे दिया है कि शिखर जी पहुँचने तक रास्ते में कोई किसी श्रावक से पैसा या कोई वस्तु नहीं लेना। कोई कुछ देना चाहे तो कह देना कि आप संघ में दो-चार दिन रहकर स्वयं कुछ कर सकते हैं, हम लोग कुछ नहीं लेंगे। मात्र बैलगाड़ी की व्यवस्था इस गाँव से अगले गाँव तक गाँव वालों से ही कराने की छूट कर दी है। इसलिए मेरी सारी व्यवस्था संभालने के लिए प्रकाश का आना आवश्यक है।''

साथ ही प्रकाशचंद को भेजने के लिए एक तार भी घर में पहुँचा।

पत्र और तार का समाचार सुनने के बाद माँ मोहिनी ने सोचा–

''ये प्रकाश को क्या भेजेंगे, मैं कुछ न कुछ प्रयत्न कर भेजने का प्रयास करूँ।''

किन्तु हुआ इससे विपरीत, पिताजी बहुत ही प्रसन्न थे और बोले–

''देखो, कुछ नाश्ता-वाश्ता बना दो, प्रकाश जल्दी चला जाये। बिटिया मनोवती को रास्ते में बहुत कष्ट होता होगा।''

माँ का हृदय गद्गद हो गया। पिता ने उसी समय प्रकाश को बुलाकर सारी बात समझा दी और बोले–

''जाओ, कुछ दिन मनोवती के साथ विहार की व्यवस्था में भाग लेवो। बाद में व्यवस्था अच्छी हो जाने के बाद जल्दी से चले आना।''

साथ में रुपयों की व्यवस्था भी कर दी और बोले–

''बेटा! अपने खेत का चावल एक बोरी लेते जाना।''

सारी व्यवस्था लेकर प्रकाश मथुरा पहुँच गये। पुनः संघ वहाँ से विहार करते-करते लखनऊ पहुँचा। टिकैतनगर के श्रावकों ने इस आर्यिका संघ को टिकैतनगर चलने का आग्रह किया। माताजी ने स्वीकार कर टिकैतनगर पदार्पण किया। वहाँ माँ और पिताजी बहुत ही प्रसन्न हुए। आर्यिका अवस्था में ज्ञानमती माताजी अपनी जन्मभूमि में दस वर्ष बाद पहुँची थीं। संघ वहाँ 5-6 दिन रहा, अच्छी प्रभावना हुई। जैनेतरों ने भी माताजी के दर्शन कर अपने को और अपने गाँव को धन्य माना। यहाँ पर मनोवती और प्रकाश अपने घर में ही ठहरे थे, वहीं चौका चल रहा था। अब पिताजी का मोह पुनः जाग्रत हुआ, उन्होंने कु. मनोवती और प्रकाश दोनों को भी आगे नहीं जाने के लिए कहा और रोकना चाहा।

तब पूज्य ज्ञानमती माताजी ने कहा–

''बीच में अधूरी यात्रा में इन्हें क्या पुण्य मिलेगा? पूरी यात्रा तो करा देने दो।''

एक दिन पिता ने दोनों को (प्रकाशचंद और मनोवती) बिठाकर रास्ते के अनुभव पूछना शुरू किया। अनेक खट्टे-मीठे अनुभवों के मध्य ही मनोवती ने बताया–

"प्रतिदिन प्रातः जब हमारी बैलगाड़ी 7-8 बजे गंतव्य स्थान पर पहुँचती है, तब कपड़े सुखाते हैं पुनः कपड़े सूखने पर चौका बनाते हैं और कई बार देर हो जाने पर हम लोग इतनी भयंकर सर्दी में भी गीले कपड़े पहनकर ही रसोई बनाते हैं।"

मनोवती की संघ सेवा, कुशलता और योग्यता को देखकर पिताजी बहुत ही प्रसन्न थे, उन्होंने पूछा–

"बिटिया! तुम्हें खाना कितने बजे मिलता है?"

"खाना प्रतिदिन 12-1 बजे खाती हूँ।"

तब पिताजी ने कहा–

"बेटी! तुम घर में 4-5 बार खाती थीं और रास्ते में केवल एक बार भोजन मिलता है अतः अब संघ में नहीं जाना, नहीं तो बहुत कमजोर हो जाओगी।"

किन्तु मनोवती जिद करके पुनः संघ के साथ चल दीं और जगह-जगह के प्राकृतिक वातावरण में आत्मसाधना करते हुए संघ 6 महीने में सम्मेदशिखर पहुँच गया। 20 तीर्थंकरों तथा करोड़ों मुनियों की निर्वाणभूमि सम्मेदशिखर का तो कण-कण पवित्र है ही, पूज्य माताजी के साथ सभी लोग वहाँ के दर्शनों का व विशाल पर्वत की वंदना का पुण्य अर्जित करने लगे।

मैंने पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी से कई बार सुना है कि आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज कहा करते थे कि **सम्मेदशिखर से बढ़कर अन्य कोई तीर्थ नहीं है, गोम्मटेश्वर भगवान बाहुबलि से सुन्दर अन्य कोई मूर्ति नहीं है और आचार्यश्री शांतिसागर जी से बढ़कर इस युग में अन्य कोई साधु नहीं हुआ** अतः कु. मनोवती ने भी पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी के साथ सम्मेदशिखर तीर्थ पर रहकर बहुत सी वन्दनाएँ कीं।

मोह से पिता की विक्षिप्तता–सम्मेदशिखर में एक दिन कु. मनोवती के विशेष आग्रह से माताजी ने उनके केशों का लोंच करना शुरू कर दिया। वह चाहती थी कि मुझे दीक्षा लेना है तो केशलोंच का एक दो बार अभ्यास कर लूँ, इसी भाव से वह केशलोंच करा रही थीं। संयोग से उस समय उनके माता-पिता भी दर्शन करने शिखर जी गये हुए थे अतः माताजी ने सोचा–

"ये लोग यहाँ ठहरे हुए हैं तो बुला लूँ। केशलोंच देख लें.....।"

ऐसा सोचकर माताजी ने उन्हें सूचना भिजवा दी। पिताजी वहाँ कमरे में आये, देखा कु. मनोवती के केशों का लोंच, वे एकदम घबरा गये और हल्ला मचाते हुए जल्दी से अपने कमरे में भागे। वहाँ पहुँचकर अपनी पत्नी मोहिनी जी से बोले–

"अरे! देखो, देखो, माताजी हमारी बिटिया मनोवती के शिर के केश नोचें डाल रही हैं। चलो, चलो, जल्दी से रोको।' और ऐसा कहते हुए वे रो पड़े। माँ दौड़ी हुई वहाँ आईं और बोलीं–

"माताजी! आपने यह क्या किया? देखो, इसके पिताजी तो पागल जैसे हो रहे हैं और रो रहे हैं। उनके सामने आप इसका लोंच न करके बाद में भी कर सकती थीं।"

उनकी ऐसी बातें सुनकर सभी माताजी हँसने लगीं और बोलीं–

"भला केशलोंच देखने में घबराने की क्या बात है? मैं भी सदा अपने केशलोंच करती हूँ।...."

पुनः पिताजी वहीं आ गये और बोले–

"अरे, अरे, छोड़ दो माताजी! मेरी बिटिया मनोवती को छोड़ दो, इसके बाल न नोंचो, देखो तो इसका सिर लाल-लाल हो गया है।....."

परन्तु उनकी बातों पर लक्ष्य न देकर माताजी हँसती रहीं, कु. मनोवती के केशों का लोंच करती रहीं। मनोवती भी हँस रही थीं और मौन से ही संकेत से पिताजी कोसान्त्वना दे रही थी कि–

"पिताजी! मुझे कष्ट नहीं हो रहा है। मैं तो हँस रही हूँ फिर आप क्यों दुःखी हो रहे हो और क्यों अश्रु गिरा रहे हो?"

माताजी ने भी उन्हें सान्त्वना दी। लोंच पूरा होने के बाद मनोवती ने कहा–

"मैंने तो स्वयं ही आग्रह किया था। मैं एक वर्ष से माताजी से प्रार्थना कर रही थी। बड़े भाग्य से ही आज तीर्थराज पर ऐसा अवसर मिला है। अब मुझे विश्वास हो गया है कि मैं भी एक दिन आर्यिका बन सकती हूँ।"

पिताजी उसे अपने कमरे में ले गये, खूब समझाया और बोले–

"बिटिया! तुम अब इनके साथ मत रहो, थोड़े दिन घर चलो। बाद में फिर जब कहोगी, तब कैलाश के साथ भेज देंगे.....।"

लेकिन इधर माताजी के संघ का श्रवणबेलगोल यात्रा के लिए प्रोग्राम बन चुका था अतः वो पिताजी के साथ घर जाने को राजी नहीं हुईं और पिताजी को समझाकर संघ में ही रह गईं, पुनः माता-पिता वापस घर चले गये।

क्षुल्लिका दीक्षा–सन् 1963 में ज्ञानमती माताजी का संघ सहित चातुर्मास कलकत्ता में हुआ। मनोवती के हृदय में दीक्षा लेने की इच्छा तो प्रारंभ से ही थी लेकिन अभी तक कोई योग नहीं मिल रहा था। पूज्य माताजी की आज्ञानुसार आप कलकत्ता से गिरनार यात्रा को गईं। वहाँ से आने के बाद कुछ ही दिनों में संघ कलकत्ता से विहार करके हैदराबाद आया। आपकी दीक्षा की अति उत्कृष्ट भावना को देखते हुए पूज्य ज्ञानमती माताजी ने सन् 1964 में श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन हैदराबाद में आपको क्षुल्लिका दीक्षा प्रदान की। उस समय आपकी दीक्षा का दृश्य भी अद्भुत एवं अद्वितीय था जो हैदराबाद के इतिहास में अविस्मरणीय हो गया। अब आप कु. मनोवती से क्षुल्लिका अभयमती बन गईं। संघ विहार करके भगवान बाहुबली के चरण सानिध्य श्रवणबेलगोल में पहुँच गया। इस प्रथम पदयात्रा में आपको विशेष शारीरिक कष्ट रहा और वहाँ आप

गंभीररूप से बीमार रहीं। पूज्य ज्ञानमती माताजी ने संघ सहित एक वर्ष तक वहाँ विराजमान रहकर बाहुबली के चरणों में खूब ध्यान किया। यह वही भूमि है, जहाँ उनके मस्तिष्क में जम्बूद्वीप रचना को साकार करने की भावना जागृत हुई थी। अपनीयात्रा पूर्ण करके माताजी कुछ दिनों बाद ही आचार्य शिवसागर जी महाराज के संघ में आ गईं। क्षुल्लिका अभयमती जी भी उन्हीं के साथ रहकर अध्ययन तथा रत्नत्रय साधना करती रहीं।

आचार्य शिवसागर जी महाराज की उदारता—सन् 1968, प्रतापगढ़ (राज.) में चातुर्मास के मध्य एक दिन क्षुल्लिका अभयमती की किन्हीं माताजी के साथ कुछ कहा-सुनी हो गई। बात उसी क्षण महाराज जी के पास आ गई। आचार्य महाराज ने दोनों साध्वियों को 7-7 दिन के लिए रसों का परित्याग करा दिया। उस समय माँ मोहिनी वहाँ संघ में चौका लेकर गई हुई थीं, इस घटना के दो दिन बाद माँ मोहिनी सहसा आचार्य महाराज के पास जाकर बैठ गईं और काफी देर तक बैठी ही रहीं किन्तु कुछ भी बोली नहीं।

दूसरे दिन आचार्य महाराज ने आहार को निकलते समय क्षुल्लिका अभयमती को अपने साथ आने का संकेत कर दिया। वह आचार्यश्री के पीछे-पीछे चली गईं। महाराज जी सीधे माँ मोहिनी के सामने जाकर खड़े हो गये। अभयमती जी भी वहीं खड़ी हो गईं। माँ-पिता ने बड़ी भक्ति से आचार्यश्री की प्रदक्षिणा देकर उन्हें चौके में ले जाकर नवधाभक्ति की। क्षुल्लिका अभयमती को भी पड़गाहन कर चौके में बिठाया। आचार्यश्री की थाली परोस जाने के बाद उन्होंने दूसरी थाली परोसने को भी संकेत किया। माँ को उनके रस परित्याग की बात मालूम थी अतः वे नीरस परोसने लगीं। तभी महाराज ने संकेत कर उस थाली में दूध, घी आदि रस रखवा दिया। पुनः महाराज जी का आहार शुरू हो गया। बाद में महाराज ने अभयमती जी को भी दूध, घी, नमक, लेने का संकेत किया। गुरुदेव की आज्ञानुसार अभयमती जी ने आहार में दूध, घी आदि रस ले लिया। माता-पिता आचार्यदेव की इस उदारता को देखकर बहुत ही आश्चर्यान्वित हुए। मध्यान्ह में जाकर माँ मोहिनी ने सारी बातें पूज्य आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी को सुना दीं और बोलीं—

"देखो माताजी, आचार्यश्री ने गलती पर अनुशासन भी किया और मैं कल मध्यान्ह में देर तक उनके पास बैठी रही थी। शायद इससे मेरे हृदय में इसके त्याग का दुख जानकर ही आज स्वयं मेरे चौके में आचार्य महाराज भी आये और अभयमती को भी लाकर उन्हें आहार में घी-दूध आदि रस दिला दिया। सच में गुरु का हृदय कितना करुणार्द्र होता है!"

आर्यिका दीक्षा—सन् 1969 फाल्गुन का महीना था, आचार्य श्री शिवसागर महाराज का संघ विहार करता हुआ "श्री महावीर जी" अतिशय क्षेत्र पर पहुँच गया। वहाँ "शांतिवीर नगर" में विशाल जिनबिंब पंचकल्याणक होने वाला था। आचार्यश्री शिवसागर जी महाराज उस समय संघ के अधिनायक थे। पंचकल्याणक का अवसर निकट आ रहा था कि आचार्यश्री बीमार पड़ गये। उन्हें बुखार आ गया और देखते ही देखते फाल्गुन वदी

अमावस्या को वे बड़ी शांतिपूर्वक स्वर्गस्थ हो गये। इस आकस्मिक निधन से संघ में खलबली मच गई, सारे साधु निराश हो गये किन्तु फाल्गुन सुदी अष्टमी को मुनि धर्मसागर जी को आचार्यपट्ट प्रदान किया गया और उन्होंने सारा भार संभाला, पंचकल्याणक सम्पन्न कराया। उसी दिन आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज के करकमलों से कई दीक्षाएँ सम्पन्न हुईं, उसी में क्षुल्लिका अभयमती जी को आर्यिका अभयमती के रूप में सर्वप्रथम आचार्यश्री ने दीक्षा प्रदान की थी। तब से आर्यिका अभयमती माताजी अपने 28 मूलगुणों का पालन करती हुई आत्मकल्याण में तत्पर हैं।

पिता छोटेलाल जी ने भी उनकी आर्यिका दीक्षा देखी–यहाँ पाठकों के लिए यह विशेष ज्ञातव्य है कि पूज्य ज्ञानमती माताजी ने जब क्षुल्लिका दीक्षा तथा आर्यिका दीक्षा ली, तब घर में किसी प्रकार की सूचना न होने से माता-पिता आदि कोई भी परिवारीजन उनकी दीक्षा देखने का सौभाग्य नहीं प्राप्त कर सके थे तथा कु. मनोवती की क्षुल्लिका दीक्षा के समय भी घर में कोई समाचार नहीं भेजा गया था परन्तु जब क्षुल्लिका अभयमती जी की आर्यिका दीक्षा होने वाली थी, तब संघस्थ ब्र. मोतीचंद जी (वर्तमान में क्षुल्लक मोतीसागर जी) ने एक पत्र कैलाशचंद जी (टिकैतनगर) के नाम लिखा था कि–

"संघ यहाँ महावीर जी क्षेत्र पर विराजमान है, फाल्गुन सुदी में शांतिवीर नगर में भगवान शांतिनाथ की विशालकाय प्रतिमा का पंचकल्याणक महोत्सव होने जा रहा है। इस अवसर पर अनेक दीक्षाओं के मध्य क्षुल्लिका अभयमती जी की आर्यिका दीक्षा अवश्यहोगी अतः आप माँ और पिताजी को अंतिम बार उनकी इस दीक्षा के माता-पिता बनने का लाभ न चुकावें। अवश्य आ जावें।"

उस समय यद्यपि पिताजी को पीलिया के रोग से काफी कमजोरी चल रही थी, वे प्रवास में जाने के लिए समर्थ नहीं थे, फिर भी माँ ने आग्रह किया कि–

"यह अंतिम पुण्य अवसर नहीं चुकाना है। भगवान महावीर स्वामी की कृपा से आपको स्वास्थ्य लाभ होगा। हिम्मत करो, भगवान, तीर्थ और गुरुओं की शरण में जो होगा, सो ठीक ही होगा.....।"

कैलाशचंद जी ने भी साहस किया। रुग्णावस्था में पिता को साथ लेकर माँ की मनोकामना पूर्ण करने के लिए महावीर जी पहुँच गये।

माँ मोहिनी की मनोभावना पूर्ण हुई–यहाँ फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को भगवान के तपकल्याणक दिवस संघस्थ ज्येष्ठ मुनिश्री धर्मसागर जी को चतुर्विध संघ के समक्ष आचार्यपद प्रदान किया गया और नवीन आचार्य के करकमलों से उसी दिन ग्यारह दीक्षाएँ हुईं। कैलाशचंद जी इतनी भीड़ में भी पिताजी को सभा में ले आये। उन्होंने दीक्षाएँ देखीं और क्षुल्लिका अभयमती की आर्यिका दीक्षा में माता-पिता के पद को स्वीकार कर उनके हाथ से पीताक्षत, सुपारी, नारियल आदि भेंट में प्राप्त किये, इस लाभ से वे बहुत ही प्रसन्न हुए।

पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने 2 वर्ष तक आचार्य संघ एवं पूज्य ज्ञानमती माताजी के सानिध्य में रहते हुए रत्नत्रयसाधना एवं ज्ञानाराधना की पुनः सन् 1971 में अपनी माँ मोहिनी की दीक्षा देखने के पश्चात् अजमेर (राज.) से बुंदेलखण्ड की यात्रा हेतु संघ से पृथक् विहार किया। कई वर्षों तक बुंदेलखण्ड की यात्रा करते हुए वहाँ स्थान-स्थान पर महिला मण्डल एवं स्वाध्याय मण्डल की स्थापना की और कई पुस्तकों का लेखन व पद्यानुवाद कार्य भी किया।

निरन्तर 43-44 वर्षों से अपनी साध्वी चर्या का पालन करते हुए आप अपने रुग्ण शरीर से भी धर्मप्रभावना एवं ग्रंथ लेखन आदि कार्य करती रहती हैं। पूज्य माताजी स्वस्थ एवं चिरायु होकर इसी प्रकार दीर्घकाल तक सभी को अपना सानिध्य प्रदान करती रहें, यही भगवान जिनेन्द्र से प्रार्थना है।

पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी का किस प्रकार संघ में प्रवेश हुआ तथा उनकी दीक्षाग्रहण करने की उत्कट भावना कैसे सफल हुई? इसका वर्णन पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने "मेरी स्मृतियाँ" ग्रंथ में सजीवता से किया है, वह प्रकरण भी यहाँ ज्यों की त्यों उद्धृत किया जा रहा है–

मनोवती के मनोरथ फले –

मनोवती अस्वस्थ चल रही थी। डाक्टर का इलाज चल रहा था किन्तु कोई खास फायदा नहीं दिख रहा था। माँ मोहिनी एक बार लखनऊ गईं। वहाँ चौक के मंदिर में दर्शन करने पहुँचीं तो देखा, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा की कुंकुमपत्रिका मंदिर जी में लगी हुई है। बारीकी से पढ़ने लगीं। विदित हुआ, इस समय आचार्य शिवसागर जी का संघ लाडनूं राजस्थान में है। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का अवसर है, वहाँ पर आर्यिका ज्ञानमती जी भी हैं। मन में सोचने लगीं–

"यह मनोवती पाँच वर्ष से माताजी के लिए तड़फ रही है। इसका शरीर स्वास्थ्य इस मानसिक चिंता से ही खराब हो रहा है। इसको जब तक माताजी के दर्शन नहीं मिलेंगे, तब तक इसे कोई भी दवाई नहीं लगेगी।.....यह मौका अच्छा है। पति से पूछने पर, पता नहीं वे कितने मोही जीव हैं, इसे संघ में ले जाने की अनुमति नहीं देंगे। मेरी समझ से तो अब मुझे इस मनोवती को माताजी के दर्शन करा देना चाहिए।"

माँ मोहिनी के साथ उस समय रवीन्द्र कुमार नाम का सबसे छोटा पुत्र था। सोचा–

"इसे ही साथ लेकर मैं क्यों न लाडनूं चली जाऊँ?"

यद्यपि माँ मोहिनी ने आज तक कभी अकेले इस तरह रेल का सफर नहीं किया था, फिर भी साहस बटोर कर भगवान का नाम लेकर उन्होंने किसी विश्वस्त व्यक्ति से लाडनूं आने-जाने का मार्ग पूछ लिया और मनोवती पुत्री तथा रवीन्द्र पुत्र को साथ लेकर लाडनूं आ गईं, आचार्यश्री, संघस्थ साधुओं तथा मेरे दर्शन किये, मन शांत हुआ पुनः दूसरे ही क्षण घबराहट में मुझसे बोलीं–

"मैं तुम्हारे पिता से न बताकर लखनऊ से ही सीधे इधर आ गई हूँ। अगर मैं घर नहीं पहुँचूँगी, तब लोग चिंता करेंगे।"

मैंने सारी स्थिति समझ ली। शीघ्र ही ब्र. श्रीलाल जी को बुलाया और सारी बात बता दी तथा घर का पता बताकर कहा कि–

"इनके घर तार दे दो कि ये लोग सकुशल यहाँ प्रतिष्ठा देखने आ गई हैं, चिंता न करें।"

ब्र. श्रीलालजी ने उनके घर तार दे दिया। अब उन्होंने यहाँ रहकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा देखी और प्रतिदिन आहार दान का लाभ लेने लगीं।

मनोवती की खुशी का क्या ठिकाना? मानों उसे सब कुछ मिल गया है। वह मेरे दर्शन कर अपने को धन्य मानने लगी। मेरे पास बैठकर उसने अपने 4-5 वर्ष के मनोभाव सुनाये और कहने लगी–

"माताजी! अब मैं घर नहीं जाऊँगी। अब तो आप मुझे यहीं पर दीक्षा दिला दो।

मैंने समझाया, सान्त्वना दी और कहा–

"बेटी मनोवती! अब तुम संघ में आ गई हो, खूब धार्मिक अध्ययन करो, व्याकरण पढ़ो, दीक्षा भी मिल जायेगी। धीरे-धीरे सब काम हो जावेगा।"

उस समय संघ में वयोवृद्धा और दीक्षा में भी सबसे पुरानी आर्यिका धर्ममती माताजी थीं। उनका मेरे प्रति विशेष वात्सल्य था। उन्होंने इस कन्या मनोवती के ज्ञान की और वैराग्य की बहुत ही सराहना की तथा बार-बार माँ मोहिनी से कहने लगीं–

"माँ जी! तुम्हारी कूँख धन्य है कि जो तुमने ऐसी-ऐसी कन्यारत्न को जन्म दिया है। देखो! ज्ञानमती माताजी के ज्ञान से सभी साधुवर्ग प्रभावित हैं। ये इतनी कमजोर होकर भी रात-दिन संघ में आर्यिकाओं को पढ़ाती ही रहती हैं। यह कन्या मनोवती भी देखो, कितने अच्छे भावों को लिये हुए है। सिवाय दीक्षा लेने के और कोई बात ही नहीं करती है। इसे भी तत्त्वार्थसूत्र आदि का अर्थ मालूम है, अच्छा ज्ञान है और क्षयोपशम भी बहुत अच्छा है, खूब पढ़ जायेगी। अब इसे हम लोग संघ में ही रखेंगे, घर नहीं भेजेंगे।"

इन बातों को सुनकर मनोवती खुश हो जाती थी। एक दिन मेरे साथ आचार्य शिवसागर महाराज के पास पहुँचकर उसने नारियल चढ़ाकर दीक्षा के लिए प्रार्थना की। महाराज जी ने कहा–

"अभी तुम आई हो, संघ में रहो, कुछ दिनों में दीक्षा भी मिल जायेगी।"

किन्तु माँ मोहिनी घबराने लगीं, उन्होंने कहा–

"यदि यह वापस घर नहीं चलेगी तो मुझे घर में रहना भी मुश्किल हो जायेगा। इसके पिता बहुत उपद्रव करेंगे।"

तब सभी माताजी ने माँ को समझा-बुझाकर शांत कर दिया।

कुछ दिन संघ में रहने के बाद अब माँ मोहिनी घर वापस जाना चाहती थीं लेकिन मनोवती किसी भी तरह माँ के साथ घर जाने को तैयार नहीं थीं।

मनोवती का संघ में रहना –

अब मनोवती ने जिद पकड़ ली–

"चाहे जो हो जाये, अब मैं घर नहीं जा सकती। कितनी मुश्किल से मुझे माताजी मिली हैं, अब मैं इन्हें नहीं छोड़ने की, मैं तो यहीं रहूँगी।"

तब ब्र. श्रीलालजी ने माता मोहिनीजी को जैसे-तैसे समझाकर उनसे स्वीकृति दिलाकर कु. मनोवती को एक वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत आचार्य शिवसागरजी से दिला दिया और एक वर्ष तक उसे संघ में रहने की स्वीकृति दिला दी तथा मोहिनी जी को सान्त्वना देकर घर भेज दिया।

मोहिनीजी के पास लगभग 2 वर्ष की छोटी सी कन्या थी। उसका नाम मैंने "त्रिशला" रखा था। मोहिनीजी अपनी इस कन्या को और रवीन्द्र कुमार को साथ लेकर ब्रह्मचारी जी के साथ अपने घर वापस चली गईं। सारे पुत्र-पुत्रियाँ माँ को देखते ही उनसे चिपट गये और कहने लगे–

"माँ! तुम हमें छोड़कर माताजी के पास क्यों चली गयी थीं? बताओ, हम माताजी के दर्शन कैसे करेंगे?"

इधर जब पिता ने मनोवती को नहीं देखा, तो उनका पारा गरम हो गया और वे गुस्से से बोले–

"अरे! मेरी बिटिया मनोवती कहाँ है? क्या तुम उसे ज्ञानमती के पास छोड़ आईं?"

मोहिनीजी ने शांति से जवाब दिया–

"वह पाँच वर्ष से रोते-रोते बीमार हो गयी थी, आखिर मैं कब तक अपना कलेजा पत्थर का रखती? अब मैं क्या करूँ?.....संघ की आर्यिकाओं ने मुझे खूब समझाया और उसे एक वर्ष तक के लिए संघ में रख लिया है। जब चाहे आप संघ में चले जाना, सब साधु-साध्वियों के और ज्ञानमती माताजी के दर्शन भी कर आना तथा जैसे प्रकाश को वापस बुला लिया था, वैसे ही उसे भी ले आना.....।"

मनोवती की मनोभावना सफल हुई –

इधर हैदराबाद से किसी श्रावक का लिखा हुआ एक पत्र टिकैतनगर पहुँचा–

"आर्यिका ज्ञानमती माताजी अत्यधिक बीमार हैं।" माता-पिता बहुत दुःखी हुए। कैलाशचंद जी को भेजा, "जाओ समाचार लेकर आओ, कैसी तबियत है? कैलाशचंद आये–देखा, मैं पाटे पर लेटी हुई हूँ और बोलने अथवा करवट बदलने की भी मेरी हिम्मत नहीं है पुनः दो-चार दिन बाद कुछ सुधार होने पर एक दिन मध्यान्ह में कु. मनोवती भाई कैलाशचंद के पास बैठी-बैठी रोने लगी, बोली–

"भाई साहब! मुझे दीक्षा दिला दो, अभी 8 दिन पूर्व भी माताजी के बारे में सभी डाक्टर-वैद्यों ने जवाब दे दिया था, बोले थे, कि अब ये बचेंगी नहीं.....यदि माताजी को कुछ हो गया, तो मैं क्या करूँगी?

कैलाशचंद जी ने बहुत कुछ सान्त्वना दी किन्तु उसे शान्ति नहीं मिली पुनः वह आकर मेरे पास रोने लगी और बोली–

"मेरे भाग्य में दीक्षा है या नहीं? मैं कितने वर्षों से तड़प रही हूँ।" इतना कहकर उसने दीक्षा न मिलने तक छहों रस त्याग कर दिये। दो दिनों तक वह नीरस भोजन करती रही, तब कैलाशचंद मेरे पास बैठे और बोले–

"माताजी! इसे कैसे समझाना?....."

मैं धीरे-धीरे बोली–

"कैलाश! मैंने देखा है कि संघ में जिसके भाव दीक्षा के नहीं होते हैं, उसे कैसी-कैसी प्रेरणा देकर दीक्षा दी जाती है? किन्तु.....पता नहीं इसके किस कर्म का उदय है।.....जो भी हो, यह बेचारी दीक्षा के लिए रो-रोकर आँखें सुजा लेती है। अब मुझे भी इसके ऊपर करुणा आ रही है।.... जब मेरे दीक्षा के भाव थे, तब मैंने भी तो पुरुषार्थ करके छह महीने के अंदर ही दीक्षा प्राप्त कर ली थी किन्तु इसे आज 2-3 वर्ष हो गये हैं। न इसके ज्ञान में कमी है न वैराग्य में, मात्र इसका शरीर अवश्य कमजोर है, फिर भी यह चारित्र में बहुत ही दृढ़ है, यह मैंने अनुभव कर लिया है अतः मेरी इच्छा है कि तुम अब इसके सच्चे भ्राता बनो.....।'

इतना सुनकर कैलाशचंद का भी हृदय पिघल गया। वे बोले–

"माताजी! आप जो भी आज्ञा दें, मैं करने को तैयार हूँ।.....मैं इसका रस परित्याग पूर्ण कराकर ही घर जाऊँगा।"

मैंने कहा–

"तुम आज ही पपौराजी (टीकमगढ़) चले जावो और इसकी दीक्षा हेतु आचार्य श्री शिवसागर जी से आज्ञा ले आवो। यह मेरे से ही दीक्षा लेना चाहती है।"

कैलाशचंद ने मेरी आज्ञा शिरोधार्य की। वहाँ से रवाना होकर टीकमगढ़ पहुँचे। आचार्यश्री को नमोऽस्तु करके यहाँ की सारी स्थिति सुना दी। सन् 1964 का आचार्य संघ का यह चातुर्मास पपौरा तीर्थ पर हुआ था।

आचार्यश्री ने कहा–

"मेरी आज्ञा है कि आर्यिका ज्ञानमती माताजी उसे क्षुल्लिका दीक्षा दे दें।

आज्ञा लेकर कैलाशचंद वापस हैदराबाद आ गये। कु. मनोवती की खुशी का भला अब क्या ठिकाना!

मैंने श्रावण शुक्ला सप्तमी को भगवान पार्श्वनाथ का मोक्ष कल्याणक होने से उसी दिन दीक्षा देने के लिए सूचना कर दी। फिर क्या था, हैदराबाद के श्रावकों के लिए यहाँ दीक्षा देखने का पहला अवसर था। भक्तों ने बड़े उत्साह से प्रोग्राम बनाया, तीन दिन ही शेष थे। कैलाशचंद ने खुली जीप में मनोवती की शोभायात्रा निकाली पुनः वहाँ के श्रावकों ने हाथी पर बिंदोरी निकाली थी। कु. मनोवती को रात्रि के 1-2 बजे तक सारे शहर में

घुमाया गया। श्रावक-श्राविकाएँ चन्दन के हार, नोटों की मालाएँ और पुष्पमालाओं से मनोवती को सम्मानित करते गये।

जाप्य का प्रभाव –

श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन प्रातः से ही मूसलाधार बारिश चालू हो गई। ऐसा लगा-

''खुले मैदान में दीक्षा का मंच बना है, दीक्षा वहाँ कैसे होगी? जनता कैसे देखेगी?....।''

कैलाश ने मेरे सामने समस्या रखी। मैंने एक छोटा सा मंत्र कैलाश को दिया और बोली–

''एक घंटा जाप्य कर लो और निश्चिंत हो जाओ, दीक्षा प्रभावना के साथ होगी।''

ऐसा ही हुआ, दीक्षा के समय दिगम्बर जैन, श्वेताम्बर जैन और जैनेतर समाज की भीड़ बहुत ही अधिक थी।

इधर दीक्षा के एक घंटे पहले ही बादल साफ हो गये और आश्चर्य तो इस बात का रहा कि मुझमें बैठने की भी शक्ति नहीं थी, सो पता नहीं उस समय स्फूर्ति कहाँ से आ गई कि मैंने विधिवत् दीक्षा की क्रियायें एक घंटे तक स्वयं अपने हाथ से कीं और नवदीक्षिता क्षुल्लिका का नाम ''अभयमती'' घोषित किया, अनन्तर 5 मिनट तक जनता को आशीर्वाद भी दिया। दीक्षा विधि सम्पन्न होने के एक घंटे पश्चात् पुनः मूसलाधार वर्षा चालू हो गयी। तब सभी लोगों ने एक स्वर से यही कहा–

''माताजी में बहुत ही अतिशय है।

तब मैंने कहा–''मेरे में कुछ भी अतिशय नहीं है, अतिशय तो धर्म में है। वास्तव में, धर्म के प्रसाद से ही सर्व अमंगल दूर होते हैं और तो क्या? धर्म से ही मोक्ष भी प्राप्त किया जा सकता है अतः धर्म पर ही श्रद्धा रखो।''

अगले दिन कैलाशचंद ने सजल नेत्रों से क्षुल्लिका अभयमती माताजी को आहार दिया, उन्हें दूध, घी आदि रस देकर अपना मन संतुष्ट किया। अब उन्हें यह समाचार माता-पिता को सुनाने की आकुलता थी अतः मेरी आज्ञा लेकर उधर से भगवान बाहुबलि की (श्रवणबेलगोल) वन्दना करके वापस अपने घर पहुँच गये।

इधर मुझे भी स्वास्थ्य लाभ होता गया। उधर कैलाशचंद के मुख से माता-पिता ने मेरी स्वस्थता सुनी तो खुश हुए किन्तु जब मनोवती की दीक्षा के समाचार सुने, तब माँ मोहिनी रो पड़ीं। वे बोलीं–

''मैंने कौन से पापकर्म संचित किये थे कि जो अपनी दोनों पुत्रियों की दीक्षा देखने का अवसर नहीं मिल सका.....।''

पिताजी को भी बहुत खेद हुआ किन्तु उस समय जाने-आने की इतनी परम्परा नहीं थी कि जो झट ही रेल से यात्रा करके आकर दर्शन कर जाते.....अस्तु।''

इस प्रकार के अनेकों संस्मरणों से समन्वित पूज्य ज्ञानमती माताजी द्वारा लिखित ''मेरी स्मृतियाँ'' नामक आत्मकथारूप ग्रंथ समस्त पाठकों के लिए पठनीय है।

आर्यिका श्री अभयमती जी की बुंदेलखण्ड यात्रा

पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने ईसवी सन् 1964 में पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी से क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की तथा सन् 1969 में आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा धारण करके जीवन धन्य किया। पुनः सन् 1971 में बुंदेलखण्ड यात्रा की भावना से उन्होंने पृथक् विहार किया। उस बुंदेलखण्ड यात्रा के संस्मरणों को पूज्य अभयमती माताजी ने स्वयं अपनी लेखनी के द्वारा पद्य में लिखकर प्रदान किया है, जो कि यहाँ प्रस्तुत है –

– दोहा –

बुंदेलखण्ड यात्रा निमित्त, छोड़ा गुरु का संघ।
दर्शनीय अरु पूज्यनीय, मूर्ति दिखे सानंद।।1।।

सिद्धक्षेत्रों के दर्श कर, सिद्ध हुए सब काज।
अतिशय क्षेत्र के दर्श कर, मिली सफलता आज।।2।।

सफल हुई यात्रा सभी, हो प्रभावना ठाठ।
'समयसार' अरु ग्रंथ भी, रचा होय मन शांत।।3।।

अपने दीक्षागुरु की आज्ञानुसार हमने बुंदेलखण्ड की यात्रा करके जो आनंद प्राप्त किया एवं जो मुझे आत्म शांति मिली, वह जीवन में कभी नहीं मिली थी। जैसे अंधे को नेत्र खुलने पर, गरीब को निधि मिलने पर उनके हर्ष का पार नहीं रहता, इसी तरह मुझे इस यात्रा में मानों आत्मनिधि ही मिल गई। साथ ही साथ मुझे अपूर्व आत्मिक बल भी मिला कि किस प्रकार से समाज में रहकर समाज का उद्धार एवं धर्मप्रचार करना इत्यादि। गुरुओं के आशीर्वाद से हर जगह धर्म प्रभावना हुई। जगह-जगह महिला मण्डल व स्कूल की स्थापना हुई। समाज संगठन व अनेकांत धर्म शिविर लगा। यहाँ तक छोटे-छोटे गाँव में इंद्रध्वज विधान, सिद्धचक्र विधान आदि बड़े-बड़े धार्मिक महोत्सव हुए तथा इसी यात्रा में जो गुरु के वियोग से अशांति थी सो आत्मशांति एवं उपयोग स्थिर करने के लिए महान-महान ग्रंथों की रचना हमने की। जैसे-समयसार अमृतकलश पद्यावली, पुरुषार्थसिद्धि उपाय, आत्मानुशासन, परमात्म प्रकाश, रयणसार, आत्मपथ की ओर इत्यादि। यह सब गुरु के आशीर्वाद से ही हमने किया। शारीरिक अस्वस्थता ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। मैंने इनसे पीछा छुड़ाने के लिए आत्मसाधना का अभ्यास किया। अंतिम सोनागिर सिद्धक्षेत्र के दर्शन से मुझे अपूर्व आत्म शांति मिली और इसी क्षेत्र पर हमने आत्मानुशासन, सरस काव्य पद्यावली आदि की रचना किया। यहाँ पर चंदाप्रभु भगवान का महान अतिशय है। इस क्षेत्र पर पर्वत के ऊपर 88 जिनमंदिर हैं, नीचे 17 मंदिर हैं। ये सभी मंदिर बहुत ही मनोज्ञ, कलापूर्ण, प्राचीन अतिशयकारी हैं एवं यहाँ पर अनेक धर्मशालाएँ, जैन पाठशाला, आश्रम, मानस्तंभ तथा अन्य और भी सुंदर-सुंदर रचनाएँ हैं।

मंगलाचरण

–दोहा –

देव-शास्त्र-गुरु नमन कर, आत्म शांति के काज।
तीन रत्न जग में सदा, राखें मेरी लाज।।1।।

तीन कम नव कोटि ऋषि, को वंदूँ निज काज।
शांति सिंधु नमूँ वीर सिंधु, शिवसागर ऋषिराज।।2।।

धर्म सिंधु आचार्य को, प्रणमूँ बारम्बार।
गणिनी माता ज्ञानमति, को मैं करूँ नमस्कार।।3।

पग से यात्रा जो करे, हो जीवन उद्धार।
'अभयमती' कहती सदा, करो समाज सुधार।।4।।

संघर्षों का जीवन

–मुक्तक छंद –

अपनी जीवन यात्रा मैंने, बड़ी कठिन से की अब तक।
पूर्वकर्म कृत संघर्षों में, यात्रा सफल हुई अब तक।।
कहीं मार्ग में काँटे मिलते, कहीं मिले कंकड़ पत्थर।
कहीं मकान मिला है सुख का, पर उसमें दुःख का गट्ठर।।4।।

कभी रोग ने आकर घेरा, कभी दैव उपसर्ग किया।
कर्मों ने आ करके झट ही, अपना बदला चुका लिया।।
कभी मार्ग में कर्म चोर अरु डाकू ने बहु त्रास दिया।
रत्नत्रय निधि को लेने को, बारम्बार बहुयत्न किया।।5।।

पर हे चेतन! आत्मिक बल पर, तुमने हिम्मत तजा नहीं।
पूर्व कर्मकृत उदय समझकर, शांति धैर्य को रखा सही।।
इसी क्रोध में आकर तूने, पर को ही बहु दोष दिया।
अबला बन अज्ञानपने से, रोदन शोक विलाप किया।।6।।

धर्मी की रक्षा हो अरु, संतों कि परीक्षा होत सदा।
पर ध्येय तजे नहिं धैर्य तजे, चाहे दुख पर ही दुःख लदा।।
जो चंदनबाला सम बनके, उपसर्ग परीषह सहन किया।
वह अबला से सबला बनकर, स्त्रीलिंग तज शिव धार लिया।।7।।

महावीर प्रभुवर ने भी, नारी को गौरव मान दिया।
सती चंदना को बेड़ी से, छुड़ा शीघ्र आहार लिया।।
ज्यों पुरुष धर्म का अधिकारी, नारी को भी अधिकार सभी।
तीर्थंकर को जन्मे नारी, पुरुषारथ कर शिव लहे जभी।।8।।

जन्म समय

–दोहा –

बाराबंकी जिला कह, टिकैतनगर है ग्राम।
है प्रदेश उत्तर जहाँ, धार्मिक संत महान।।9।।

अगहन शुक्ला सप्तमी, वीर संवत कहाय।
चौबीसो उन्हत्तर कहे, कन्या जन्म मनाय।।10।।

जन्म हुआ मेरा जभी, मनोवती रख नाम।
जन्म पिता छोटे लाल जी, मात मोहिनी जान।।11।।

चार पुत्र नौ पुत्रि को, जन्म दिया शुभ मात।
धर्मध्यान करती सदा, जप तप व्रत कर ठाठ।।12।।

बड़ी पुत्रि मैना सती, बनी आर्यिका जान।
ज्ञानमती शुभ नाम से, विदुषी रत्न महान।।13।।

विचारधारा

इसी दृश्य को देखकर, मैं भी किया विचार।
मैं क्यों बंधन में बंधूँ, यह संसार असार।।14।।

पराधीन नारी त्रिया, तीनों पन दुःख रूप।
छेदूँ स्त्रीलिंग को, धरूँ आर्यिका रूप।।15।।

भयंकर उपसर्गों का सामना

पूर्व कर्म कृत जन्म से, लगा शत्रु कोई देव।
किया घोर उपसर्ग जब, दुःख दियो बहु मोय।।16।।

उसी समय से पूर्वकृत, कर्म उदय कर शोर।
पेचिस आदिक रोग ने, घेरा है बहु जोर।।17।।

कर विचार मैंने जभी, हे आत्मन् कुछ सोच।
इसमें किंचित् भी नहीं, कभी किसी का दोष।।18।।

पूरब में जो मैं किया, तैसा ही फल सोय।
बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ से होय।।19।।

किंतु जगत झूठा दिखा, हुआ है चंचल मन।
कहाँ जाऊँ मैं क्या करूँ, दिल धड़के हरदम।।20।।

गति विचित्र है कर्म की, होनहार बलवान।
है संबंध अनादि का, जीव व पुद्गल जान।।21।।

रोग अधिक बढ़ता गया, अरु उपसर्ग महान।
इधर विकट खाई दिखे, इधर कूप दुख दान।।22।।

जैसे तैसे समय भी, क्षण क्षण बीता जाय।
आयू भी पल पल घटे, पर मम कछु न सुहाय।।23।।

धर्म ध्यान नित ही धरूँ, करूँ नित्य स्वाध्याय।
इस प्रकार से उम्र भी, सोलह वर्ष लहाय।।24।।

उत्कृष्ट विरागता

एकमात्र मम भावना, सदा रहे दिन रात।
कैसे तजूँ जंजाल को, धर्मध्यान कर ठाठ।।25।।

पर आज्ञा देवे नहीं, मात पिता परिवार।
झूठा सुत झूठी त्रिया, झूठे सब नर नार।।26।।

हुई बीस की उम्र जब, तजा नहीं पुरुषार्थ।
गई लाडनू संघ में, जन्म मात के साथ।।27।।

शिवसागर का संघ था, वीरमती थीं खास।
ज्ञानमती भी साथ थी, चालिस पीछी साथ।।28।।

मुनी आर्यिका क्षुल्लिका, क्षुल्लक ऐलक जान।
त्यागी व्रती व श्राविका, संघ चतुर्विध शान।।29।।

संघ देख मम हर्ष हो, मन में शांति लहाय।
मानों निधि ही मिल गई, ज्ञानमती को पाय।।30।।

स्वास्थ्य अधिक कमजोर लख, गुरुवर व्रत नहिं देय।
शांति भाव के साथ हम, ब्रह्मचर्य व्रत लेय।।31।।

गुरु के संघ सुजानगढ़, चातुर्मास ले ठान।
पुनः ज्ञानमति संघ ले, कर विहार शुभ जान।।32।।

यात्रा हेतू शिखर जी, ज्ञानमती का संघ।
कर विहार शुभ दिवस में, मैं भी हो गई संग।।33।।

चौका लेकर संघ में, करी व्यवस्था ढंग।
आरा में जब पहुँचकर, विमल सिंधु लह संघ।।34।।

ज्ञानमती मातेश्वरी, विमल सिंधु को पाय।
इक्कीस वर्ष की उम्र में, व्रत मुझको दिलवाय।।35।।

प्रथम संस्कार व्रतरूप में

पुनः वहाँ से गमन कर, ज्ञानमती का संघ।
सिद्धशिखर जी आयकर, दर्शन कर सुख संग।।36।।

द्वितीय संस्कार व्रतरूप में

पार्श्वनाथ की टोंक पर, ज्ञानमती जी मोय।
इक्कीस वर्ष की उम्र में, सप्तम प्रतिमा देय।।37।।
पुनः वहाँ से गमन कर, कलकत्ते में आन।
जब समाज आग्रह कियो, चातुर्मास ले ठान।।38।।
फिर हम सब यात्रा निमित, बस में बैठो जाय।
शीघ्र करी यात्रा सभी, उर में हर्ष मनाय।।39।।
पुनः ज्ञानमति साथ में, पहुँच हैदराबाद।
चातुर्मास कर साथ में, उर वैराग्य समात।।40।।
दीक्षा की आज्ञा जभी, ज्ञानमती से लेय।
पर आज्ञा दीनी नहीं, तन रोगी लख मोय।।41।।

दृढ़ प्रतिज्ञा

छहों रसों का त्याग कर, दृढ़ प्रतिज्ञ कर लीन।
जभी ज्ञानमति मात ने, सोच विचार करीन।।42।।
शिवसागर आचार्य ढिग, आज्ञा ली भिजवाय।
दी आज्ञा गुरुवर जभी, मम उर हर्ष मनाय।।43।।

तृतीय संस्कार दीक्षारूप में

सावन शुक्ला सप्तमी, पार्श्वनाथ गये मोक्ष।
उसी दिवस दीक्षा दई, ज्ञानमती मम सोच।।44।।
बाईस वर्ष की उम्र में, दीक्षा ली निज हेतु।
'मनोवती' से 'अभयमती', नाम पड़ा शिवकेतु।।45।।

चारित्रबिन मुक्ति नहीं

व्रत तप संयम के बिना, मुक्ति लहे नहिं कोय।
त्रिया लिंग भी नहिं छिदे, दुख का अंत न होय।।46।।
पुनः ज्ञानमती संघ में श्रवणबेलगुल आय।
बाहुबली की मूर्ति लख, उर में हर्ष मनाय।।47।।

किया देव उपसर्ग बहु, अरु बहु रोग सताय।
पूर्व जन्म में जो किया, वैसा ही फल पाय।।48।।

अपने अपने कर्म का, फल भोगे सब कोय।
बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ से होय।।49।।

श्रवणबेलगुल में करूँ, चातुर्मास महान।
ज्ञानमती जी के संघ में, करूँ निजातम ध्यान।।50।।

बाहुबली मूर्ती अहो, चमत्कार लख जान।
मानों कहती हैं सदा, तुम भी कर लो ध्यान।।51।।

आत्म ध्यान के बिन कभी, नहीं होत कल्याण।
बिन चारित जीवन व्यथा, यह निश्चय उर आन।।52।।

पुनः वहाँ से गमन कर, सोलापुर में आय।
धार्मिक संत जहाँ बसे, अरु आश्रम कहलाय।।53।।

विदुषी सुमतीबाई अरु, विद्युल्लता कहाय।
आश्रम की अध्यापिका, ज्ञानवृद्धि लहराय।।54।।

विमल सिंधु का संघ अरु, ज्ञानमती का संघ।
चतुर्मास जब दो हुए, कर प्रभावना अंग।।55।।

फिर क्रम-क्रम से गमन कर, पहुँच औरंगाबाद।
महावीर कीर्तीऋषी, संघ मिलो जब ठाठ।।56।।

पुनः शीघ्र इंदौर गमन कर, लहे सिद्धवरकूट।
दर्शन कर जीवन सफल, होय नशे भव कूप।।57।।

जभी वहाँ से गमन कर, पहुँच सनावद शीघ्र।
जब समाज आग्रह कियो, चातुर्मास कर नीक।।58।।

संघ में हम रहती सदा, धर्मध्यान कर ठाठ।
पर उपसर्ग टले नहीं, कर्म सतावें साथ।।59।।

पुनः ज्ञानमति संघ मिलो, शिवसागर जी संघ।
मानों निधि ही मिल गई, देख गुरू का ढंग।।60।।

जब प्रतापगढ़ ज्ञानमती जी, चातुर्मास कर संघ।
धार्मिक संत जहाँ बसे, कर प्रभावना अंग।।61।।

पुनः गमन महावीर जी, अतिशय क्षेत्र कहाय।
शिवसागर संघ ज्ञानमती संघ, शीघ्र ही पहुँचो जाय।।62।।

पंचकल्याणक की जभी, हो तैयारी शीघ्र।
कर्मगती टलती नहीं, होनहार बलवीर।।63।।

धर्म सिंधु का संघ भी, उसी समय पर आन।
हुई समाधि शिव सिंधु की, हो भवितव्य महान।।64।।

ज्यों राजा बिन प्रजा सब, शोक दुःख कर जान।
गुरु बिन शिष्य व मात पितु, बिन त्यों रह संतान।।65।।

करें शोक भारी सभी, है यमराज महंत।
जिसके आगे किसी का, वश चलता नहिं अंश।।66।।

जो भी जग में जन्म ले, मरण उसी का होय।
कभी नहीं संसार में, अमर हुआ है कोय।।67।।

हुई प्रतिष्ठा शान पर, गुरु बिन शोभे नाय।
धर्मसिंधु को पट्ट पद, दीनो सब मिल आय।।68।।

धर्म सिंधु आचार्य पद, हुआ चतुर्विध संघ।
मुनी आर्यिका क्षुल्लिका, क्षुल्लक ऐलक अंग।।69।।

इसी तीर्थ पर आर्यिका, दीक्षा ली जब मोय।
धर्मसिंधु आचार्य को, गुरू बनाया सोय।।70।।

धर्म सिंधु आचार्य को, कर विहार जब संघ।
'रत्न आर्यिका ज्ञानमति' और सभी थे संग।।71।।

क्रम क्रम से जब गमन कर, पहुंच खानिया संघ।
खूब तत्त्व चर्चा हुई, हो प्रभावना अंग।।72।।

मुनि श्रेयांस के साथ में, पदमपुरी को जाय।
दर्शन कर आनंद लह, पुनः खानिया आय।।73।।

कुछ दिन रहकर वहाँ से, पहुँचो जयपुर संघ।
जब समाज आग्रह कियो, चातुर्मास कर संग।।74।।

कभी होय स्वाध्याय अरु, कभी होय उपदेश।
कभी धर्म चर्चा चले, धरे दिगम्बर भेष।।75।।

चातुर्मास के बाद सब, कर विहार झट टोंक।
नसिया जी के दर्शन कर, मग्न होय तज शोक।।76।।

हो समाज की प्रेरणा, चातुर्मास कर संघ।
पंचकल्याणक हो जभी, कर प्रभावना अंग।।77।।

पुनः वहाँ से गमन कर, पहुँच किशनगढ़ संघ।
ज्ञानसिंधु आचार्य का, संघ मिला सानंद।।78।।

मैं भी रहकर संघ में, चारित ज्ञान बढ़ाय।
लोहा से पारस बनूँ, यही सोच मन भाय।।79।।

पुनः संघ अजमेर में, पहुँचो नसिया खास।
जब समाज आग्रह कियो, चातुर्मास कर ठाठ।।80।।

जभी गुरू का संघ मैं, छोड़ किशनगढ़ खास।
ज्ञानसिंधु के संघ में, रही ज्ञान के काज।।81।।
जब समाज कर प्रेरणा, चातुर्मास कर संघ।
रही किशनगढ़ मैं जभी, हो प्रभावना अंग।।82।।
ज्ञानसिंधु से मैं जभी, ज्ञानवृद्धि के हेतु।
न्याय राजवार्तिक पढ़ो, मनन कियो निज केतु।।83।।
चातुर्मास उपरांत भी, संघ टिका अजमेर।
धर्म सिंधु आचार्य जी, कर आतम से मेल।।84।।
जन्म दातृ माँ मोहनी, उर वैराग्य समात।
धर्म सिंधु आचार्य से, दीक्षा की कर बात।।85।।
चार पुत्र नौ पुत्रियाँ, तज कुटुंब परिवार।
सभी लोग व्याकुल भये, बहे अश्रु की धार।।86।।
पर माता सब मोह तज, दृढ़ प्रतिज्ञ स्वाधीन।
सब संसार असार लख, हो निश्चल निज लीन।।87।।
आखिर झट दीक्षा लई, धर्मसिंधु से खास।
'रत्नमती' शुभ नाम धर, हुई आर्यिका मात।।88।।
चातुर्मास के बाद दीक्षा में पहुँचो अजमेर।
मात मोहनी से जभी, मिलन होय बहु देर।।89।।
केशलोंच हम भी कियो, जन्म दातृ का खास।
पर निश्चल माता रहीं, नहीं हिले पग हाथ।।90।।
धन्य धन्य माता अहो, तुम रत्नों की खान।
रत्न अलौकिक तुम जने, जिससे हो कल्याण।।91।।
त्रिया लिंग है निंद्य जी, तप से छिंदन कीन।
तप व्रत संयम के बिना, त्रिया लिंग नहिं क्षीण।।92।।
अगहन सुदि पूनम दिवस, हो विहार गुरु संघ।
तीस वर्ष की उम्र में, मम वियोग गुरु संघ।।93।।
रहीं संग निर्वाणमति, दोय रही अजमेर।
पर वियोग गुरु संघ का, मम दुःख देवे जोर।।94।।
रत्नमती अरु ज्ञानमति, धर्म सिंधु गुरुराज।
और सभी गुरु संघ का, हो वियोग मम लाज।।95।।
इसी दैव उपसर्ग ने, कर वियोग गुरु संघ।
विधि रेखा बलवान है, सबको कर नित दंग।।96।।
पुनः धैर्य रखकर जभी, दोनों किया विहार।
पहुँच केकड़ी गाँव में, गुरु को उर में धार।।97।।

सन्मतिसागर गुरु का, संघ मिलो है खास।
कुछ दिन रहकर संघ में, कर प्रभावना ठाठ।।98।।

क्रम क्रम से जब गमन कर, पहुँच शाहपुर ग्राम।
श्रुतसागर जी गुरु का, संघ मिलो है शान।।99।।

हो विहार जब संघ का, रही अकेली जान।
कर्मों की गति ना टले, होनहार बलवान।।100।।

जिन प्रतिमा ढिग आय कर, लई प्रतिज्ञा साध।
यात्रा हो बुंदेलखण्ड, जब लग चावल त्याग।।101।।

पुनः वहाँ से गमन कर, चँवलेश्वर को आय।
अतिशय क्षेत्र कह्यो जहाँ, पारसनाथ सहाय।।102।।

श्वेताम्बर अरु जैन में, बढ़ो विवाद महान।
अरु मुझ पर उपसर्ग का, गुंडों ने ले ठान।।103।।

जभी प्रभू की भक्तिकर, उर में धर प्रभु ध्यान।
तत्क्षण ही उपसर्ग अरु, टले विवाद महान।।104।।

चँवलेश्वर प्रभु पार्श्व की, महिमा अगम अपार।
बारबार वंदन करूँ, सब संकट हो निवार।।105।।

दर्शन कर उर में जभी, आत्मशांति छा जाय।
प्रभु से मैं विनती करी, भव दुख रोग पलाय।।106।।

फिर पारोली आयकर, बागूदार लहात।
भरणी से रोपा पहुँच, केशलोंच कर ठाठ।।107।।

अरु पंडेर पधारकर, पहुँच ठिठोड़ी ग्राम।
अरु लसाढ़िया गोर्दा, तिसूंदनी मेरु नाम।।108।।

पुनः शीघ्र ही गमन कर, सावर ग्राम लहाय।
धार्मिक संत जहाँ बसे, चातुर्मास करवाय।।109।।

सिद्धचक्र का पाठ रच, कर प्रभावना ठाठ।
धर्मामृत उपदेश का, लाभ लियो सब साथ।।110।।

फिर कालेरा पहुँच कर, झट वाषा में आय।
और बघेरा ग्राम लह, अतिशय क्षेत्र कहाय।।111।।

दर्शन कर हो शांति फिर, टोडाराय लहाय।
जहाँ धार्मिक संत बहु, और व्रती कहलाय।।112।।

सन्मतिसागर ऋषी की, जन्मभूमि कहलाय।
और आर्यिका शांतिमती, ले दीक्षा झट आय।।113।।

राजमहल जब पहुँचकर, शांतिविधान रचाय।
श्रवण कियो उपदेश सब, उर में हर्ष मनाय।।114।।

फिर बावड़ी कासीर लह, शीघ्र देवली आय।
और देवली छावनी, में आनंद मनाय।।115।।

पुनः पेंच की बावड़ी, में जिन शिखर बनाय।
और कलश चढ़वाय के, ग्राम टोंकड़ा आय।।116।।

हिंडोली में गमन कर, नयागाँव पधराय।
शीघ्र अलोद सतूर से, बूंदी शहर लहाय।।117।।

देहपुरा फिर गमनकर, तालेड़ा में आय।
जमीपुरा में पहुँचकर, शांतिविधान रचाय।।118।।

फिर नौताड़ा गमनकर, शीघ्र सुवासा ग्राम।
अरु चित्तावा पहुँचकर, केशरिया में आन।।119।।

दर्शन कर हो शांति उर, अतिशय क्षेत्र कहाय।
केशरिया पाटन गयो, उर में हर्ष मनाय।।120।।

कोटा स्टेशन गयो, अरु कोटा सिटी में आय।
फिर कोटा की छावनी, अरु खेतून लहाय।।121।।

तथा खर्जुरा गमन कर, चाँदखेरी में आय।
अतिशय क्षेत्र कह्यो जहाँ, दर्शन कर सुख पाय।।122।।

फिर सारोला ग्राम लह, केशलुंच करवाय।
हो प्रभावना ठाठ से, धार्मिक संत कहाय।।123।।

छीपा बडोद में आयकर, फिर छबड़ा पधराय।
राजस्थान में घूमकर, मध्यप्रदेश में आय।।124।।

धरनावदा में पहुँचकर, रुठियाई में आय।
अतिशय क्षेत्र बजरंगगढ़, बुंदेलखण्ड कहाय।।125।।

अतिशय क्षेत्र के दर्श कर, हो उर शांति महान।
शीघ्र गुना में पहुँचकर, साडोरा लहं ग्राम।।126।।

फेर अशोक नगर लहे, अरु अमरोद कहाय।
तारई से थूवोन जी, अतिशय क्षेत्र लहाय।।127।।

अरु चंदेरी भी गयो, अतिशय क्षेत्र बखान।
चौबीसी के दर्श कर, हो उर हर्ष महान।।128।।

पुनः गमन कर शीघ्र ही, प्रानपुरा में आय।
अरु सिरसोद में आयकर, बारी गाँव लहाय।।129।।

बारी में पहुँचो जभी, यू.पी. प्रांत कहाय।
शीघ्र देवगढ़ पहुँचकर, अतिशय क्षेत्र लहाय।।130।।

दर्शनीय अरु पूज्यनिय, कलाकेंद्र सुखधाम।
असंख्यात मूर्त्ती जहाँ, दिखे अजब चित्राम।।131।।

यात्री गण नित दर्श कर, पावें सुक्ख महान।
योगी गण नित ध्यान धर, पहुँचो शिवपुर थान।।132।।

जाखलोन पहुँचो पुनः, ललितपुरी में आन।
जब समाज आग्रह कियो, चातुर्मास ले ठान।।133।।

धार्मिक संत जहाँ बसे, और बसे विद्वान।
केशलुंच कर ठाठ से, कर प्रभावना शान।।134।।

महिला मण्डल खोलकर, ज्ञान ज्योति जगाय।
दियो धर्म उपदेश जब, उर में हर्ष मनाय।।135।।

क्षेत्रपाल है जहाँ पर, अरु इंटर कालेज।
लाखों जनसंख्या दिखे, ललितपुरी है केन्द्र।।136।।

पुनः गमन सीरोन जी, अतिशय क्षेत्र बखान।
तीरथ के दर्शन कियो, हो उर हर्ष महान।।137।।

फेर ललितपुर से जभी, मृचवारा में आय।
शीघ्र सिलावन ग्राम से, महरौनी पधराय।।138।।

महिला मण्डल खोलकर, ज्ञानज्योति जगाय।
दियो धर्म उपदेश जब, सब ही हर्ष मनाय।।139।।

पुनः बानपुर आयकर, जो लहं मध्यप्रदेश।
फिर टीकमगढ़ आयकर, दियो धर्म उपदेश।।140।।

धर्मसिंधु आचार्य की, हुई जयंती खास।
केशलुंच कर जहाँ पर, हो प्रभावना ठाठ।।141।।

टीकमगढ़ से कोस इक, दिखे पपौरा क्षेत्र।
छटा निराली सौम्य मय, जो है अतिशय क्षेत्र।।142।।

शीघ्र पपौरा गमन कर, दर्शन कर सुखपाय।
सभी जिनालय मूर्त्तियाँ, को लख हर्ष मनाय।।143।।

हुआ पठा में गमन जब, नारायणपुर आन।
अरु अहार जी गमन जो, अतिशय क्षेत्र बखान।।144।।

सभी मूर्त्ति के दर्श कर, लहे आत्म में शांति।
शीघ्र प्रभू का ध्यान धर, मिटे सभी उर भ्रांति।।145।।

पुनः वहाँ से लार अरु, पहुँच दरगुवा ग्राम।
बड़ागाँव से नवागढ़, अतिशय क्षेत्र बखान।।146।।

दर्शन कर मन शांत हो, पुनः घुंवारा आय।
अरु द्रोणागिर गमन जो, सिद्धक्षेत्र कहलाय।।147।।

गुरुदत्तादिक मुनीश्वर, मुक्ति गये शिरनाय।
जो तीरथ पर ध्यान धर, जीवन सफल बनाय।।148।।

पुनः गमन कर शीघ्र ही, मल्हारा में आय।
सड़वा ग्राम व दरगुवा, हीरापुर पधराय।।149।।

अरु मरुदेवरा आयकर, पुनः शाहगढ़ जाय।
महिला मण्डल खोलकर, ज्ञानज्योति जगाय।।150।।

जब विहार कर वहाँ से, ग्राम बमोरी आय।
सुनुवाहा उपदेश कर, बक्सवाहा पधराय।।151।।

फेर पडरिया में गयो, पहुँच निमानी ग्राम।
पुनः गमन कर बाजना, में स्कूल खुलाय।।152।।

फिर विहार कर वहाँ से, रानीताल लहाय।
और विजावर पहुँचकर, सटई ग्राम कहाय।।153।।

तथा बमीठा में गयो, फिर खजुराहो आय।
दर्शनीय अरु पूज्यनीय, अतिशय क्षेत्र कहाय।।154।।

दर्शनकर मन शांत हो, कलाकेंद्र सुखधाम।
संत साधु नित ध्यान धर, पहुँचे शिवपुर थान।।155।।

खजुराहो से राजनगर, विक्रमपुर में आन।
पुनः छतरपुर में गमन, चातुर्मास कर शान।।156।।

फिर पीरा में आयकर, चंद्रनगर पधराय।
पुनः गमन कर शीघ्र ही, पन्ना ग्राम लहाय।।157।।

महिला मण्डल खोलकर, करियो शांति विधान।
दियो धर्म उपदेश जब, हो प्रभावना शान।।158।।

फिर देवेन्द्र नगर लहे, शांति विधान कराय।
महिला मण्डल खोलकर, ज्ञानज्योति जगाय।।159।।

झट ककरहटी पहुँचकर, दियो धर्म उपदेश।
बाल पाठशाला खुले, जगे ज्ञान की ज्योत।।160।।

विनय बिना विद्या नहीं, विद्या बिन नहिं ज्ञान।
ज्ञान बिना नहिं सुख कभी, यह निश्चय कर जान।।161।।

कियो विहार गुनोर झट, महिला मण्डल खोल।
शांति विधान करायकर, अन्तर के पट खोल।।162।।

पुनः महेवा आयकर, खुलो शीघ्र स्कूल।
गुड्डा गुड्डी आयकर, पढ़े हर्ष बिन मूल।।163।।

पवई में झट गमन कर, कुंवरपुरा में आय।
शीघ्र हरदुवा पहुँचकर, कोटा ग्राम लहाय।।164।।

कोटा से झट पहुँचकर, लहं कुण्डलपुर क्षेत्र।
श्रीधर केवलि मोक्ष लहं, धरो नाम सिद्धक्षेत्र।।165।

पाप करे जो फल मिले, अतिशय क्षेत्र कहाय।
बासठ मंदिर हैं जहाँ, सब प्रतिमा शिर नाय।।166।।

पुनः शीघ्र ही गमन कर, कुलुवा ग्राम लहाय।
गंज तथा बड़गाँव अरु, रीठी ग्राम में आय।।167।।

महिला मण्डल खोलकर, अरु कर शांति विधान।
दियो धर्म उपदेश जब, हो प्रभावना शान।।168।।

कटनी शहर में आयकर, शांतिविधान कराय।
महिला मण्डल खोलकर, ज्ञानज्योति जगाय।।169।।

धार्मिक संत जहाँ बसे, और बसे विद्वान।
दियो धर्म उपदेश जब, कर प्रभावना शान।।170।।

पुनः पहाड़ी ग्राम लहं, महिला मण्डल खोल।
शांति विधान कराय कर, हृदय का पट खोल।।171।।

अरु पिपरोद विहार कर, शीघ्र तेवरी आय।
खुलो पाठशाला जभी, ज्ञानज्योति जगाय।।172।।

अरु सलेमनाबाद में, महिला मंडल खोल।
दियो धर्म उपदेश जब, निज में ही मन मोड़।।173।।

गयो बहोरीबंद में, अतिशय क्षेत्र कहाय।
शांति प्रभू के दर्श कर, उर में शांति लहाय।।174।।

हुवो सिहोरा में गमन, शांति विधान कराय।
महिला मण्डल खोलकर, उर में हर्ष मनाय।।175।।

अरु गोसलपुर गमनकर, फेर पनागर आय।
शांतिप्रभु अतिशय अहो, दर्शनकर सुख पाय।।176।।

महिला मण्डल खोलकर, शांतिविधान कराय।
कर प्रभावना ठाठ से, उर में हर्ष मनाय।।177।।

पुनः गमन कर जबलपुर, धार्मिक संत महान।
जब समाज आग्रह कियो, चातुर्मास ले ठान।।178।।

कर प्रभावना ठाठ से, फिर मणिया में आय।
बेड़ाघाट विहार कर, फेर सहजपुर जाय।।179।।

महिला मण्डल खोलकर, केशलोंच कर खास।
शीघ्र विधान करायकर, हो प्रभावना ठाठ।।180।।

फिर पाटन कोनी गयो, अतिशय क्षेत्र कहाय।
दर्शन कर सब मूर्ति के, उर में हर्ष मनाय।।181।।

पुनः कटंगी ग्राम लह, महिला मण्डल खोल।
खुलो पाठशाला जभी, हो सब हर्ष विभोर।।182।।

सिंगरामपुर पहुँचकर, दियो धर्म उपदेश।
कर समाज में संगठन, मिटो सभी संक्लेश।।183।।

खुलो पाठशाला जभी, बालक पढ़ने जाय।
ज्ञान उपार्जन के लिए, उर में हर्ष मनाय।।184।।

मात पिता वे शत्रु हैं, बालक को न पढ़ाय।
सभी मध्य नहिं शोभते, सब ही हँसी उड़ाय।।185।।

ज्ञानी ही नित पूज्य हैं, सभी जगह सुख पाय।
इहभव परभव में सुखी, अरु आतम को ध्याय।।186।।

कोटि जन्म तक तप कियो, फिर भी नित दुःख पाय।
अज्ञानी की यह दशा, मुख से कह्यो न जाय।।187।।

पुनः हर्ष से गमन कर, शीघ्र जबेरा आय।
कर समाज में संगठन, उर में हर्ष मनाय।।188।।

कर विहार हरदुवा में, नोहटा ग्राम लहाय।
कर प्रभावना ठाठ से, फेर अभाना आय।।189।।

केशलोंच कर ठाठ से, हो प्रभावना शान।
दियो धर्म उपदेश जब, सुनो भव्य विद्वान।।190।।

पुनः दमोह विहार कर, कर प्रभावना शान।
जब समाज आग्रह कियो, चातुर्मास ले ठान।।191।।

केशलोंच कर ठाठ से, दियो धर्म उपदेश।
फिर कुण्डलपुर गमन कर, सिद्ध व अतिशय क्षेत्र।।192।।

बासठ हैं मंदिर जहाँ, बाबा बड़े कहाय।
क्रम-क्रम से सब मूर्ति के, दर्शन कर सुख पाय।।193।।

फिर दमोह में गमन कर, बांसा ग्राम लहाय।
और गड़ाकोटा कहे, आकर मन हर्षाय।।194।।

महिला मण्डल खोलकर, शांतिविधान कराय।
दियो धर्म उपदेश जब, ज्ञानज्योति जगाय।।195।।

रेहली सिटी में गमन कर, दियो धर्म उपदेश।
महिला मण्डल खोलकर, जगे ज्ञान की ज्योत।।196।।

पुनः चांदुपर आयकर, धर्मामृत वर्षाय।
खुलो पाठशाला जभी, सब जन उर हर्षाय।।197।।

अनंतपुरा में पहुँचकर, झट स्कूल खुलाय।
कर समाज में संगठन, सब जन हर्ष मनाय।।198।।

पहुँच सिंगपुर शीघ्र ही, दियो धर्म उपदेश।
खुलो पाठशाला जभी, मिटो राग अरु द्वेष।।199।।

हर्ष पूर्व जब गमन कर, बीनावारा आय।
दर्शन कर उर हर्ष हो, अतिशय क्षेत्र कहाय।।200।।

शीघ्र गमन महाराजपुर, धर्मामृत वर्षाय।
खुलो पाठशाला जभी, सब आनंद मनाय।।201।।

पुनः देवरी गमन कर, महिला मंडल खोल।
शांति विधान कराय कर, कियो एक दिल खोल।।202।।

गोरझामर झट आयकर, शांतिविधान कराय।
महिला मण्डल खोलकर, धर्म में प्रीति बढ़ाय।।203।।

सुरखी में फिर आयकर, महिला मण्डल खोल।
दियो धर्म उपदेश जब, अंतर का पट खोल।।204।।

मोकलपुर में गमनकर, सागर में झट आय।
जहाँ व्रती विद्वान अरु, धार्मिक संत कहाय।।205।।

वर्णी विद्यालय जहाँ, अरु इंटर कालेज।
बाहुबली मूर्ती महा, दर्शन कर हर क्लेश।।206।।

दियो धर्म उपदेश जब, हो प्रभावना शान।
जब समाज आग्रह कियो, चातुर्मास ले ठान।।207।।

महिला मण्डल खोलकर, ज्ञानज्योति जगाय।
नर नारी पुरजन सभी, उर में हर्ष बढ़ाय।।208।।

पुनः गमन कर शीघ्र ही, जयसीनगर लहाय।
महिला मण्डल खोलकर, ज्ञान ज्योति जगाय।।209।।

बीच बीच में दैवकृत, हो उपसर्ग महान।
विधि रेखा टलती नहीं, होनहार बलवान।।210।।

बांसा में फिर गमन कर, मसुरयाई पधराय।
भक्तामर का पाठ कर, अरु विमान निकलाय।।211।।

वीर जयंती के दिवस, कियो महोत्सव जान।
दियो धर्म उपदेश जब, हो प्रभावना शान।।212।।

फिर राहतगढ़ आयकर, दियो धर्म उपदेश।
महिला मण्डल खोलकर, जग्यो ज्ञान की ज्योत।।213।।

श्रीफल दियो समाज जब, चातुर्मास ले ठान।
कियो दैव उपसर्ग बहु, कर आतम का ध्यान।।214।।

फेर मसुरयाई गमन, शीघ सिहोरा आय।
भक्तामर का पाठ कर, धर्मामृत वर्षाय।।215।।

केशलोंच कर ठाठ से, हो प्रभावना शान।
फिर सागर में गमन कर, लियो लाभ सब जान।।216।।

नरयावली में आयकर, ईश्वरबारा आय।
अतिशय क्षेत्र कहे महा, दर्शन कर सुख पाय।।217।।

शिक्षण शिविर लगायकर, महिला मण्डल खोल।
दियो धर्म उपदेश जब, जगे ज्ञान की ज्योत।।218।।

फिर लोहारी गमन कर, दियो धर्म उपदेश।
कीर्तन मंडल खोलकर, कर समाज में एक।।219।।

पुनः बांधरी गमन कर, लहं पिठौरिया ग्राम।
अतिशय क्षेत्र कह्यो जहाँ, छटा निराली जान।।220।।

दर्शन कर मन शांत हो, दियो धर्म उपदेश।
सब नर नारी लाभ लें, मिटे राग अरु द्वेष।।221।।

फिर जरुवाखेड़ा गयो, कर भक्तामर पाठ।
केशलोंच कर शीघ्र ही, हो प्रभावना ठाठ।।222।।

दियो धर्म उपदेश जब, महिला मण्डल खोल।
खुलो पाठशाला जभी, जगे ज्ञान की ज्योत।।223।।

जब खुरई में गमन कर, आग्रह कियो समाज।
दियो धर्म उपदेश जब, चातुर्मास कर ठाठ।।224।।

महिला मण्डल खोलकर, ज्ञानज्योति जगाय।
समयसार रचना कियो, उर में हर्ष मनाय।।225।।

और बहुत रचना कियो, आत्मशांति के काज।
पंडित जन आश्चर्य कर, देख देख हर्षात।।226।।

फिर खिमलासा गमन कर, दियो धर्म उपदेश।
भक्तामर का पाठ कर, मिटो सभी संक्लेश।।227।।

महिला मण्डल खोलकर, ज्ञान ज्योति जगाय।
हो प्रभावना ठाठ से, उर में हर्ष मनाय।।228।।

पुनः शीघ्र ही गमन कर, बालाबेट लहाय।
कर समाज में संगठन, अतिशय क्षेत्र कहाय।।229।।

मालथोन फिर गमन कर, अरु बटोदिया आय।
हो प्रभावना ठाठ से, सिद्धचक्र रचवाय।।230।।

फिर विहार कर मदनपुर, अतिशय क्षेत्र कहाय।
दर्शन कर मन शांत हो, उर में हर्ष बढ़ाय।।231।।

फिर बरोदिया गमन कर, अरु रजवास में आय।
महिला मण्डल खोलकर, ज्ञानज्योति जगाय।।232।।

फिर वरोदिया गमन कर, मालथोन में आय।
बालावेट में आयकर, इंद्रध्वज रचवाय।।233।।

दियो धर्म उपदेश जब, हो प्रभावना ठाठ।
सब जन मिल पूजन करें, उर में हर्ष मनात।।234।।

फेर महोली गमन कर, शांति विधान कराय।
दियो धर्म उपदेश जब, फिर पाली में आय।।235।।

महिला मण्डल खोलकर, सिद्धचक्र रचवाय।
हो प्रभावना ठाठ से, ज्ञानज्योति जगाय।।236।।

पुनः देवगढ़ आयकर, अतिशय क्षेत्र कहाय।
कर प्रभावना ठाठ से, खूब विधान कराय।।237।।

जाखलोन फिर आय के, सिद्धचक्र करवाय।
कर प्रभावना ठाठ से, धार्मिक संत कहाँय।।238।।

शीघ्र ललितपुर गमन कर, दियो धर्म उपदेश।
हो प्रभावना ठाठ से, उर में हर्ष विशेष।।239।।

महिला मण्डल खोलकर, इंद्रध्वज रचवाय।
सब जन मिल पूजन करें, उर में हर्ष मनाय।।240।।

जब समाज आग्रह कियो, चातुर्मास ले ठान।
"पुरुषार्थ सिद्धिउपाय" रचो, अरु रचना कर शान।।241।।

फिर रोड़ा में गमन कर, वांसी ग्राम लहाय।
कियो विहार जमालपुर, तालबेट में आय।।242।।

कर समाज में संगठन, कर भक्तामर पाठ।
दियो धर्म उपदेश जब, सब जन हर्ष मनात।।243।।

फिर पावागिर आयकर, अतिशय क्षेत्र कहाय।
दर्शन कर मन शांत हो, उर में हर्ष बढ़ाय।।244।।

शीघ्र बबीना ग्राम लह, कर भक्तामर पाठ।
दियो धर्म उपदेश जब, कर प्रभावना ठाठ।।245।।

फिर झांसी में गमन कर, महिला मंडल खोल।
कर प्रभावना ठाठ से, हृदय का पट खोल।।246।।

प्रतिक्रमण रचना कियो, अरु रचना कर शान।
दियो धर्म उपदेश जब, अरु कर आतम ध्यान।।247।।

सिद्धक्षेत्र सोनागिरी, में झट कियो विहार।
छटा निराली मूर्ति लख, उर में हर्ष अपार।।248।।

ऊपर सत्तासी कहें, जिनमंदिर सुखकार।
नीचे में सतरह कहें, जिनमंदिर मनहार।।249।।

चन्द्रप्रभु भगवान का, अतिशय दिखे महान।
जो नर नारी दर्शकर, संकट कटें महान।।250।।

मानस्तंभ व समवसरण, रचना हुई अपार।
अरु सम्मेदशिखर कह्यों, दर्शन कर हो पार।।251।।

योगीगढ़ नित ध्यान धर, सहजिक सुख को पाय।
अरु नर नारी भजन कर, पुण्य बांध ले जाय।।252।।

सिद्धक्षेत्र अतिशय महा, कलाकेंद्र शिवधाम।
जो नर नारी दर्शकर, वे लहं मुक्ति निधान।।253।।

सोनागिर जी आयकर, तत्त्व चिंतवन कीन।
सभी मूर्ति के दर्श कर, निज आतम में लीन।।254।।

वे निश्चित जग से तिरें, हों संसार विलीन।
भव समुद्र से पार हों, निज रस में लवलीन।।255।।

नंगानंग कुमार ऋषि, साढ़े पंच करोड़।
सोनागिर से मुक्ति लहे, नमूँ सभी कर जोड़।।256।।

सभी मूर्ति के दर्श कर, उर में हर्ष महान।
'आत्मानुशासन' ग्रंथ की, रचना की है शान।।257।।

और बहुत रचना कियो, सोनागिरि में आन।
तीर्थ वंदना नित कियो, जो अतिशय सुखखान।।258।।

बुंदेल खण्ड यात्रा निमित्त, छोड़ा गुरु का संघ।
दर्शनीय अरु पूज्यनीय, मूर्ति दिखे सानंद।।259।।

सिद्धक्षेत्र के दर्शकर, सिद्ध हुए सब काज।
अतिशय क्षेत्र के दर्श कर, हुई सफलता आज।।260।।

अंतिम बुंदेलखण्ड का, सोनागिर है क्षेत्र।
सब यात्रा हो सफल मम, दर्शन कर हर क्लेश।।261।

सोनागिर के दर्श कर, चावल जब मम लेय।
उर में शांति अपार हो, धर्मामृत को देय।।262।।

गुरुओं के आशीष से, रचना हुई महान।
भूल चूक यदि हो कहीं, क्षमा करें विद्वान।।263।।

फिर डबरा में आयकर, चौरासी पधराय।
फिर विहार लश्कर कियो, चंपाबाग कहाय।।264।।

मंदिर चंपाबाग में, श्रीफल दियो समाज।
चातुर्मास जभी कियो, हो प्रभावना ठाठ।।265।।

इंद्रध्वज का पाठ कर, दियो धर्म उपदेश।
धार्मिक संत जहाँ बसे, भक्ति करें विशेष।।266।।

लश्कर के ही बीच में, ग्वालियर कियो विहार।
महिला मण्डल खोलकर, ज्ञान ज्योति अपार।।267।।

खुलो पाठशाला जभी, शिक्षण शिविर लगाय।
लियो लाभ नर नारियाँ, मन ही मन हर्षाय।।268।।

अरु मुरार में गमन कर, इंद्रध्वज करा पाठ।
दियो धर्म उपदेश जब, हो प्रभावना ठाठ।।269।।

माधोगंज में शीघ्र ही, महिला मण्डल खोल।
कर प्रभावना ठाठ से, हृदय का पट खोल।।270।।

नया बाजार कहे जहाँ, जिन मंदिर में आय।
महिला मण्डल खोलकर, ज्ञानज्योति जगाय।।271।।

छतरी के बाजार में, जिनमंदिर में आय।
भक्तामर का पाठ कर, दर्शन कर हर्षाय।।272।।

जेसवाल मंदिर कह्यो, हुई प्रतिष्ठा शान।
दियो धर्म उपदेश जब, हो प्रभावना जान।।273।।

पत्थर की है बावड़ी, गोपाचल कहलाय।
अतिशय क्षेत्र कहो महा, दर्शन कर हर्षाय।।274।
महिला मण्डल खोलकर, दियो धर्म उपदेश।
कर विधान सब ठाठ से, तजो राग अरु द्वेष।।275।।
पार्श्वप्रभू अतिशय महा, बाबा बड़े कहाय।
दर्शनीय अरु पूज्यनीय, क्षेत्र महा सुखदाय।।276।।
मेला लगे कुँवार में, सब नर नारी आय।
पूजन भजन करें सभी, दर्शन कर हर्षाय।।277।।
इस प्रकार लश्कर महा, कलाकेंद्र स्थान।
नसिया मंदिर है जहाँ, धार्मिक संत महान।।278।।
यती बगीचे में अहो, केशलोंच कर ठाठ।
फिर चंपाबाग मंदिर गमन, कर भक्तामर पाठ।।279।।
मंदिर चंपाबाग में, कर इंद्रध्वज पाठ।
दियो धर्म उपदेश जब, हो प्रभावना ठाठ।।280।।
लश्कर चातुर्मास में, रचना कियो महान।
झट 'परमात्मप्रकाश' की, रचना करी है शान।।281।।
अरु 'दसधर्म' रचो जभी, कविता स्तुति कीन।
पार्श्वनाथ बाबा निकट, रचना हुई नवीन।।282।।
गुरुओं के आशीष से, रचना हुई महान।
सुधी सुधार पढ़ें सदा, दोष न लीजे आन।।283।।
'पार्श्वप्रभू' परसाद से, रचना हुई है शान।
'अभयमती' नित ध्यान धर, अरु कर आतमध्यान।।284।।
ग्वालियर किले के दर्श कर, दियो धर्म उपदेश।
होय विमोचन पुस्तिका, उर में हर्ष विशेष।।285।।
फालक मंदिर में गयो, दियो धर्म उपदेश।
भक्तामर का पाठ कर, उर में हर्ष विशेष।।286।।
फिर गोपाचल पर कियो, भक्तामर का पाठ।
होय विमोचन पुस्तिका, हो प्रभावना ठाठ।।287।।
इस प्रकार सब ही जगह, धर्मामृत वर्षाय।
सब जन को आशीष दूँ, मन ही मन हर्षाय।।288।।
तीस जिनालय हैं जहाँ, लश्कर सिटी कहाय।
सभी मूर्ति के दर्श कर, जीवन सफल बनाय।।289।।

फेर वहाँ से गमन कर, झट बामोर लहाय।
और मुरैना पहुँचकर, दर्शनकर सुख पाय।।290।।

धार्मिक संत जहाँ बसे, और बसे विद्वान।
संस्कृत विद्यालय जहाँ, पाँच जिनालय भाय।।291।।

महिला मण्डल खोलकर, सिद्धचक्र रचवाय।
हो प्रभावना ठाठ से, ज्ञानज्योति जगाय।।292।।

फिर सिहोनिया दर्श कर, अतिशय क्षेत्र लहाय।
दर्शन कर मन हर्ष हो, आत्म शांति छा जाय।।293।।

मानो भगवन कह रहे, तुम भी बनो भगवान।
हर आतम में शक्ति है, बन सकता है परमात्म।।294।।

फेर धौलपुर से गये, महावीर जी दर्श।
अतिशय क्षेत्र महा कहे, दर्शन कर हो हर्ष।।295।।

महावीर मूर्त्ती प्रगट, अतिशय उच्च महान।
जो भी ध्यान धारें वहाँ, पहुँचे शिवपुर थान।।296।।

कृष्णा कमला बाई का, लहं आश्रम सुखदान।
जिसमें मंदिर भी बनो, पढ़े बालिका आन।।297।।

और व्रती त्यागी जहाँ, ले अहार जल शुद्ध।
धार्मिक संत जहाँ बसे, कर भक्ती प्रतिबुद्ध।।298।।

शांतिनगर आचार्य श्री, शिवसागर बसवाय।
ब्रह्मचारी सूरज मल वहाँ, शीघ्र पहुँच बनवाय।।299।।

सुंदर चौबीसी बनी, शांतिनाथ भगवान।
अरु पारस के दर्शकर, महावीर धर ध्यान।।300।।

शांतिसागर आचार्य की, छतरी बनी महान।
गुरुकुल विद्यालय जहाँ, पढ़ें छात्र नित जान।।301।।

सुंदर सौम्य सुहावना, वातावरण महान।
साधु संत नित ध्यान धर, कर चिंतन उर आन।।302।।

महावीर मंदिर जहाँ, है अति उच्च विशाल।
और बने मंदिर जहाँ, दर्शन कर नर-नार।।303।।

जैन धर्मशाला बनी, कमरे बने महान।
बाग बगीचों से सजे, अतिशय क्षेत्र बखान।।304।।

क्रम-क्रम से फिर गमन कर, पद्मपुरी को आय।
बाड़ा के श्री पद्मप्रभु, अतिशय क्षेत्र कहाय।।305।।

जहाँ मूर्ति प्रगटी सहज, चमत्कार दिखलाय।
जो यात्री दर्शन करे, भूत प्रेत भग जाय।।306।।

जो प्रभु की भक्ती करे, दर्शन कर सुख पाय।
शीघ्र सभी संकट कटें, सर्व पाप नश जाय।।307।।

बड़ी धर्मशाला बनी, कमरे बने महान।
बाग बगीचों से सजे, क्षेत्र महा सुख दान।।308।।

मैं प्रभु से विनती करी, काटो संकट नाथ।
भूत प्रेत बाधा हरो, रहूँ तुम्हारे पास।।309।।

जब प्रभु जी उत्तर दियो, ध्यान करो तुम नित्य।
सब उपसर्ग भगे जभी, यह संसार अनित्य।।310।।

प्रभु की वाणी सुन जभी, अमल कियो दिन रैन।
यथाशक्ति निज ध्यान कर, कर्मन को नहिं चैन।।311।।

पूर्व कर्म जैसे किये, भोग रहे सब कोय।
बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ से होय।।312।।

ध्यान व तप बल पर सभी, कर्म किये चकचूर।
संयम चारित्रबिन कभी, मुक्ति लहे नहिं शूर।।313।।

तपबिन स्त्रीलिंग भी, छिदे न उर में धार।
तप ही जग में सार है, झूठा सब संसार।।314।।

पराधीन नारीत्रिया, तीनों पन दुख पाय।
भेष आर्यिका जो धरें, वो क्रम से शिव जाय।।315।।

रत्नत्रय ही सार है, और सभी परपंच।
हे आत्मन्! निज को भजो, जब ही हो भव अंत।।316।।

फेर गमन कर शीघ्र ही, जयपुर केन्द्र लहाय।
धार्मिक संत जहाँ बसे, और व्रती कहलाय।।317।।

बड़ी बड़ी नसिया जहाँ, मंदिर खूब लहाय।
चैत्यालय भी खूब हैं, चूलगिरी बस जाय।।318।।

अरु प्रसिद्ध है खानियां, दर्शन कर सुखपाय।
साधु संत जहं ध्यान धर, आतमज्योति जगाय।।319।।

चौबीसों भगवान की, अतिशय मूर्ति लहाय।
अरु हीरा मूंगादि सब, लाखों मूर्ति कहाय।।320।।

पार्श्व भवन में आयकर, धर्मध्यान कर शान।
जब समाज नारियल दियो, चातुर्मास ले ठान।।321।।

तीन लोक का पाठ कर, हो प्रभावना ठाठ।
मृत्युंजय णमोकार अरु, कर भक्तामर पाठ।।322।।

रत्नत्रय नवग्रह रचो, अरु कर शांतिविधान।
'रयणसार' पद्यावली, रचना करी महान।।323।।

और खूब रचना कियो, सरस काव्य मय शान।
जिनवाणी संग्रह रचो, मृत्युंजय पद जान।।324।।

कालोनी भी खूब हैं, जयपुर में गुरु भक्त।
सभी जगह दर्शन कियो, कर प्रभावना हर्ष।।325।।

जयपुर में भी देवकृत, हो उपसर्ग महान।
पर चारित में दृढ़ रही, कर पारस प्रभु ध्यान।।326।।

पार्श्व प्रभू परसाद से, रचना हुई महान।
भूलचूक यदि हो कहीं, क्षमा करें विद्वान।।327।।

अरु गुरु के आशीष से, रचो निरालो काव्य।
सुधी सुधार पढ़ें सदा, दोष न लीजे आद्य।।328।।

गुरु वियोग चौदह वर्ष, दर्शन की लग आस।
जयपुर से झट गमन कर, पहुँच मोजमाबाद।।329।।

भाकरोट बगरू मिले, अरु बिच में मिल झाग।
दियो धर्म उपदेश जब, ज्ञान ज्योति उर जाग।।330।।

जब समाज आग्रह कियो, चातुर्मास ले ठान।
धार्मिक संत जहाँ बसे, कर प्रभावना शान।।331।।

मूर्ति सभी प्राचीन लहँ, अतिशय क्षेत्र महान।
सिद्धचक्र आदिक सभी, कर विधान बहु शान।।332।।

चमत्कारि श्री ऋषभ ढिग, कर भक्तामर काव्य।
भूलचूक यदि हो कहीं, क्षमा करें बुध आर्य।।333।।

जो भक्तामर पाठ कर, संकट सभी पलाय।
आदिनाथ परसाद से, कार्य सफल हो जाय।।334।।

दूदू कियो विहार फिर, कर प्रभावना ठाठ।
द्वीप अढाई आदि का, कर विधान बहु पाठ।।335।।

दूदू से दातृ अरु पाटन, पुनः किशनगढ़ आय।
धर्म प्रभावना कर यहाँ, मन में हर्ष बढ़ाय।।336।।

फिर साखून नरैना आकर, लूनवाँ अतिशय क्षेत्र।
कर विधान बहु ठाठ से, मन में हर्ष विशेष।।337।।

लूनवा में गुरु धर्म सिंधु, संघ चातुर्मास कर ठाठ।
चौदह वर्ष के बाद में मिलो गुरु आशीर्वाद।।338।।

बुंदेलखण्ड में घूम-घूम कर, चौदह वर्ष बिताय।
कर प्रभावना खूब मैं, शिक्षण शिविर लगाय।।339।।

गुरुकुल विद्यालय सभी, महिला मण्डल खोल।
पुनः गुरू के संघ में, आय हृदय पट खोल।।340।।

लूनवा से मारोठ आदि, रनवाल नारनोल में आय।
पाली रेवाड़ी पधारकर, खूब विधान रचाय।।341।।

पाटोदी फर्रुखनगर, गुड़गाँव से पालम आय।
दिल्ली केंट की सभी, कालोनी में आकर हर्षाय।।342।।

सभी जगह बहु घूम कर, महिला मण्डल खोल।
गुरुकुल अरु स्कूल खोलकर शिक्षणशिविर अमोल।।343।।

पुनः गाजियाबाद से, मोदीनगर में आय।
फेर वहाँ से ब्रह्मपुरी अरु, मेरठ शहर में जाय।।344।।

मेरठ शहर से पहुँच मवाना, हस्तिनागपुर आय।
जगह-जगह कर बहुप्रभावना, जन-जन मन हर्षाय।।345।।

हस्तिनापुर तीर्थ के, दर्शन कर पुण्य कमाय।
ज्ञानमती जी के दर्श कर, हृदय कमल खिल जाये।।346।।

माँ के आशीर्वाद से जंबूद्वीप, बसाय।
नये नये मंदिर बने, महिमा कही न जाये।।347।।

हुई प्रेरणा मात की, रचना बनी महान।
अद्भुत रचना देखकर, श्रावक करें गुणगान।।348।।

चौदह वर्ष बितायकर, मैं जंबूद्वीप में आय।
सुंदर रचना देखकर, मन ही मन हर्षाय।।349।।

जंबूद्वीप सेसरधना, अरु बरनावा में आय।
चातुर्मास कर ठाठ से, ज्ञानज्योति जगाय।।350।।

इंद्रध्वज अरु धर्मचक्र का, फौरन पाठ कराय।
ज्ञान दान देकर घर-घर में, शिक्षण शिविर लगाय।।351।।

कर प्रभावना खूब ही, क्षेत्र विकास कराय।
खूब क्षेत्र की उन्नति, औषधालय खुलवाय।।352।।

बरनावा से गमन कर, बड़े गाँव में आय।
पार्श्वप्रभू महिमा अगम, अतिशय क्षेत्र कहाय।।353।।

चातुर्मास कर ठाठ से, क्षेत्र पे रथ दिलवाय।
सिद्धचक्र का पाठ रचो, सुंदर अर्थ समझाय।।355।।

फिर क्रम-क्रम से गमन कर, क्षेत्र वहलना आय।
चातुर्मास कर ठाठ से, खूब विधान रचाय।।356।।

मंसूरपुर मुजफ्फरनगर महलका, बहसूमा में जाय।
पुनः खतौली नसिया जाकर, धर्मचक्र कराय।।357।।

इस प्रकार छोटे-छोटे, गाँवों में कियो विहार।
हुई प्रभावना खूब ही, कर समाज उद्धार।।358।।

बच्चों का स्कूल और महिला मंडल को खोल।
ज्ञानदान धर्मोपदेश दे अंतर में रस घोल।।359।।

चातुर्मास कर नसिया में, फिर खूब विधान कराय।
धार्मिक संत जहाँ बसें, मन ही मन हर्षाय।।360।।

पुनः गमन कर शाहपुर, चातुर्मास कर शान।
धर्मचक्र का पाठ कर, धर्मामृत कर पान।।361।।

देव शास्त्र गुरु भक्तिकर, ऐसे संत महान।
कर प्रभावना ठाठ से, सेवा व्रत कर दान।।362।।

फेर बुढ़ाना और मुल्हैड़ा, जाकर दे उपदेश।
वैय्यावृत्य कियो श्रावक ने, बांधे पुण्य विशेष।।363।।

पुनः महलका गमन कर, शीघ्र मवाना आय।
हस्तिनागपुर पहुँचकर, दर्शन कर मन भाय।।364।।

पहुँचे जंबूद्वीप में, खूब कियो विश्राम।
अस्वस्थ होकर भी दर्शन कर, व्रत तप जप कर ध्यान।।365।।

इंद्रध्वज अरु धर्मचक्र का, मैंने पाठ कराय।
पाँच करोड़ महामंत्र कर, आतम शक्ति बढ़ाय।।366।।

इस प्रकार सन् 1971 से लेकर पूज्य माताजी के दर्शन हेतु वापस आने तक का संक्षिप्त वर्णन पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने अपनी बुन्देलखण्ड यात्रा में स्वयं लिखकर प्रदान किया है। उसके पश्चात् भी पूज्य माताजी ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कई नगरों में चातुर्मास करके धर्मप्रभावना की तथा मवाना, खतौली आदि नगरों में चातुर्मास करके धर्मप्रभावना की तथा जम्बूद्वीप स्थल हस्तिनापुर में उन्होंने 9 चातुर्मास सम्पन्न किये हैं, आगे भी इसी प्रकार धर्मकार्यों में हमेशा अपना उपयोग स्थिर करती रहें, यही कामना है।

पूज्य आर्यिका अभयमति, को वन्दन शतबार।
रत्नत्रय की साधना, है जिनमें साकार।।

पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने सन् 1964 से लेकर सन् 2007 तक के इन वर्षों में कहाँ-कहाँ पर चातुर्मास स्थापित किए, उनसे आपको परिचित कराया जा रहा है–

परमपूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी द्वारा किए गए चातुर्मास
(सन् 1964 से सन् 2007 तक)

क्षुल्लिका अवस्था के 5 चातुर्मास

	सन्	वीर नि.सं.	स्थान
1.	1964	2490	हैदराबाद (आंध्रप्रदेश)
2.	1965	2491	श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)
3.	1966	2492	सोलापुर (महाराष्ट्र)
4.	1967	2493	सनावद (म.प्र.)
5.	1968	2494	प्रतापगढ़ (राज.)

आर्यिका अवस्था के 39 चातुर्मास

6.	1969	2495	जयपुर (राज.)
7.	1970	2496	टोंक (राज.)
8.	1971	2497	किशनगढ़ (राज.)
9.	1972	2498	सावर (राज.)
10.	1973	2499	ललितपुर (उ.प्र.)
11.	1974	2500	छतरपुर (म.प्र.)
12.	1975	2501	जबलपुर (म.प्र.)
13.	1976	2502	दमोह (म.प्र.)
14.	1977	2503	सागर (म.प्र.)
15.	1978	2504	राहतगढ़ (म.प्र.)
16.	1979	2505	खुरई (म.प्र.)
17.	1980	2506	ललितपुर (उ.प्र.)
18.	1981	2507	लश्कर (म.प्र.)
19.	1982	2508	जयपुर (राज.)
20.	1983	2509	जयपुर (राज.)
21.	1984	2510	मोजमाबाद (राज.)
22.	1985	2511	लूणवां (राज.)

	सन्	वीर नि.सं.	स्थान
23.	1986	2512	हस्तिनापुर (उ.प्र.)
24.	1987	2513	सरधना (उ.प्र.)
25.	1988	2514	बड़गाँव (उ.प्र.)
26.	1989	2515	जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (उ.प्र.)
27.	1990	2516	वहलना (उ.प्र.)
28.	1991	2517	बरनावा (उ.प्र.)
29.	1992	2518	जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (उ.प्र.)
30.	1993	2519	जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (उ.प्र.)
31.	1994	2520	मवाना (उ.प्र.)
32.	1995	2521	वहलना (उ.प्र.)
33.	1996	2522	खतौली (उ.प्र.)
34.	1997	2523	शाहपुर (उ.प्र.)
35.	1998	2524	जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (उ.प्र.)
36.	1999	2525	सरधना (उ.प्र.)
37.	2000	2526	बरनावा (उ.प्र.)
38.	2001	2527	बरनावा (उ.प्र.)
39.	2002	2528	बरनावा (उ.प्र.)
40.	2003	2529	जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (उ.प्र.)
41.	2004	2530	जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (उ.प्र.)
42.	2005	2531	जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (उ.प्र.)
43.	2006	2532	बरनावा (उ.प्र.)
44.	2007	2533	जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (उ.प्र.)

पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी की पूजन

–स्थापना–

हे आर्यिका माता अभयमति! बालसति विख्यात हो।
संसार सुख को छोड़कर, अपना लिया वैराग को।
अतएव पूजा के लिए, यह पद तुम्हारा योग्य है।
हम अर्चना करते तुम्हारी, जो हमारे योग्य है।।

ॐ ह्रीं आर्यिका श्री अभयमती मातः! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं आर्यिका श्री अभयमती मातः! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं आर्यिका श्री अभयमती मातः! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्सन्निधीकरणं।

–अष्टक–

भावों का प्रासुक नीर, ले पद प्रक्षालूँ।
मन की मिट जावे पीर, ऐसा सुख पा लूँ।।
हे अभयमती जी मात, तुमको वन्दन है।
जलयुक्त कलश हे मात! पद में अर्पण है।।1।।

ॐ ह्रीं आर्यिका श्री अभयमती मात्रे जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन की शीतल गंध, तन मन शुद्ध करे।
होवें कषाय मम मंद, ऐसी भक्ति करें।।
हे अभयमती जी मात, तुमको वन्दन है।
शीतल चन्दन हे मात! पद में अर्पण है।।2।।

ॐ ह्रीं आर्यिका श्री अभयमती मात्रे चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ धवल अखंडित शालि, अक्षत कहलाता।
तुम अग्र चढ़ा कर पुंज, चाहूँ सुख साता।।
हे अभयमती जी मात, तुमको वंदन है।
अक्षत की थाली मात! पद में अर्पण है।।3।।

ॐ ह्रीं आर्यिका श्री अभयमती मात्रे अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

फूलों के बहुत प्रकार, चुन चुन लाऊँ मैं।
विषयाशा होय समाप्त, पुष्प चढ़ाऊँ मैं।।
हे अभयमती जी मात, तुमको वन्दन है।
पुष्पों की माला मात! पद में अर्पण है।।4।।

ॐ ह्रीं आर्यिका श्री अभयमती मात्रे पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

व्यंजन के विविध प्रकार, पूजन हेतु धरूँ।
क्षुधरोग मेरा हो शान्त, तन मन स्वस्थ करूँ।।
हे अभयमती जी मात, तुमको वन्दन है।
नैवेद्य थाल हे मात! पद में अर्पण है।।5।।

ॐ ह्रीं आर्यिका श्री अभयमती मात्रे नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक की टिमटिम ज्योति, भी जग तिमिर हरे।
मन में हो ज्ञान उद्योत, आरति नित्य करे।।
हे अभयमती जी मात, तुमको वन्दन है।
दीपक की थाली मात! पद में अर्पण है।।6।।

ॐ ह्रीं आर्यिका श्री अभयमती मात्रे दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

है अष्टगन्ध की धूप, बहुत सुगंधकरी।
मैं करूँ अग्नि में दग्ध, अपने कर्मअरी।।
हे अभयमती जी मात, तुमको वन्दन है।
यह धूप सुघट हे मात! पद में अर्पण है।।7।।

ॐ ह्रीं आर्यिका श्री अभयमती मात्रे धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

किसमिस अखरोट बदाम, सेव अनार लिया।
पाऊँ निज आतम राम, अतः चढ़ाय दिया।।
हे अभयमती जी मात, तुमको वन्दन है।
यह फल की थाली मात! पद में अर्पण है।।8।।

ॐ ह्रीं आर्यिका श्री अभयमती मात्रे फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सब द्रव्य मिला इक संग, अर्घ्य बनाय लिया।
भव परम्परा हो भंग, अर्घ्य चढ़ाय दिया।।
हे अभयमती जी मात, तुमको वंदन है।
यह अर्घ्य थाल हे मात! पद में अर्पण है।।9।।

ॐ ह्रीं आर्यिका श्री अभयमती मात्रे अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा – **हे उपचार महाव्रती, बनीं आर्यिका मात।**
नमन करूँ तव चरण में, पुनः कहूँ जयमाल।।

शेरछंद –**जै जै त्रिलोक में मनुष्य जन्म श्रेष्ठ है।**
चारों गती में नरगती मानी सुश्रेष्ठ है।।

मिलता है चूँकि संयम पर्याय इसी में।
सम्यक्त्व सब गती में संयम न किसी में।।1।।

जिसके लिए सौधर्म इन्द्र भी तरसता है।
मानव में ही वह स्वात्मसौख्य रस बरसता है।।
पुरुषों में यह चारित्र होता पूर्णरूप से।
नारी उसे करती ग्रहण कुछ न्यूनरूप से।।2।।

तुमने उसी नारी का जनम प्राप्त किया है।
पितु छोटेलाल मोहिनी से जन्म लिया है।।
उन्नीस सौ ब्यालीस सन् मगसिर सुदी षष्ठी।
कन्या से धन्य थी टिकैतनगर की धरती।।3।।

गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती की लघू बहन।
उनकी ही प्रेरणा से बढ़े त्याग में कदम।।
सन् उन्नीस सौ चौंसठ में क्षुल्लिका बना दिया।
रख नाम अभयमती त्याग में बढ़ा दिया।।4।।

आचार्य धर्मसागर से आर्यिका बनीं।
उन्नीस सौ उन्हत्तर में महावीर जी।।
कुछ दिन रहीं गुरु संघ में फिर यात्रा को निकलीं।
बुन्देलखण्ड तीर्थवन्दना को चल पड़ीं।।5।।

निज नाम को साकार कर प्रभावना किया।
गुरुओं के दर्श से सफल निज भावना किया।।
जप तप से किया करती हो धर्मध्यान है।
अब ''चंदनामती'' करे तुमको प्रणाम है।।6।।

–दोहा –

अर्घ्य समर्पित चरण में, करूँ पूर्ण जयमाल।
रत्नत्रय की निधि मुझे, कर दे मालामाल।।7।।

ॐ ह्रीं चारित्रश्रमणी आर्यिका श्री अभयमती मात्रे जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

।। इत्याशीर्वादः। पुष्पांजलिः।।

चारित्रश्रमणी पूज्य आर्यिकारत्न श्री अभयमती माताजी की मंगल आरती

रचयित्री - ब्र. कु. आस्था जैन
(संघस्थ - गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी)

श्री अभयमती माताजी की, सब करें आरती आज,
घृतमय दीपक लेकर आए, शरणा तेरी आज,
हो माता हम सब उतारें तेरी आरती.....

सन् उन्नीस सौ ब्यालिस में, तुम टिकैतनगर में जन्मी,
छोटेलाल मोहिनी माता, की बगिया है महकी,
हो माता हम सब उतारें तेरी आरती.....

बचपन में था नाम मनोवती, त्याग मार्ग मन भाया,
उन्निस सौ चौंसठ में तुमने, क्षुल्लिका दीक्षा पाया,
हो माता हम सब उतारें तेरी आरती.....

ज्ञानमती माताजी गुरु को, पाकर सफल हुई हो,
आर्यिका दीक्षा धर्मसिंधु से, पाकर धन्य हुई हो,
हो माता हम सब उतारें तेरी आरती.....

ग्रंथों की रचना कर तुमने, सार्थक जन्म है कीना,
जगह-जगह यात्रा कर तुमने, धर्म प्रभावन कीना,
हो माता हम सब उतारें तेरी आरती.....

हे 'चारित्रश्रमणी' माता ज्ञान गुणों की खान,
करे 'आस्था' यही कामना, दीर्घ आयु हो प्राप्त,
हो माता हम सब उतारें तेरी आरती.....

भजन

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

अरे, जग जा रे चेतन! नींद से,
तुझे सतगुरु आये जगावन को।।टेक.।।
काल अनादी से इस जग में-2
भ्रमण करे तू चारों गति में-2।
अरे, मोह नींद को दूर भगा,
तुझे सतगुरु आये जगावन को।।1।।
मानुष तन दुर्लभ है जग में-2,
सदुपयोग इसका तू कर ले-2।
अरे, विषय कषाय को त्याग दे,
तुझे सतगुरु आये जगावन को।।2।।
पर का कुछ उपकार भी कर ले-2,
सज्जन का सत्कार भी करले-2।
अरे, कर ले आतम ध्यान भी,
तुझे सतगुरु आये जगावन को।।3।।
सात व्यसन का त्याग तू कर दे-2,
पाँच पाप भी मन से तज दे-2।
अरे, धर्म में कर अनुराग रे,
तुझे सतगुरु आये जगावन को।।4।।
कहे ''चन्दनामती'' सभी से-2,
कर लो मैत्री भाव सभी से-2।
अरे, भज ले प्रभु का नाम रे,
तुझे सतगुरु आये जगवान को।।5।।

द्वितीय अध्याय

साहित्य-साधना

पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने दीक्षा लेकर जहाँ आत्मकल्याण के साथ ही जगह-जगह पर खूब धर्मप्रभावना की, वहीं उन्होंने अनेक ग्रन्थों का लेखनकार्य भी किया है, कई ग्रंथों की पद्यावली, कई मौलिक रचनाएँ आदि करके उन्होंने साहित्य की सेवा में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। उन समस्त ग्रंथों के नाम यहाँ प्रस्तुत हैं–

1. पीयूषवाणी
2. अभयवाणी प्रथम भाग
3. अभयवाणी द्वितीय भाग
4. महावीर अमर संदेश
5. अभय गीतांजली प्रथम पुष्प
6. अभय गीतांजलि द्वितीय पुष्प
7. वीर अभयध्वनि
8. जैन संस्कृति शतक
9. द्वादशांग विवेचन
10. दशधर्म विवेचन
11. सोलह कारण भावना
12. एक वृक्ष सात डालियाँ
13. आत्म पथ की ओर
14. सप्त व्यसन
15. बाल विज्ञान ज्योति प्रथम खण्ड
16. बाल विज्ञान ज्योति द्वितीय खण्ड
17. आदर्श जिनवाणी
18. अमृतवाणी
19. कुंदकुंद गीता
20. वसुदेव चरित्र
21. अमृत कलश काव्य पद्य
22. पुरुषार्थ सिद्धि काव्य पद्य
23. आत्मानुशासन काव्य पद्य
24. परमात्म प्रकाश काव्य पद्य
25. रयणसार काव्य पद्य
26. भव्य स्तोत्र काव्य पद्य
27. मृत्युंजय विधान
28. भक्तामर विधान
29. सम्मेदशिखर विधान
30. धर्मचक्र विधान
31. चौबीसी विधान
32. पंचपरमेष्ठी विधान
33. रत्नत्रय विधान
34. श्रुतस्कंध विधान
35. अ.क्षेत्र बड़गाँव का इतिहास
36. अ. क्षेत्र बरनावा का इतिहास
37. अ. क्षेत्र लूणवां का इतिहास
38. अ. क्षेत्र मोजमाबाद का इतिहास
39. अ. क्षेत्र बिहारी का इतिहास
40. तीर्थ क्षेत्र अयोध्या का इतिहास
41. तीर्थक्षेत्र हस्तिनापुर का इतिहास

अब यहाँ पर इनमें से कुछ प्रमुख ग्रंथों का विशेष परिचय प्रदान किया जा रहा है–

समयसार-अमृतकलश पद्यावली

आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव ने समयसार नामक महानग्रंथ की रचना करके बहुत बड़ा उपकार किया है। इस ग्रंथ के बारे में कहा जाता है कि-

तरणकला जाने बिना, ज्यों नहिं नैया पार।
समयसार जाने बिना, त्यों नहिं हो भव पार।।

यह समयसार जीवन की अमूल्य निधिस्वरूप है। पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने इस ग्रंथ की आत्मख्याति टीका में आचार्य श्री अमृतचन्द्रसूरि द्वारा रचित काव्य कलशों का पद्यानुवाद करके इसे जन-जन के लिए सरल एवं सरस बना दिया है। इसमें सर्वप्रथम पूर्व रंग- भूमिका में शुद्ध आत्मतत्त्व का विवेचन किया है, उसमें स्पष्टरूप से बताया है कि यह समयसार द्रव्यगुण पर्यायों से सहित अनेकान्त धर्म से सुशोभित है। 'समय' शब्द के अनेक अर्थ हैं– 'समय' यानि घंटा, घड़ी, दिन आदि, 'समय' यानि शास्त्र, 'समय' यानि पदार्थ, परन्तु यहाँ पर 'समय' यानि शुद्ध आत्मतत्त्व का ''सार'' अथवा उपादेयस्वरूप है जिसमें, उसका नाम है समयसार। ऐसा यह समयसार अनेकान्त धर्म से गुंफित है, उस अनेकांत पर जो आस्था रखते हैं, वे ही भव्यजीव संसार-समुद्र से पार होते हैं। यद्यपि प्रारंभिक अवस्था में व्यवहारनय कार्यकारी है पर शुद्धोपयोगदशा में वह व्यवहारनय अकिंचित्कर बन जाता है। इस प्रकार इस जीवाजीवाधिकार में प्रारंभ से लेकर 32 कलश काव्यों तक तो 'रंगभूमि' संज्ञा दी है। आगे जीवाजीवाधिकार में चेतन-अचेतन का भिन्न रूप से स्पष्ट विवेचन किया है, अनेक उदाहरणों से इसी बात को दृढ़ करते हुए कहा है कि भाई! लक्षण की अपेक्षा जीव से अजीव भिन्न है फिर भी ज्ञानीजन ही इसका अनुभव कर सकते हैं, अज्ञानीजन नहीं। यहाँ पर ज्ञानी शब्द से निर्विकल्प ध्यान में स्थित महामुनि ही विवक्षित हैं क्योंकि इसके पूर्व तो शुद्ध आत्मा का श्रद्धान ही माना गया है। इस 'जीवाजीवाधिकार' को पूर्ण करते हुए अंत में उपसंहाररूप से श्री अमृतचन्द्रसूरि कहते हैं कि 'ज्ञानरूपी' करोंत के द्वारा जीव और अजीव को पृथक् करना है तो इस करोंत को तब तक चलाते रहना चाहिए कि जब तक यह चिच्चैतन्यस्वरूप आत्मा पर से पृथक् होकर सिद्ध-शुद्ध अवस्था को न प्राप्त हो जाए। ऐसी भेदज्ञान की भावना करते-करते एक दिन यह आत्मा शरीर से रहित अशरीरी हो जाएगा। इस प्रकार इस अधिकार में 45 कलशकाव्य हैं।

इसके पश्चात् द्वितीय कर्तृ-कर्म अधिकार में ज्ञानी-अज्ञानी की प्रवृत्ति दिखाई गई है कि ज्ञानी अपने स्वभाव का ही कर्त्ता है पर अज्ञानी निमित्त-नैमित्तिक संबंध से परभाव का ही कर्त्ता है, इस विषय का सुन्दर विवेचन किया है। इन कलश काव्यों के पद्यानुवाद में पूज्य आर्यिका अभयमती माताजी ने 52 प्रकार के सुन्दर छंदों का प्रयोग किया है, जिनके द्वारा इस पद्यावली में अद्भुत सरसता आ गई है। इस द्वितीय कर्तृ-कर्म अधिकार में 46 से 99 तक कलशकाव्य हैं। पुनः पुण्यपापाधिकार में पुण्य-पाप के फल को एवं क्रिया

को दर्शाया है कि यह जीव स्वयं ही अपने शुभ-अशुभ भावों के द्वारा पुण्य-पाप का कर्ता है और वही स्वयं ही उसके फल का भोक्ता भी है। इस अधिकार में एक विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि छठे गुणस्थानवर्ती मुनि, आचार्य, उपाध्याय, साधु अर्थात् आज के मुनिराज इन पुण्य-पाप से परे–शुद्धोपयोगी नहीं हो सकते हैं तो फिर श्रावकों अथवा अविरत सम्यग्दृष्टियों के लिए पुण्य को भी हेय कह देना गलत है। जब छठे-सातवें गुणस्थान तक पुण्यक्रियाएँ उपादेय हैं तो चौथे-पाँचवें गुणस्थानवर्तियों के लिए तो उपादेय हैं ही हैं। हाँ! इन सबके लिए पापक्रियाएँ सर्वथा हेय ही हैं आगे चलकर पुण्य क्रियाएँ ध्यान में स्वयं छूट जाती हैं तभी पुण्य और पाप एक कोटि में आ जाते हैं। इस प्रकार इस तृतीय अधिकार में 100 से लेकर 112 तक ऐसे 13 कलश काव्य हैं।

आगे चतुर्थ 'आस्रव अधिकार' की टीका में प्रयुक्त संस्कृत काव्यों में बताया है कि अज्ञानी प्राणी कर्मरूप आस्रव द्वारा हमेशा दुःखी रहते हैं और ज्ञानी प्राणी आस्रव को रोकने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं। इसमें बताया है कि शुद्ध आत्मतत्त्व में लीन शुद्धोपयोगी मुनि ही 11वें, 12वें गुणस्थान में पहुँचकर कर्मों के आस्रव को रोकते हैं। इस प्रकार 113 से 124 तक कलश काव्यों में यह चतुर्थ अधिकार वर्णित है।

पुनः संवर अधिकार में कहा है कि यह ज्ञानी जीव कर्मों का संवर करके अपनी आत्मा में रमण करता है। मूलग्रंथ समयसार में आचार्य श्री कुंदकुंददेव ने इस संवर का क्रम बतलाते हुए इसे सर्वपरिग्रह त्यागी महामुनियों में ही माना है। इस अधिकार में 128 से 132 तक ऐसे 8 कलशकाव्य हैं।

छठे निर्जरा अधिकार में कहते हैं कि ध्यानी योगी महामुनि तप, ध्यान आदि के द्वारा अनन्तकर्मों की निर्जरा करते हुए ज्ञानज्योति को प्रगट करते हैं। पुनः बताते हैं कि जो सातभयों से रहित अपनी शुद्ध आत्मा को टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वभावमात्र अनुभव करते हैं, उनके किंचित् भी कर्म का बंधन नहीं होता है प्रत्युत् पूर्व में बंधे हुए कर्मों की निर्जरा ही हो जाती है। इस प्रकार से इस अधिकार में 133 से 162 तक कलश काव्य हैं। पुनः बंधाधिकार में बताया है कि यह अज्ञानी जीव रागभाव द्वारा पुनः-पुनः कर्मों का बंध करता है परन्तु ज्ञानी जीव इन विभावभावों से सदैव विरागी ही रहता है। इस अधिकार में 163 से 179 तक कलशकाव्य हैं।

आगे 'मोक्ष अधिकार' में कहा है कि ज्ञानी जीव प्रज्ञारूपी छैनी के द्वारा सभी द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म को दूर करके मोक्ष में जाकर विराजमान हो जाते हैं। जहाँ परशाश्वत सुख है, उसी का नाम मोक्ष है। 190वें कलशकाव्य में कहा है कि जो आलस्य और प्रमाद को छोड़कर अपने आत्मस्वरूप में स्थिर हो जाता है, वही मुनि परमशुद्धि को प्राप्त होता हुआ बहुत शीघ्र ही कर्मों से छूट जाता है। इस अधिकार में 180 से 192 तक कलश काव्य हैं।

तत्पश्चात् सर्वविशुद्ध नामक अधिकार में इस बात पर अधिक जोर दिया गया है कि अज्ञान से ही यह आत्मा कर्मों का कर्त्ता-भोक्ता है किन्तु ज्ञानी आत्मा अपने ज्ञान के बल

से कर्मों का कर्त्ता-भोक्ता नहीं होता है। इस अधिकार में 193 से 246 तक कलशकाव्य हैं।

आगे 'स्याद्वाद अधिकार' में अनेकान्त धर्म का स्पष्ट विवेचन करते हुए कहते हैं कि एक ही वस्तु में अनन्त गुण, धर्म, पर्यायें सदा विद्यमान हैं। साथ ही इस अधिकार में स्याद्वाद की शुद्धि के लिए वस्तुतत्त्व की व्यवस्था पर तथा उपाय–मोक्षमार्ग और उपेय–मोक्ष इन दोनों पर किंचित् विचार किया गया है। वस्तु के किसी एक धर्म को एकान्त से मानने वाले मिथ्यादृष्टि हैं, यहाँ उन्हें अज्ञानी कहा है क्योंकि वे स्वयं के हित-अहित के विवेक से शून्य हैं, इससे अतिरिक्त एक-एक धर्म को एक-एक नयविवक्षा से परस्पर सापेक्ष ग्रहण करने वाले स्याद्वादी हैं, वे ही तत्त्ववेत्ता हैं और ज्ञानी हैं।

इस प्रकार इस अधिकार में 246 से 261 तक 14 कलश काव्यों में यही बताया है कि एकान्तमान्यता से ज्ञानमात्र आत्मा का अभाव हो जाता है किन्तु अनेकांत मान्यतानुसार आत्मा और ज्ञान एक-दूसरे से अभिन्न रहते हुए शाश्वत सत्ता वाला है।

अन्त में साध्य-साधक विचार के अन्तर्गत 'आत्मा अनन्तशक्तियुक्त है' ऐसा कहा है। इस प्रकार क्रम-क्रम से सभी अधिकारों के सुन्दर विवेचन के पश्चात् पद्यानुवादकर्त्री पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी अपनी अल्पज्ञता प्रदर्शित की है।

आत्मानुशासन

दिगम्बर जैन समाज में प्रचलित आत्मानुशासन नामक महान ग्रंथ आचार्य श्री गुणभद्र स्वामी की अनुपम कृति है। यह ग्रंथ अपने नाम को सार्थक करता हुआ आत्मा पर अनुशासन करने की विद्या सिखाता है।

व्यवहारिक जीवन में हम देखते हैं कि जो छात्र/छात्रा, पुत्र-पुत्री आदि अनुशासन में रहकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं, वे अपने जीवन में उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए इस लोक और परलोक में प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय बन जाते हैं फिर अपनी आत्मा पर अनुशासन करने वाले भव्यप्राणी निश्चित ही समस्त इच्छित पदार्थ की सिद्धि सहज में ही कर लिया करते हैं।

परमपूज्य चारित्रश्रमणी आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने इस महान ग्रंथ का हिन्दी पद्यान्तर करके अपनी विशिष्ट प्रतिभाशैली का परिचय प्रदान किया है। आज के इस भौतिकवादी युग में संस्कृत भाषा के पठन-पाठन की रुचि प्रायः समाप्त होती जा रही है, ऐसे समय में पूज्य आर्यिका श्री द्वारा इस ग्रंथ का सरल, सरस भाषा में पद्यान्तर करना समय की बहुत बड़ी आवश्यकता है।

इस ग्रंथ के प्रत्येक श्लोक अपने आप में बहुत ही महत्वपूर्ण हैं, जो भी व्यक्ति इस ग्रंथ को पढ़ता है उसे संसार-शरीर-भोगों से वैराग्य अवश्य उत्पन्न होता है।

पूज्य माताजी ने सर्वप्रथम मंगलाचरणपूर्वक आत्मानुशासन ग्रंथ के कथन की प्रतिज्ञा करते हुए प्रथम श्लोक में लिखा है कि–

चौबीसों जिनदेव को, नमन करूँ शत बार।
वीतरागता प्रगट हो, होवे मम उद्धार।।

इन दो पंक्तियों में ही आर्यिकाश्री ने 24 तीर्थंकरों को नमन करके उनसे वीतराग अवस्था की कामना की है जो कि सभी संसारी अवस्थाओं का विनाश करके परम पद को दिलाने वाली है। क्रम-क्रम से एक-एक श्लोकों का पद्यानुवाद एवं गद्य में टीका करते हुए उन्होंने लिखा है कि यद्यपि इस ग्रंथ में कदाचित् कुछ शिक्षाएँ तत्कालिक कटु लगती हैं तो भी उनसे भयभीत न होवें–

यद्यपि इसमें कुछ इष्ट वचन, तत्कालिक कटुमय भास रहें।
फिर भी उसका परिणाम मधुर, हितकारक शिवसुख रूप लहे।।
इसलिए चेत रे चेतन! ज्यों, रोगी कटु औषधि से न डरे।
बस उसी तरह तू भी उससे, डरना न जभी सब दुःख टरे।।

अर्थात् यद्यपि इस आत्मानुशासन ग्रंथ में प्रतिपादित सम्यग्दर्शनादि का उपदेश कदाचित् आचरण के समय कुछ कटु सा प्रतीत हो सकता है तो भी उसका फल मधुर (हितकारक) ही होगा अतः हे भव्यप्राणी! जिस प्रकार रोगी कड़ुवी औषधि से नहीं डरता है, उसी प्रकार तुम भी इससे मत डरो, तभी तुम्हारे सभी दुःख टल जायेंगे।

आगे आर्यिका श्री इस पंचमकाल की स्थिति के बारे में बताती हैं कि इस कलिकाल में निःस्वार्थ दृष्टि से जगत का उद्धार करने वाले संत-साधु बड़े पुण्य से मिलते हैं अतः अच्छे कर्म करें ताकि उसका फल आगे अच्छा मिलेगा। पुनः आगे के श्लोकों में वक्ता, श्रोता का सुन्दर स्वरूप बताकर पाप और पुण्य के फल का प्रतिपादन करते हुए कहा कि जिस प्रकार पानी को मथने से मक्खन एवं बालू को पेरने से तेल नहीं निकलता बल्कि दही को मथने से मक्खन और तिल को पेरने से ही तेल निकलता है उसी प्रकार धर्म करने से पुण्य और अधर्म करने से पापफल की प्राप्ति होती है।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप व उसके दशभेदों को बताते हुए सम्यग्दर्शन के बिना व्रत-तपकी निरर्थकता को बताया है कि जिस प्रकार पत्थर की नाव समुद्र में डुबा देती है और लकड़ी की नाव पार लगा देती है उसी प्रकार सम्यग्दर्शन भव्यप्राणी को संसारसमुद्र से पार करनें समर्थ है।

आगे यह बहुत ही सुन्दर बात बताई गई है कि सुख व दुःख दोनों ही अवस्थाओं में धर्म की आवश्यकता है, इस विषय में सुन्दर पंक्तियाँ देखें–

हे चेतन! तू चाहे सुख का, अनुभव अरु दुःख का अनुभव कर।
पर सदा जगत में इन दोनों में, तू इक धर्म लहे निश्चल।।
हाँ, यदि तू सुख को भोग रहा, तो वही धर्म सुखवृद्धि करे।
अरु यदि दुःख को तू भोग रहा, तो वही धर्म सब दुःख हरे।।
धर्म बिना इस जीव का, कभी न हो कल्याण।
सुख-दुःख दोनों में करे, भव्य धर्म का काम।।

बहुत ही सरल, सरस पंक्तियों में शिक्षास्पद बात कही गई है। वास्तव में यह धर्म इन्द्रियसुख के संरक्षण में भी आवश्यक है। आगे बताया है कि कल्पवृक्ष तो मांगने पर फल देते हैं परन्तु धर्म के द्वारा बिना मांगे ही इच्छित वस्तु प्राप्त हो जाती है अतः इसधर्म का कभी भी विघात नहीं करना चाहिए।

आगे के श्लोकों में पूज्य माताजी ने बहुत ही मार्मिक शब्दों में शिकार, परनिंदा आदि को नहीं करने की प्रेरणा प्रदान करते हुए सुख-वैभव को पुण्य का कारण बताया है।

यह सच है कि संसार में रत प्राणी की तृष्णा कभी शान्त नहीं होती है उसी कोउदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार मकड़ी स्वयं के बुने हुए जाल में ही फंस जाती है उसी प्रकार गार्हस्थ जीवन भी मकड़ी के जाल के समान है। आगे बताया है कि जो विवेकी प्राणी हैं वे पुण्य को इष्ट सामग्री का कारण मानकर अपने परभव को सुधारने का प्रयत्न करते हैं तथा जो विवेकहीन हैं वे विषयों के आधीन होकर अपनी बुद्धि को भ्रष्ट करलेते हैं।

जिस प्रकार हाथी स्नान करने के बाद पुनः अपने अंग पर धूल डाल लेता है उसी प्रकार विवेकशून्य गृहस्थाश्रम भी व्यर्थ है। श्लोक नं. 42 में कहा है कि जिस प्रकार बालू से तेल तथा विष से जीने की वांछा करना व्यर्थ है, ठीक उसी प्रकार विषय-भोगों में सुख ढूंढ़ना व्यर्थ है। सच्चा सुख तो आत्मा के अनुभव से ही प्राप्त होगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने इस ग्रंथ के पद्यानुवाद में बहुत परिश्रम किया है। आगे-आगे की गाथाओं में उन्होंने बताया है कि तृष्णा के कारण ही प्राणी संसार में दुःख उठा रहा है तथा जो संत-साधु-तपस्वी हैं वे ही संसार में सुखी हैं, क्योंकि उन्होंने रागद्वेष का त्याग कर दिया है।

आठों कर्मों में प्रधान मोहरूपी निद्रा के वशीभूत होकर प्राणी क्या-क्या सहन नहीं करता, मोही प्राणी का शरीर बंदीगृह के समान है, गृह, बंधु, स्त्री, पुत्र, धन आदि मोही प्राणी के लिए विपत्ति का कारण बन जाते हैं। आगे लक्ष्मी (धन) की चंचलता के बारे में बताया है कि इस लक्ष्मी के वशीभूत होकर प्राणी अपने भाई, पिता आदि को भी भूल जाता है अतः जो इन धन आदि से रहित हैं ऐसे तपस्वी, साधु आदि ही प्रशंसा के पात्र हैं।

वास्तव में यह आत्मानुशासन ग्रंथ पढ़ते-पढ़ते संसार की अस्थिरता, असारता, क्षणभंगुरता का ज्ञान होता है। आज जब इस ग्रंथ को पढ़ना ही वैराग्यवर्धक प्रतीत होता है तो जब आर्यिका अभयमती माताजी ने इसका पद्यानुवाद किया होगा, तब अवश्य ही उनके भावों में अत्यधिक विशुद्धि रही होगी।

इस प्रकार आगे-आगे के श्लोकों में संसारी प्राणियों के कर्तव्य-अकर्तव्य काभान करते हुए बहुत ही शिक्षास्पद बातें बताई हैं। पूरे ग्रंथ के विस्तृतस्वरूप का कथन करनेलगें तो एक अन्य ही पुस्तक तैयार हो सकती है। इतना अवश्य है कि प्रत्येक स्वाध्यायप्रेमी को कम से कम एक बार अपने जीवनकाल में आत्मानुशासन ग्रंथ का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए ताकि आत्मा पर अनुशासन करने की प्रक्रिया को सीखने में सफलता प्राप्त हो सके।

धर्मचक्र विधान

परमपूज्य चारित्रश्रमणी आर्यिका श्री अभयमती माताजी द्वारा रचित कतिपय विधानों की श्रृँखला में ''धर्मचक्र विधान'' एक सुन्दर कृति है।

तीर्थंकर भगवान के केवलज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् कुबेर द्वारा समवसरण की रचना होती है, उस समवसरण में चारों दिशाओं में सर्वाण्हयक्ष अपने मस्तक पर धर्मचक्र को धारण करते हैं तथा तीर्थंकर के श्रीविहार के समय यह धर्मचक्र आगे-आगे चलता है, ऐसे उस महिमाशाली धर्मचक्र नाम से ही इस विधान का ''धर्मचक्र विधान'' यह नामकरण किया गया है।

पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से रचित इस विधान में 32 पूजा, 438 अर्घ्य, 14 पूर्णार्घ्य और 32 जयमालाएँ हैं। सर्वप्रथम धर्मचक्र पूजा में अष्टक के पश्चात् बहुत ही सुन्दर पंक्तियाँ हैं–

मानुष नरतन पाय कर, कर लीजे दो काम।
देने को है दान भला, लेने को प्रभु नाम।।

इसका अर्थ तो सहजता से ही समझ में आ जाता है कि संसार में मनुष्यपर्याय प्राप्त करके प्राणियों को दो कार्य करने चाहिए–एक देने का अर्थात् दान और दूसरा लेने का अर्थात् भगवान का नाम।

इस प्रकार कम शब्दों में बड़ी बात को कह देना ही रचना की बहुत बड़ी विशेषता होती है। इस विधान में पूज्य माताजी ने **''ॐ ह्रीं श्री धर्मचक्राय नमः''** इस मंत्र का जाप्य करने की प्रेरणा दी है।

द्वितीय समवसरण पूजा में समवसरण की महिमा का सुन्दर वर्णन किया है। पुनः क्रम-क्रम से रत्नत्रय पूजा आदि को करके चौबीसों भगवान की अलग-अलग पूजाएँ हैं जिसमें 24 तीर्थंकर भगवन्तों के पंचकल्याणक तिथि आदि के बारे में वर्णन है।

32 पूजाओं के बाद बड़ी जयमाला में सभी पूजाओं का सार सुन्दरता से गर्भित किया है तथा अन्त में प्रशस्ति के माध्यम से विधान रचना के कारण को बताते हुए अपनी गुरुपरम्परा का उल्लेख किया है तथा यह भावना भाई है कि–

यावत् रवि शशि मेदिनी, देव धर्म गुरुवास।
धर्मचक्र का पाठ भी, तावत् करे प्रकाश।।

इस प्रकार इस धर्मचक्र विधान को करके सभी भाक्तिकजन धर्मरूपी ध्वजा को फहराने में सफलीभूत हों, यही मंगलकामना है।

श्री रयणसार सरस काव्य पद्यावली

भगवान महावीर के पश्चात् उनके प्रथम गणधर गौतम स्वामी ने दिव्यध्वनि को ग्रहण कर उसे ग्रंथरूप में निबद्ध किया। उसी श्रुत परम्परा को अनेक आचार्यों ने आगे बढ़ाया। उनमें आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी का नाम ग्रंथ रचना में सर्वाधिक प्रचलित है। वे श्रमणसंस्कृति के उन्नायक कहे गये हैं। उनके अनेक नाम भी आते हैं– पद्मनंदी, वक्रग्रीव, गृद्धपिच्छाचार्य, एलाचार्य आदि। वर्तमान में भी उनके पश्चात्वर्ती साधुगण अपने को कुन्दकुन्दाम्नायी मानते हैं। तभी प्रशस्ति आदि में कुन्दकुन्दाम्नाये सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे..... लिखा जाता है। इन्होंने 84 पाहुड़ ग्रंथों की रचना की थी जिनमें से आज लगभग 12 रचनाएँ उपलब्ध हैं। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार आदि आध्यात्मिक ग्रंथ माने जाते हैं, वहीं उन्हीं के ''रयणसार'' ग्रंथ में श्रावक धर्म और मुनिधर्म का निरूपण किया गया है। सम्यग्ज्ञान मोक्षप्राप्ति में कारण है, किन्तु सम्यग्ज्ञान और चारित्र को धारण किये बिना मोक्ष की सिद्धि नहीं हो समती। मोक्षमार्ग पर चलने के लिए श्रावक और मुनि को किस प्रकार अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए, इस पर प्रकाश डाला गया है। श्रावक धर्म और मुनिधर्म एक-दूसरे के पूरक माने गये हैं। पद्मपुराण ग्रंथ में कहा गया है– श्रावकधर्म मुनिधर्म का लघु भ्राता है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने गाथा नं. 11 में श्रावक और मुनि के आवश्यक कर्तव्य बताते हुए लिखा है–

दाणं पूजा मुक्खो, सावयधम्मो ण सावया तेण विणा।
झाणज्झयणं मुक्खं, जइधम्मं ण तं विणा तहा सोवि।।11।।

अर्थात् श्रावक के लिए दान और पूजा तथा मुनि के लिए ध्यान और अध्ययन ये दो मुख्य धर्म कहे हैं।

सम्यग्दर्शन संसार परिभ्रमण को कम करने वाला है और मिथ्यात्व चतुर्गति में भ्रमण करते हुए संसाररूपी समुद्र में डुबाने वाला है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने 167 गाथाओं के माध्यम से, रत्नत्रय धारण कर किस प्रकार उसका पालन करना चाहिए, इस पूरे विषय को प्रतिपादित कर दिया है। ''रयणसार'' का अर्थ है जिसमें रत्नत्रयरूपी जो अमूल्य निधि है, उसका सार भरा है। श्रावक के लिए देवपूजा, गुरुपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये षट्कर्म बताये हैं। पंचमकाल में मुनियों को भी धर्मध्यान ही हो सकता है अतः धर्मध्यान का अभ्यास करना श्रेष्ठ है।

गाथा नं. 153 के हिन्दी पद्यानुवाद में श्रावक भी 53 क्रियाएँ बताते हुए लिखा है–

अष्टमूलगुण बारह व्रत अरु, समता बारह तप धरना।
ग्यारह प्रतिमा दान चतुर्विध, अरु नित जलगालन करना।।
रात्रि न भोजन करे व समकित, ज्ञान चरित उर में धरना।
ये श्रावक की नित्य क्रियाएँ, त्रेपन नित पालन करना।।153।।

अंत में कहा गया कि वीतरागी मुनि ही मोक्षमार्ग के स्वामी हैं–

जिणलिंगधरो जोई, विराय सम्मत्त संजुदो णाणी।
परमोवेक्खाइरियो, सिवगई वहणायगो होई।।164।।

इस ग्रंथ का यही सार है कि सम्यक्त्व के बिना ज्ञानप्राप्ति, तपश्चरण, चारित्रधारण, सभी संसारभ्रमण में बीज के समान हैं। सम्यक्त्वहीन श्रावक और साधु दोनों ही आत्मा की सिद्धि में समर्थ नहीं हो सकते। सम्यक्त्व ही आत्मा की शुद्धि और मोक्ष की सिद्धि में प्रबल कारण है अतः आचार्य ने कहा है कि अपने पद के अनुसार श्रावक और साधु समीचीन रूप से अपने कर्तव्यों का पालन करें, तभी कार्य की सिद्धि संभव है।

इस 'रयणसार' ग्रंथ की गाथाओं का पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने सरस सरल भाषा में पद्यानुवाद किया है, जो प्राकृत भाषा में गाथा का अर्थ स्पष्ट नहीं जान सकते, उनके लिए यह अतीव उपयोगी ग्रंथ है–इसमें बीच-बीच के पदों में विभिन्न छंदों का प्रयोग किया है जो निम्न है–मुक्तक छंद, वीर, बसंततिलका, कवित्त, हरिगीतिका, रोला।

पूज्य अभयमती माताजी अपने समय का सदुपयोग ज्ञानार्जन एवं लेखनकार्य में करती हैं। उसी का प्रतिफल "रयणसार सरस काव्य पद्यावली" रचना है।

ग्रंथ का उपसंहार करते हुए कुन्दकुन्द आचार्य की प्राकृतगाथा को हिन्दी पद्य में अभयमती माताजी ने उसका भाव प्रस्तुत किया है कि–

रदि सज्जण पुज्जं 'रयणसारग्रंथं' णिरालसो णिच्चं।
जो पढइ सुणइ भावइ, पावइ सो सासयं गुणं।।167।।

यह "रयणसार" नामक सुग्रंथ, नित संतों द्वारा पूज्य रहे।
ऐसे सुग्रन्थ को जो मुनष्य, आलस तजकर प्रतिनित्य गहे।
अरु पढ़े सुने चिंतवन करे, नित इसके रूप प्रवृत्ति धरे।
वह अविनश्वर निज सिद्ध रूप, मय शाश्वत शिवसुख प्राप्त करे।।

अर्थात् इस ग्रंथ का अध्ययन कर जो मनुष्य इसमें कहे अनुसार प्रवृत्ति करेगा, वह अवश्य ही मुक्ति प्राप्त करेगा।

वीर प्रभू से यही प्रार्थना है कि पूज्य माताजी स्वस्थ रहकर अपने संयमी जीवन का भलीभांति परिपालन करती रहें और भविष्य में भी हमें अपनी लेखनी से सरल-सरस साहित्य लेखन कर मार्गदर्शन प्रदान करती रहें।

पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय

पुरुषार्थसिद्धि उपाय ग्रंथ परमपूज्य आचार्य श्री अमृतचंद्रसूरि द्वारा रचित एक महान ग्रंथ है। इस ग्रंथ में श्रावकधर्म एवं मुनिधर्म का विशदरूप से, अच्छी तरह विवेचन किया गया है। इस ग्रंथ के संस्कृत के श्लोकों का परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

की शिष्या एवं गृहस्थावस्था की लघु बहन पूज्य आर्यिकारत्न श्री अभयमती माताजी ने सरल भाषा में पद्यानुवाद करके सभी के लिए इसका अर्थ सुगम कर दिया है। ग्रंथ का मंगलाचरण करते हुए आचार्यश्री ने लिखा है–

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनंत पर्यायैः।
दर्पण तल इव सकला, प्रति फलति पदार्थमालिका यत्र।।1।।

इसका पद्यानुवाद मुक्तकछंद में करते हुए पूज्य माताजी ने लिखा है–

सम्पूर्ण पदार्थों के समूह, जिसमें दर्पणवत् झलक रहे।
अरु भूत भविष्यत् वर्तमान की, पर्यायें भी शोभित हैं।।
जो पूर्ण ज्ञान सहजानंदी, नित ज्ञाता दृष्टारूप कहे।
वह परं ज्योति प्रतिबिम्ब रूप, चैतन्य सदा जयवंत रहे।।1।।

इस ग्रंथ में आचार्य ने पाँच अधिकारों में विषयस्वरूप को लिया है। इसमें पंचपापों का त्याग, अष्टमूलगुणों का पालन एवं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र का स्पष्टरूप से विवेचन किया है। प्रथम अधिकार में मंगलाचरण में भगवान के गुणों को नमन करके अनेकांत धर्म को नमस्कार किया है और यह बताया है कि सम्पूर्ण पदार्थों की सिद्धि अनेकांत धर्म के द्वारा ही होती है। ज्ञानी पुरुष जब स्याद्वाद विद्या के प्रभाव से अनेक धर्म स्वरूप वस्तु का निर्णय करके भिन्न-भिन्न कल्पनाओं को दूर कर देता है, तब उसे ही अनेकांत कहते हैं। पुनः 'पुरुषार्थसिद्धिउपाय' शब्द की परिभाषा किया है–

विपरीताभिनिवेशं निरस्य सम्यग्व्यवस्य निज तत्त्वम्।
यत्तस्मादविचलनं स एव पुरुषार्थसिद्ध्युपायोऽयम्।

कवियित्री ने इसके हिन्दी पद्यानुवाद में लिखा है–

जो अन्य वस्तु निजमान यही, विपरीत मान्यता दूर करें।
निज के द्वारा ही निज स्वभाव की, यथारूप पहिचान करें।।
अरु निज स्वरूप से कभी न च्युत, हो आत्मगुणों में लीन रहें।
वह ही सच्चा रत्नत्रय जो, पुरुषार्थ सिद्धि का मार्ग कहें।।

'पुरुष' यानि आत्मा के लिए मोक्षसिद्धि के उपाय का जिसमें विवरण है, उसका नाम है 'पुरुषार्थसिद्धिउपाय'। पुनः इस अधिकार में व्यवहार साधक, निश्चयनय साध्य, व्यवहारनय कारण, निश्चयनय कार्य इत्यादिरूप से विवरण किया है। पुनः श्रावकधर्म की मुख्यता लेकर कहा है कि जिस प्रकार मुनि पूर्णरूपेण रत्नत्रय गुण को धारण करते हैं उसी प्रकार श्रावक को भी यथाशक्तिरूप से रत्नत्रय गुण धारण करना चाहिए। सम्यग्दर्शन का लक्षण बताते हुए सम्यग्दर्शन के आठ अंगों का सुन्दर वर्णन किया है। इस अधिकार में विशेष बात एक यह बतलाई कि जो वक्ता प्रथम मुनिधर्म का उपदेश न देकर श्रावक धर्म का उपदेश देता है, वह वक्ता दण्ड का पात्र होता है।

द्वितीय अधिकार में सम्यग्ज्ञान का वर्णन करते हुए कहा है कि भव्यजीवों को

सम्यग्दर्शनपूर्वक सम्यग्ज्ञान नयप्रमाण सहित नित्य ही आराधन करने योग्य है। केवली भगवान को सम्यग्दर्शन ज्ञान एक साथ ही उत्पन्न होते हैं, पर छद्मस्थ जीवों को सम्यग्दर्शन ज्ञान क्रम से उत्पन्न होता है। सम्यग्ज्ञान की आराधना कैसे करना चाहिए? उसका उपाय क्या है? आचार्य बताते हैं–

ग्रन्थार्थोभयपूर्णं काले विनयेन सोपधानं च।
बहुमानेन समन्वितमनिघ्नवं ज्ञानमाराध्यम्।।

पद्यानुवाद –

जो शब्द अर्थ अरु उभयरूप से, योग्यकाल में शुद्ध हुआ।
उपधान विनय कर देव शास्त्र, गुरु के प्रति नित बहुमान किया।।
अरु निन्हव दोष रहित विद्या, गुरु के प्रति कभी न कपट किया।
यह आठ हि सम्यग्ज्ञान अंग जो, लहें मुक्ति पद धार लिया।।

शब्दाचार, अर्थाचार, उभयाचार, कालाचार, विनयाचार, उपधानाचार, बहुमानाचार, अनिन्हवाचार ये ज्ञान के 8 अंग बताए हैं, जिन्हें मानव अपने अंदर उतारकर अपने जीवन को सफल करता है।

तृतीय अधिकार में सम्यग्चारित्र का वर्णन करते हुए श्रावक के 5 अणुव्रत 3 गुणव्रत और 4 शिक्षाव्रत का वर्णन किया है। कषायरूप रागादि भाव का होना हिंसा एवं रागादिक भावों का नहीं होना अहिंसा है, इसका विवेचन किया है। विशेष बात हिंसा-अहिंसा के विषय में यह बताई है कि कोई जीव किसी को मारने का भाव बनाता है और वह उसे नहीं मार सका तो भी उसे हिंसा का पाप लग गया और कोई जीव देख–शोध कर कार्य कर रहा है लेकिन अनजाने में उससे हिंसा हो गई तो उसको हिंसा का उतना पाप नहीं लगेगा। आगे इसमें हिंस्य, हिंसक, हिंसा, हिंसा का फल इन्हें तजकर 5 उदुम्बर एवं मद्य, मांस, मधु को सर्वथा त्याग करने के लिए कहा है। हिंसा एवं अहिंसा के फल को आचार्य ने कितने सुन्दर ढंग से लिखा है–

हिंसा फलमपरस्य तु ददात्यहिंसा तु परिणामे।
इतरस्य पुनर्हिंसा दिशत्य हिंसाफलं नान्यत्।।57।।

पद्यानुवाद –

वही अहिंसा अन्य किसी को, यथासमय हिंसा फल दे।
पुनः किसी को वह ही हिंसा, सही अहिंसा का फल दे।।
भावों का नाटक सब ही है, पुण्य-पाप का खेल अरे।
वैद्य डाक्टर आदिक सबको, फल भावों के रूप मिले।।57।।

तृतीय अधिकार में श्रावक के 12 व्रतों का विस्तार से वर्णन करते हुए 169 वें श्लोक में बताया है कि दाता को इह-परलोक की इच्छा रहित, निष्कपट, ईर्ष्यारहित, सहनशीलता, क्षमा, हर्ष भाव, निरभिमानता इन सप्त गुणों सहित होना चाहिए।

चौथे अधिकार में सल्लेखना का वर्णन किया गया है। अच्छी तरह से कषाय एवं शरीर के त्याग करने को सल्लेखना कहते हैं। अथवा क्रम-क्रम से चतुर्विध आहार आदि को त्याग करके अंत समय तक णमोकारमंत्रपूर्वक शरीर व कषाय को कृष करते-करते इनका पूर्ण त्याग कर देना सल्लेखना है इसका दूसरा नाम संन्यासमरण और समाधिमरण है। सल्लेखना आत्मघात नहीं है, आत्मघाती कौन है? इसके लिए लिखा है–

जो नित कषायवश प्राणी, कुंभक शास्त्रादिक धारी।
निज प्राण हरे दुखकारी, हो आत्मघात सच भारी।।

सल्लेखना का वर्णन करके श्रावक के बारहव्रतों के अतिचारों का वर्णन किया है। अंत में अतिचारत्यागरूप का महान फल लिखा है–

जो इस प्रकार से पूर्व कहे, सब ही अतिचारों को नित ही।
अरु अतिक्रम व्यतिक्रम आदिक नित, अन्य कहें सब दूषण भी।।
झट विमर्श कर इन सबको तज, शुभ समकित व्रत शीलों द्वारा।
जब शीघ्रहि पुरुष प्रयोजन की, भवि निश्चित सिद्धि लहें न्यारा।।196।।

अंतिम पंचम अधिकार में सकल चारित्र का वर्णन करते हुए तप को भी मोक्ष का अंग कहा है। पूर्णरूप से तो तप आदि मुनिगण करते हैं पर श्रावक भी यथाशक्ति तप कर सकते हैं क्योंकि 'इच्छानिरोधस्तपः' इच्छाओं को कोई भी रोक सकता है। 6 बहिरंग तप– अनशन, अवमौदर्य, विविक्तशय्यासन, रसत्याग, कायक्लेश, वृत्तपरिसंख्या है और 6 अंतरंग तप–विनय वैय्यावृत्य, प्रायश्चित, उत्सर्ग, स्वाध्याय और ध्यान हैं पुनः समता, स्तवन, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग ये मुनियों के षट् आवश्यक, तीन गुप्ति, दशधर्म, बारह भावना, बाईस परीषह का क्रम-क्रम से स्पष्ट विवेचन किया है। आगे सकल रत्नत्रय व विकलरत्नत्रय दोनों को साक्षात् व परम्परा की अपेक्षा मुक्ति का कारण बताया है। रत्नत्रय में पुण्य का आश्रव होता है क्योंकि देव, शास्त्र, गुरु की सेवा, भक्ति, दान, शील उपवासादि ये सभी शुभोपयोगरूप हैं।

225 वें श्लोक में आचार्य ने अनेकांत धर्म को कितना सुन्दर दृष्टांत देकर सिद्ध किया है–

एकेनाकर्षन्ती श्लथपन्ती वस्तु तत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनी नीतिर्मन्थाननेत्रमिव गोपी।।225।।

पद्यानुवाद –

ज्यों दही बिलोने ग्वालिन नित, ही सदा मथानी रस्सी को।
नित एक हाथ से खींच दूज, ढीले कर मक्खन सिद्ध करो।।
त्यों जैन नीति वस्तू स्वरूप को, इक समकित से खींच रही।
अरु द्वितिय ज्ञान कर शिथिल चरित, कर सिद्ध सदा जयवंत सही।।225।।

अंत में कहा है कि यह जैनियों की न्यायपद्धति, रत्नत्रयस्वरूप अनेकांत नीति हमेशा जयवंत रहे।

पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने जो इस ग्रंथ का सरल भाषा में पद्यानुवाद किया है वह पाठकों के लिए कार्यकारी सिद्ध होगा। इसमें कई प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। आचार्य के मौलिक विचारों को पद्यरूप में अच्छी तरह से लिखा है। आचार्यश्री अमृतचन्द्रसूरि ने प्रभावना अंग के लक्षण में लिखा है–

आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रयतेजसा सततमेव।
दानतपो जिनपूजा विद्यातिशयैश्च जिनधर्मः।।

इस ग्रंथ के स्वाध्याय का सार यही है कि हमें अपनी आत्मा की सिद्धि के लिए, मोक्ष की प्राप्ति के लिए आचार्यों के द्वारा बताई गई बातों को ध्यान में रखते हुए आत्मा को परमात्मा बनाने का पुरुषार्थ करना चाहिए।

अभय गीतांजलि

साहित्य शृँखला को क्रम-क्रम से आगे बढ़ाते हुए पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने सन् 1986 में अभय गीतांजलि का प्रथम पुष्प लिखकर प्रदान किया। इसमें सर्वप्रथम मंगलाचरण करते हुए लिखा है–

चौबीसों जिनदेव को, नमन करूँ शत बार।
सरस्वती वाणी अमल, वंदूँ बारम्बार।।1।।
सब गुरुवर को नमन कर, शांतिसिंधु शिरनाय।
धर्म सिंधु गुरु ज्ञानमती को, नमूँ वचन मन काय।।

इसमें पूज्य माताजी ने पंचपरमेष्ठी की मंगल स्तुति, गुरु की शिक्षा, सरस्वती वंदना, स्याद्वाद वंदना, दहेज दानव का चमत्कार, वृद्धा का वैराग्य, बड़ा उड़द की कहानी, नेमि राजुल का वार्तालाप, रक्षाबंधन, अक्षय तृतीया, अलौकिक स्तुति, बगुला भक्तिआदि अनेक विषयों पर बहुत अच्छी तरह से सरल भाषा में भजन, काव्य के माध्यम से प्रस्तुति की है। बड़ा उड़द की कहानी का एक नमूना देखिए–

दृष्टांत रूप में उड़द-बड़ा का, गुप्त रहस्य बताती हूँ।
सब सुनकर के हर्षित होंगे, इस बड़ा की याद दिलाती हूँ।।
तप की घन चोंट सहन करके, मानव महान बन जाते हैं।
संसार बड़ा कैसे बनता, भगवान स्वयं बतलाते हैं।।

इसके साथ ही विधान की एवं भगवन्तों की मंगल आरती, गुरु भक्ति, मृत्यु महोत्सव, करनी का फल और सुभाषित नीति को लिखकर भक्तों को भक्ति करने का सुअवसर प्रदान किया है।

श्री भक्तामर काव्य पद्यावली एवं मण्डल विधान

आचार्य श्री मानतुंग स्वामी विरचित 'भक्तामर स्तोत्र' पर पूज्य अभयमती माताजी ने 'सरस काव्य पद्यावली' एवं पूजन मण्डल विधान लिखकर प्रदान किया है। भक्तामर स्तोत्र एक चमत्कारिक स्तोत्र है जिसकी रचना करके आचार्यश्री मानतुंग जी ने अपने ऊपर आए भयंकर उपसर्ग को दूर किया। एक-एक काव्य की रचना करके 48 तालों को तोड़ दिया और भक्तामर स्तोत्र के प्रभाव से स्वतः कैदखाने से मुक्त होकर बाहर आ गए। भगवान अदिनाथ की शासन देवी 'चक्रेश्वरी' माता उनकी बराबर रक्षा करती रहीं। राजा भोज के समय की घटना है। राजा भोज ने ही विद्वान कवि कालिदास के कहने से आचार्य प्रवर मानतुंग को 48 तालों के अंदर बंद करवा दिया था लेकिन आचार्यश्री का चमत्कार देखकर राज भोज ने उनसे क्षमा मांगी और जैनधर्म को स्वीकार किया। आचार्य मानतुंग का चमत्कार देखकर सभी को उनके प्रति और स्तोत्र के प्रति अगाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो गई, तभी से अनेकों भक्तामर व्रत एवं नियम आदि लेकर अपने जीवन को सफल करने की परम्परा है।

प्रस्तुत पुस्तक में पूज्य माताजी ने भक्तामर स्तोत्र का पद्यानुवाद करके मंत्र, ऋद्धिमंत्र एवं भावार्थ लिखा है और फिर भक्तामर के 48 काव्यों पर 48 कथाएं हैं जिसे पढ़कर भक्तामर स्तोत्र के एक-एक पद को पढ़ने में अपार श्रद्धा एवं भक्ति उत्पन्न होती है। 48 कथाओं को लिखने के बाद भक्तामर के 1-1 काव्य पर 1-1 चित्र दिया है। ऐसे 48 चित्र भी इस पुस्तक में दिये हैं। पुनः भक्तामर की महिमा पर भजन, मंगल गीत, मंगल आरती लिखीहै।

कर लो भक्तामर का पाठ, आत्म ज्योति जगे घट-घट में,
जो शुद्ध विधी से कराया, मनवांछित फल को पाया।
कर लो विधान का ठाठ, मानो कर्म झड़े सब डर से।।.....

इस प्रकार देखा जाए तो पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने अपने संयमी जीवन में काफी परिश्रम करके, कमजोर शरीर से भी साहित्यिक कार्य किया है। ग्रंथ रचना, काव्य रचना में अपने उपयोग को लगाकर समाज को अनेक कृतियाँ प्रदान की हैं।

मृत्युंजय विधान

संसार में सभी प्राणी सुख चाहते हैं और दुःख से डरते हैं फिर भी अपने-अपने कर्मों के अनुसार प्रत्येक प्राणी को सुख-दुःख भोगना पड़ता है। जब विपत्ति आती है, संकट आते हैं तो सभी प्रभु का स्मरण करते हैं, किन्तु सुख के दिनों में सब भूलकर विषय-भोगों में ही निमग्न रहते हैं। यदि हम अपने जीवन में प्रत्येक क्षण भगवान का स्मरण करते हुए बितायेंतो शायद दुःख का सामना न करना पड़े।

मोह के वशीभूत होकर हम इस चतुर्गति के दुःखों को भोगते हुए संसार में परिभ्रमण करते हैं। हमारे प्रिय परिजनों, मित्रों पर कोई असाध्य बीमारी या महाविपत्ति आती है तो हम उसके निवारण हेतु अनेक प्रयत्न करते हैं। शास्त्रों में भी अनेक उदाहरण पढ़ने में आते हैं

कि प्रभु के नामस्मरण से, पूजा-अनुष्ठान के द्वारा अकाल मृत्यु और संकट भी टलजाते हैं।

वर्तमान में भी कई प्राणी ऐसे संकटों के निवारण हेतु गुरुओं के समीप जाकर उपाय पूछते हैं, तब करुणावश वे आगमोक्त विधि के अनुसार यंत्र-मंत्र, पूजा-अनुष्ठान करने के लिए प्रेरणा देते हैं जिन्हें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक करके अनेकजन इन कष्टों से छुटकारा प्राप्त करते हैं। उन्हीं में से एक "मृत्युंजय विधान" भी है जिसमें अवर्णादि बीजाक्षर की पूजा करके मंत्रों के माध्यम से अकाल मृत्यु को टालने हेतु प्रयत्न करते हैं। इसमें अवर्ण से लेकर कबीजपर्यंत वर्णों की स्थापना कर अर्घ्य चढ़ाया जाता है। प्रत्येक वर्ण में कई प्रकार की शक्ति समाहित हैं जो कष्ट निवारण में प्रबल निमित्त हैं। इस विधान की मृत्युंजय जाप करने से भी इच्छित फल की प्राप्ति होती है। जयमाला में चौबीस तीर्थंकर भगवान की स्तुति करते हुए कामना की है कि

प्रभु आपके प्रभाव से फिर जन्म ना धरूँ,
सम्यक्त्व के माहात्म्य से जीवन सफल करूँ।
नृप इन्द्र आदि की मुझे किंचित् भी चाह ना,
आतम से परमातम बनूँ बस एक कामना।।

यह 'मृत्युंजय विधान' सभी प्रकार के संकटों को दूर कर इच्छित सिद्धि करने वाला है।

श्रुतस्कंध विधान

तीर्थंकर भगवान के मुख से निकली हुई दिव्यध्वनि जो 18 महाभाषा, 700 लघु भाषा में खिरती है, जिसे निबद्ध कर द्वादशांग की रचना की गई, वह द्वादशांग 11 अंगों व 14 पूर्वों के रूप में है, जिनका आज अंशमात्र षट्खण्डागम आदि ग्रंथों में है। उस अथाह ज्ञान गंगा में अवगाहन करने वाले अपने को धन्य मानते हैं।

श्रुतस्कंध विधान में अभयमती माताजी ने विभिन्न छंदों का प्रयोग करते हुए 11 अंग, 5 परिकर्म, दृष्टिवाद, सूत्र, चौदह पूर्व, पाँच चूलिका, अंगबाह्य, चार अनुयोग के अर्घ्य बनाये हैं।

इस विधान में कुल 56 अर्घ्य और 7 पूर्णार्घ्य हैं।

ये संपूर्ण द्वादशांग मिलकर एक श्रुतस्कंध वृक्ष का रूप धारण करते हैं जो कल्पवृक्ष के समान मनोवांछित फल को प्रदान करने वाला है। ये मोक्षरूपी फल को प्रदान करने वाला है। पूज्य माताजी ने लिखा है–

द्वादशांग ही भविक जनों को, सच्चा सुख दर्शाता है।
द्वादशांग आतम से परमातम बनना सिखलाता है।।
द्वादशांग लहं रत्न त्रिवेणी, पूर्ण ज्ञान चमकाता है।
नमन करूँ मैं द्वादशांग, जो मोक्षपुरी पहुँचाता है।।

द्वादशांग को जिनवाणी माता, सरस्वती माता के रूप में नमन करते हैं जो पुत्रवत् हमारा उपकार करती हैं। इस श्रुतस्कंध विधान के माध्यम से अपने अज्ञान अंधकार को दूर कर अपने जीवन में ज्ञानज्योति को प्रज्ज्वलित करना चाहिए।

एक वृक्ष सात डालियाँ

''एक वृक्ष सात डालियाँ'' पुस्तक पूज्य आर्यिकारत्न श्री अभयमती माताजी की मौलिक कृति है। इसमें रत्नत्रयरूपी एक कल्पवृक्ष बनाकर उसमें सात डालियाँ निकाली हैं जो कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत एवं परिग्रहपरिमाणव्रत रूप बताई है। एक दीनानाथ नामक लकड़हारे के माध्यम से विषय वस्तु को सुन्दर अलंकार रूप में प्रस्तुत किया है।

दीनानाथ लकड़हारा प्रतिदिन जंगल में लकड़ी काटता और अपने परिवार का पालन पोषण करता था कि एक दिन उसे ऐसा वृक्ष दिखा जिसमें अजीब सी सुगंध आ रही थी उसने सोचा कि उस वृक्ष की लकड़ियाँ काटकर बेचेगा तो उसे ज्यादा लाभ होगा, वे चंदन से अधिक कीमत पर बिकेंगी। पर उस वृक्ष को काटने के लिए उसने जैसे ही कुल्हाड़ी उठाई, उस वृक्ष ने उसे रोक दिया, कहा–ठहरो! मुझे काटने के पहले मेरी एक बात का जवाब दो। फिर वृक्ष ने उसे एक कहानी सुनाई और कहा, तुम इस कहानी के नायक की तरह योग्य हो तो मुझ पर चलाओ कुल्हाड़ी अन्यथा चोट तुम्हें उल्टी लगेगी। एक के बाद एक उस वृक्ष की सात डालियों ने भी दीननाथ को एक-एक कहानी सुनाई और अंत तक दीनानाथ उस वृक्ष को न काट सका।

इस पुस्तक में पूज्य माताजी ने रत्नत्रयरूपी कल्पवृक्ष और दीनानाथ लकड़हारे के माध्यम से अनेक सुन्दर पौराणिक कथाओं को प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक विषयों को जैसे-मनुष्य कौन है? जैन कौन है? सच्ची भक्ति, बुद्धि कैकला, करनी का फल, सच्चाई का फल, सात पीढ़ी की कथा, णमोकार मंत्र का महात्म्य, व्यव्हार एवं निश्चय, भाग्य एवं पुरुषार्थ आदि विभिन्न विषयों को उदाहरण, सूक्ति एवं कथाओंके माध्यम से सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। जनसामान्य के लिए यह पुस्तक ज्ञानवर्धक एवंजीवनोपयोगी है। पूज्य माताजी ने अपनी प्रतिभा, बुद्धि का उपयोग करते हुए लोगोंकी रुचि के अनुसार यह पुस्तक लिखकर प्रदान की है इसे पढ़कर अपने जीवन में रत्नत्रय एवं पंचाणुव्रत को धारणकर मानव जीवन को सार्थक करें, यही मंगल कामना है।

सोलहकारण भावना

सोलहकारण भावना पुस्तक भी परमपूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी की एक मौलिक कृति है। तीर्थंकर प्रकृति का बंध कराने में कारणभूत यह सोलहकारण भावना हैं, प्रारंभ में पूज्य माताजी ने मंगलाचरण के रूप में लिखा है-

श्री देव शास्त्र गुरु के चरणों में, झुक झुक शीश प्रणाम करूँ।
सोलह कारण शुद्ध भावना भाकर निज आतम ध्यान धरूँ।।
दर्शन विशुद्ध आदिक भावों को, जो भविजन नित ध्याते हैं।
कहं 'अभयमती' वे स्वर्गिक सुख, लहं तीर्थंकर पद पाते हैं।।

दर्शनविशुद्धि, विनय सम्पन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचार, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, साधुसमाधि, वैय्यावृत्यकरण, अर्हंतभक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यक अपरिहाणि, मार्गप्रभावना, प्रवचनवत्सलत्व इन सोलह कारण भावनाओं को भाने से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है। इसमें विशेष बात यह है कि दर्शनविशुद्धि भावना के बिना तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं हो सकता, भले ही आगे की 15 भावनाएं हों। दर्शनविशुद्धि भावना के होने पर अन्य भावनाएं स्वयं हो जायेंगी। पूज्य माताजी ने उदाहरण देकर समझाया है-

ज्यों मेघ पटल की आड़ से, सूर्य ज्योति छिप जाए।
त्यों मिथ्यात्व के उदय से, निज दर्शन नहिं भाय।।

अर्थात् जब तक मिथ्यात्व का उदय है, तब तक किसी को तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं हो सकता, न आत्म दर्शन हो सकता है।

दर्शन विशुद्धि होते ही आत्मा स्फटिक मणि के समान चमकने लगती है अतः इस भावना के साथ अन्य भावना कम हो तो भी तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो जाता है। पूज्य माताजी ने सभी भावनाओं का विस्तार से विवेचन करके इसे नीति, दोहे एवं कथाओं के माध्यम से रोचक बनाया है अतः भव्यजन इस पुस्तक को पढ़कर अपने मनुष्य पर्याय को सार्थक करें और एक दिन परमात्म पद को प्राप्त करें, यही मंगल भावना है।

दशधर्म

दशधर्म पुस्तक भी परमपूज्य चारित्रश्रमणी आर्यिका श्री अभयमती माताजी की एक मौलिक कृति है। दशलक्षण महापर्व में दस दिन तक जिनधर्मों की उपासना की जाती है उनका वर्णन इस कृति में किया गया है। उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य एवं ब्रह्मचर्य ये दशधर्म हैं। पूज्य माताजी ने इस पुस्तक में इन दश धर्मों पर अत्यन्त सरल एवं रोचक भाषा में विवेचन किया है। प्रत्येक धर्म पर दृष्टांत, भजन और कथाएँ लिखी हैं। विद्वज्जन एवं श्रावकों के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। दशलक्षण धर्म की स्तुति करते हुए पूज्य माताजी ने लिखा है–

उत्तम दशलक्षण धर्म सर्व संकट हरण पावन प्यारा।
शत शत बार नमन है हमारा।।

क्षमाधर्म से शुभारंभ एवं क्षमा से ही इस पर्व का समापन होता है। अतः पूज्य माताजी ने अंत में बहुत सुन्दर लिखा है–

लाख शास्त्र का सार, राग द्वेष अरु मोह तज।
क्षमा भाव को धार, सम्यग्दर्शन निज गहो।।

भगवान महावीर का अमर संदेश

जैनधर्म के अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर हुए जिन्होंने अनेक भव्य जीवों के लिए मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। जन-जन में भगवान महावीर का अमर संदेश प्रचलित है ''जिओ और जीने दो''। उन्होंने प्राणी मात्र पर दया का भाव रखने का उपदेश दिया। उनके 5 प्रमुख सिद्धान्त–अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह प्रत्येक मानव के लिए जीवन में कल्याणकारी हैं। पूज्य अभयमती माताजी ने इस पुस्तक में भगवान महावीर के द्वारा प्रतिपादित अनेक सिद्धान्तों को विषयगत करके विवेचन किया है। सर्वप्रथम उनका संक्षेप में जीवनवृत्त प्रस्तुत किया है। किस प्रकार उनके पाँच नाम हुए। उन्होंने मोक्षमार्ग के नेता बनकर मुक्ति का मार्ग क्या है, यह प्रतिपादित किया। अहिंसा, शाकाहार के प्रवर्तक भगवान महावीर जन-जन के लिए आराध्य हैं। केवल जैनधर्म ही नहीं, प्रत्येक धर्म के अनुयायी भगवान महावीर को अहिंसा के अवतारी हैं, ऐसा मानते हैं। अपरिग्रहवाद का सिद्धान्त आज वर्तमान में बहुत दुर्लभता से पालन करने वाले मिलते हैं क्योंकि जैन साधु ही पूर्णरूप से इसका पालन करते हैं। चक्रवर्ती की संपत्ति भी एक दिन छोड़कर जाना पड़ता है, तब आज के अर्थ की तो बात ही क्या है। जैनधर्म को अनेकांतवादी माना है क्योंकि एक वस्तु में अनेक धर्म होते हैं। जो परस्पर विरोधी होकर भी एकवस्तु में अविरोध रूप से रहते हैं। स्याद्वाद, अनेकांत जैनधर्म का प्राण है। व्यवहारनय, निश्चयनय, निमित्त-उपादान, शुद्धोपयोग, क्या है, कब होता है, किस अवस्था में होता है आदि अनेक विषयों के माध्यम से पूज्य आर्यिका अभयमती माताजी ने भगवान महावीर द्वारा उपदिष्ट वाणी का प्रतिपादन किया है। इस पुस्तक के माध्यम से अनेक विषयों को पढ़कर ज्ञानवर्धन किया जा सकता है। ये पुस्तक अल्प समय वालों के लिए अतीव उपयोगी व ज्ञानार्जन का साधन है। भगवान महावीर की वाणी हम सबके लिए मंगलदायी हो, इसी भावना के साथ शत-शत नमन।

पावन तीर्थ हस्तिनापुर का प्राचीन इतिहास

परमपूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने अनेक तीर्थों की वंदना करके अपने जीवन को धन्य किया है। हस्तिनापुर नगरी भगवान शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ तीन तीर्थंकरों की जन्मभूमि है। इससे पूर्व युग की आदि में सर्वप्रथम भगवान ऋषभदेव को राजा श्रेयांस ने नवधाभक्तिपूर्वक पड़गाहन कर इक्षुरस का आहार दिया था। तभी से अक्षयतृतीया पर्व मनाया जाता है। ऐसी अनेक ऐतिहासिक घटनाएँ इस पावन तीर्थ से सम्बद्ध हैं। रक्षाबंधन पर्व, महाभारत का युद्ध, रोहिणी व्रत की कथा, मनोवती की दर्शन कथा आदि अनेक पौराणिक कथानक इस धरती से ही प्रसिद्ध हुए हैं। प्राचीन समय से यहाँ भगवान शांतिनाथ का मंदिर निर्मित था किन्तु जब पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती

माताजी की प्रेरणा से यहाँ जम्बूद्वीप की रचना का निर्माण हुआ, तब से वहाँ की काया ही पलट गई और विश्व के कोने-कोने में हस्तिनापुर का नाम प्रचलित हो गया। पूज्य अभयमती माताजी ने अपनी लेखनी से इस पुस्तक के माध्यम से यहाँ का प्राचीन इतिहास लिखा है। साथ ही हस्तिनापुर तीर्थ की पूजा, यहाँ की घटनाओं से संबंधित रक्षाबंधन पूजा, विष्णुकुमार महामुनि पूजा, पंचमेरु पूजा, नंदीश्वर पूजा, समवसरण पूजा आदि को लिखकर तीर्थ के प्रति अपने भक्ति सुमन अर्पित किये हैं। भगवान शांतिनाथ चालीसा, भजन, आरती भी प्रकाशित हैं। इस पुस्तक के द्वारा तीर्थ की सभी प्राचीन घटनाओं से परिचित हों यही उद्देश्य लेकर पूज्य अभयमती माताजी ने यह पुस्तक पाठकों तक पहुँचाई है। भगवान शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ तीर्थंकरत्रय भगवान हमें शांति प्रदान करें, यही मंगल भावना है।

अतिशय क्षेत्र बिहारी का चमत्कारिक इतिहास

परमपूज्य चारित्रश्रमणी आर्यिका श्री अभयमती माताजी को अतिशय क्षेत्रों से विशेष लगाव रहा है। भगवान पार्श्वनाथ के अतिशय से प्रसिद्ध कई क्षेत्रों पर रहकर इन्होंने वहाँ के विकास में अपनी प्रेरणा प्रदान की है तथा उनके प्राचीन इतिहास एवं अतिशय से परिचित कराने हेतु पुस्तक का लेखन किया है। उ.प्र. जिला मुजफ्फरनगर अतिशय क्षेत्र बिहारी भी उनमें से एक है। यहाँ भी भगवान पार्श्वनाथ की अतिशय चमत्कारी प्रतिमा विराजमान है। जो चौबीस तीर्थंकरों से समन्वित है। यह अति प्राचीन चतुर्थकाल की प्रतिमा मानी जाती है। यहाँ आने वाले लोगों के सभी रोग-शोक दूर हो जाते हैं और ऐसी मान्यता है कि यहाँ कि सरोवर में स्नान करने से चर्म रोग मिट जाते हैं। आश्विन वदी एकम को यहाँ प्रतिवर्ष वार्षिक मेला लगता है। पूज्य अभयमती माताजी ने इस क्षेत्र पर रहकर भगवान पार्श्वनाथ का ध्यान करके मंत्र जाप कर साधना की है। इस क्षेत्र की उन्नति से सभी को प्रसन्नता होती है। यह सब गुरुओं की देन है। भगवान पार्श्वनाथ की आराधना से मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है। इस पुस्तक में पूज्य माताजी ने यहाँ का इतिहास, स्वरचित क्षेत्र की पूजा, पार्श्वनाथ भगवान का चालीसा, णमोकार मंत्र पूजा, गणधरवलय पूजा और अन्य पठनीय पाठों को दिया है। इस पुस्तक के माध्यम से पाठक बिहारी क्षेत्र की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, यह एक उपयोगी पुस्तक है। भगवान पार्श्वनाथ हम सबके लिए कल्याणकारी हों, यही भावना है।

इस प्रकार परमपूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने जहाँ धर्मचक्र महामण्डल विधान, समयसार पद्यावली, रयणसार पद्यावली आदि अनेक बड़े ग्रंथों की रचना की है, वहीं उन्होंने अपनी लेखनी से जन-जन के लिए उपयोगी लघुकाय पुस्तकों की भी रचना करके सराहनीय कार्य किया है।

सप्तव्यसन

इसी श्रृँखला में **''सप्तव्यसन''** नामक पुस्तक में सातों व्यसनों के त्याग की प्रबल प्रेरणा प्रदान की है। प्रत्येक व्यसन के सेवन से हानि को दर्शाने वाले प्रेरक उदाहरण भी दिए हैं जिसको पढ़कर प्रत्येक व्यक्ति इन व्यसनों का स्वयं त्याग करके दूसरों को भी त्याग करने की प्रेरणा प्रदान कर सकता है। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक में सुन्दर गीत, भजन, आरती आदि को भी संकलित किया है।

बाल विज्ञान ज्योति

यह **बाल विज्ञान ज्योति नामक लघु** पुस्तक बच्चों के लिए बहुत कार्यकारी है, इसमें पूज्य माताजी ने प्रश्न-उत्तर के माध्यम से अनेक जटिल विषयों को सरलता से प्रस्तुत किया है। जिन विषयों को लोग अच्छी तरह से नहीं भी जानते हैं, उन्हें इन प्रश्न-उत्तरों के माध्यम से समझकर सभी लोग अच्छी प्रकार से अपने ज्ञान की वृद्धि कर सकते हैं।

उनमें से विविध विषयों के कुछ प्रश्न-उत्तरों को आपके ज्ञानवर्धन हेतु यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है–

णमोकार महामंत्र

प्रश्न 1 –णमोकार मंत्र एवं उसका अर्थ बताओ?

उत्तर –मंत्र एवं अर्थ–

णमो अरिहंताणं–अरिहंतों को नमस्कार हो।
णमो सिद्धाणं–सिद्धों को नमस्कार हो।
णमो आइरियाणं–आचार्यों को नमस्कार हो।
णमो उवज्झायाणं–उपाध्यायों को नमस्कार हो।
णमो लोए सव्वसाहूणं–लोक में सर्व साधुओं को नमस्कार हो।

प्रश्न 2 –णमोकार मंत्र में किसको नमस्कार किया है?

उत्तर –णमोकार मंत्र में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु ऐसे इन पंच परमेष्ठी को नमस्कार किया है।

प्रश्न 3 –सबसे बड़ा मंत्र कौन सा है?

उत्तर –सबसे बड़ा णमोकार मंत्र है क्योंकि ये पंच परमेष्ठी वाचक है।

प्रश्न 4 –णमोकार मंत्र के कितने नाम हैं?

उत्तर –णमोकार मंत्र, महामंत्र, अपराजित मंत्रादि अनेकों नाम हैं।

प्रश्न 5 –णमोकार मंत्र को किसने बनाया?

उत्तर –किसी ने नहीं बनाया। ये मूल मंत्र स्वयंसिद्ध अनादिनिधन है।

प्रश्न 6 –णमोकार मंत्र से कितने मंत्रों की उत्पत्ति हुई?
उत्तर –णमोकार मंत्र से 84 लाख मंत्रों की उत्पत्ति हुई।
प्रश्न 7 –इस मंत्र में प्रथम अरिहंतों को क्यों नमस्कार किया?
उत्तर –मोक्ष मार्ग का निर्देशन सर्वप्रथम अरिहंतों ने ही किया है अतः परोपकार की दृष्टि से प्रथम अरिहंतों को नमस्कार किया है।
प्रश्न 8 –इस मंत्र में कितने पद, अक्षर व मात्राएं हैं?
उत्तर –इस मंत्र में 5 पद, 35 अक्षर व 58 मात्राएं हैं।
प्रश्न 9 –यह मंत्र कौन से छंद में बना है?
उत्तर –यह मंत्र आर्याछंद में बना है।
प्रश्न 10 –णमोकार मंत्र का हम क्यों ध्यान करते हैं?
उत्तर –सभी विघ्न बाधाओं को दूर करने के लिए हम णमोकार मंत्र का ध्यान करते हैं।
प्रश्न 11 –इस मंत्र का क्या फल है?
उत्तर –इस मंत्र से पाप का क्षय एवं पुण्य का बंध होकर परम्परा से मुक्ति मिलती है।
प्रश्न 12 –मंत्र जपने की विधि क्या है?
उत्तर –पूरब या उत्तर दिशा में या भगवान के सामने बैठकर मंत्र जपें। मंत्र जपते समय मन- वचन-काय शुद्ध रखें।
प्रश्न 13 –इस मंत्र के अपमान से क्या फल मिलता है?
उत्तर –नरक निगोद का सामना करना पड़ता है।
प्रश्न 14 –इस मंत्र का क्या माहात्म्य है?
उत्तर –ऐसो पंच णमोयारो सव्वपावप्पणासणो, मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं।
अर्थ–यह पंच णमोकार मंत्र सभी पापों का नाश करने वाला है और सभी मंगलों में पहला मंगल है।

हमारे मंगल

प्रश्न 1 –मंगल शब्द का क्या अर्थ है?
उत्तर –जो ''मं'' यानी पाप मल धोवे अथवा ''मंग'' यानी पुण्य को प्राप्त करावे, उसका नाम मंगल है।
प्रश्न 2 –मंगल कितने व कौन-कौन से हैं?
उत्तर

–मंगल	**–अर्थ**
चत्तारि मंगलं	–चार मंगल हैं।
अरिहंत मंगलं	–अरिहंत मंगल हैं।
सिद्ध मंगलं	–सिद्ध मंगल हैं।
साहू मंगलं	–साधु मंगल हैं।
केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं	–केवली प्रणीत धर्म मंगल है।

प्रश्न 3 –उत्तम शब्द का क्या अर्थ है?
उत्तर –जो सबसे श्रेष्ठ हो, उसका नाम उत्तम है।
प्रश्न 4 –उत्तम कितने एवं कौन-कौन से हैं?
उत्तर –चत्तारि लोगुत्तमा –लोक में चार उत्तम हैं।
अरिहंत लोगुत्तमा –अरिहंत भगवान लोक में उत्तम हैं।
सिद्ध लोगुत्तमा –सिद्ध भगवान लोक में उत्तम हैं।
साहू लोगुत्तमा –साधु लोक में उत्तम हैं।
केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा –केवली प्रणीत धर्मलोक में उत्तम है।
प्रश्न 5 –शरण का क्या अर्थ है?
उत्तर –जिसके द्वारा जीवों की रक्षा हो उसका नाम है शरण।
प्रश्न 6 –शरण कितने व कौन-कौन से हैं?
उत्तर –चत्तारि सरणं पव्वज्जामि –शरण चार हैं, मैं इनकी शरण लेता हूँ।
अरिहंत सरणं पव्वज्जामि –मैं अरिहंत की शरण लेता हूँ।
सिद्ध सरणं पव्वज्जामि –मैं सिद्ध की शरण लेता हूँ।
साहू सरणं पव्वज्जामि –मैं साधु की शरण लेता हूँ।
केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि–मैं केवलि प्रणीत धर्म की शरण लेता हूँ।

चौबीस तीर्थंकर

प्रश्न 1 –तीर्थंकर किसे कहते हैं?
उत्तर –जो धर्म तीर्थ की प्रवृत्ति करते हैं एवं गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान-मोक्ष ये पंच कल्याणक से शोभित हैं उन्हें तीर्थंकर कहते हैं।
प्रश्न 2 –तीर्थंकर कितने होते हैं?
उत्तर –तीर्थंकर चौबीस होते हैं, न कम होते हैं न अधिक।
प्रश्न 3 –तीर्थंकरों के चिन्ह क्यों होते हैं?
उत्तर –प्रत्येक तीर्थंकर की पहिचान के लिए चिन्ह होते हैं।
प्रश्न 4 –चिन्ह कौन रखता है?
उत्तर –तीर्थंकर के जन्माभिषेक के समय दाहिने पैर के अंगूठे में जो चिन्ह होता है वही चिन्ह तीर्थंकरों के नाम के साथ इंद्र रखता है।
प्रश्न 5 –चिन्ह रहित कौन सी प्रतिमाएं हैं?
उत्तर –चिन्ह रहित अरिहंत-सिद्ध की प्रतिमाएँ हैं।
प्रश्न 6 –तीर्थंकर केवली एवं अरिहंत केवली में क्या अंतर है?
उत्तर –तीर्थंकर 24 एवं अरिहंत अनंत हैं। तीर्थंकर के चिन्ह, पंचकल्याणक और

समोशरण की रचना होती है अरिहंतों के मात्र गंधकुटी होती है। सभी तीर्थंकर अरिहंत होते हैं पर सभी अरिहंत तीर्थंकर नहीं होते।

प्रश्न 7 –एक से अधिक नाम के कौन-कौन से तीर्थंकर हैं?

उत्तर –आदिनाथ के ऋषभदेव, पुरुदेव, नाभेय ब्रह्मा आदि अनेकों नाम हैं। पुष्पदंत के सुविधनाथ और भगवान महावीर के 5 नाम कहे हैं।

प्रश्न 8 –तीन पद के धारी कितने तीर्थंकर हैं?

उत्तर –कामदेव, चक्रवर्ती, तीर्थंकर ये तीन पद के धारी-शांति, कुंथु, अरहनाथ ये 3 तीर्थंकर हैं।

प्रश्न 9 –बाल ब्रह्मचारी कितने तीर्थंकर हैं?

उत्तर –5 तीर्थंकर हैं-वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर।

प्रश्न 10 –किस क्षेत्र एवं किस काल में कितने तीर्थंकर होते हैं?

उत्तर –भरत-ऐरावत क्षेत्र के तीनों काल में चतुर्थकालसंबंधी 24-24 तीर्थंकर होते हैं।

प्रश्न 11 –वर्तमान में कौन से तीर्थंकर का तीर्थ चल रहा है?

उत्तर –भगवान महावीर का तीर्थ चल रहा है।

प्रश्न 12 –24 तीर्थंकरों के शरीर का वर्ण कौन सा है?

उत्तर –चंद्रप्रभु-पुष्पदंत का वर्ण श्वेत, पद्मप्रभु-वासुपूज्य का वर्ण लाल, सुपार्श्व व पार्श्वनाथ का वर्ण हरा, मुनिसुव्रत-नेमिनाथ का वर्ण काला, तथा शेष 16 तीर्थंकर का वर्ण स्वर्ण जैसा है।

प्रश्न 13 –क्या हम तीर्थंकर बन सकते हैं?

उत्तर –योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मिलने से हम भी तीर्थंकर बन सकते हैं।

प्रश्न 14 –योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कौन से हैं?

उत्तर –द्रव्य–पुरुष लिंग, क्षेत्र–भरत–ऐरावत–विदेह क्षेत्र, काल–चतुर्थ काल, भाव–परमविशुद्ध क्षायिकभाव।

प्रश्न 15 –तीर्थंकर प्रकृति का बंध कौन करता है?

उत्तर –सोलह कारण भावनाओं से युक्त कर्मभूमि मनुष्य पर्याय का भव्य सम्यग्दृष्टी जीव, केवली श्रुतकेवली के पादमूल में तीर्थंकर प्रकृति का बंध करता है।

प्रश्न 16 –16 भावनाओं में किस भावना से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है?

उत्तर –मुख्य दर्शन विशुद्धि भावना भाने से ही तीर्थंकर का बंध होता है शेष भावनाएं तो स्वयं हो जायेंगी।

प्रश्न 17 –तीर्थंकर के वैराग्य के समय कौन से देव आते हैं?

उत्तर –लौकांतिक देव आते हैं जो शुद्ध ब्रह्मचारी एक भवावतारी होते हैं।

प्रश्न 18 –क्या तीर्थंकर के भी गुरु होते हैं?

उत्तर –नहीं, तीर्थंकर स्वयं दीक्षित स्वयंभू होते हैं।

प्रश्न 19 – कौन से तीर्थंकर कहाँ-कहाँ से मोक्ष गये?

उत्तर – आदिनाथ कैलाशपर्वत से, वासुपूज्य चंपापुर से, नेमिनाथ गिरनार जी से, महावीर स्वामी पावापुर से, शेष बीस तीर्थंकर सम्मेदशिखर से मोक्ष गये।

प्रश्न 20 – सबसे अधिक व सबसे कम तप कौन से तीर्थंकर ने किया?

उत्तर – सबसे अधिक तप भगवान आदिनाथ और सबसे कम तप भगवान मल्लिनाथ ने मात्र 6 दिन तप करके केवलज्ञान को प्राप्त किया।

प्रश्न 21 – सबसे अधिक व सबसे कम आयु कौन से तीर्थंकर की है?

उत्तर – सबसे अधिक 84 लाख वर्ष पूर्व की आयु भगवान आदिनाथ की और सबसे कम 72 वर्ष की आयु भगवान महावीर की कही है।

प्रश्न 22 – धर्मतीर्थ की व्युच्छित्ति कौन से तीर्थंकर के समय हुई?

उत्तर – धर्म तीर्थ की व्युच्छित्ति पुष्पदंत से लेकर धर्मनाथ तक 7 तीर्थंकर के समय हुई। शेष 17 तीर्थंकर के समय धर्म की परम्परा अक्षुण्णरूप से चलती रही।

प्रश्न 22 – ढाईद्वीपसंबंधी एक समय में कितने तीर्थंकर हो सकते हैं?

उत्तर – अधिक से अधिक 170, 5 भरत, 5 ऐरावत, 160 विदेह क्षेत्र के और कम से कम 20 तीर्थंकर (5 विदेह क्षेत्र के) एक समय में हो सकते हैं।

प्रश्न 24 – ऐसे कौन से तीर्थंकर हैं जिनके एक ही जगह 5 कल्याणक हुए हैं?

उत्तर – ऐसे भगवान वासुपूज्य हैं जिनके पाँचों कल्याणक चंपापुर में हुए।

प्रश्न 25 – क्या सभी तीर्थंकरों के 5 कल्याणक होते हैं?

उत्तर – भरत-ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों के 5 कल्याणक और विदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों के 5 या 2-3 भी कल्याणक होते हैं।

प्रश्न 26 – चौबीस तीर्थंकरों के नाम व चिन्ह बताइये?

उत्तर –

1. वृषभनाथ जी – बैल	2. अजितनाथ जी – हाथी
3. संभवनाथ जी – घोड़ा	4. अभिनंदननाथ जी – बंदर
5. सुमतिनाथ जी – चकवा	6. पद्मप्रभू जी – कमल
7. सुपार्श्वनाथ जी – साथिया	8. चंद्रप्रभू जी – चन्द्रमा
9. पुष्पदंत जी – मगर	10. शीतलनाथ जी – कल्पवृक्ष
11. श्रेयांसनाथ जी – गेंडा	12. वासुपूज्य जी – भैंसा
13. विमलनाथ जी – शूकर	14. अनंतनाथ जी – सेही
15. धर्मनाथ जी – वज्रदंड	16. शांतिनाथ जी – हिरण
17. कुंथुनाथ जी – बकरा	18. अरहनाथ जी – मछली
19. मल्लिनाथ जी – कलश	20. मुनिसुव्रतनाथ जी – कछुवा
21. नमिनाथ जी – नीलकमल	22. नेमिनाथ जी – शंख
23. पार्श्वनाथ जी – सर्प	24. महावीर स्वामी जी – सिंह

तीर्थंकर की माता के १६ स्वप्न

प्रश्न 1 –तीर्थंकर की माता को कितने स्वप्न दिखे थे?
उत्तर –तीर्थंकर की माता को 16 स्वप्न दिखे थे।
प्रश्न 2 –तीर्थंकरों की माता को 16 स्वप्न ही क्यों दिखे थे?
उत्तर –क्योंकि पूर्व भव में तीर्थंकर सोलहकारण भावना भाकर तीर्थंकर प्रकृति को बांधते हैं इसीलिए माता को 16 स्वप्न दिखे।
प्रश्न 3 –तीर्थंकर की माता को 16 स्वप्न कब व किस समय दिखते हैं?
उत्तर –तीर्थंकर के गर्भ में आने के पूर्व ही माता को रात्रि के पिछले प्रहर में शुभसूचक 16 स्वप्न दिखते हैं।
प्रश्न 4 –स्वप्न के पहले कौन सा चमत्कार होता है?
उत्तर –स्वप्न के छः माह पूर्व ही भगवान के आंगन में रत्नों की वर्षा होती है और इंद्र की आज्ञा से कुबेर नगरी की अनुपम रचना करते हैं।
प्रश्न 5 –स्वप्न देखने के बाद क्या होता है?
उत्तर –स्वप्न देखने के बाद तीर्थंकर माता के गर्भ में आते हैं, तब इंद्र देवगण आकर गर्भकल्याणक मनाते हैं एवं इंद्र की आज्ञा से 56 कुमारी आदि देवियाँ आकर भक्तिपूर्वक माता की सेवा करती हैं।
प्रश्न 6 –ये 56 कुमारियाँ कौन हैं एवं कहाँ से आती हैं?
उत्तर –ये श्री, ह्री आदि 56 कुमारियाँ षट्कुलाचल, रुचकगिरि आदि से आती हैं।
प्रश्न 7 –इन्हें दिक्कुमारियाँ क्यों कहा?
उत्तर –दिशाओं में इनका निवास होने से एवं बाल ब्रह्मचारिणी रहने से इन्हें दिक्कुमारियाँ कहा है।
प्रश्न 8 –तीर्थंकर की माताएँ 16 स्वप्नों का फल किससे पूछती हैं?
उत्तर –तीर्थंकर की माताएँ 16 स्वप्नों का फल अपने पतिदेव से पूछती हैं।

धार्मिक शिक्षा (जीव व अजीव के भेद)

प्रश्न 1 –तुम कौन हो?
उत्तर –मैं चैतन्य ज्योतिस्वरूप जीव हूँ।
प्रश्न 2 –जीव किसे कहते हैं?
उत्तर –जिसमें ज्ञान-दर्शनरूप चेतना शक्ति है, वह जीव है।
प्रश्न 3 –अजीव किसे कहते हैं?
उत्तर –जिसमें चेतना शक्ति नहीं है, वह अजीव है।
प्रश्न 4 –घड़ी, मोटर,रेडियो आदि जीव हैं या अजीव?
उत्तर –ये सब अजीव हैं क्योंकि इनमें चेतना शक्ति नहीं है।

प्रश्न 5 –शरीर जीव है या अजीव?
उत्तर –संसारी प्राणी का शरीर जीव सहित है।
प्रश्न 6 –जीव के कितने भेद हैं?
उत्तर –जीव के 2 भेद हैं– संसारी एवं मुक्त।
प्रश्न 7 –संसारी जीव किसे कहते हैं?
उत्तर –जिनके साथ आठों कर्म लगे हुए हैं, वे संसारी जीव हैं।
प्रश्न 8 –तुम संसारी हो या मुक्त?
उत्तर –हम संसारी जीव हैं।
प्रश्न 9 –मुक्त जीव किसे कहते हैं?
उत्तर –कर्मों से रहित जीव को मुक्त जीव कहते हैं।
प्रश्न 10 –मुक्त जीव के कितने भेद हैं?
उत्तर –दो भेद हैं– जीवन मुक्त (अर्हंत) पूर्ण मुक्त (सिद्ध)
प्रश्न 11 –क्या जीव कभी अजीव हो सकता है?
उत्तर –नहीं, जीव कभी अजीव एवं अजीव कभी जीव नहीं हो सकता।
प्रश्न 12 –क्या हम सभी संसार से मुक्त हो सकते हैं?
उत्तर –हाँ! यदि मोक्षमार्ग में लगें तो मुक्त हो सकते हैं।
प्रश्न 13 –जीव की पहिचान कैसे होती है?
उत्तर –इन्द्रियों के द्वारा जीव की पहिचान होती है।
प्रश्न 14 –अर्हंत भगवान संसारी हैं या मुक्त?
उत्तर –अर्हंत भगवान न संसारी हैं न मुक्त, अपितु जीवनमुक्त हैं।
प्रश्न 15 –जीवन मुक्त और मुक्त जीव में क्या अंतर है?
उत्तर –4 घातिया कर्मों के नाश करने से अर्हंत भगवान जीवनमुक्त एवं 8 कर्मों के नाश करने से सिद्ध भगवान पूर्णमुक्त या मुक्त जीव कहलाते हैं। यही दोनों में अंतर है।
प्रश्न 16 –जीव-अजीव इन दोनों में से अधिक शक्ति किसकी होती है?
उत्तर –जीव में अधिक शक्ति है क्योंकि जीव अर्थात् आत्मा के प्रदेशों के सहयोग से ही नाक- कानादिक द्रव्येन्द्रिय अपना कार्य करने में समर्थ हैं अन्यथा नहीं।

इन्द्रियों का लक्षण

प्रश्न 1 –इंद्रिय किसे कहते हैं?
उत्तर –जिसके द्वारा जीव की पहिचान हो, उसे इन्द्रिय कहते हैं।
प्रश्न 2 –इंद्रियाँ कितनी होती हैं?
उत्तर –इन्द्रियाँ पाँच होती हैं– स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण।

प्रश्न 3 –पाँचों इन्द्रियों का विषय क्या है?
उत्तर –स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द ये पाँचों इन्द्रियों के 5 विषय हैं।
प्रश्न 4 –स्पर्शन इन्द्रिय किसे कहते हैं?
उत्तर –जिसे छूकर ज्ञान हो, वह स्पर्शन इन्द्रिय है। जैसे–हल्का, भारी, रुखा, चिकना, कड़ा, नरम, ठंडा, गर्म।
प्रश्न 5 –रसना इन्द्रिय किसे कहते हैं?
उत्तर –जिससे चखकर पदार्थ का ज्ञान हो, वह रसना इन्द्रिय है। जैसे–खट्टा, मीठा, कड़ुवा, कसायला, चरपरा।
प्रश्न 6 –घ्राण इन्द्रिय किसे कहते हैं?
उत्तर –जिससे सूंघने का ज्ञान हो, वह घ्राण इन्द्रिय है। जैसे–सुगंध, दुर्गंध।
प्रश्न 7 –चक्षु इन्द्रिय किसे कहते हैं?
उत्तर –जिससे देखने का ज्ञान हो, वह चक्षु इन्द्रिय है। जैसे–काला, पीला, नीला, लाल, सफेद।
प्रश्न 8 –कर्ण इन्द्रिय किसे कहते हैं?
उत्तर –जिससे सुनने का ज्ञान हो, वह कर्ण इन्द्रिय है। जैसे–मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि की आवाज-अक्षरात्मक, अनक्षरात्मक।
प्रश्न 9 –हम सबकी मिलकर कितनी इन्द्रियाँ हैं?
उत्तर –हम सभी की अलग-अलग पाँचों इन्द्रियाँ हैं।
प्रश्न 10 –एक-एक इन्द्रिय में कौन-कौन जीव फंसे?
उत्तर –स्पर्शेन्द्रिय में हाथी, रसनेन्द्रिय में मछली, घ्राणेन्द्रिय में भौंरे, चक्षु इन्द्रिय में पतंगे, कर्णेन्द्रिय में हिरण ने फंसकर कष्ट भोगे। फिर जो पाँचों इन्द्रियों में फंसे हैं, उनका तो कहना ही क्या?

स्थावर जीव के भेद

प्रश्न 1 –संसारी जीव के कितने भेद हैं?
उत्तर –दो भेद हैं–त्रस और स्थावर।
प्रश्न 2 –स्थावर जीव किसे कहते हैं?
उत्तर –स्थावर नामकर्म के उदय से एकेन्द्रिय में जिनका जन्म हो, वह स्थावर जीव है। जैसे-वृक्षादिक।
प्रश्न 3 –स्थावर जीव के कितने भेद हैं?
उत्तर –5 भेद हैं–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं वनस्पतिकायिक।
प्रश्न 4 –पृथ्वीकायिक जीव किसे कहते हैं?
उत्तर –पृथ्वी ही जिनका शरीर हो, वह पृथ्वीकायिक जीव हैं। जैसे–मिट्टी, पत्थर, सोना-चाँदी आदि।

प्रश्न 5 –जलकायिक जीव किसे कहते हैं?
उत्तर –जल ही जिनका शरीर हो, वह जलकायिक जीव हैं। जैसे–पानी, बर्फ, ओला, ओस आदि।
प्रश्न 6 –अग्निकायिक जीव किसे कहते हैं?
उत्तर –अग्नि ही जिनका शरीर हो, वह अग्निकायिक जीव हैं। जैसे–दीपक की लौ, अग्नि आदि।
प्रश्न 7 –वायुकायिक जीव किसे कहते हैं?
उत्तर –वायु ही जिनका शरीर हो, वह वायुकायिक जीव हैं। जैसे–हवा, तूफान, आंधी आदि।
प्रश्न 8 –वनस्पतिकायिक जीव किसे कहते हैं?
उत्तर –वनस्पति ही जिनका शरीर हो, वह वनस्पतिकायिक जीव हैं। जैसे–वृक्ष, लता, फल-फूल आदि।
प्रश्न 9 –वनस्पतिकायिक जीव के कितने भेद हैं?
उत्तर –वनस्पतिकायिक जीव के 2 भेद हैं–प्रत्येक और साधारण।
प्रश्न 10 –प्रत्येक और साधारण वनस्पति किसे कहते हैं?
उत्तर –जिसका स्वामी एक जीव हो, वह प्रत्येक वनस्पति है जैसे–आमादि और जिसमें अनंत जीव हों, वह साधारण वनस्पति है। जैसे–आलू आदि।
प्रश्न 11 –एकेन्द्रिय के और कौन से भेद हैं?
उत्तर –बादर जो स्वयं रुके व अन्य को रोके, इसके विपरीत सूक्ष्म–ऐसे 2 भेद हैं।

त्रस जीव के भेद

प्रश्न 1 –त्रस जीव किसे कहते हैं?
उत्तर –त्रस नाम कर्म के उदय से दो इन्द्रियादिक में जिनका जन्म हो, उन्हें त्रस जीव कहते हैं।
प्रश्न 2 –त्रस जीव के कितने भेद हैं?
उत्तर –चार–दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय।
प्रश्न 3 –दो इन्द्रिय जीव किसे कहते हैं?
उत्तर –जिनके स्पर्शन, रसना ये दो इन्द्रियां हैं, वे दो इन्द्रिय जीव हैं। जैसे–लट, केंचुआ, शंख आदि।
प्रश्न 4 –तीन इन्द्रिय जीव किसे कहते हैं?
उत्तर –जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण ये तीन इन्द्रियाँ हों, वे तीन इन्द्रिय जीव हैं। जैसे–चींटी, खटमल, बिच्छू, जूँ आदि।
प्रश्न 5 –चार इन्द्रिय जीव किसे कहते हैं?
उत्तर –जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु ये चार इन्द्रियाँ हों, वे चार इन्द्रिय जीव हैं। जैसे–मधुमक्खी, बर्र, ततैया आदि।

प्रश्न 6 –पंचेन्द्रिय जीव किसे कहते हैं?

उत्तर –जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, ये पाँचों इन्द्रियां हों, वे पंचेन्द्रिय जीव हैं। जैसे–मनुष्य, देव, नारकी, तिर्यंच आदि।

प्रश्न 7 –पंचेन्द्रिय के कितने भेद हैं?

उत्तर –2 भेद हैं–सैनी (मन सहित जीव) असैनी (मन रहित जीव)।

प्रश्न 8 –मन किसे कहते हैं?

उत्तर –अच्छे-बुरे विचार करने की शक्ति को मन कहते हैं।

प्रश्न 9 –तुम सैनी हो या असैनी?

उत्तर –हम सैनी हैं। एकेन्द्रिय से चार इन्द्रिय तक सभी जीव असैनी हैं।

प्रश्न 10 –पंचेन्द्रिय तिर्यंच के कितने भेद हैं?

उत्तर –3 भेद हैं–जलचर–जो जल में रहें–मगर, मछली आदि, थलचर–जो पृथ्वी पर चलें–बन्दर, कुत्ता, गाय आदि, नभचर–जो आकाश में उड़ें–कबूतर, कौवा, चीलादि।

अष्ट मूलगुण

प्रश्न 1 –मूलगुण किसे कहते हैं?

उत्तर –आत्मशुद्धि हेतु जीवन के जो मुख्यगुण हैं उसे मूलगुण कहते हैं, इनके 8 भेद हैं। जैसे– जड़ बिना वृक्ष नहीं, वैसे ही अष्टमूलगुण बिना जैन श्रावक कहने के योग्य नहीं।

प्रश्न 2 –ये अष्ट मूलगुण कौन-कौन से हैं?

उत्तर –मद्य त्याग, मांस त्याग, मधु त्याग, पंच उदुंबर फलों का त्याग, रात्रि भोजन त्याग, जीव दया पालन, पानी छानकर पीना एवं देवदर्शन करना, ये 8 मूलगुण हैं।

प्रश्न 3 –मद्य क्या चीज है एवं इसके पीने से क्या हानि है?

उत्तर –अनेक सड़ी-गली नशीली वस्तु से जो बने, वह मद्य यानी शराब है। इसके पीने से मनुष्य मतवाले हो जाते हैं।

प्रश्न 4 –मांस क्या चीज है एवं इसमें क्या दोष हैं?

उत्तर –अनंत जीवों का कलेवर माँस है। मांस भक्षी नारकी होते हैं।

प्रश्न 5 –मधु क्या चीज है एवं इसमें क्या दोष हैं?

उत्तर –मधु मक्खियों के लार से जो बने, वह मधु–शहद है। इसमें अनंत जीव हैं। एक बूंद शहद खाने से सात गाँव जलाने का दोष लगता है।

प्रश्न 6 –पंच उदुंबर कौन-कौन से हैं इसमें क्या दोष है?

उत्तर –बड़, पीपल, पाकर, गूलर, कठूमर ये 5 उदुंबर फल हैं इनके खाने से अगणित सूक्ष्म जीवों का घात होने से इनमें महान दोष है।

प्रश्न 7 –वैज्ञानिक दृष्टि से मद्य, मांस, मधु व 5 उदुंबर में क्या दोष हैं?

उत्तर –वैज्ञानिक दृष्टि से भी अनंत जीवों का पिंड ऐसे मांसादिक में महान दोष हैं इन सभी का त्याग करके अष्टमूलगुण पालने में ही लाभ है।

प्रश्न 8 –अष्टमूलगुण पालन करने से क्या लाभ है?

उत्तर –पुरुरवा भील मुनि को मारने चला, पर स्त्री के रोकने से उसने मुनि को नमस्कार किया। पुनः गुरु के उपदेश से मांसादि का त्याग करके अष्टमूलगुण पालन किया। जिसके प्रभाव से स्वर्ग में देव होकर कालांतर में भगवान महावीर बन गया।

देवदर्शन

प्रश्न 1 –देवदर्शन की विधि क्या है?

उत्तर –मंदिर में प्रवेश करते ही-ॐ, जय जय जय, निःसही निःसही निःसही, नमोस्तु नमोस्तु, नमोस्तु बोलकर भगवान के चरणों में हाथ जोड़कर नमस्कार करें। पुनः णमोकार मंत्रादि स्तुति पढ़ते हुए भगवान की 3 परिक्रमा देवें, फिर अभिषेकादि करके मंदिर से निकलते समय असही, असही बोलें।

प्रश्न 2 –निःसही, असही का क्या अर्थ है?

उत्तर –निःसही का अर्थ है मंदिर के रक्षक देव से पूछकर जाना और असही यानी देव से बोलकर निकलना कि मैं जा रहा हूँ।

प्रश्न 3 –भगवान को कैसे नमस्कार करना चाहिए?

उत्तर –पुरुष वर्ग पंचांग व अष्टांग और महिलाएँ गवासन से चावल आदि चढ़ाकर नमस्कार करें, खाली हाथ नहीं। क्योंकि देव, गुरु, राजा, वैद्य एवं ज्योतिषी इनके पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। खाली हाथ जाने से खाली आना पड़ेगा अतः भगवान को 5, शास्त्र को 4, गुरु को 3 चावल के पुंज चढ़ाकर नमस्कार करें।

प्रश्न 4 –हम मंदिर क्यों जाते हैं?

उत्तर –मन की शुद्धि हेतु देवदर्शन को हम मंदिर जाते हैं।

प्रश्न 5 –हम देवदर्शन क्यों करते हैं?

उत्तर –पाप का क्षय एवं सातिशय पुण्य फल हेतु हम देवदर्शन करते हैं।

प्रश्न 6 –देवदर्शन का माहात्म्य क्या है?

उत्तर –देवदर्शन का अचिन्त्य माहात्म्य है इससे सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 7 –देवदर्शन से क्या लाभ है?

उत्तर –देवदर्शन से 1 करोड़ उपवास का फल एवं परम्परा से मुक्ति अर्थात् शाश्वत सुख मिलते हैं।

पूजा का महत्व

प्रश्न 1 –पूजा का मतलब क्या है?
उत्तर –भगवान की भक्तिरूप जो पुण्य क्रिया है वह पूजा कहलाती है।
प्रश्न 2 –पूजा के कितने भेद हैं?
उत्तर –दो–द्रव्य एवं भाव पूजा। भाव पूजा मुनि एवं भाव सहित द्रव्य पूजन सभी श्रावक करते हैं।
प्रश्न 3 –द्रव्यपूजा के कितने भेद हैं?
उत्तर –5–नित्यमह, अष्टान्हिक, इंद्रध्वज, महामह, कल्पद्रुम।
प्रश्न 4 –नित्य नैमित्तिक पूजन का लक्षण क्या है?
उत्तर –जो प्रतिदिन पूजन होती है वह नित्यमह पूजन है और जो विशेषरूप से महायज्ञ उत्सव करते हैं वह नैमित्तिक पूजन है।
प्रश्न 5 –हम पूजन क्यों करते हैं?
उत्तर –मात्र आत्म शांति के लिए हम पूजन करते हैं।
प्रश्न 6 –पूजन किसकी करनी चाहिए?
उत्तर –अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु इन पंचपरमेष्ठी की पूजा करनी चाहिए, ये ही हमारे लिए पूज्य हैं।
प्रश्न 7 –पूजन में चढ़ाने वाले अष्टद्रव्य कौन-कौन से हैं?
उत्तर –जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल ये अष्टद्रव्य हैं, इन्हें क्रम-क्रम से पूजन में चढ़ाते हैं।
प्रश्न 8 –पूजा का फल क्या है?
उत्तर –स्वर्गादि विभूति एवं परम्परा से मुक्ति प्राप्ति, यही पूजा का फल है।
प्रश्न 9 –क्या अष्टद्रव्य चढ़ाना जरूरी है?
उत्तर –हाँ जरूरी है, बिना अष्टद्रव्य के पूजन अधूरी है, ऐसा आगम का नियम है।
प्रश्न 10 –पूजा कैसे करनी चाहिए?
उत्तर –पूजा आगम के अनुसार शांतिपूर्वक मौन से करनी चाहिए।
प्रश्न 11 –पूजा की चढ़ी द्रव्य किसे लेने का अधिकार है?
उत्तर –माली को लेने का अधिकार है यदि और कोई जैन द्रव्य लेता है तो उसे निर्माल्य खाने का दोष लगता है, जो नरक निगोद का कारण है।
प्रश्न 12 –पूजन में वस्त्र कैसे होना चाहिए?
उत्तर –पूजन में फटे पुराने सिले वस्त्र न होकर शुद्ध नये वस्त्र होना चाहिए तथा धोती, दुपट्टा, जनेऊ सहित दो वस्त्र से ही पूजन करने का आगम में विधान है अन्यथा लाभ के सिवाय उल्टे हानि होती है।

प्रश्न 13 –पूजन में जल क्यों चढ़ाते हैं?
उत्तर –जन्म-जरा-मृत्यु रोग को नाश करने के लिए हम जल चढ़ाते हैं।
प्रश्न 14 –चंदन क्यों चढ़ाते हैं?
उत्तर –भवताप को दूर करने के लिए।
प्रश्न 15 –अक्षत क्यों चढ़ाते हैं?
उत्तर –अक्षय पद की प्राप्ति के लिए।
प्रश्न 16 –पुष्प क्यों चढ़ाते हैं?
उत्तर –काम वासना दूर करने के लिए।
प्रश्न 17 –नैवेद्य क्यों चढ़ाते हैं?
उत्तर –क्षुधा को शांत करने के लिए।
प्रश्न 18 –दीप क्यों चढ़ाते हैं?
उत्तर –मोहतम दूर करने के लिए।
प्रश्न 19 –धूप क्यों चढ़ाते हैं?
उत्तर –अष्टकर्म को नाश करने के लिए।
प्रश्न 20 –फल क्यों चढ़ाते हैं?
उत्तर –मोक्ष फल पाने के लिए।
प्रश्न 21 –अर्घ्य क्यों चढ़ाते हैं?
उत्तर –अनर्घ्य पद पाने के लिए।
प्रश्न 22 –जयमाला किसे कहते हैं?
उत्तर –भगवान के गुणों की आरती को।
प्रश्न 23 –पूजा का फल किसे मिला, दृष्टांत दीजिए?
उत्तर –मैना सुंदरी ने मुनिराज के कहने से आष्टान्हिक पर्व में सिद्धचक्र का मंडल रचाकर बड़े ठाठ के साथ पूजा की और भगवान के अभिषेक का गंधोदक अपने पति एवं 700 कुष्ट रोगियों के शरीर पर छिड़का। उस गंधोदक के प्रभाव से श्रीपाल कोटिभट और सभी का कुष्ट रोग दूर हो गया। काया कंचन सी हो गई, ये है पूजन का प्रभाव! अतः सभी को पूजन करने का नियम लेना चाहिए।

रात्रि भोजन से हानि एवं वैज्ञानिक मत

प्रश्न 1 –रात्रि भोजन लोग क्यों करते हैं?
उत्तर –मात्र उदर की पूर्ति एवं जिह्वा इंद्रिय की लंपटता के कारण लोग रात्रि भोजन करते हैं।
प्रश्न 2 –जैनधर्म के अनुसार रात्रि भोजन से क्या हानि है?
उत्तर –रात्रि के प्रकाश में सूक्ष्म जीव नहीं दिखते। यदि चींटी पेट में चली जावे तो बुद्धि नष्ट होती है। जूँ से जलोदर रोग, मक्खी से वमन, मकड़ी से कुष्ठ रोग,

गले में बाल जाने से स्वरभंग आदि रोग हो जाते हैं और बहुत सी हानियाँ रात्रि भोजन से होती हैं।

प्रश्न 3 –वैज्ञानिक दृष्टिकोण से रात्रि भोजन में क्या हानि है?

उत्तर –वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि रात्रि में कीटाणु नष्ट करने की शक्तिरूप प्रकाश नहीं होता, इससे जीव जंतु प्रवेश कर भोजन को विषाक्त कर देते हैं जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

प्रश्न 4 –हमें भोजन कब करना चाहिए?

उत्तर –हमें भोजन सूर्योदय के 48 मिनट बाद एवं सूर्यास्त के 48 मिनट पूर्व करना चाहिए।

प्रश्न 5 –चर्तुप्रकार आहार कौन-कौन से हैं?

उत्तर –खाद्य (अन्न) स्वाद्य (सौंफ-लौंगादि) लेय (हलवा आदि) पेय (दूधादि) ये 4 प्रकार के आहार कहे हैं।

प्रश्न 6 –रात्रि भोजन से क्या कुफल मिलता है, दृष्टांत दो?

उत्तर –एक बार की बात है कि रात्रि को एक घी की कढ़ाई में सर्प गिर गया, पूड़ीउतार कर बराती को खिलाई गई, सब बराती मर गये। सुबह देखा तो घी में सर्प मरा पड़ा है। ऐसे ही अनेकों दुर्घटनाएं हो जाती हैं अतः रात्रि भोजी पशु तुल्य हैं।

प्रश्न 7 –रात्रि भोजन त्याग से क्या फल मिलता है?

उत्तर –जो मात्र एक रात्रि भोजन नहीं करे, उसे 1 उपवास का फल और 1 वर्ष रात्रि भोजन त्याग करे तो 6 माह उपवास का फल मिलता है।

प्रश्न 8 –रात्रि भोजन त्याग व्रत की प्रतिज्ञा किसने ली थी?

उत्तर –सोमासती ने रात्रि भोजन त्याग व्रत की प्रतिज्ञा ली थी जिसके फलस्वरूप सर्प भी पुष्पमाला बन गई थी।

अनछने जल से हानि एवं वैज्ञानिक मत

प्रश्न 1 –जल छानकर क्यों पीना चाहिए?

उत्तर –बिना छना जल पीने से अनंत जीवों का घात होता है इसलिए पानी छानकर ही पीना चाहिए।

प्रश्न 2 –अनछना जल पीने से क्या हानि है?

उत्तर –जैन जैनेतर कोई भी हो, स्वास्थ्य की दृष्टि से सबके लिए ही अनछना जल विशेषरूप से हानिकारक है क्योंकि इससे पेट में कीड़े जाकर तरह-तरह के रोग उत्पन्न करते हैं।

प्रश्न 3 –जैनाचार्यों ने पानी में कितने जीव माने हैं?

उत्तर –जैनाचार्यों ने पानी की एक बूंद में असंख्यात जीव माने हैं।

प्रश्न 4 –वैज्ञानिकों ने एक बूंद पानी में कितने जीव सिद्ध किये हैं?

उत्तर –वैज्ञानिकों ने एक बूंद पानी में यंत्र के द्वारा 36450 जीव सिद्ध किये हैं और कहा है "वस्त्र पूतं पिबेत् जलं"।

प्रश्न 5 –पानी कैसे छानना चाहिए?

उत्तर –पानी मोटे कपड़े के दोहरे छन्ने से छानना चाहिए पुनः जीवानी निकालकर यथास्थान कुएँ में ही डाल देना चाहिए, ऐसा आगम में कहा है।

प्रश्न 6 –जैन धर्मानुसार पानी की मर्यादा कितनी है?

उत्तर –जैन धर्मानुसार छने पानी की मर्यादा 48 मिनट की, लौंग, सौंफ आदि डाले हुए पानी की 6 घंटे की और गरम किए हुए पानी की मर्यादा 24 घंटे की है।

प्रश्न 7 –जैन होकर अनछना पानी पियेगा क्या?

उत्तर –यदि सच्चे रूप में जैन है तो वह अनछने जल का प्रयोग कभी नहीं करेगा। अन्यथा जैन कहलाने के योग्य नहीं है।

अभक्ष्य पदार्थ से हानि एवं वैज्ञानिक मत

प्रश्न 1 –अभक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर –जो पदार्थ खाने योग्य नहीं है, उसे अभक्ष्य कहते हैं।

प्रश्न 2 –जिनागम की अपेक्षा अभक्ष्य में क्या हानि है?

उत्तर –जिनागम की अपेक्षा जैन-जैनेतर सभी के लिए अभक्ष्य पदार्थ हानिकारक हैं। इसके सेवन से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है क्योंकि वह जीवों का पिंड है।

प्रश्न 3 –वैज्ञानिक मत की अपेक्षा अभक्ष्य में क्या हानि है?

उत्तर –वैज्ञानिक मत की अपेक्षा भी अनंत त्रस एवं स्थावर जीवों का कलेवर होने से स्वास्थ्य की दृष्टि से अभक्ष्य पदार्थ हानिकारक हैं, इससे कैंसर आदि रोग हो जाते हैं।

प्रश्न 4 –अभक्ष्य के कितने भेद हैं?

उत्तर –5 भेद हैं–त्रसघातक, स्थावरघातक, प्रमादवर्धक, अनिष्ट, अनुपसेव्य।

प्रश्न 5 –त्रसघातक अभक्ष्य कौन-कौन से हैं?

उत्तर –जिसके खाने से त्रस जीवों का घात हो, वह त्रसघातक अभक्ष्य है। जैसे–पंच उदंबर, द्विदल आदि।

प्रश्न 6 –द्विदल किसे कहते हैं?

उत्तर –कच्चे दूध से जमे हुए दही में दो दल वाले मूंग-चनादि से बनी चीज को द्विदल कहते हैं।

प्रश्न 7 –स्थावर घातक अभक्ष्य कौन-कौन से हैं?

उत्तर –जिस वस्तु के खाने से अनंत स्थावर जीवों का घात हो, वह स्थावरघातक अभक्ष्य है। जैसे–मूली, गाजर आदि कंदमूल।

प्रश्न 8 –प्रमादवर्धक अभक्ष्य कौन-कौन से हैं?
उत्तर –जिसके खाने से प्रमाद बढ़े, वह प्रमादवर्धक अभक्ष्य हैं। जैसे–शराब, अफीम, भांग आदि नशीली चीजें।
प्रश्न 9 –अनिष्ट क्या चीज है?
उत्तर –जो वस्तु भक्ष्य होने पर भी अपने लिए हितकर न हो, वह अनिष्ट है। जैसे–खांसी के रोग में बर्फ।
प्रश्न 10 –अनुपसेव्य क्या चीज है?
उत्तर –जो पदार्थ सेवन करने योग्य न हो, वह अनुपसेव्य है। जैसे–लार, मूत्र आदि।
प्रश्न 11 –मर्यादा किसे कहते हैं?
उत्तर –समय की सीमा को मर्यादा कहते हैं।
प्रश्न 12 –आटे, मसाले व घी में भुने बेसन आदि की क्या मर्यादा है?
उत्तर –शीत में 7 दिन, गर्मी में 5 दिन, वर्षा ऋतु में 3 दिन की मर्यादा है।
प्रश्न 13 –चीनी के बने बूरे व काष्टिक वस्तु की कितनी मर्यादा है?
उत्तर –शीत में 1 माह, गर्मी में 15 दिन, वर्षा में 7 दिन की है।
प्रश्न 14 –भोजन आदि की कितनी मर्यादा है?
उत्तर –दाल, कढ़ी आदि व प्रासुक जल की मर्यादा 6 घंटे की, पूड़ी-कचौड़ी आदि का 2 घंटे, तली हुई चीज एवं उबले हुए पानी, दूध, दही, अचार, मुरब्बा आदि की 24 घंटे की मर्यादा है और घी, तेल, गुड़ आदि की मर्यादा स्वाद न बिगड़ने तक है।

विद्यार्थी जीवन

प्रश्न 1 –विद्यार्थी किसे कहते हैं?
उत्तर –जो विद्या प्राप्ति के इच्छुक हैं, उन्हें विद्यार्थी कहते हैं।
प्रश्न 2 –विद्यार्थी के कितने एवं कौन-कौन से गुण हैं?
उत्तर –कौवे सम चेष्टा करना, बगुले सम ध्यान करना, कुत्ते के समान नींद लेना, अल्पाहार एवं घर त्याग करके गुरुकुल में पढ़ना ये विद्यार्थी के 5 गुण हैं।
प्रश्न 3 –विद्यार्थी जीवन कैसा होना चाहिए?
उत्तर –शिष्टाचार, सदाचार का पालन एवं गुरु के प्रति विनयवृत्ति होना चाहिए।

सत्संग

प्रश्न 1 –सत्संग का क्या अर्थ है?
उत्तर –सत्संग का अर्थ है कि सज्जन पुरुषों की संगति करना।
प्रश्न 2 –सत्संग से क्या लाभ है?
उत्तर –सत्संग से हम गुणवान, चरित्रवान बनते हैं।

प्रश्न 3 –दुर्जनों की संगति से क्या-क्या हानि होती है?
उत्तर –दुर्जनों की संगति हमें नरक-निगोद में ले जाती है।
प्रश्न 4 –आज सत्संग की आवश्यकता क्यों है?
उत्तर –क्योंकि सत्संग में रहकर हम आत्म उन्नति कर सकते हैं।
प्रश्न 5 –सज्जन एवं दुर्जन की पहिचान क्या है?
उत्तर –सज्जन निःस्वार्थी रहकर सदा दूसरों के प्रति शुद्ध भावना रखते हैं, पर दुर्जन पुरुष स्वार्थी होकर सदा दूसरों के प्रति कूटनीति षड्यंत्र करते हैं।

आत्मा के भेद

प्रश्न 1 –आत्मा के कितने भेद हैं?
उत्तर –3 भेद हैं– बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा।
प्रश्न 2 –बहिरात्मा किसे कहते हैं?
उत्तर –जो शरीर और जीव को एक समझे, वो बहिरात्मा है।
प्रश्न 3 –अन्तरात्मा किसे कहते हैं?
उत्तर –जिस प्रकार उड़द की दाल छिलकों से भिन्न है उसी प्रकार मेरी आत्मा शरीर से भिन्न है ऐसा भेदज्ञान होना इसका नाम है अंतरात्मा।
प्रश्न 4 –अंतरात्मा के कितने भेद हैं?
उत्तर –उत्तम, मध्यम, जघन्य के भेद से अन्तरात्मा के 3 भेद हैं।
प्रश्न 5 –उत्तम अन्तरात्मा किसे कहते हैं?
उत्तर –शुद्धोपयोगी मुनि को उत्तम अन्तरात्मा कहते हैं।
प्रश्न 6 –मध्यम अन्तरात्मा किसे कहते हैं?
उत्तर –देशव्रती एवं अनगारी मुनि-आर्यिकाओं को मध्यम अन्तरात्मा कहते हैं।
प्रश्न 7 –जघन्य अन्तरात्मा किसे कहते हैं?
उत्तर –अविरत सम्यग्दृष्टी जीव को जघन्य अन्तरात्मा कहते हैं।
प्रश्न 8 –तुम कौन हो बहिरात्मा हो या अन्तरात्मा?
उत्तर –मैं सभी से भिन्न अन्तरात्मा हूँ।
प्रश्न 9 –परमात्मा किसे कहते हैं?
उत्तर –कर्मों से रहित अवस्था का नाम परमात्मा है, इसके 2 भेद हैं– सकल परमात्मा एवं विकल परमात्मा।
प्रश्न 10 –सकल एवं विकल परमात्मा किसे कहते हैं?
उत्तर –चार घातिया कर्म से रहित ऐसे अरिहंत भगवान सकल परमात्मा एवं आठ कर्मों से रहित सिद्ध भगवान विकल परमात्मा हैं।

प्रश्न 11 –क्या हम भी परमात्मा बन सकते हैं?
उत्तर –क्यों नहीं बन सकते, मात्र पुरुषार्थ की आवश्यकता है।
प्रश्न 12 –वह पुरुषार्थ क्या है?
उत्तर –संयम चारित्र को धारण करना यही सच्चा पुरुषार्थ है। इसी से मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि होती है।

जैनधर्म के देवता

प्रश्न 1 –जैनधर्म में कितने पूज्य देवता माने हैं?
उत्तर –जैनधर्म में नवदेवता माने हैं।
प्रश्न 2 –नव देवताओं के नाम क्या है?
उत्तर –पंच परमेष्ठी जिसकी व्याख्या पहले की है और जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य, जिनचैत्यालय ये 9 देवता कहे हैं।
प्रश्न 3 –जिनधर्म किसे कहते हैं?
उत्तर –जिनेन्द्र देव के द्वारा दर्शाये गये सन्मार्ग को जिनधर्म कहते हैं।
प्रश्न 4 –जिनागम किसे कहते हैं?
उत्तर –जिनेन्द्र देव द्वारा कथित एवं गणधर आचार्यों द्वारा रचित ऐसे युक्तिप्रमाण से अविरोधी निर्दोषशास्त्र को जिनागम कहते हैं।
प्रश्न 5 –जिनचैत्य किसे कहते हैं?
उत्तर –जिनदेव की प्रतिमा को जिनचैत्य कहते हैं।
प्रश्न 6 –जिन चैत्यालय किसे कहते हैं?
उत्तर –जिनेन्द्र देव की प्रतिमाएं जहाँ पर विराजमान हैं ऐसे स्थान विशेष को जिनचैत्यालय अथवा मंदिर कहते हैं।
प्रश्न 7 –जिन किसे कहते हैं?
उत्तर –जिन्होंने इन्द्रिय व मन पर विजय पा लिया, उन्हें जिन कहते हैं। ऐसे जिन (अर्हंत) के उपासक को जैन कहते हैं।
प्रश्न 8 –इन देवताओं की भक्ति एवं अपमान से क्या फल मिलते हैं?
उत्तर –इन देवताओं की भक्ति करने से स्वर्ग व मोक्ष फल मिलते हैं और इनका अपमान करने वाले संसार में भ्रमण करते हैं।
प्रश्न 9 –इस समय भरत क्षेत्र में कितने देवता माने हैं?
उत्तर –इस समय अरिहंत-सिद्ध को छोड़कर 7 देवता माने हैं।
प्रश्न 10 –देवताओं की परम्परा कब से चली?
उत्तर –ये परम्परा अनादिनिधन है, किसी के द्वारा ये परम्परा नहीं चली।
प्रश्न 11 –ये नव देवता कहाँ-कहाँ पर रहते हैं?
उत्तर –ये नव देवता ढाई द्वीप में रहते हैं, इसके आगे द्वीपों में मात्र चैत्य और चैत्यालय ये दो देवता ही रहते हैं।

दिगम्बर परम ऋषि

प्रश्न 1 –वे कौन ऋषि थे, जिन्हें बांधकर 48 ताले में बंद रखा गया?
उत्तर –वे परम ऋषि घोर उपसर्ग विजयी मानतुंगाचार्य थे।
प्रश्न 2 –वे कौन ऋषि थे, जिनके सिर पर सिगड़ी जलाई गई थी?
उत्तर –वे परम तपस्वी गजकुमार मुनि थे।
प्रश्न 3 –वे कौन मुनि थे, जिन्हें गरम-गरम आभूषण पहनाये गए थे?
उत्तर –वे वीतरागी संत पांचों पांडव मुनि थे।
प्रश्न 4 –वे कौन संत थे जिनने मुनियों का उपसर्ग दूर किया था?
उत्तर –वात्सल्य भाव से ओतप्रोत वे संत विष्णुकुमार मुनि थे।
प्रश्न 5 –वे कौन मुनिराज थे जिन्हें भस्मक व्याधि हो गई थी?
उत्तर –वे महामुनि समंतभद्र मुनिराज थे।
प्रश्न 6 –वे कौन मुनि थे जिन्हें 3 दिन तक स्यालनी खाती रही?
उत्तर –वे परम तपस्वी सुकुमाल मुनि थे।
प्रश्न 7 –वे कौन वीतरागी थे जिनके गले में मरा हुआ सर्प डाला गया था?
उत्तर –वे सच्चे वीतरागी यशोधर ऋषि थे।
प्रश्न 8 –वे कौन ऋषि थे जिन्हें सिंह ने भक्षण किया था?
उत्तर –वे सुकौशल ऋषि थे।
प्रश्न 9 –वे कौन ऋषि थे जिनकी परीक्षा लेने देव आये थे?
उत्तर –वे परम निस्पृही सनत्कुमार ऋषि थे।
प्रश्न 10 –वे कौन मुनि थे जिन्हें वन देवताओं ने आहार दिया?
उत्तर –वे परम गुरु भक्त चंद्रगुप्त मुनि थे।
प्रश्न 11 –वे कौन मुनि थे जिन्होंने धर्म की रक्षा हेतु बौद्धों से विवाद किया?
उत्तर –वे धर्मप्रभावक अकलंकदेव सूरि थे।
प्रश्न 12 –वे कौन मुनि थे जिनका उपसर्ग राम-लक्ष्मण ने दूर किया?
उत्तर –वे उपसर्ग विजेता कुलभूषण और देशभूषण मुनि थे।
प्रश्न 13 –वे कौन मुनि थे जो शादी के एक दिन बाद ही दीक्षित हो गये?
उत्तर –वे निर्मोही जंबूस्वामी महामुनि थे।
प्रश्न 14 –वे कौन मुनि थे जिनके क्रोध से द्वारिका जली थी?
उत्तर –वे द्वीपायन मुनि थे।

आदर्श सतियाँ

प्रश्न 1 – सीता सती ने अग्नि परीक्षा क्यों दी?
उत्तर – अपने निर्दोष पतिव्रत को सिद्ध करने हेतु सीता ने अग्नि परीक्षा दी।
प्रश्न 2 – अंजना को 22 वर्ष तक पति वियोग क्यों सहन करना पड़ा?
उत्तर – क्योंकि पूर्वभव में अंजना कनकोदरी रानी थी, उसने सौत की ईर्ष्या से मात्र 22 घड़ी जिनप्रतिमा को बावड़ी में डालकर अपमान किया था।
प्रश्न 3 – सती चंदना की बेड़ियाँ कैसे टूटी थीं?
उत्तर – भगवान महावीर के दर्शन करते ही चंदना की बेड़ियाँ टूट गईं और आहार देते ही कोदों चावल खीर बन गये, वस्त्राभूषण केशों से चंदना शोभने लगी।
प्रश्न 4 – देवदर्शन की प्रतिज्ञा किसने की थी?
उत्तर – मनोवती ने गजमोती चढ़ाकर प्रतिदिन देवदर्शन की प्रतिज्ञा ली थी।
प्रश्न 5 – राजा अशोक की रानी रोहिणी को रोना क्यों नहीं आता था?
उत्तर – ये पूर्वकृत रोहिणी व्रत का ही प्रभाव था जो उसे रोना नहीं आता था।
प्रश्न 6 – उज्जयिनी नगरी के फाटक कैसे खुले थे?
उत्तर – मनोरमा के शील के प्रभाव से स्पर्श करते ही फाटक खुल गये थे।
प्रश्न 7 – विशल्या में ऐसी कौन सी शक्ति थी जिससे लक्ष्मण की बेहोशी दूर हुई?
उत्तर – विशल्या पूर्व भव में चक्रवर्ती की अनंगशरा नाम की पुत्री थी। उसने निर्जन वन में 66 हजार वर्ष तक घोर तप किया था, जभी उसे ऐसी शक्ति प्राप्त हुई, जिसके स्नान के जल से सभी रोगी निरोग हो जाते थे।
प्रश्न 8 – दुःशासन द्वारा खींचा हुआ द्रौपदी का चीर बढ़ता ही क्यों गया?
उत्तर – ये सती द्रौपदी के शील का ही प्रभाव था, जो चीर बढ़ता गया।

इस प्रकार ''बाल विज्ञान ज्योति'' पुस्तक के कुछ प्रश्न-उत्तरों को आपके ज्ञानवर्धन हेतु यहाँ प्रस्तुत किया गया।

ऐसे ही लगभग 50 मौलिक कृतियों की लेखिका पूज्य माताजी ने साहित्य लेखन की श्रृँखला में **'वसुदेव चरित्र'** नामक रोमांचक कथानक लिखकर सभी को राजा वसुदेव के चरित्र से परिचित करा दिया है। बड़े-बड़े पुराण ग्रंथों का आलोढन करके उसमें से साररूप निकालकर इस पुस्तक में सुन्दर ढंग से लेखनीबद्ध किया है। इसके साथ ही इस पुस्तक के अंत में कई शिक्षास्पद कविताएँ आदि प्रकाशित हैं।

''भव्य स्तोत्र'' नामक पुस्तक भी पूज्य आर्यिकाश्री की सुन्दर कृतियों में से एक है। इसमें णमोकारमंत्र माहात्म्य, अकलंकस्तोत्र, सरस्वती स्तोत्र, मंगलाष्टक, दर्शनपाठ, महावीराष्टक स्तोत्र, भक्तामर स्तोत्र आदि का पद्यानुवाद है।

इस प्रकार पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी द्वारा रचित विभिन्न साहित्य के माध्यम से आप अपने ज्ञान की निरन्तर वृद्धि करें, यही मंगलकामना है।

भजन

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

माता तेरे चरणों में, हम वंदन करते हैं।
तेरे ज्ञान की गरिमा का अभिवंदन करते हैं।।

मेरे मन के अंधेरे में, कुछ ज्ञान प्रकाश भरो।
जीवन के सबेरे में, अब कुछ तो विकास करो।।
पावन पद कमलों में, शत वन्दन करते हैं।
तेरे ज्ञान की गरिमा का, अभिवन्दन करते हैं।।1।।

चंचल चित का चिन्तन, चिरकाल से भी न रुका।
अज्ञान में उलझा मन, निज ज्ञान पे भी न टिका।।
श्रुतज्ञान के उपवन में, अभिसिञ्चन करते हैं।
तेरे ज्ञान की गरिमा का, अभिवंदन करते हैं।।2।।

शिवपथ की मंजिल का, हमें ज्ञान हुआ अब माँ।
शुद्धातम मंदिर का, अब ज्ञान मिला कुछ माँ।।
''चन्दना'' तेरे पद में, हम तर्पण करते हैं।
तेरे ज्ञान की गरिमा का, अभिवंदन करते हैं।।3।।

तृतीय अध्याय

बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य
चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज एवं उनकी निर्दोष परम्परा

देव, शास्त्र और गुरु ये तीन रत्न जैनशासन की परम्परा को अक्षुण्ण रखने में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। भगवान ऋषभदेव से महावीर तक चौबीसों तीर्थंकर के मध्य सात बार (भगवान पुष्पदंत से लेकर धर्मनाथ तक के तीर्थ में) धर्मतीर्थ का विच्छेद हुआ अर्थात् उस विच्छेदकाल में कोई भी मुनि बनकर धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करने वाले महापुरुष नहीं हुए। तात्पर्य यह है कि संसार में गृहस्थ परम्परा तो सदैव रहती है किन्तु यदि मुनिपरम्परा नहीं चलती है तो मोक्षमार्ग अवरुद्ध हो जाने के कारण धर्म का व्युच्छेद माना जाता है। इस पंचमकाल में यद्यपि साक्षात् तीर्थंकर भगवान नहीं हैं, फिर भी भगवान महावीर से लेकर आज तक मुनिपरम्परा सतत चलती रही है उसमें आचार्यश्री कुन्दकुन्दस्वामी को प्रमुखता से स्मरण करते हुए सभी लोग प्रतिदिन पढ़ते हैं –

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलं।।

अर्थात् भगवान महावीर, गौतम गणधर, श्रीकुन्दकुन्दाचार्य एवं जैनधर्म हम सबके लिए मंगलमयी होवें। इस मांगलिक भावना को आचार्यश्री उमास्वामी, समन्तभद्र, अकलंक देव आदि ने तो साकार किया ही था पुनः बीसवीं शताब्दी में दक्षिण भारत के भोजग्राम के निकट येळगुळ गाँव में जन्मे सातगौंडा श्रावक मुनि श्री शांतिसागर बनकर जिनधर्म सूर्य की किरणें पूरे देश में प्रसारित कर मंगल स्वरूप बन गये। उन्होंने दक्षिण से उत्तर भारत में विहार करके जैसमाज पर जो उपकार किया है, वह पंचमकाल के अंत तक भुलाया नहीं जा सकता है।

ऐसे उन महान आचार्यश्री का परिचय यहाँ प्रस्तुत है –

चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज का जीवन परिचय

जन्मकाल और बाल्यावस्था – गौरवशाली प्रकाशपुंज आचार्य कुंदकुंद,स्वामी समंतभद्र, विद्यानंदी, जिनसेन इत्यादि आचार्यों की जन्मभूमि तथा उपदेश से पुनीत विहार भूमि-कर्नाटक देश में आचार्यश्री 108 शांतिसागर महाराज का जन्म हुआ।

बेलगांव जिले के चिकोड़ी तहसील में दूध-गंगा और वेद-गंगा के संगम केकारण तीर्थरूप "भोज" नामक ग्राम के पास "येळगुळ" गांव में विक्रम संवत् 1929 में (ई. सन् 1872) आषाढ़ मास के कृष्णपक्ष में षष्ठी तिथि को बुधवार की रात्रि में आचार्यश्री का जन्म हुआ। जन्म

नाम ''सातगौंडा'' था। पिताश्री का नाम भीमगौंडा था। वे पाटील घराने के थे। ''पाटील'' याने नगर के राजा। ऐसा ही समाज में उनका मानसम्मानपूर्ण स्थान था, ऊँची पूरी शक्तिशाली देह थी, पराक्रमशीलतापूर्ण नैसर्गिक वृत्ति थी, धीर-वीर-गंभीर सहज मनोवृत्ति थी। माता का नाम देवी ''सत्यवती'' था। वह भी श्रद्धालु, धार्मिक और सदाचार सम्पन्न थीं। भगवम की भक्तिपूजा करना, त्यागीगणों को आहारदान देना, उनकी वैयावृत्य करना, दीन-दुखियों को सहायता पहुँचाना आदि कार्यों में विशेष रुचिपूर्ण सावधान थीं। उस माता का वहसहज स्वभाव था। छोटे-बड़े व्यसनों से दूर पिताजी ने सोलह वर्ष तक दिन में एक ही बार भोजन करने का व्रत लिया था। आचार्यश्री का बाल-जीवन इस प्रकार से सदाचार सम्पन्न माता-पिता की छत्र-छाया में व्यतीत हुआ। एक प्रकार से निसर्ग योजना में यह मणिकांचन संयोग ही था।

सातगौंडा की विद्यालयीन शिक्षा बहुत कम हुई। वे पाठशाला में तीसरी कक्षा तक पढ़ पाये। शिक्षा के आदान-प्रदान की व्यवस्था भी आज की अपेक्षा देहातों में अपेक्षाकृत कम थी। संस्कारशील माता-पिता के द्वारा घर में जो कुछ धार्मिक संस्कार हुए, केवल वे ही जीवनाधार बन गये। सत्य-सत्य कहना हो तो जीवन में इस मूल अवस्था में सातगौंडा ने अच्छी वृद्धि ही की, जिससे माता-पिता का मुख उज्ज्वल हो गया। पाठशाला में भी सातगौंडा ने एक बुद्धिमान विद्यार्थी के रूप में ही प्रसिद्धि पाई थी।

जब सातगौंडा जी 9 साल के हुए, ज्येष्ठ भाई देवगौंडा और आदगौंडा का विवाह सम्पन्न हो रहा था। सातगौंडा का भी विवाह जबरदस्ती ही किया गया। ''संसार विषये सद्यः स्वतो हि मनसो गतिः''। संसार के विषयों में संसारी जीवों की निसर्ग से प्रवृत्ति होती ही है। बच्चों के खेल जैसी प्रक्रिया हो गई। दैव को वह भी स्वीकार नहीं था। विवाह के पश्चात् छः माह के भीतर ही विवाहिता की इहलोक यात्रा समाप्त हुई। सातगौंडा बाल्यावस्था में विवाहबद्ध होकर भी निसर्ग से बालब्रह्मचारी रहे। ''लाभात् अलाभं बहु मन्यमानः।'' लाभ से अलाभ को लाभप्रद मानने की बालक सातगौंडा की निसर्ग प्रवृत्ति रही है। अनंतर किये गये आग्रह के वे शिकार नहीं हुए अर्थात् पुनः विवाह नहीं किया।

अध्यात्म जीवन का नैसर्गिक आकर्षण–आत्मानुशासन, समयसार इन दो ग्रंथों का वाचन सातगौंडा प्रारंभ से ही करते थे। विशेष रूप से तत्त्वचिंतन मनन में काल व्यतीत होता था। आयु के 17वें, 18वें वर्ष में भरी युवावस्था में ही मन में दिगम्बरी दीक्षा लेने के सहज भाव होने लगे परन्तु माता-पिता के दबाववश उस समय वे अपने विचारों को अमल में न ला सके, व्यक्त भी न कर सके। कुछ काल तक उन्हें यथापूर्व घर में ही रहना पड़ा परन्तु प्रवृत्ति जल से भिन्न कमल की तरह बनी रही।

शास्त्र-स्वाध्याय की तरह तीर्थक्षेत्रों की भक्ति का भी आचार्यश्री के जीवन में विशेष स्थान रहा। मोक्षमार्ग के पथिक साधक के जीवन में तीर्थयात्रा-दर्शन का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान होता ही है। असंगभाव या वीतराग भावों की धारा प्रवाहित करने के लिए दृष्टिसम्पन्न साधु यात्रा को अच्छा निमित्त बना सकता है। सातगौंडा यह कर पाये इसी में परिमार्जित तत्त्वदृष्टिस्पष्ट होती है। विहार का प्रत्येक कदम वीतरागता के लिए था, वीतरागता की ओर था।

सहज संवेगभाव और वैराग्य – इसी अवस्था में पाँच-छः साल और बीत गये। सातगौंडा के मन में निर्ग्रंथ दीक्षा लेने के विचार तीव्रता से आने लगे। इस बार साहस के साथ माता-पिता के समक्ष उन्होंने अपनी भावना व्यक्त भी की परन्तु पिता जी ने कहा, ''हमारे ये अंतिम दिन हैं, दीक्षा लेकर हमारी मानसिक यातनाएँ बढ़ेंगी सो ठीक नहीं होगा, अच्छा नहीं होगा।'' पिता की आज्ञा तथा पुत्र-कर्तव्य का विकल्प होने से सातगौंडा का दीक्षा लेने का विचार कुछ समय के लिए स्थगित हुआ।

शक संवत् 1833 ई. सन् 1912 में सातगौंडा की माताजी की इहलोक यात्रा समाप्त हुई। उसके कुछ साल पहले ही पिताजी का भी स्वर्गवास हुआ था। अब प्रकृतिसिद्ध त्यागमय जीवन और संयमशील बन गया। कोई लगाव भी न रहा। इसी काल में श्रवणबेलगोला-गोमटेश्वर इत्यादि पुण्यक्षेत्रों की दक्षिण यात्रा भी समाप्त कर सातगौंडा शक सं. 1836 में भोजग्राम में आये।

क्षुल्लक पद की दीक्षा-स्वीकार – सातगौंडा ने जीवन के इकतालीस साल पूर्ण होने के उपरांत दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय किया। उस समय कर्नाटक में दिगम्बर स्वामी श्री देवेंद्रकीर्ति विहार कर रहे थे। ''कापशी'' ग्राम के निकट ''उत्तूर'' नामक देहात है। वहाँ उनका आगमन होने पर सातगौंडा मुनिश्री के समीप पहुँचे और दिगम्बर दीक्षा देने की प्रार्थना की परन्तु श्री देवेन्द्रकीर्ति स्वामी ने प्रारंभ में क्षुल्लक पद की ही दीक्षा लेने को कहा। ठीक ही है ''क्रमारम्भो हि सिद्धिकृत्'' गुरु आज्ञा को प्रमाण माना। शक सम्वत् 1837 ई. सन् 1918 में ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी तिथि को ''सातगौंडा'' ने क्षुल्लक पद की दीक्षा धारण की। इस प्रकार स्वतंत्र संयमी जीवन का शुभारंभ हो गया।

उत्तूर ग्राम छोटा था। इसलिए गुरु की आज्ञा लेकर क्षुल्लकजी महाराज चातुर्मास के लिए कागल आये परन्तु इसी काल में कोगनोली से कुछ नैष्ठिक श्रावक कागल पहुँचे। उन्होंने क्षुल्लक जी से प्रार्थना की कि, ''हमारे कोगनोली ग्राम में आपका पहला चातुर्मास हो।'' उनकी प्रार्थना स्वीकार कर क्षुल्लकजी कोगनोली पहुँचे। इस प्रकार क्षुल्लकजी का प्रथम वर्षायोग धारण करने का प्रारंभ कोगनोली से हुआ। ध्यान धारण तथा शांति अनुभवन के लिए कोगनोली का चौमासा अत्यन्त अनुकूल रहा। आचार्यश्री के सहजोद्गार रहे कि ''कोगनोली आमचे आजोळ आहे'' याने ''कोगनोली हमारी मां का गांव है'', हमारा ननिहाल है। ऐसा ही परस्पर व्यवहार रहा।

क्षुल्लक जी महाराज का चातुर्मास कोगनोली में अपूर्व धर्मप्रभावना के साथ सम्पन्न हुआ। दूसरा चातुर्मास कुम्भोज में और तीसरा चातुर्मास फिर से कोगनोली में हुआ। अनन्तर क्षुल्लकजी ने कर्नाटक प्रांत में विहार शुरू किया। कोगनोली से जैनवाड़ी और वहाँ से बाहुबली क्षेत्र (कुंभोज) में महाराज जी का आगमन हुआ। ''महाराज जी बाहुबली में आये हैं'' यह वार्ता सुनकर आस-पास के श्रावकगण भी बाहुबली आये। योगायोग से समडोली से कुछ श्रावक लोग इसी समय गिरनार जी की यात्रा के लिए जा रहे थे। उन्होंने महाराज जी से साथ में आने की प्रार्थना की। क्षुल्लक जी महाराज को वाहन में बैठने का त्याग नहीं था। यात्रियों के साथ-साथ गिरनारजी की यात्रा सानन्द सम्पन्न हुई।

ऐलक पद-दीक्षा और पद-विहार करने की प्रतिज्ञा – श्री गिरनार क्षेत्र का दर्शन करते

समय महाराजजी का हृदय उठी हुई वैराग्य भावनाओं से गद्‌गद हो उठा। भगवान नेमिनाथ के चरणों के पुनः-पुनः दर्शन कर क्षुल्लकजी के वीतराग भावों में सहज वृद्धि हुई। सावधानी तो पूरी थी ही। उसी समय श्री नेमिनाथ भगवान के चरण साक्षी में स्वयं ऐलक पद को स्वीकार किया। एक कौपीन मात्र परिग्रह के बिना सब वस्त्रादि परिग्रहों को त्याग दिया। नूतन प्रतिमा की प्रतिष्ठा पूर्वप्रतिष्ठित प्रतिमा की साक्षी में होती है और नया व्रत विधान पूर्व में व्रती के साक्षी से ही होना चाहिए, ऐसी एक अच्छी प्राचीन परम्परा है। महाराजजी इस परम्परा को तोड़ना नहीं चाहते थे जैसा कि निर्ग्रन्थ दीक्षा के समय देखा गया। इस समय उनसे रहा नहीं गया। वैराग्य भावों की वेगवान गति को वे रोक नहीं सके। पूज्य स्वर्गीय अनुभवसमृद्ध वीरसागर जी महाराज ठीक कहते थे। ''गुरु कहे सो करना गुरु करे सो नहीं करना।'' अस्तु! इस समय वीतरागता का वैराग्यभाव से अपूर्व मिलन होना था, हो गया। श्री गिरनारजी से लौटते समय ऐलकजी ने श्री दक्षिण कुंडलक्षेत्र की वंदना की। श्री पार्श्वप्रभु भगवान की मूर्ति की साक्षी में ऐलकजी महाराज ने सब वाहनों का आजीवन के लिए परित्याग कर दिया। आगे के लिए विहार का रूप ''पद-विहार'' ही निश्चित हुआ। ''याजं याजमटन्नवे तीर्थ-स्थानान्यपूजयत्।'' शुद्ध निर्जंतुक रास्ते से चार हाथ आगे की जमीन को देखकर विहार करते हुए सूर्यप्रकाश में चलने की मुनि की प्रवृत्ति को ईर्यासमिति कहते हैं। गाड़ी, मोटर या रेल सवारी का त्याग त्यागी को इसीलिए होता है। श्री क्षेत्र कुण्डल से विहार करते-करते महाराज जिनमंदिर का दर्शन करते -करते नसलापुर, ऐनापुर, अथणी इस मार्ग से बीजापुर के पास अतिशय क्षेत्र ''बाबानगर'' को आये। पुण्यक्षेत्र के सहस्रफणी श्री पार्श्वनाथ भगवान का दर्शन करते हुए लौटकर पुनः ऐनापुर आये। वहाँ वे 15 दिन तक ठहरे। यहाँ योगायोग से निर्ग्रंथ मुनिराज श्री आदिसागर जी महाराज का सत्समागम मिला।

भगवती निर्वाणरूपा जिनदीक्षा– निपाणी संकेश्वर के समीप ''यरनाळ'' ग्राम में पंचकल्याणक महोत्सव के लिए मुनिराज श्री देवेन्द्रकीर्तिजी पधारे थे। ऐलक सातगौंडा महाराज भी वहाँ पहुँचे। उन्होंने गुरु श्रीदेवेन्द्रकीर्ति स्वामी को दिगम्बर दीक्षा देने के लिए पुनः प्रार्थना की। एकत्रित जैन समाज को महाराजजी की योग्यता का पूरा परिचय था। वे महाराजजी से प्रभावित भी थे। मुनि दीक्षा के लिए समाज भर ने एक स्वर से अनुमोदना की।

निर्ग्रंथ दीक्षा लेने का विचार निश्चित हुआ। दीक्षा कल्याणक के दिन तीर्थंकर भगवान् का वन विहार का जुलूस दीक्षा वन में आया। इसी पवित्र समय में ऐलकजी ने भी दीक्षागुरु श्री देवेन्द्रकीर्ति महाराज के पास दिगम्बरी जिनदीक्षा धारण की। 'नैर्ग्रंथ्य हि तपोऽन्यत्तु संसारस्थैव साधनम्।' यह दृढ़धारणा थी। भगवान् की दीक्षा विधि के साथ ऐलक महाराजजी की भी निर्ग्रंथ दीक्षा विधि सम्पन्न हुई, केशलोंच समारम्भ भी हुआ। ऐलक सातगौंडा मुनि हो गये, यथाजातरूपधारी हुए। मुनि पद का नाम श्री ''शांतिसागर'' रखा गया। शक् सम्वत् 1841, फाल्गुन शुक्ला 14 उनकी दीक्षामिति थी। इस पवित्र दिन से महाराज श्री का जीवनरथ अब संयम के राजमार्ग द्वारा मोक्षमहल की ओर अपनी विशिष्ट गति से सदा गतिशील ही रहा। अंतरंग में परिग्रहों से अलिप्तता का भाव सदा के लिए बना रहना और बाह्य में परिग्रह

मात्र से स्वयं को दूर रखना यह मुनि की अलौकिक चर्या है। शुद्ध आत्मस्वरूप मग्नता यह उसका अन्तःस्वरूप होता है। देह के प्रति भी ममत्व का लेश नहीं होता, वे विदेहीभावों के राजा होते हैं इसीलिए लोग उन्हें महाराज कहते हैं।

पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियों के विषयों पर विजय, छह आवश्यक तथा सात शेष गुण इत्यादि 28 मूलगुणों के ये धारक होते हैं।

भारत-विहार – यरनाळ में दीक्षासमारंभ समाप्त होने के अनंतर महाराज नसलापुर आये। समाज ने बड़ा आदर किया। भक्तिभावपूर्ण वैयावृत्य किया। उसके बाद महाराज कोगनोली पहुँचे। वहाँ से लौटकर फिर नसलापुर आकर चातुर्मास किया। बाद में महाराज ऐनापुर पहुँचे। यहाँ जैन समाज बहुसंख्या में होने से धर्म प्रभावना अच्छी हुई। महाराजजी के विहार काल में कोण्णूर का चातुर्मास बड़ा महत्वपूर्ण रहा। यहाँ महाराज की जीवनी में अतिशय महत्वपूर्ण घटनाएं घटीं। कोण्णूर ग्राम में प्राचीन गुफाएं बहुसंख्या में हैं। नित्य की तरह गुफा में आचार्य श्री ध्यानस्थ बैठ गये। उसी समय एक नागराज– बड़ा सर्प वहाँ आकर महाराज जी के शरीर पर चढ़कर घूमने लगा। महाराज जी अपने आत्मध्यान में निमग्न थे। 'नागराज आया है और वह अपने शरीर पर घूम रहा है' इसका तनिक विकल्प भी महाराज जी को नहीं था। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति की पालना किस प्रकार हो सकती है, इसका यह मूर्तिमान रूप दृष्टिगोचर हुआ। महाराज जी के दर्शनार्थ जो लोग वहाँ पहुँचे थे, उन्होंने यह घटनाप्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखी। वे साश्चर्य दिङ्मूढ़ हो बैठे रहे। वे सांप से डरते थे। सांप्भी जनता से घबड़ाता था। महाराज का आश्रय इसीलिए उसने लिया था। महाराज जी का दिव्य आत्मबल देखकर वहाँ आये हुए यात्रियों में से प्रमुख श्रेष्ठी श्रीमान सेठ खुशालचंद जी पहोड़और ब्र. हीरालाल जी बड़े प्रभावित हुए। दोनों सज्जन विचक्षण थे। दक्षिण यात्रा के लिए निकले हुए यात्री थे। मिरज पहुँचने के बाद पता चला कि निकट ही दिगम्बर साधु हैं। इसलिए परीक्षा के हेतु वे वहाँ पर पहुँचे थे। उनकी अपनी धारणा थी कि इस काल में साधक काहोना असंभव है। भरी सभा में 'क्या आपको अवधिज्ञान है? या आपको ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त है?'' अद्दि वैयक्तिक आचार विषयक प्रश्न भी पूछने लगे। कुछ उलाहना का अंश भी जरूर था। सम्मिलितभक्तगणों में कुछ ऐसे जरूर थे, जो इन सवालों का जवाब मुट्ठियों से देने के लिए तैयार होगये। मुनि महाराज ने भक्तों को रोका। एक-एक सवाल का जवाब यथानाम ''शांतिसागर जी' ने शांति से ही दिया। समागत दोनों परीक्षक अत्यधिक प्रभावित हुए, उसी समय दीक्षा के लिए तैयार भी हो गये। महाराज जी ने ही उन्हें रोककर यात्रा पूरी करने का और कुटुम्ब परिवार की सम्मति लेने को कहा। जब महाराज बाहुबली (कुम्भोज) आये, तब वहाँ आकर उक्त दोनों सज्जनों ने महाराज जी के पास क्षुल्लक पद की दीक्षा धारण की। दीक्षा के बाद श्री सेठ खुशालचंद जी क्षुल्लक 'चन्द्रसागर' तथा श्री ब्र. हीरालाल जी का क्षुल्लक ''वीरसागर'' नामांकन हुआ। समडोली के चातुर्मास में आचार्यश्री के पास क्षुल्लक वीरसागर जी ने निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण की। यही महाराज के प्रथम निर्ग्रंथ शिष्य थे। आचार्यश्री ने आगे चलकर अपने समाधिकाल में श्री वीरसागर महाराज को ही उन्मुक्त भावों से आचार्यपद प्रदान किया। श्री वीरसागर जी की

दीक्षा विधि हुई। कुछ ही समय बाद ऐलक नेमण्णा ने भी मुनिदीक्षा धारण की। नाम श्री 'नेमिसागर' रखा गया।

आचार्यपद की प्राप्ति व महत्वपूर्ण तीर्थरक्षा कार्य–समडोली ग्राम में ही सर्वप्रथम आचार्यश्री का चतुःसंघ स्थापन हुआ। अब तक केवल अकेले महाराज ही निर्ग्रंथ साधु स्वरूप में विहार करते थे। अब संघ सहित विहार होने लगा। संघ ने उनको 'आचार्य' घोषित किया। आचार्य महाराज का संघ पर वीतराग शासन बराबर चलता था। संघ सहित विहार करते-करते महाराज कुम्भोज से श्री सिद्धक्षेत्र कुंथलगिरी आये। क्षेत्र पर श्री देशभूषण और कुलभूषण मुनिद्वय की चरण पादुकाओं का पावन दर्शन किया। विहारकाल का उपयोग महाराज श्री जाप्य तथा मंत्र स्मरण के लिए विशेष रूप से कर लेते थे।

श्री सम्मेदशिखर जी की ऐतिहासिक पावन यात्रा–(चलता फिरता वीतरागता और विज्ञानता का विश्वविद्यालय) ई. सन् 1927 के मार्गशीर्ष वदी प्रतिपदा के दिन श्री सम्मेदशिखर जी क्षेत्र की वंदना और धर्मप्रभावना के उद्देश्य से आचार्यश्री 108 शांतिसागर जी महाराज की विहार यात्रा संघ सहित बाहुबली (कुम्भोज) क्षेत्र से शुरू हुई।

बम्बई निवासी पुरुषोत्तम श्रीमान सेठ पूनमचंद जी घासीलाल जी और उनके सुपुत्रगण आचार्यश्री के पास पहुँचे। उन्होंने आचार्यश्री को ससंघ श्री सम्मेदाचल यात्रा को ले चलने का संकल्प प्रकट किया।

नागपुर में संघ का अपूर्व स्वागत हुआ। जुलूस तीन मील लम्बा निकला था। शहर के बाहर इतवारी में स्वतंत्र 'शांतिनगर' की रचना की गयी थी। कांग्रेस के पंडाल से शांतिनगर का पंडाल कुछ छोटा नहीं था। जनता आज भी उस समय की अपूर्व घटनाओं की स्मृति से आनंद का अनुभव करती है और स्वयं को धन्य मानती है।

संघ की विदाई हृदयद्रावक थी। साश्रुनयनों से श्रावक-श्राविकाओं को अनिर्वाक्प से विदाई देनी पड़ी। दिनाँक 9 जनवरी 1928 को संघ का नागपुर छोड़कर भंडारा मार्ग से विहार शुरू हुआ। छत्तीसगढ़ के भयंकर जंगलमय विकट मार्ग से निर्बाध होते हुए संघ हजारीबाग आया। बाद में फाल्गुन शुक्ला तृतीया के दिन तीर्थराज श्री सम्मेदशिखर जी सिद्धक्षेत्र को पुँहचा।

यहाँ पर श्री संघपति जी के द्वारा व्यापकरूप में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव द्वारा महती धर्मप्रभावना हुई। भीड़ की सीमा न थी। भारत के कोने-कोने से श्रावक-श्राविकाएँ अत्यधिक प्रमाण में पहुँचे। इसी समय हजार से ज्यादा कपड़ों की झोपड़ियाँ बनवायी गई थीं। धर्मशालाएँ खचाखच भर गईं।

तीर्थक्षेत्र कमेटी तथा महासभा आदि कई सभाओं के अधिवेशन भी हुए। तीर्थराज जयध्वनि से गूँज उठा था। धर्मशालाओं के बाहर भी यत्र-तत्र लोग अपना स्वतंत्र स्थान जमाए हुए नजर आते थे। नीचे धरती ऊपर आसमान, पूर्ण निर्विकल्प होकर जनता प्रतिष्ठा यात्रा के उन्मुक्त आनन्द रस का पान करती थी। लोग कहते हैं यात्री कहीं तीन लाख से ऊपर होंगे। अस्तु! पंडित आशाधरजी के शब्दों में कहना होगा, 'दलित कलिलीला-विलसितम्' यही पर्वतराज का सजीव मनोहारी दृश्य था। अनेक भाषा, अनेक वेशभूषा में व्यापक तत्त्व

की एकता का होने वाला प्रत्यक्ष दर्शन अलौकिक ही था। निर्विकल्प वस्तु के अनुभव के समय विशेष का तिरोभाव और सामान्य का आविर्भाव होता ही है ठीक इसी तरह सांस्कृतिक एकता का यह सजीव स्वरूप प्रभावशाली बन गया।

श्री सम्मेदशिखर की वंदना करके वहां से मंदारगिरी, चम्पापुरी, पावापुरी, कुण्डलपुर, राजगृही, गुणावां आदि अनेक पवित्र तीर्थ क्षेत्रों की संघ ने यात्रा की।

स्वर्गीय 108 पायसागर जी महाराज आचार्य श्री को पारसमणि की उपमा देते थे। अपनी जीवनी के आधार से ही समादर की भावनाओं से वे अपने प्रवचनों में आचार्यश्री के विषय में गौरवगाथा गाते थे। स्व. आचार्यश्री कुंथुसागर महाराज जी आचार्यश्री के शिष्यों में से उद्भट संस्कृतज्ञ प्रवक्ता रहे, जिनके द्वारा गुजरात में विशेष प्रभावना हुई। आचार्यश्री वीरसागर जी और शिष्य परम्परा से जो जागरण का कार्य हुआ, वह अविस्मरणीय एवं सातिशय ही है।

प्राणांतिक आक्रमण से संघ ऐसे बच पाया – दिनाँक 6 जनवरी 1930 में संघ धौलपुर स्टेट के राजाखेड़ा शहर में पहुँचा। तीन-चार दिन तक महती धर्मप्रभावना हुई। यह धर्मप्रभावना भी एक अजैन भाई को सहन नहीं हुई। एक संगठन बन गया। लाठी, काठी, तलवार आदि शस्त्रास्त्रों के साथ करीब 500 लोगों के आक्रमण की गुप्त योजना भी बन गई।

मृगमीनसज्जनानां, तृणजल-संतोष-विहितवृत्तीनाम् ।
लुब्धक-धीवर-पिशुना, निष्कारण वैरिणो जगति।।

घासपत्ती पर अपना गुजारा करने वाले हिरन, जल में अपना निर्वाह करने वाली मछलियाँ और सन्तोषामृत का पान करने वाले साधु पुरुषों से भी शिकारी, मछलीमार और दुर्जन व्यर्थ ही शत्रुता करते हैं। यह सनातन दुष्टता की परंपरा संसार में चली ही आ रही है। इसकाप्रत्युत्तर राजाखेड़ा में आया। छिद्दीलाल ब्राह्मण के नेतृत्व में आक्रमण की तैयारी हो गईथी। संघ का हत्याकाण्ड होने को ही था कि महाराज की अंतरंग स्वच्छता से अंतर्ज्ञान द्वारा जो कुछ भी संकेत मिला हो, उन्होंने संघस्थ त्यागियों से प्रतिदिन की अपेक्षा शीघ्र आहारकरके लौटने को कहा। तदनुसार समस्त त्यागी चर्या करके 9 बजे के भीतर ही मंदिर जी में वापिस लौट आये। आक्रामक लोग नारे लगाते हुए मंदिर जी की ओर बढ़े। जैनियों ने इस प्राणांतिक आक्रमण का प्रतिकार भी किया। स्टेट की ओर से पुलिस सहायता भी दौड़ी हुई आयी। पुलिस दल ने आक्रामकों को गिरफ्तार कर लिया लेकिन महाराज जी ने करुणाभाव प्रदर्शितकर उनको छोड़ देने के लिए पुलिस अधिकारी मंडल को बाध्य किया।

जातिलिंगविकल्पेन, येषां च समयाग्रहः।
तेऽपि न प्राप्नुवंति, परम पदमात्मनः।।

अर्थात् जाति और वेष-परिवेष का विकल्प साधना में पूरा बाधक एवं हेय होता है। इसी प्रकार तेरहपंथ या बीसपंथ के विकल्पों से आत्म साधना अर्थात् परमार्थ-भूत धर्मसाधना अत्यन्त दूर होती है। धर्मदृष्टि के अभाव का ही परिणाम है। टंकोत्कीर्ण धर्म साधना लुप्त प्रायः होती जा रही है और तेरह-बीस पंथ के झगड़े दृढ़मूल बनाए जा रहे हैं और उन्हें धर्माचार का रूप दिया जा रहा है। समाज में आज भी जो भाई तेरह और बीस पंथ के नाम से समयसमय पर

वितंडा उपस्थित करते हैं और समाज के स्वास्थ्य को ठेस पहुँचाते हैं, उनकी उस प्रवृत्ति को जो समाज के लिए महारोग के समान है, हम समझते हैं आचार्यश्री का सामंजस्यपूर्ण दूरदृष्टिता का व्यवहार एक अद्‌भुत कल्याणकारी अमृतोपम रसायन हो सकता है।

शास्त्रशुद्ध व्यापक दृष्टिकोण – ईसवी सन् 1933 का चातुर्मास आचार्य संघ का ब्यावर (राज.) में था।

महाराज जी का अपना दृष्टिकोण हर समस्या को सुलझाने के लिए मूल में व्यापक ही रहता था। योगायोग की घटना है इसी चौमासे में कारंजा गुरुकुल आदि संस्थाओं के संस्थापक और अधिकारी पूज्य ब्र. देवचंद जी दर्शनार्थ ब्यावर पहुँचे। पूज्य आचार्यश्री ने क्षुल्लक दीक्षा के लिए पुनः प्रेरणा की। ब्रह्मचारी जी का स्वयं विकल्प था ही। वे तो इसीलिए ब्यावर पहुँचे थे। साथ में और एक प्रशस्त विकल्प था कि "यदि संस्था-संचालन होते हुए क्षुल्लक प्रतिमा का दान आचार्यश्री देने को तैयार हों, तो हमारी लेने की तैयारी है।" इस प्रकार अपना हार्दिक आशय ब्रह्मचारी जी ने प्रगट किया। 5-6 दिन तक उपस्थित पंडितों में काफी बहस हुई। पंडितों का कहना था कि क्षुल्लक प्रतिमा के व्रतधारी संस्था संचालन नहीं कर सकते जबकि आचार्यश्री का कहना था कि पूर्व में मुनि संघ में ऐसे मुनि भिारहा करते थे जो जिम्मेवारी के साथ छात्रों का प्रबंध करते थे और ज्ञानदानादि देते थे। यह तो क्षुल्लक प्रतिमा के व्रत श्रावक के व्रत हैं। अंत में आचार्य महाराजजी ने शास्त्रों के आधार से अपना निर्णय सिद्ध किया। फलतः ब्र. श्री देवचंद जी ने क्षुल्लक पद के व्रतों को पूर्ण उत्साह के सथ स्वीकार किया। आचार्य श्री ने स्वयं अपनी आन्तरिक भावनाओं को प्रकट करते हुए दीक्षा के समय "समंतभद्र" इस भव्य नाम से क्षुल्लकजी को नामांकित किया और **पूर्व के समंतभद्र आचार्य की तरह आपके द्वारा धर्म की व्यापक प्रभावना हो,** इस प्रकार के शुभाशीर्वादों की वर्षा की। कहाँ तो बाल की खाल निकालकर छोटी-छोटी सी बातों को जटिल समस्या बनाने की प्रवृत्ति और कहाँ आचार्यश्री की प्रहरी के समान सजग दिव्य दूर-दृष्टिता?

चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री – संघ विहार करता हुआ गजपंथा सिद्धक्षेत्र पर आया। यहाँ पर सम्मिलित सब जैन समाज ने आचार्यश्री को "चारित्र-चक्रवर्ती" पद से विभूषित किया। महाराजश्री की आत्मा निरंतर निरूपाधिक आत्मस्वरूप के अमृतोपम महास्वाद को सहज प्रवृत्ति से बराबर लेने में परमानंद का अनुभवन करती थी। उन्हें इस उपाधि से क्या? वे पूर्ववत् उपाधि-शून्य स्वभावमग्न ही थे। साधु परमेष्ठी या आचार्य परमेष्ठी के आंतरिक जीवन का यथार्थ दर्शन यह चक्षु का विषय नहीं होता। वह अपनी शान का अलौकिक ही होता है। जहाँ जीवनाधार श्वासोच्छ्वास की तरह इन परमेष्ठियों का श्वांस आत्मा को स्वात्मा में स्थिर बनाये रखने के लिए होता है, वहाँ उच्छ्वास विश्व में अपनी आदर्श प्रवृत्ति के द्वारा शांति स्थापना में और धर्मप्रभावना में उत्कृष्ट निमित्त के रूप में उपस्थित होने के लिए होता है। आचार्यश्री की लोकोत्तम, लोकोत्तर अलौकिकता और वैभवशाली विभूतिमत्ता इसी में थी। "चारित्र-चक्रवर्ती" उपाधि का महाराज को तो कोई हर्ष-विषाद ही नहीं था। "चरित्र के चक्रवर्ती तो भगवान् ही हो सकते हैं। हम तो लास्ट नम्बर के मुनि हैं। हमें उपाधि से क्या? स्वभाव से

निरूपाधिक आत्मा ही हमारी शरण है।" समाज ने उनकी गुणग्राहकता और त्याग-संयम के प्रति निष्ठा का जो औचित्यपूर्ण दर्शन किया, वह योग्य ही हुआ।

एक प्रशस्त विकल्प – वर्षों से एक प्रशस्त संकल्प चित्त में था। जैसे माँ के पेट में बच्चा हो, वह करुणा कोमल चित्त की उद्भट चेतना थी। महाराष्ट्र की जैन जनता प्रायः किसानकार (किसान) है। धर्म-विषयक अज्ञान की भी उनमें बहुलता है। आचार्यश्री का समाज के मानस का गहरा अध्ययन तो अनुभूति पर आधारित था ही। 'शास्त्रज्ञान' और 'तत्त्वविचार' की ओर इनका मुड़ना बहुत ही कठिन है। प्रथमानुयोगी जनमानस के लिए एक भगवान का दर्शन ही अच्छा निमित्त हो सकता है। इसी उद्देश्य को लेकर किसी अच्छे स्थान पर विशालकाय श्री बाहुबली भगवान की विशालमूर्ति कम से कम 25 फीट की खड़ी कराने का प्रशस्त विकल्प जहाँ कहीं भी आचार्यश्री पहुँचते थे, प्रकट करते थे परन्तु सिलसिला बैठा नहीं। 'भावावश्यं भवेदेव न हि केनापि रुध्यते'। होनहार होकर ही रहती है। योगायोग से इसी समय अतिशयक्षेत्र बाहुबली (कुंभोज) में वार्षिकोत्सव होने वाला था। 'संभव है सत्य संकल्प की पूर्ति हो जाये' इसी सदाशय से आचार्यश्री के चरण बाहुबली की ओर यकायक बढ़े। 18 मील का विहार वृद्धावस्था में पूरा करते हुए नांद्रे से महाराज श्री क्षेत्र पर संध्या में पहुँचे। पवित्र आनन्दोल्लास का वातावरण पैदा हुआ। संस्था के मंत्री श्री सेठ बालचंद देवचंद जी और मुनि श्री समंतभद्र जी से संबोधन करते हुए भरी सभा में आचार्यश्री का निम्न प्रकार समयोचित और समुचित वक्तव्य हुआ। जो आचार्यश्री की पारगामी दृष्टि-सम्पन्नता का पूरा सूचक था।

'तुमची इच्छा येथे हजारो विद्यार्थ्यांनी राहावे शिकावे अशी पवित्र आहे हे मी ओळखतो, हा कल्पवृक्ष उभा करून जाते। भगवंताचे दिव्य अधिष्ठान सर्व घडवून आणील। मिळेल तितका मोठा पाषाण मिळवा व लवकर हे पूर्ण करा।मुनिश्री समंतभद्राकडे वळून म्हणाले, 'तुझी प्रकृति ओळखतो, हे तीर्थक्षेत्र आहे। मुनींनी विहार करावयास पाहिजेअसा सर्वसामान्य नियम असला तरी विहार करूनही जे करावयाचे ते येथेच एके ठिकाणी राहून करणे। क्षेत्र आहे। एके ठिकाणी राहाण्यास काहीच हरकत नाही, विकल्प करू नको,काम लवकर पूर्ण करून घे। काम पूर्ण होईल! निश्चित होईल!! हा तुम्हा सर्वांना आशीर्वाद आहे।'

आपकी आंतरिक पवित्र इच्छा है कि यहाँ पर हजारों विद्यार्थी धर्माध्ययन करते रहें इसका मुझे परिचय है। यह कल्पवृक्ष खड़ा करके जा रहा हूँ। भगवान का दिव्य अधिष्ठान सब काम पूरा कराने में समर्थ है। यथासंभव बड़े पाषाण को प्राप्त कर इस कार्य को पूराकर लीजिये।" मुनि श्री समंतभद्र जी की ओर दृष्टि कर संकेत किया-"आपकी प्रकृति (स्वभाव) को बराबर जानता हूँ। यह तीर्थभूमि है। मुनियों को विहार करते रहना चाहिए, इस प्रकार सर्वसामान्य नियम है। फिर भी विहार करते हुए जिस प्रयोजन की पूर्ति करनी है, उसे एकस्थान में यहीं पर रहकर कर लो। यह तीर्थक्षेत्र है एक जगह पर रहने के लिए कोई बाधा नहीं है। विकल्प की कोई आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार से कार्य शीघ्र पूरा हो सके पूरा प्रयत्न करना। कार्य अवश्य ही पूरा होगा। सुनिश्चित पूरा होगा। आप सबको हमारा शुभाशीर्वाद है।"

पूर्णिमा का शुभ मंगल दिन था। शुभ संकेत के रूप में पच्चीस हजार रुपयों की

स्वीकृति भी तत्काल हुई। काम लाखों का था। यथाकाल सब कामपूर्ण हुआ। ''पयसा कमलं कमलेन पयः पयसा कमलेन विभाति सरः।'' पानी से कमल, कमल से पानी और दोनों से सरोवर की शोभा बढ़ती है। ठीक इस कहावत के अनुसार भगवान् की मूर्ति से संस्था का अध्यात्म वैभव बढ़ा ही है। अतिशय क्षेत्र की अतिशयता में अच्छी वृद्धि ही हुई। अब तो मूर्ति के प्रांगण में और सिद्धक्षेत्रों की प्रतिकृतियाँ बनने से यथार्थ में अतिशयता या विशेषता आयी है। महाराज का आशीर्वाद ऐसे फलित हुआ।

टंकोत्कीर्ण श्रुत की टंकोत्कीर्ण सुरक्षा– वि. सं. 2000 (ई. सन् 1944) की घटना है। आचार्यश्री का चौमासा कुंथलगिरि में था। पं. श्री सुमेरचंद जी दिवाकर से धर्म चर्चा के समय यह पता चला कि अतिशयक्षेत्र मूड़बिद्री में विद्यमान धवला, जयधवला और महाबंध इन सिद्धान्त ग्रंथों में से महाबंध ग्रंथ की ताड़पत्री प्रति के करीब 5000 सूत्रों का भागांश कीटकों का भक्ष्य बनने से नष्टप्राय हुआ। भगवान महावीर के उपदेशों से साक्षात् संबंधित इस जिनवाणी का केवल उपेक्षामात्र से हुआ विनाश सुनकर आचार्यश्री को अत्यन्त खेद हुआ। आगम का विनाश यह अपूरणीय क्षति है। इनकी भविष्य के लिए सुरक्षा हो तो कैसी हो? इस विषय में पर्याप्त विचार परामर्श हुआ। अंत में निर्णय यह हुआ कि इन ग्रंथराजों के ताम्रपत्र किये जायें और कुछ प्रतियाँ मुद्रित भी हों।

प्रातःकाल की शास्त्र सभा में आचार्यश्री का वक्तव्य हुआ। संघपति श्रीमान् सेठ दडिमचंद जी, श्रीमान सेठ चंदूलाल जी बारामती, श्रीमान सेठ रामचन्द जी धनजी दावडा आदि सज्जन उपस्थित थे। संघपति जी का कहना था कि जो भी खर्चा हो, वे स्वयं करने के लिए तैयार हैं। फिर भी आचार्यश्री के संकेतानुसार दान संकलित हुआ, जो करीब डेढ़ लाख हुआ।

''श्री 108 चारित्रचक्रवर्ती शांतिसागर दिगम्बर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धार संस्था'' नामक संस्था का जन्म हुआ। ग्रंथों के मूल ताड़पत्री प्रतियों के फोटो लेने का और देवनागरी प्रति से ताम्रपट्ट कराने का निर्णय हुआ। नियमावली बन गई। कार्य की पूर्ति के लिए ध्रुवनिधि की वृद्धि करने का भी निर्णय हुआ। कार्य की पूर्ति शीघ्र उचित रूप से किस प्रकार हो, इस विषय में पत्र द्वारा मुनि श्री समंतभद्र जी से परामर्श किया गया। ''आर्थिक व्यवहार चाहे जिस प्रकार हो, यदि कार्य पूरा करना है तो कार्यनिर्वाह की जिम्मेदारी किसी एक जिम्मेदार व्यक्ति के सुपुर्द करनी होगी। हमारी राय में श्रीमान बालचंद जी देवचंद जी शाह बी.ए.को यह कार्य सौंपा जाये'' इस सलाह के अनुसार कार्य की व्यवस्था बन गई। आचार्यश्री के संकेत को आज्ञा के रूप में श्री सेठ बालचंद जी ने शिरोधार्य कर कार्य संभाला। प्रतियों के मुद्रण तथा ताम्रपत्र के रूप में टंकोत्कीर्ण कराने का कार्य श्रीमान् विद्यावारिधि पं. खूबचंद जी शास्त्री, श्रीमान् पं. पन्नालाल जी सोनी, श्रीमान् पं. सुमेरचंद जी दिवाकर, श्रीमान् पं.हीरालाल जी शास्त्री, श्रीमान् पं. माणिकचंद जी भीसीकर आदि विद्वानों के यथासंभव सहयोग से पूरा हो पाया; जिसमें 9 वर्षों का समय लगा।

कुंथलगिरी क्षेत्र पर बृहज्जिनबिम्ब का विकल्प– कुंथलगिरी दक्षिण का सीमावर्ती सुन्दर सिद्धक्षेत्र है। ''यहाँ पर एक विशालकाय बाहुबली भगवान की मूर्ति हो तो अच्छा

होगा।'' यह भव्य आशय कमेटी के सभी सदस्यों को एकदम पसंद आया। पूज्य आचार्यश्री के समक्ष कार्य पूरा होना असंभव था। महाराज जी ने यम सल्लेखना का नियम कर ही लिया था। इसी अवसर पर एक समाचार विदित हुआ कि दक्षिण में म्हैसूर स्टेट के अंतर्गत ''बस्ती हल्ली'' देहात में एक 15 फुट ऊँची मनोज्ञ मूर्ति है और वह एक अजैन भाई के खेत में करीब अज्ञात अवस्था में पड़ी हुई है, उसी को लाकर खड़ी करने का विचार किया गया। स्व. श्रीमान् सेठ राव जी देवचंद शहा आदि सज्जन स्वयं वहाँ पहुँचे। काफी प्रयास किया गया परन्तु सफलता नहीं मिल पायी। केवल फोटो मात्र मिल गया। उसे ही सिर पर रखकर आचार्यश्री ने धन्यता के भाव प्रगट किये। वीतरागता की साधना में परम वीतराग मूर्ति के दर्शन से अद्‌भुत आनन्द की और धर्मोल्लास की लहर होना सहज था। आचार्यश्री की चर्या पर वह दृग्गोचर हुई। आचार्य महाराज के भव्य भावों की पूर्ति होनी ही चाहिए, इस प्रकार का भव्य भाव समीपवर्ती सेवाभावी सरल प्रकृति श्रेष्ठीवर्य श्रीमान् नेमचन्द जी मियाचंद जी गांधी, नातेपुते के चित्त में आया। ''यदि महाराज जी की आज्ञा हो, तो इसी क्षेत्र के ऊपर 18-20 फुट ऊँची बाहुबली भगवान् की मूर्ति विराजमान करने का मेरा भाव है'' इसके पश्चात् सन् 1970 में 18 फीट ऊँची बाहुबली भगवान् की मूर्ति पहाड़ी के ऊपर पूर्वाभिमुख विराजमान होकर प्रतिष्ठा भी सम्पन्न हो गई। इस प्रकार एक तरह से महाराज के सम्पूर्ण काम सिद्ध हुए।

हीरक जयंती महोत्सव– जैनियों की दक्षिणकाशी फलटण नगरी धर्मकार्यों को उत्साह तथा उल्लास के साथ करती ही आ रही है। सन् 1952 की घटना है। पूज्य श्री की जीवनी के 80 वर्ष पूरे हुए। इस प्रसंग से हीरक जयंती महोत्सव सम्पन्न करने का निर्णय एक स्वर से किया गया। आचार्यश्री को उत्सवों से कोई हर्ष-विषाद नहीं था। एक तरह से त्याग तपस्या का ही यह गौरव था। जून की दिनाँक 12, 13, 14 ये तीन दिन विशेष आनन्दोत्सव के रहे। सर्वत्र चहल-पहल रही। भारत के कोने-कोने से हजारों भाई फलटण पहुँचे। इंदौर से रावराजा सेठ राजकुमार सिंह जी, रावराजा सेठ हीरालाल जी पहुँचे। बम्बई से सेठ रतनचंद जी, सेठ लालचंद जी, अजमेर से सेठ भागचंद जी, कलकत्ता, देहली, कोल्हापुर, नांदगांव, नागपुर, सिवनी, जबलपुर, बेलगांव, बाहुबली, सांगली, शेडवाल, भोज आदि शहरों से सज्जन उत्सव में सम्मिलित हुए, सभा सम्मेलन हुए। योजनाबद्ध रूप से श्रद्धांजलियों का समर्पण हुआ, पूजा प्रभावना हुई। ताम्रपत्रों के ऊपर उत्कीर्ण धवलादि ग्रंथों का हाथियों के ऊपर जुलूस निकालकर वे ग्रंथ भक्ति-भावपूर्वक पूज्य आचार्यश्री को समारोह के साथ समर्पण किये गये। छोटे-मोटे सभी कार्यों में विशेष सातिशय सजीवता दिखलायी देती थी। स्वयं फलटण स्टेट के अधिपति श्रीमान् मालोजीवराव निंबालकर फलटण नगरी का यह अहोभाग्य समझते रहे। हीरक जयंती महोत्सव के निमित्त से एक सचित्र स्मरणिका प्रकाशित हुई, जिससे उत्सव का सचेतन स्वरूप सुस्पष्ट होता है। इस समय महाराजश्री के अनुभव रसपूर्ण हुए। 'रत्नत्रयधर्म की साधना जीवन का एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए। धर्म से ही शेष पुरुषार्थों की प्राप्ति एवं सफलता होती है' ऐसे ही भावपूर्ण वक्तव्य हुए। आचार्यश्री जीवन के क्षणों का मूल्य बराबर जानते थे। उपचार और परमार्थ दोनों का परिज्ञान उन्हें

बराबर था। सदा की भांति वे अपनी आत्म साधना में विशेष तन्मय हुए। रत्नत्रयों के श्रेष्ठ आराधक रत्नत्रयों के अकम्प प्रकाश में अविचलरूप से सुस्थित थे। निर्ग्रन्थ साधु की विशेषता के पुण्यदर्शन बराबर होते थे। आचार्य महाराज खूब जानते थे।

तिथिपर्वोत्सवा सर्वे, व्यक्ता येन महात्मना।
अतिथि ते 'वजानीयात् शेषमभ्यागतं विदुः।।

सब ही तिथियाँ, पर्व और उत्सव संबंधी विकल्पों से ये महर्षि सदा ही दूर होते हैं इसीलिए इनका यथार्थ नाम 'अतिथि' होता है।

सूक्ष्म से सूक्ष्म विचार करने पर आत्मा तो यही कहती है कि, महाराज वर्तमान युग के महान् सत्पात्र तो रहे ही हैं परन्तु उनके द्वारा जो ज्ञानदान और दृष्टिदान हुआ है, उससे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि महाराज श्रेष्ठ से श्रेष्ठ दानी भी रहे। पात्र समझकर जो चढ़ाया गया, वह थोड़ा था और दाता समझकर जो कुछ समाज के द्वारा लिया गया वह भी थोड़ा था, इस सत्य को स्वीकार करना होगा।

आदर्श सल्लेखना– विचार और भावनाओं का समान संयोग आचार्यश्री के जीवन की एक विशेषता थी। भावनाओं में आकर शक्ति को व्यर्थ खोना या व्यर्थ खोने का विकल्प करना यह असंभव था। भविष्य की आशा में वर्तमान को गंवाना वे प्रकाश के बदले में अंधकार को खरीदना जैसा मानते थे। वर्षों से अखण्ड रूप से की गयी हजारों मीलों की पदयात्रा, यथासंभव अनुकूल-प्रतिकूल आहार का संयोग, उपवासों की धाराप्रवाहिता, वृद्धावस्था, अल्पनिद्रा आदि कारणों से दृष्टि में पूर्व की अपेक्षा अधिकाधिक मंदता का अनुभव होने लगा। वैद्य और डाक्टरों से समय-समय पर बराबर परामर्श होता था। शुद्ध उपचारों का विशुद्ध भावनाओं से अमल भी होता था। दृष्टि विनाश होने के बाद समितियों का पालन और प्राणस्वरूप मुनिचर्या असंभव है, इसलिए साधनों की सुरक्षा सावधानीपूर्वक अप्रमाद भाव से आचार्यश्री प्रारंभ से ही करते रहे। आचार्यश्री विनोद में शरीर की सवारी को घोड़ा कहा करते थे। जब घोड़े से काम लेना है और घोड़ा बराबर काम देता है तो उसे मात्रा में चना देना ही होगा। शरीर की या इन्द्रियों की गुलामी यह कोई अलग चीज होती है। विदेही भावनाओं के धनी चारित्र-चक्रवर्ती इस जन्म से प्राप्त घोड़े से ठीक काम लेना बराबर जानते थे। राणा प्रताप के ईमानदार 'चेतक' की तरह महाराजश्री की देह ने महाराज की आत्मा को पूरा साथ दिया परन्तु देहधर्म की अपनी प्रकृति है उसे शिथिल और कमजोर पाकर महाराज श्री बिल्कुल सचेत हो गये। शुरू में कांचबिन्दु बतलाया गया और अंत में डा. आरोसकरजी के द्वारा मोतियाबिंदु के सुनिश्चित होने पर निर्विकल्परूप से सल्लेखना ही एकमात्र शरण है, ऐसी अन्तरंग में दृढ़ धारणा हो गई।

समाधि, सल्लेखना, समाधिमरण, वीरमरण, मृत्यु महोत्सव ये ऐसे सार्थक शब्द हैं जो यह बतलाते हैं कि साधक किन पवित्र भावनाओं से सावधानीपूर्वक मृत्यु का सहज स्वागत करता है। शरीर का गल जाना, विनश जाना यह अटल प्रकृति है। वास्तव में जन्म जितना सत्य होता है, उतनी ही मृत्यु सत्य होती है परन्तु भोगी बहिर्दृष्टि लौकिक पुरुष जन्म का सहर्ष स्वागत करता है, आनन्द मनाता है और मृत्यु से डरता है, मृत्यु के नाममात्र से रोता है, यही विकल्प-

परायण अज्ञानी की अज्ञानता है। जन्म होना, छोटे से बड़ा होना, परिपुष्ट होना औरअंत में गल जाना यही प्राणियों के प्राणों का स्वभाव होता है। जीवन का कोई विश्वास नहीं, यह सब कोई कहते हैं और नित्य नये विकल्पों को करते भी जाते हैं, यही अज्ञानियों का अज्ञान है। महाराजजी ने अपने जीवन से पूरा काम लिया था। रसपूर्ण गन्ने का पूरा रस निकाला हुआ था। सारहीन भाग यदि ठीक ढंग से जलता हो तो उसमें शोक वृथा होता है, विकल्प निरर्थक होते हैं। वस्तुतत्त्व के आधार से संकल्प-विकल्पों का परित्याग और आत्मस्वरूप स्थिरता यह समाधि या सल्लेखना की आत्मा होती है और आहार के क्रमशः विधिपुरस्सर परित्यागपूर्वव होने वाला देहविसर्जन यह समाधि का कलेवर होता है। शरीर की धारणा बनी रहना यह उपजीवन है और स्वरूप में अकंप स्थिरता यह आत्मा का जीवन है। यह दोनों का सुनिश्चित स्वरूप है वैसे ही जीवन के लिए उपजीवन होता है न कि उपजीवन के लिए जीवन यह पारस्परिकसंबंध भी उतना ही निश्चित है। जीवन का यह सम्यग्दर्शन पूज्य महाराज जी की युवावस्था से ही यथार्थ रूप में था। इसलिए परलोक यात्रा की तैयारी सहर्ष भावना से पूरी हो गई थी। दिनाँक18-8-1955 को महाराज जी का यम सल्लेखना का ज्यों ही निर्णय प्रगट हुआ, समाज भर को, देशभर को भूचाल जैसा धक्का लगा, जो स्वाभाविक ही था।

अंतिम आहार और परित्याग – अन्न आहार के रूप में अंतिम ग्रास दिनाँक 18-8-1955 को दिया गया। दिनाँक 26-8-1955 को मध्यान्ह में सल्लेखना विधि के अनुसार महाराजश्री के द्वारा क्षमायाचना का, क्षमा के आदान-प्रदान का भाव व्यक्त हुआ। यह सम्पूर्ण दृश्य अभिनव था। सभा में गंभीरता का वातावरण भर आया। उपचार विधि में पूरी परमार्थता किस प्रकार हो सकती है इसका वह मूर्तिमान रूप था। बस अब सदा के लिए अन्नाहार बंद हो गया। केवल पानी मात्र की छूट थी। आगे चलकर पानी का भी दिनाँक 28-8-1955 को परित्याग कर दिया। फिर भी मंदिरों के दर्शन, यथाशक्ति वंदना, अभिषेक, पूजा इत्यादि का अवलोकन, मंत्रस्मरण आदि में कोई खण्ड नहीं रहा। लोगों की बढ़ती हुई भीड़ का क्या कहना? कुंथलगिरि की उस वीरान पहाड़ी का क्या कहना? कुंथलगिरि की उस वीरान पहाड़ी में जनसागर उमड़ पड़ा। जिसको भी समाचार मिला और अनुकूलता मिली, वह साधकोत्तम महापुरुष के अंतिम दर्शन के लिए वहाँ पर पहुँचा। महासाधक की वह महायात्रा थी। सम्मिश्र भावनाओं का सम्मिश्र रस रूप दृष्टिगोचर होता था। जहाँ महाराजश्री स्वाभाविक रूप से सहज-भावना से अपूर्व आनन्द रस में उन्मुक्त मन से अधिकाधिक मग्न होते हुए नजर आते थे। शांतिसागर स्वनामधन्य शांतिसागर अथाह शांति के सागर में निमग्न थे। उसी समय जनता सागर शोक में डूबता हुआ दृष्टिगोचर होता था। कुंथलगिरी का दृश्य कुछ अपूर्व था। बाहर की दुनिया में जैनाजैन समाचार पत्रों में अनुकूल-प्रतिकूल समाचार साभिप्राय प्रगट होते ही थे। अपने विकल्पों को सबके लिए छूट होती ही है। व्यक्तिस्वातंत्र्य का युग है। कोई "जैन साधु की पवित्र महायात्रा" लिखता था कोई "जैन साधूची आत्महत्या" लिखता था। युद्ध में मृत्यु हो तो "वीरमरण" कहना। देशभक्त को यदि फाँसी हो तो उसे हुतात्मता कहना यहाँ तक ही लौकिक दृष्टि की पहुँच हो सकती है। इससे

भी बढ़कर साधक की समाधि हो सकती है, इसका इनको क्या पता? धर्म और अहिंसा जैसी पवित्र-पवित्रतम वस्तुओं की वर्षों से समय-असमय में बराबर खाल उतारी जाती है, वहाँ सल्लेखना और समाधि जैसी अत्यंत पवित्र लोकोत्तम "व्रतशिरोरत्न" की जो छनबीन की चेष्टा ज्ञानी कहे जाने वाले अज्ञानियों के द्वारा हुई, उसका क्या हिसाब? पवित्रता की विडंबना ही मानो इस युग की विशेषता रही हो। जिसके पास सच्चा मापतोल ही नहीं, सूखी लकड़ियों के साथ गीली को और कोयले को ही तौलने का तराजू हो, वह क्या उनसे रत्नों काऔर जवाहरात का माप तोल कर सकता है? धर्मकांटा कोई अलग वस्तु होती है। यही बात सच्ची है

महाराजश्री की शांत स्वात्मनिर्भरता यथापूर्व हाथी की चाल से कदम-कदम पर आगे के लिए बढ़ती ही जा रही थी। दिनाँक 22-8-1955 को महाराजश्री के संकेत से ही श्रीमान् सेठ बालचंद देवचंद शहा का ताम्रपट्ट तथा ग्रंथमालाओं से की गई श्रुतसेवा के लिए सभासंयोजना पूर्वक सत्कार किया गया और मानपत्र समर्पण किया गया। स्वयं महाराजश्री आशीर्वाद देने के लिए उपस्थित हुए।

अंतिम दर्शन—शास्त्रों में सामायिक और छेदोपस्थापना का जो भी सूक्ष्म वर्णन आता है, निर्विकल्प शुद्धात्म स्वरूप मग्नता और विकल्पों में से निर्विकल्प शुद्ध स्वरूप में मग्न होने का जो सावधान प्रयत्न, इन दोनों अंतरंग प्रक्रियाओं का जराजर्जर तपस्या क्षीण देही महाराज की विदेही सावधान प्रवृत्ति में जो प्रत्यक्ष दर्शन हो पाया, वह सुनिश्चित ही अद्‌भुत, अपूर्व, चैतन्यचमत्कारपूर्ण था। वैसे ही महाराज की निद्रा अत्यल्प थी। अब तो आत्म जागरण का सविशेष स्वरूप था। थकावट से निवृत्त होते ही ऊँकार के उच्चारण से जागृति होती थी। उनका संकेत था "हमे औरों के द्वारा जगाने की आवश्यकता ही नहीं है।" हम हमारे आत्मा में, हमारे घर में पूर्ण सावधान हैं। सातिशय आत्मबल का ही प्रभाव समझना होगा। महाराज अंत तक परमात्म-स्मरण कर पाये। णमोकार मंत्र का उच्चारण कर पाये। ऊँकार की वही अनुभव रस पूर्ण ध्वनि निकटवर्तियों को अन्त तक बराबर सुनने को मिली। भीतर ही सावधानता का और कौन सा बाहरी रूप हो सकता है? दिनाँक 18-9-1955 को भाद्रपद शुक्ल दूज रविवार, प्रातःकाल ठीक 6 बजकर 50 मिनट पर महाराज श्री की परमपवित्र निरामय तपस्या से पुनीत आत्मा "ॐ सिद्धाय नमः" के उच्चारण के साथ अंतिम श्वांस ले पायी। मोक्षमार्ग के साधक ने इस पर्याय की अपनी पवित्र जीवन यात्रा इस प्रकार पूरी कर परलोक यात्रा के लिए प्रस्थान कर लिया।

अब भक्तों के लिए आचार्य महाराज की केवल पुण्यस्मृति और तपस्या-पुनीत देहमात्र शेष थी। विमान बनाया गया। जयनाद से आकाश गूंज उठा। श्रीमान् सेठ गोविन्द जी रावजी दोशी तथा श्री सौ. कुमुदिनीबाई ने विमान यात्रा का बहुमान किया। विमानयात्रा के बाद दाहसंस्कार निर्धारित उसी स्थान पर हुआ, जहाँ आज भी इस युगपुरुष की चरणपादुकाएँ विद्यमान हैं। अब ऊपर से संगमरमर की सर्वांगसुन्दर छत्री भी बन गई है, प्रेरणा लेने वाले भक्तों के लिए चरण आज भी प्रेरणा दे रहे हैं।

आचार्यश्री की रत्नत्रय साधना अत्यन्त कठोर थी। वे शरीर को पूर्णरूपेण परद्रव्य

समझकर उसे कभी-कभी ही आहार प्रदान करते थे। 35 वर्ष के दीक्षित जीवन में आचार्यश्री ने 25 वर्ष से भी अधिक दिन उपवास में निकाले हैं, जिनकी सूची निम्न प्रकार है–

उपवासों की संख्या	कितनी बार	उपवास के कुल दिन
1) 16 दिन का	3 बार	48
2) 10 दिन का	1 बार	10
3) 9 दिन का	6 बार	54
4) 8 दिन का	7 बार	56
5) 7 दिन का	6 बार	42
6) 6 दिन का	6 बार	36
7) 5 दिन का	6 बार	30
8) 4 दिन का	6 बार	24
9) अंतिम 36 दिन तक के उपवास में स्वर्गवास	1 बार	36
		योग-336 दिन

व्रत नाम	उपवासों की संख्या
1. चारित्रशुद्धि व्रत	1234
2. तीस चौबीसी व्रत	720
3. कर्मदहन व्रत (तीन बार)	468
4. सिंहनिष्क्रीड़ित व्रत (तीन बार)	270
5. सोलहकारण व्रत (16/16)	256
6. श्रुतपंचमी व्रत	36
7. विहरमान व्रत (20 तीर्थंकर व्रत)	20
8. दशलक्षण पर्व	10
9. सिद्धों के व्रत (8)	8
10. अष्टाह्निका व्रत	8
11. गणधरों के व्रत गणधरों के 1452 उपवास होते हैं। आचार्य श्री 200 ही कर पाये थे।	200
12. अतिरिक्त व्रत	6372
	योग 9602

आचार्यश्री ने सन् 1920 में निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा ली। इस समय से लेकर 1955 तक के 35 वर्षों में महाराज ने 6338 दिन उपवास किया। इसका अर्थ यह है कि 36 वर्ष के मुनि जीवन के 25 वर्ष 7 मास अनशन में बीते। महाराज इतने दिन निराहार रहे। क्या इस कठोर

उग्र तपस्या में आचार्यश्री की कोई बराबरी कर सकता है? नहीं। यह तो उनकी विशिष्ट आत्मशक्ति का प्रतीक है।

आचार्यश्री द्वारा किए गए चातुर्मासों की सूची

	स्थान का नाम	सन्
1.	कागनोली	1920
2.	नसलापुर	1921
3.	ऐनापुर	1922
4.	कोन्नूर	1923
5.	समडोली	1924
6.	कुम्भोज	1925
7.	नांदडी	1926
8.	बाहुबली डोंगर	1927
9.	कटनी	1928
10.	ललितपुर	1929
11.	मथुरा	1930
12.	दिल्ली	1931
13.	जयपुर	1932
14.	ब्यावर	1933
15.	उदयपुर	1934
16.	गोरल	1935
17.	प्रतापगढ़	1936
18.	गजपंथा	1937
19.	बारामती	1938
20.	पावागढ़	1939
21.	गोरल	1940
22.	अकलूज	1941
23.	कौरची	1942
24.	डिग्गज	1943
25.	कुंथलगिरि	1944
26.	फलटन	1945
27.	कवलाना	1946
28.	सोलापुर	1947
29.	फलटन	1948
30.	कवलाना	1949

31.	गजपंथा	1950
32.	बारामती	1951
33.	लोणद	1952
34.	कुंथलगिरि	1953
35.	फलटन	1954
36.	कुंथलगिरि	1955

(1955 भादों सुदी 2 को स्वर्गवासी हुए)

मानव कल्याण का आधार सत्य और अहिंसा

(आचार्य महाराज का अंतिम अमर संदेश)

(परमपूज्य आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज ने कुंथलगिरि तीर्थ पर आमरण अनशन के 26वें दिन ता. 8 सितम्बर को शाम के 5 बजे मराठी में मानव-कल्याण के लिए जो उपदेश दिया, वह रिकार्ड किया गया था। आचार्य श्री के उस अमर संदेश का हिन्दी में अनुवाद समाज की जानकारी के लिए यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।)

ॐ नमः सिद्धेभ्यः-3, पंचभरत, पंचऐरावत के भूत भविष्यत्काल संबंधी भगवान्तों को नमस्कार हो। तीस चौबीसी भगवन्तों को, श्री सीमन्धर आदि बीस तीर्थंकर भगवन्तों को नमस्कार हो। भगवान ऋषभदेव से महावीर पर्यंत के 1452 गणधर देवों को नमस्कार, चारण ऋद्धिधारी मुनियों को नमस्कार,चौंसठ ऋद्धिधारी मुनीश्वरों को नमस्कार। अन्तकृतकेवलियों को नमस्कार। प्रत्येक तीर्थंकर के तीर्थ में होने वाले 10-10 घोरोपसर्ग विजेता मुनीश्वरों को नमस्कार हो।

ग्यारह अंग चौदह पूर्व प्रमाण शास्त्र महासमुद्र है। उनका वर्णन करने वाले श्रुतकेवली नहीं हैं, उसके ज्ञाता केवली, श्रुतकेवली भी अब नहीं हैं। उसका वर्णन हमारे सदृश क्षुद्र मनुष्य क्या कर सकते हैं? जिनवाणी सरस्वती 'श्रुतदेवी' अनन्त समुद्र तुल्य है। उसमें कहे गये जिनधर्म को जो धारण करता है, उसका कल्याण होता है, उसको अनन्त सुख मिलता है, उससे मोक्ष की प्राप्ति होती है ऐसा नियम है। एक अक्षर ॐ है। उस एक ॐ अक्षर को धारण करके जीवों का कल्याण हुआ है। दो बन्दर लड़ते-लड़ते सम्मेदशिखर से स्वर्ग गये। सेठ सुदर्शन तिर गया। सप्त व्यसनधारी अंजन चोर तिर गया। कुत्ता महानीच जाति का जीव जीवन्धरकुमार के णमोकार मंत्र के उपदेश से देव हुआ। इतनी महिमा जैनधर्म की है किन्तु (श्वांस लेते हुए) जैनियों को अपने धर्म में श्रद्धा नहीं है।

जीव और पुद्गल पृथक्-पृथक् हैं – अनन्त काल से जीव पुद्गल से भिन्न है, यह सब लोग जानते हैं पर विश्वास नहीं करते। पुद्गल भिन्न है जीव अलग है। तुम जीव हो, पुद्गल जड़ है इसमें ज्ञान नहीं है, ज्ञान-दर्शन चैतन्य जीव में है। स्पर्श-रस-गंध-वर्ण पुद्गल में हैं, दोनों के गुण, धर्म अलग-अलग हैं। पुद्गल के पीछे पड़ने से जीव को हानि होती है। तुम जीव हो, मोहनीय कर्म जीव का घात करता है। जीव के पक्ष से पुद्गल का

अहित है। पुद्गल से जीव का घात होता है। अनन्त सुख स्वरूप मोक्ष जीव को ही होता है पुद्गल को नहीं, सब जग इसको भूला है। जीव पंच पापों में पड़ा है। दर्शन मोहनीय के उदय ने सम्यक्त्व का घात किया है। क्या करना चाहिए? सुख प्राप्ति की इच्छा है, तो दर्शन मोहनीय का घात करो, चारित्र मोह का नाश करो, आत्मा का कल्याण करो, यह हमारा आदेश व उपदेश है। मिथ्यात्व कर्म के उदय से जीव संसार में फिरता है। मिथ्यात्व का नाश करो, सम्यक्त्व को प्राप्त करो। सम्यक्त्व क्या है? सम्यक्त्व का वर्णन समयसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़, गोम्मटसार आदि बड़े-बड़े ग्रंथों में है, पर इन पर श्रद्धा कौन करता है? आत्म-कल्याण करने वाला ही श्रद्धा करता है। मिथ्यात्व को धारण मत करो, यह हमारा आदेश व उपदेश है। ॐ सिद्धाय नमः।

कर्म की निर्जरा का साधन आत्म-चिंतन–तुम्हें क्या करना चाहिए? दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय करो, आत्मचिन्तन से दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय होता है, कर्मों की निर्जरा भी आत्मचिन्तन से होती है।

दान से, पूजा से, तीर्थ यात्रा से पुण्य-बंध होता है। हर धर्म कार्य से पुण्य का बंध होता है किन्तु कर्म की निर्जरा का साधन आत्म-चिंतन है। केवलज्ञान का साधन-आत्मचिंतन है। अनन्त कर्मों की निर्जरा का साधन आत्म-चिन्तन है। आत्म-साधन के सिवा कर्मनिर्जरा नहीं होती है। कर्म निर्जरा बिना केवलज्ञान नहीं होता और केवलज्ञान बिना मोक्ष नहीं होता। क्या करें? शास्त्रों में आत्मा का ध्यान उत्कृष्ट 6 घड़ी, मध्यम 4 घड़ी और जघन्य 2 घड़ी कहा है। कम से कम 10-15 मिनट ध्यान करना चाहिए। हमारा कहना यह है कि कम से कम 5 मिनट तो आत्म-चिन्तन करो। इसके बिना सम्यक्त्व नहीं होता है। सम्यक्त्व के पश्चात् संयम धारण करो। सम्यक्त्व होने पर 66 सागर यहाँ रहोगे। चारित्र मोहनीय का क्षय करने केलिए संयम धारण करना चाहिए, इसके बिना चारित्र मोहनीय का क्षय नहीं होता। संयम धारण किये बिना सातवाँ गुणस्थान नहीं होता और सातवें गुणस्थान के बिना उच्च आत्म-अनुभव नहीं होता। वस्त्रधारी को सातवाँ गुणस्थान नहीं होता है।

सम्यक्त्व और संयम धारण के बिना समाधि संभव नहीं–ॐ सिद्धाय नमः। समाधि दो प्रकार की है–एक निर्विकल्प समाधि और दूसरी सविकल्प समाधि। गृहस्थ सविकल्प समाधि धारण करता है। मुनि हुए बिना निर्विकल्प समाधि नहीं होगी अतएव निर्विकल्प समाधि पाने के लिए पहले मुनि पद धारण करो। इसके बिना निर्विकल्प समाधि कभी नहीं होगी। निर्विकल्प समाधि हो तो सम्यक्त्व होता है, ऐसा कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है। आत्म-अनुभवके सिवाय नहीं है। व्यवहार सम्यक्त्व खरा (परमार्थ) नहीं है। फूल जैसे फल का कारण है, व्यवहार सम्यक्त्व आत्म-अनुभव का कारण है। आत्म-अनुभव होने पर खरा (परमार्थ) सम्यक्त्व होता है। निर्विकल्प समाधि मुनि पद धारण करने पर होती है। सातवें गुण-स्थान से बारहवें पर्यंत निर्विकल्प समाधि होती है। तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान होता है, ऐसा शास्त्रमें कहा है। यह विचार कर डरो मत कि क्या करें? संयम धारण करो। सम्यक्त्व धारण करो। इसके सिवाय कल्याण नहीं है, संयम और सम्यक्त्व के बिना कल्याण नहीं है। पुद्गल और आत्मा भिन्न हैं,

यह ठीक-ठीक समझो। तुम सामान्य रूप से जानते हो, भाई, बन्धु, माता, पिता पुद्गल से संबंधित हैं, उनका जीव से कोई संबंध नहीं है। जीव अकेला है। बाबा (भाइयों)! जीव का कोई नहीं है। जीव भव-भव में अकेला जावेगा। देवपूजन, गुरुपास्ति, स्वाध्याय, संयम, दान और तप ये धर्म कार्य हैं। असि, मसि, कृषि, शिल्प, विद्या, वाणिज्य ये 6 कर्म कहे गये हैं। इनसे होने वाले पापों का क्षय करने को उक्त धर्म क्रिया कही है, इससे मोक्ष नहीं है। मोक्ष किससे मिलेगा? केवल आत्म-चिंतन से मोक्ष मिलेगा और किसी क्रिया से मोक्ष नहीं होता।

जिनवाणी का अपूर्व माहात्म्य– भगवान की वाणी पर पूर्ण विश्वास करो, इसके एक-एक शब्द से मोक्ष पा जाओगे। इस पर विश्वास करो। सत्य वाणी यही है कि एक आत्म-चिंतन से सब साध्य है और कुछ नहीं है। बाबा (भाई)! राज्य, सुख, सम्पत्ति, संतति सब मिले हैं, मोक्ष नहीं मिलता है। मोक्ष का कारण एक आत्म-चिंतन है। इसके बिना सद्गति नहीं होती है।

सारांश-"धर्मस्य मूलं दया" प्राणी का रक्षण दया है। जिन धर्म का मूल क्या है? "सत्य और अहिंसा।" मुख से सब सत्य-अहिंसा बोलते हैं। मुख से भोजन कहने से क्या पेट भरता है? भोजन किये बिना पेट नहीं भरता है, क्रिया करनी चाहिए। बाकी सब काम होंगे। सत्य अहिंसा पालो। सत्य से सम्यक्त्व है। अहिंसा से दया है। किसी को कष्ट नहीं दो। यह व्यवहार की बात है। सम्यक्त्व धारण करो, संयम धारण करो। इसके बिना कल्याण नहीं हो सकता।

उन चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज के परिचय के पश्चात् अब आप उनके प्रथम शिष्य एवं प्रथम पट्टाधीश आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज का भी परिचय पढ़ें–

प्रथम पट्टाधीश आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज

ओह! कितना सुन्दर स्वप्न! प्रातःकाल की मधुरिम बेला में स्वप्निल निद्रा से उठकर भाग्यवती ने प्रभु का स्मरण किया।

रात्रि के पिछले प्रहर में देखा हुआ स्वप्न तो शायद सत्य होता है, यही सोचती हुई भाग्यवती मन में उस स्वप्न के बारे में चिन्तन करती हैं कि **मैंने आज सफेद बैल देखा है। हो सकता है कोई होनहार बालक मेरे गर्भ में आने वाला हो।** हर्ष से पुलकित होकर भाग्यवती अपने दैनिक कार्यों में लग जाती हैं।

महाराष्ट्र प्रान्त के **औरंगाबाद** जिले में एक छोटे से कस्बे **ईर** नामक ग्राम में **रामसुख** नाम के एक योग्य चिकित्सक श्रेष्ठी रहा करते थे। उन्होंने **भाग्यवती** धर्मपत्नी को पाकर मानो सचमुच ही राम जैसे सुख को प्राप्त कर लिया था। गंगवाल गोत्रीय ये दम्पत्ति श्रावक कुल के शिरोमणि थे। प्रतिदिन मंदिर में जाकर देवदर्शन करना, भक्ति-पूजा आदि उनके जीवन के आवश्यक अंग थे। **माता-पिता के संस्कार बालक पर पड़ना अवश्यंभावी है।** पत्नी के सुखद स्वप्न को सुनकर रामसुख भी बड़े हर्षित हुए, उन्होंने स्नेह से पत्नी की ओर देखते हुए कहा–

भागू! ऐसा लगता है तुम एक होनहार महापुरुष बालक की माँ बनने वाली हो। हो सकता है संसार में तेरे मातृत्व की ख्याति फैलाकर यह बालक श्वेत वृषभ के सदृश कीर्ति वाला बन जावे।

भाग्यवती लज्जापूर्वक सिर झुकाकर पति के चरण स्पर्श करती है और अपने प्रथम पुत्र तीन वर्षीय बालक गुलाबचंद को साथ लेकर मंदिर में भगवान की पूजन करने चली जाती है। खुशियों के आवेग में भाग्यवती अपनी सारी सुध-बुध भूल गईं। देर दिन चढ़नेतक वह प्रभु की भक्ति में ही लीन रहीं, तब ध्यान तोड़ा गुलाब ने। **माँ! घर चलो, बहुत देर हो गई, मुझे भूख लगी है।** भक्ति का आनंद वहीं छोड़कर भागू बेटे के साथ घर आ गई।

दिवस और रात्रि के स्वर्णिम क्षण बीतने लगे। अब तो भाग्यवती प्रतिदिन पति से तीर्थयात्रा पर चलने को कहने लगीं क्योंकि इस द्वितीय पुत्र के गर्भ में आने से उसे तीर्थवंदना का दोहला जो हुआ था। रामसुख अपनी पत्नी को तीर्थों की वंदना हेतु लेकर चल दिए। हर्ष और आनंद के साथ दोनों ने सिद्धक्षेत्र, अतिशय क्षेत्र आदि कितने ही तीर्थों की वंदना की और वापस घर आ गए।

देखते ही देखते नवमास हर्षोल्लास में व्यतीत हो गए। वि. सं. 1933, ईसवी सन् 1876 में आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा के दिन भाग्यवती ने एक अपूर्व चाँद को जन्म दिया जिसके आगमन की अप्रतिम प्रसन्नता ने माता की प्रसव वेदना भी समाप्त कर दी।

सारे गाँव में बाजे-नगाड़े की ध्वनि होने लगी। चारों ओर खुशियाँ ही खुशियाँ छाई हुई थीं। सौभाग्यवती महिलाएँ मंगल गीत गा रही थीं। पुत्र जन्मोत्सव की खुशी में सेठ रामसुख जी फूले नहीं समा रहे थे। हर्षातिरेक में गरीबों को खूब दान बाँट रहे थे।

इस होनहार बालक का नाम घर वालों ने मिलकर हीरालाल रखा। सवा महीने के बाद जब माता और बालक को लेकर सभी नगर निवासी जिनमंदिर गए, तब वहाँ भगवान के समक्ष जैनसंस्कृति के अनुसार एक पण्डितजी ने बालक के कानों में णमोकार मंत्र सुनाकर सर्वसाक्षीपूर्वक अष्टमूलगुण धारण करवाया तथा 8 वर्ष तक इन मूलगुणों को पालन करवाने की जिम्मेदारी माता पर डाली। बार-बार आँखें खोलकर हीरा मानों कह रहा था कि मैं सब कुछ समझ रहा हूँ।

चंद्रमा की कलाओं के समान हीरालाल भी अपनी बालक्रीडाओं को करता हुआ वृद्धिंगत होने लगा। इस घर में मानो कोई साधारण पुत्र नहीं, अपितु किसी अद्वितीय पुरुष का अवतार ही हुआ है। माता-पिता इसके जन्म से अपने को धन्य समझने लगे और अपना अधिक से अधिक समय हीरा की चमक-दमक देखने में बिताने लगे।

लोक में कहा जाता है कि जीवन में दुख के किंचित् क्षण भी अत्यन्त लम्बे लम्हे जैसे लगते हैं और सुखमय लम्बा जीवन कब जल्दी ही निकल जाता है, ज्ञात नहीं हो पाता। इसी प्रकार से बालक हीरालाल सात वर्ष के पूरे होकर आठवें वर्ष में प्रवेश कर गए। माता-पिता ने अब शुभ मुहूर्त में उपनयन संस्कार का आयोजन कराया।

इस कृतयुग की आदि में भगवान ऋषभदेव ने जब मनुष्यों को जीने की कला सिखाई थी, उस समय उपनयन आदि मनुष्योचित क्रियाओं का वर्णन भी किया था। उसी विधि के अनुसार बालक हीरालाल को मंगलचौक के ऊपर बिठाकर मंत्रन्यासपूर्वक संस्कार किए गए और तीन सूत्र का धागा गले में डाल दिया गया जो कि रत्नत्रय का प्रतीक होता है। अब वह

बालक से श्रावक बन गया। अपनी समस्त क्रियाओं का पालन करते हुए हीरालाल अब पाठशाला में पढ़ने भी जाने लगा। बुद्धि की तीक्ष्णता तो थी ही, स्कूल में सभी अध्यापकों के प्रेमपात्र बन गए और लड़कों के नायक चुन लिए गए। इनके शुभ लक्षण और ज्ञान की प्रखरता देखकर अनायास ही लोग कह उठते थे कि **यह तो जरूर कोई महापुरूष होने वाला है।** चंचलबुद्धि, मानकषाय की मंदता हीरालाल के जीवन की प्रमुख विशेषता थी।

हिन्दी, उर्दू इन दोनों भाषाओं में उन्होंने सातवीं कक्षा तक अध्ययन किया, उसके पश्चात् पिता की आज्ञानुसार व्यापार कार्य प्रारम्भ कर दिया।

हीरालाल अब तक 15 वर्ष के युवक हो गए थे। पिता के साथ व्यापार तो करते थे किन्तु इनका चित्त उदासीन रहने लगा और ये अपना अधिक समय भगवान की पूजन, भक्ति एवं शास्त्र स्वाध्याय में व्यतीत करते।

बेटे की यह उदासीनता पिता को सहन न हो पाई। यद्यपि उनको किंचित् अहसास था और लोगों के मुख से भी सुना करते थे कि हीरालाल मात्र एक घर में ही अपनी चमक को सीमित न रखकर सारे संसार को जगमगाएगा किन्तु वैराग्य के चंगुल में कहीं मेरा बेटा फंस न जाए इसलिए शीघ्र ही उसे विवाह-बंधन में बाँधने की युक्ति सोचने लगे।

सुन्दर, रूपवान और बुद्धिमान हीरालाल की शादी के रिश्ते जगह-जगह से आ रहे थे। एक दिन पिताजी ने उनसे शादी के विषय में कुछ राय लेनी चाहिए अतः हीरालाल से बोले-

बेटा! अब तुम एक होनहार नवयुवक के रूप में युवावस्था देहलीज पर खड़े हो अतः मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे घर में आने वाली बहू का चयन स्वयं करो। माँ ने भी कहा - **मुझे तो तेरे जैसी ही सुन्दर और सुघड़ बहू चाहिए। सुन हीरा! अच्छी कन्या पसंद करना जो कि मेरी कुछ सेवा भी कर सके।**

इसी प्रकार से सारे परिवार के लोग उससे रागात्मक वार्तालाप करने लगे किन्तु जैसे कमल कीचड़ में रहकर उससे सदैव अलग ही रहता है, वैसे ही हीरालाल इन सबकीबातों में संसार की असारता ढूँढते रहते थे। आखिर एक दिन पुत्र हीरा ने संकोच छोड़करमाता-पिता के सामने अपने मन की बात कह ही डाली, पिताजी के चरण स्पर्श करते हुए हीरालल बोले–

पिताजी! आप व्यर्थ ही मेरी शादी के लिए परेशान हो रहे हैं। शादी तो संसार की अनादिकालीन श्रुत और परिचित परम्परा है मुझे तो भगवान महावीर के पथ पर चलकर अपनी आत्मा का कल्याण करना है अतः मेरा दृढ़ निश्चय है कि मुझे शादी नहीं करना है।

माता-पिता पत्थर की प्रतिमा सदृश स्तब्ध खड़े रह गए। ओह! माँ ने मौन तोड़ा–

हीरा! मैंने अपनी छोटी बहू पाने के लिए न जाने कितने अरमान संजोए हैं। (ग्यसे डाँटती हुई) एक शब्द कहकर तू हम लोगों को निराश करना चाहता है? शादी करने का कर्म तुम्हारा नहीं, यह तो माता-पिता का परम कर्तव्य होता है और आज्ञाकारी बेटा माँ-बापकी आज्ञा का सदैव पालन करना ही अपना कर्तव्य समझता है। मुझे अपने लाडले से ऐसा ही विश्वास है।

हीरालाल माँ की इतनी बड़ी चुनौती से भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने कहा - **यह तो मोह की लीला है। माँ! वास्तव में तो न कोई किसी का पुत्र है न माता-पिता। प्रत्येक प्राणी**

का चैतन्य तो परम वीतरागी होता है और मुझे उसी चैतन्य की खोज करने में अपने कर्तव्य की सार्थकता प्रतीत होती है। वे माँ से बोले–

मैं ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ अपने मन में। आपसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप मेरे द्वारा सांसारिक बहू लाने की आशा सर्वथा छोड़ दें। मैं तो मुक्तिकन्याको बहू बनाने का आह्वान कर चुका हूँ जो सदा अनंतकाल अखंड सुख को प्रदान करने वाली होती है।

मां! मुझे आशीर्वाद दो। मैं अपने पथ को निष्कंटक बना सकूँ। (झुकते हुए) पिता रामसुख दुख के असीम सागर में डूबे हुए हैं। उन्हें हीरालाल की शादी नहीं करने से अधिक दुख इस बात का है कि क्या बेटा हम सबको छोड़कर चला जाएगा?

नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा। रोते हुए रामसुख जी हीरालाल को छाती से लगाते हुए कहते हैं–

मेरे चाँद! तू समझता नहीं है कि त्यागमार्ग में कितने कष्ट होते हैं। तलवार कीधार पर तेरे जैसे सुकुमार का चलना श्रेयस्कर नहीं है। मेरी बात मानो बेटा! घर बसाओऔर हमारे बुढ़ापे का सहारा बनो। मैं तेरा वियोग कभी नहीं सहन कर सकता हीरा।

हीरालाल अब कोई नादान नहीं थे। वे परिवार की सारी स्थिति को समझ रहे थेअन्ततोगत्वा उन्होंने ब्रह्मचारी रूप में ही घर में रहते हुए माता-पिता की सेवा करना स्वीकारकिया।

रामसुख भी अब कुछ आश्वस्त हुए कि बहू नहीं आए तो न सही, किन्तु कम से कम बेटा तो हमारे जीवन का अंग बना ही रहेगा।

घर में रहकर भी हीरा द्वारा अपनी चमक में निखार लाने हेतु रसपरित्यागपूर्वक भोजन करना एवं शास्त्रों का मनन-चिन्तन पूर्व की अपेक्षा अधिक प्रारम्भ हो गया।

दिवस, मास और वर्ष व्यतीत होने लगे। कुछ दिनों के बाद ही रामसुख जी का स्वर्गवास हो गया। पितृवियोग के साथ-साथ कतिपय दिवसों के पश्चात् ही माता भी स्वर्ग सिधार गईं। अब हीरालाल के लिए मात्र भाई का ही संबल था।

ज्ञानी के लिए तो सबसे प्रबल संबल उसका तत्वज्ञान ही होता है, उसी का आधार लेकर हीरालाल ने अपनी मंजिल को अब निराबाध समझ लिया किन्तु योग्य गुरु के अभाव में अभी दीक्षा की भावना को बल नहीं प्रदान किया।

वि.सं. 1973, सन् 1916 में औरंगाबाद के निकट कचनेर नामक अतिशय क्षेत्र में धार्मिक पाठशाला खोलकर हीरालाल जी बालकों को निःशुल्क धार्मिक शिक्षण देने लगे पुनः औरंगाबाद में भी एक विद्यालय खोलकर उन्होंने धार्मिक अध्ययन कराया। दोनों जगह उन्होंने अवैतनिक अध्ययन कराया था और उस प्रान्त में सभी के द्वारा गुरूजी कहे जाने लगे थे। यह अध्ययनक्रम सात वर्ष तक चला जिसके मध्य निःस्वार्थ सेवाभाव से जनमानस के नस-नस में जैनधर्म का अंश भर दिया था।

वि.सं. 1978, सन् 1921 में नांदगांव में ऐलक श्री पन्नालाल जी का चातुर्मास होने वाला था। चातुर्मास के समाचार सुनकर हीरालाल गुरुदर्शन की लालसा से नांदगांव पहुंच गए। अब तो हीरालाल को अपनी स्वार्थसिद्धि का मानो स्वर्ण अवसर ही प्राप्त हुआ था अतः मौके

का लाभ उठाते हुए आषाढ़ शुक्ला ग्यारस को ऐलक श्री पन्नालाल जी के पास सप्तमप्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिए पुनः नांदगांव के ही एक प्रसिद्ध श्रावक खुशालचंद जी को हीरालाल ने अपना साथी बना लिया अर्थात् उनके हृदय के अंकुरित वैराग्य को बीजरूप दे दिया और उन्हें भी सप्तमप्रतिमा के व्रत दे दिए।

युगल ब्रह्मचारी की जोड़ी अब तो राम-लक्ष्मण की जोड़ी बन गई थी। दोनों ही अपने-अपने वैराग्य को वृद्धिंगत करने हेतु उपवास, रसपरित्याग आदि करने लगे जिससे प्रारम्भ से ही उनका शरीर तपस्या की बलिवेदी पर चढ़कर मजबूत बन गया था।

ब्र. हीरालाल और खुशालचंद अभी योग्य गुरु के अभाव में इससे आगे नहीं बढ़ सके थे। इसी अवस्था में उन्होंने घी, नमक, तेल और मीठे का जीवनपर्यंत के लिए त्याग कर दिया था।

सच्चे हृदय से भाई गई भावना अवश्य एक दिन भवनाशिनी सिद्ध होती है इसी प्रकार हीरालाल जी को ज्ञात हुआ कि दक्षिण के कोन्नूर ग्राम में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज नाम के दिगम्बर मुनि विराजमान हैं। बस फिर क्या था, दोनों ब्रह्मचारी शीघ्र ही आचार्यश्री के पास पहुँच गए। दर्शन-वंदन करके आशीर्वाद प्राप्त किया। जिस प्रकार आचार्य धरसेन स्वामी के पास पुष्पदंत और भूतबलि दो शिष्य उनकी इच्छापूर्ति के लिए पहुँचे थे उसी प्रकार मानो आचार्यश्री शांतिसागर महाराज के पास युगल ब्रह्मचारी उनकी अविच्छिन्न परम्परा चलाने का भावी स्वप्न संजोकर पहुँचे थे।

गुरुवर की कठोर तपश्चर्या और त्याग की चरम सीमा को देखकर दोनों बड़े प्रभावित हुए और उन्हीं से दीक्षा लेना निश्चित कर लिया। आचार्यश्री ने दोनों भव्यात्माओं को दूरदृष्टि से परखकर दीक्षा देना तो स्वीकार कर लिया किन्तु एक बार घर जाकर परिवारजनों को सन्तुष्ट करके क्षमायाचनापूर्वक आज्ञा लेकर आने का आदेश दिया।

संसारसिंधुतारक गुरुदेव का आदेश शिरोधार्य करते हुए युगल ब्रह्मचारी अपने घर आ गए। औपचारिकरूप से सबसे क्षमायाचना करके स्वीकृति माँगी, तब बड़े भाई गुलाबचंद और उनकी पत्नी का हृदय विह्वल हो गया। यद्यपि दोनों इस बात को समझ चुकेथे कि ब्रह्मा की शक्ति भी अब हीरा को घर में बाँधकर नहीं रख सकती है किन्तु मोह का प्रबलआवेग आँसुओं के सहारे फूट पड़ा। हीरालाल को उन्होंने बहुत समझाया कि **भाई! अब तुमने सप्तमप्रतिमा तो ले ही ली है, घर में रहकर अभ्यास करो। मैं तुम्हारी किसी भी चर्या में बाधक नहीं बनूँगा। हीरा! तुम मुझे अकेला छोड़कर मत जाओ।**

भाभी बार-बार देवर के चरणों का स्पर्श करती हुई विलाप करने लगी। वह बोली- **भैया! मुझ अभागिन के भाग्य से सास-ससुर की सेवा का सुख विधाता ने छीन लिया, अबआपके जाने से तो हम बिल्कुल असहाय हो रहे हैं। मैं आपकी कुछ सेवा करके अपने को भाग्यशालीसमझूँगी।**

वैरागी के विरक्त मन को संसार की कोई भी रागिनी लुभा नहीं सकती है। उसी प्रकार हीरालाल पत्थर के समान कठोर बने रहे, उन्होंने समझाते हुए भाई-भाभी को कहा-

भैया! आप और भाभी तो मेरे माता-पिता के समान हैं। आप मुझे मत रोकें। देखो! इस असार संसार में हम लोगों ने कितने भवों को धारण कर दुख उठाए हैं। आर्तरौद्र ध्यनों को

करके सदा अपने संसार को बढ़ाया ही है। ओह! न जाने किस पुण्योदय से यह मनुष्य पर्याय प्राप्त करके त्याग के भाव बने हैं जो संसार की स्थिति का ह्रास करने वाले हैं।हे तात! अब मुझे सहर्ष अनुमति प्रदान करें, मेरा एक-एक पल आत्मचिंतन के लिए इंतजार कर रहा है।

पत्थर की मूर्ति की भाँति जड़वत् खड़े-खड़े भाई-भाभी हीरालाल को आत्मपथ की ओर जाते देखते रहे और मौनपूर्वक लघु भ्राता के निराबाध जीवन के लिए आशीर्वाददान करते रहे।

सबके मोह को त्यागकर हीरालाल जी अब पूर्ण निश्चिंत होकर खुशालचंद को साथ लेकर वापस आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के पास पहुँच गए। उस समय आचार्यश्री कुम्भोज नगर में विराजमान थे। गुरुचरणों में पहुँचकर हीरालाल प्रसन्नता के अथाह सागर में गोते लगाने लगे। उनको नमन कर पुनः दीक्षा के लिए याचना की।

आचार्यश्री ने परीक्षा के तौर पर उन ब्रह्मचारियों को कहा–

हे भव्ययुगल! जैन दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व खूब विचार मंथन कर लो। जिसे लेना ही नहीं वरन् एक सबल योद्धा की भाँति पालन करना अति आवश्यक है क्योंकि तलवार की धार के समान यह जैनी दीक्षा लाखों कष्ट-उपसर्गों के आने पर भी छोड़ी नहीं जाती। सर्दी-गर्मी, नग्नता, केशलोंच, एक बार भोजन आदि समस्त परीषह समतापूर्वक सहन करने वाला ही अपने आत्मतत्त्व को सिद्ध कर सकता है।

यद्यपि आचार्यदेव की दूरदृष्टि उनके अन्तस्तल को पहचान चुकी थी किन्तु खूब ठोक-बजाकर एक बार दोनों की दृढ़ता तो देखनी ही थी इसीलिए उन्होंने पुनः प्रश्न किया–

शिष्यों! यदि तुम वास्तविक रूप में संसार से विरक्त होकर मेरे पास आए हो एवं इन कष्टों को सहन करने की पूर्ण क्षमता रखते हो तो मुझे दीक्षा देने में कोई एतराज नहीं है।

निराश मन में आशा की किरणें फूट पड़ीं, रश्मियाँ बिखरने लगीं और प्रकाश चारों ओर फैल गया। हृदय में ज्ञानसूर्य उदित हो गया। सच्चे हृदय से दोनों ने स्वयं को गुरुचरणों में समर्पित कर दिया और कहने लगे–

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव।।

हे भगवन् ! आप सबके निष्कारण बंधु हैं, जैसे भी चाहें हम लोगों का कल्याण करें। हम तो मात्र आपकी शरण में आए हुए अबोध शरणागत हैं।

आचार्यश्री ने उभय ब्रह्मचारी को अपना शिष्य बना लिया एवं दीक्षा के लिए तत्पर उन दोनों को धार्मिक अध्ययन कराना प्रारम्भ कर दिया। श्रावक की चर्या, उनके कर्तव्य आदि बतलाते हुए ग्यारह प्रतिमाओं का स्वरूप बताया।

ऊँचे महल की ऊँचाई तक पहुँचने के लिए सीढ़ियों पर क्रम-क्रम से चढ़ना पड़ता है तभी मंजिल प्राप्त हो सकती है उसी प्रकार मोक्ष महल तीनलोक से भी ऊँचा है उसे प्राप्त करने के लिए क्रम-क्रम से श्रावक, क्षुल्लक, ऐलक, मुनि आदिरूपी सीढ़ियों पर चढ़ना पड़ता है तभी वह मंजिल प्राप्त हो सकती है।

इसी क्रम के अनुसार आचार्यदेव ने ब्रह्मचारीयुगल को सर्वप्रथम श्रावकोत्तम क्षुल्लक

दीक्षा देने का निर्णय किया और शुभमुहूर्त निकाला वि. सं. 1980, सन् 1923, फाल्गुन शुक्ला सप्तमी का पवित्र दिवस।

हीरालाल यद्यपि मुनिदीक्षा को ही सर्वप्रथम धारण करना चाहते थे किन्तु आचार्यश्री की आज्ञानुसार शारीरिक परीक्षण हेतु क्षुल्लक दीक्षा में ही सन्तोष प्राप्त किया।

दो नवयुवक ब्रह्मचारियों की दीक्षा का समाचार सुनकर सारी जनता उमड़ पड़ी। अश्रुपूरित नयनों से लोग इनके वैराग्य की प्रशंसा कर रहे थे और जय-जयकारों के अविरल स्वर से अपने पापों का क्षालन कर रहे थे।

आचार्यश्री अपने नवशिष्यों के मस्तक पर दीक्षा के संस्कार करने में मग्न थे। संस्कारों के साथ-साथ पारम्परिक और शास्त्रिक नियम भी नवदीक्षित शिष्यों को ग्रहण कराए।

दोनों ने विशाल जनसमूह के मध्य खड़े होकर आचार्यश्री के द्वारा प्रदत्त समस्त बिमों को सविनय स्वीकार किया एवं जीवन भर गुरु के अनुशासन में रहने का संकल्प लिया। तभी गुरुदेव ने सभा के मध्य **ब्र. हीरालाल को क्षुल्लक श्री वीरसागर और ब्र. खुशालचंद को क्षुल्लक चंद्रसागर** नाम से सम्बोधित किया, जिसका सभी ने जय-जयकारों के साथ स्वागत किया।

मस्तक पर प्रथम संस्कारों के कारण क्षुल्लक वीरसागर बड़े और चंद्रसागर छोटे क्षुल्लक जी बन गए।

मात्र चादर और लंगोटी को धारण करके दोनों शिष्य आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के दाएँ-बाएँ हाथ बन गए थे। गुरु के साथ ये भी पैदल ही विहार करने लगे।

कुछ ही दिनों में वि.सं. 1981, सन् 1924 में संघ समडोली ग्राम में पहुँचा और वहीं वर्षायोग स्थापना हुई। सतत ज्ञानाराधना एवं अपनी चर्या में सावधान क्षुल्लक वीरसागर को अभी पूर्ण संतुष्टि नहीं थी, वे तो दिगम्बरी दीक्षा धारण करके कठोर तपश्चरण करना चाहते थे।

गुरु आज्ञा में निरन्तर प्रयत्नशील शिष्य को एक न एक दिन गुरु का अनुग्रह अवश्य प्राप्त होता है।

एक दिवस क्षुल्लक वीरसागर ने आचार्यश्री के पास जाकर निवेदन किया –

गुरुदेव! मैं मुनिव्रत की दीक्षा लेना चाहता हूँ । आप विश्वास रखें, मैं आपके निर्देशानुसार प्रत्येक चर्या का निर्दोष रीति से पालन करूँगा।

शिष्य की तीव्र अभिलाषा एवं पूर्ण योग्यता देखकर आचार्यश्री ने समडोली में ही इन्हें मुनि दीक्षा प्रदान की। अब तो वीरसागर जी क्षुल्लक से मुनि वीरसागर बन गए और मानो आज तो त्रैलोक्यसम्पदा ही प्राप्त हो गई हो। ऐसी असीमित प्रसन्नता वीरसागर जी ने अपने जीवन में प्रथम बार प्राप्त की थी।

इसीलिए आचार्यश्री शांतिसागर महाराज के प्रथम शिष्य होने का परम सौभाग्य मुनि वीरसागर जी को ही प्राप्त हुआ।

मुनि दीक्षा के पश्चात् आपने आचार्य संघ के साथ दक्षिण से उत्तर तक बहुत सी तीर्थवंदनाएँ करते हुए पदविहार किया। गुरुदेव के चरण सानिध्य में अनमोल शिक्षाओं को जीवन में गाँठ बाँधकर आपने रखने का निर्णय किया था इसीलिए अन्त तक गुरुभक्ति का प्रवाह हृदय में प्रवाहित रहा।

आचार्यश्री के साथ आपने 12 चातुर्मास किए। उन गाँवों के नाम–

श्रवणबेलगोल, कुम्भोज, समडोली, बड़ी नांदनी, कटनी, मथुरा, ललितपुर, जयपुर, ब्यावर, प्रतापगढ़, उदयपुर तथा देहली।

उस समय तक आचार्यश्री के 12 शिष्य बन चुके थे–

मुनि वीरसागरजी, चन्द्रसागर, नेमिसागर, कुन्थुसागर, सुधर्मसागर, पायसागर, नमिसागर, श्रुतसागर, आदिसागर, अजितसागर, विमलसागर, पार्श्वकीर्ति ।

एक बार आचार्यश्री ने सभी शिष्यों को निकट बुलाकर धर्मप्रचारार्थ अलग-अलग विहार करने का आदेश दिया और संघ को 2-3 भागों में विभक्त कर दिया। यद्यपि सभी शिष्य बहुत दुःखी हुए क्योंकि वे पूज्यश्री की छत्रछाया से वंचित नहीं होना चाहते थे किन्तु–

सिंह लगन सत्पुरुष वचन, कदलीफल इक बार।
तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़े न दूजी बार।।

इसी सूक्ति के अनुसार आचार्य महाराज एक बार आज्ञा के पश्चात् कभी उसमें परिवर्तन नहीं करते थे।

अन्त में गुरुवर्य का आशीर्वाद प्राप्तकर सभी ने यत्र-तत्र विहार किया एवं आचार्यश्री की समस्त शिक्षाओं के माध्यम से धर्मप्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। प्रमुख शिष्य मुनि वीरसागर जी ने अपने साथ में मुनि श्री आदिसागर और अजितसागर महाराज को लेकर विहार किया।

वि. सं. 1992, सन् 1935 में गुरुवियोग के दुःख को सहन करते हुए मुनि श्री वीरसागर जी के संघ का प्रथम चातुर्मास गुजरात के ईडर शहर में हुआ, जहाँ अपूर्व धर्मप्रभावना हुई। इस शताब्दी में लुप्त साधु परम्परा को जीवन्तरूप प्रदान करने वाले आचार्यश्री को सभी नर-नारियों ने एक नरपुंगव के रूप में देवता मानकर मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

समस्त शिष्यों के विहार करने के पश्चात् आचार्यश्री के पास मात्र एक मुनि शिवसागर जी आग्रहपूर्वक रह गए थे जिन्हें अहर्निश गुरुचरणों का सानिध्य प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

आत्मकल्याण के साथ-साथ परकल्याण की भावना में तत्पर वीरसागर महाराज ने गाँव-गाँव में विहार करते हुए अनेक शिष्यों को क्षुल्लक, ऐलक, मुनि बनाया तथा अनेकों महिलाओं को आर्यिका, क्षुल्लिका के व्रत प्रदान कर मोक्षमार्ग में लगाया।

वि. सं. 1965 में इन्दौर चातुर्मास में आपने अपने गृहस्थावस्था के बड़े भाई गुलाबचंद को सप्तमप्रतिमा के व्रत दिए थे, जो आगे जाकर दसवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक प्रसिद्ध हुए हैं।

वि. सं. 2000 में आप खातेगांव चातुर्मास करके सिद्धवरकूट क्षेत्र पधारे। दो चक्री दश कामकुमारों की निर्वाणभूमि के पवित्र स्थल पर औरंगाबाद के अन्तर्गत अड़गाँव निवासी खंडेलवाल जाति में जन्म लेने वाले राँवका गोत्रीय श्रावक हीरालाल को क्षुल्लक दीक्षा प्रदान की और उनका शिवसागर नाम रखा।

शिष्यपरम्परा की शृँखला में वीरसागर जी के मुनियों में प्रथम शिष्य शिवसागर ही बने, जो भविष्य में गुरु के पट्टाचार्य पद को सुशोभित कर संघ संचालन का श्रेय प्राप्त कर चुके हैं।

बीस वर्षों के लम्बे अन्तराल के पश्चात् सन् 1955 में कुंथलगिरि क्षेत्र पर आचार्यश्री

शांतिसागर महाराज ने चातुर्मास किया था। इधर वीरसागर महाराज अपने चतुर्विध संघ सहित जयपर खानिया में चातुर्मास कर रहे थे। हजारों मील की दूरी भी गुरु-शिष्य के परिणामों का मिलन करा रही थी।

आचार्यश्री ने अपने जीवन का अंतिम लक्ष्य यम सल्लेखना ग्रहण कर ली थी। इस समाचार से उनके समस्त शिष्यों एवं सम्पूर्ण जैनसमाज के ऊपर एक वज्रप्रहार सा प्रतीत होने लगा था। कुंथलगिरि में प्रतिदिन हजारों व्यक्ति इस महान आत्मा के दर्शन हेतु आ-जा रहे थे।

सल्लेखना की पूर्व बेला में ही आचार्यश्री ने अपना आचार्यपद त्याग कर दिया और तत्कालीन संघपति श्रावक श्री गेंदनमल जी जौहरी, बम्बई वालों से एक पत्र लिखवाया। अपने प्रथम शिष्य मुनि श्री वीरसागर महाराज को सर्वथा आचार्यपद के योग्य समझकर एक आदेशपत्र जयपुर समाज के नाम लिखाकर भेजा।

आचार्यश्री शांतिसागर महाराज की समाधि के पश्चात् जयपुर (खानिया) में आयोजित श्रद्धांजलि सभा में श्री वीरसागर जी महाराज ने अपने गुरुवियोग से व्यथित हृदय के उद्गार श्रद्धांजलि के माध्यम से व्यक्त किये थे। वे श्रद्धांजलि वचन यहाँ प्रस्तुत हैं –

गुरुचरणों की देन

पूज्यपाद गुरुदेव श्री 108 आचार्यवर्य शांतिसागर जी महाराज को जिन्होंने जीवनकाल में परखा और अपनाया, उन्होंने मानव जीवन को सफल कर लिया है। मेरे द्वारा गुरुदेव का शिष्यत्व स्वीकार करने में वैराग्य के अतिरिक्त उनका परमोच्च और महानतम व्यक्तित्व भी कारण था। मैंने गुरुदेव को बहुत ही निकट से देखा, उनके बराबर अन्य महापुरुष अपनी आयु में दृष्टिगोचर नहीं हुआ। मुझ पर यह सारी देन गुरुदेव के चरणों की है।

मुझे सबसे बड़ी व्यथा यह है कि गुरुदेव की सल्लेखना एवं अन्त बेला में मैं निकट सम्पर्क में न रह सका और न दर्शन प्राप्त कर सका।

मैंने हजारों की संख्या में एकत्रित जनता की प्रार्थना पर भी जिस आचार्यपद को स्वीकार नहीं किया, उसे इस 81 वर्ष की अवस्था में गुरुदेव का प्रसाद समझकर ही अनिच्छा होते हुए भी स्वीकार करना पड़ा। गुरुदेव की आज्ञा का उल्लंघन कैसे करता। इस स्वेच्छाचारी युग में मुझ जैसे अपुण्यशाली से इस पद का निर्वाह कैसे होगा, इसकी मुझे चिन्ता है। मैं चाहता हूँ कि समस्त धार्मिक विवेकी प्राणी गुरुदेव के पदानुसारी बनकर इस परम दुर्लभ मानव जीवन को सफल बनाएं। परमनिःश्रेयस गुरुदेव के प्रति मेरी मनसा-वाचा-कर्मणा श्रद्धांजलि है।

आचार्यपद प्रदान का समारोह दिवस भाद्रपद कृष्णा सप्तमी, गुरुवार निश्चित किया गया था। विशाल प्रांगण में सहस्रों नर-नारियों के बीच श्री वीरसागर मुनिराज को गुरुवर द्वारा दिया गया आचार्यपद प्रदान किया गया। उस समय पण्डित इंद्रलाल जी शास्त्री ने गुरुदेव द्वारा भिजवाए गए आचार्यपद प्रदान पत्र को सभा में पढ़कर सुनाया, जो कि निम्न प्रकार है –

कुंथलगिरि, ता.-24.8.1955

स्वस्ति श्री चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज की आज्ञानुसार यह आचार्यपद प्रदान पत्र लिखा जाता है –

हमने प्रथम भाद्रपद कृष्णा 11, रविवार, ता. 24.8.1955 से सल्लेखना व्रत लिया है अतः दिगम्बर जैनधर्म और श्री कुन्दकुन्दाचार्य परम्परागत दिगम्बर जैन आम्नाय के निर्दोष एवं अखण्डरीत्या संरक्षण एवं संवर्धन के लिए हम आचार्यपद अपने प्रथम निर्ग्रन्थ शिष्य श्री वीरसागर जी मुनिराज को आशीर्वादपूर्वक आज प्रथम भाद्रपद शुक्ला सप्तमी, वि. सं. 2012, बुधवार के प्रभात के समय त्रियोगशुद्धिपूर्वक संतोष से प्रदान करते हैं।

आचार्य महाराज ने श्री पूज्य वीरसागर जी महाराज के लिए इस प्रकार आदेश दिया है-

इस पद को ग्रहण करके तुमको दिगम्बर जैनधर्म तथा चतुर्विध संघ का आगमानुसार संरक्षण तथा संवर्धन करना चाहिए, ऐसी आचार्य महाराज की आज्ञा है।

आचार्य महाराज ने आपको शुभाशीर्वाद कहा है।

इति वर्धताम् जिनशासनम्

लिखी - गेंदनमल, बम्बई - त्रिबार नमोस्तु।

लिखी - चंदूलाल ज्योतिचंद, बारामती- त्रिबार नमोस्तु।

उपर्युक्त आचार्यपद प्रदान पत्र पढ़ने के बाद श्री शिवसागर जी मुनिराज ने उठकरपूज्य श्री शांतिसागर जी महाराज द्वारा भेजे गए पिच्छी-कमण्डलु भी श्री वीरसागर जी मुनिराज के करकमलों में प्रदान किए। सर्वत्र सभा में आचार्य श्री वीरसागर महाराज की जय-जयकार गूँज उठी।

इसके पूर्व श्री वीरसागर जी महाराज ने कभी भी अपने को **आचार्य** शब्द से सम्बोधित नहीं करने दिया था, यह उनकी पदनिर्लोभता का ही प्रतीक था।

आचार्यश्री के जीवन की विशेषताएँ–

पूत के पाँव पालने में ही दिख जाते हैंइसी सूक्ति के अनुसार आचार्यश्री का प्रारम्भिक जीवन ही उनकी महानता का दिग्दर्शन करा रहा था पुनः पारसमणि के स्पर्श से जैसे लोहा भी सोना बन जाता है उसी प्रकार आपने चारित्रचक्रवर्तीरूपी पारस के चरणों का जब स्पर्श करलिया था तो जीवन कुन्दन ही नहीं बना प्रत्युत् गुरु के समस्त गुणों को भी अपनाकर मानोसोने में सुगंधि ही डाल दी थी। यही कारण रहा कि आपके जीवन में पग-पग पर विशेषताएँ चरण चूमनेलगीं।

वीरसागर नाम क्यों पड़ा?

व्याकरणशास्त्र के अनुसार वि-विशेषेण, ई-लक्ष्मी, रा-राति ददाति असौ वीरः। जो अपूर्व लक्ष्मी को देता है उसे वीर कहते हैं किन्तु ये वीरसागर तो स्वयं नग्न थे तो दूसरे को लक्ष्मी कहाँ से देते?

नहीं, नहीं, यह संसार की क्षणिक, विनाशीक लक्ष्मी नहीं वरन् गुरुदेव तो शिष्यों को रत्नत्रय की शाश्वत, अविनश्वर, अपूर्व लक्ष्मी प्रदान करते थे तथा जिनकी आत्मा रणक्षेत्र के बहादुर सैनिकों की भांति कर्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के दृढ़संकल्पपूर्वक दीक्षा के मैदान में प्रवृत्त हुई थी, वे तो काम और नाम दोनों से ही वीर नाम को सार्थक कर रहे थे।

वीर के साथ सागर शब्द भी जुड़ा है अतः आप सागर के समान गम्भीर, स्याद्वादवचनरूपी तरंगों से व्याप्त एवं मूलगुण एवं उत्तरगुणरूपी रत्नों से युक्त और अगाध ज्ञान के धारी होने से वीरसागर नाम से जाने जाते थे किन्तु क्या सागर जल के समान आपके वचनोंमें खारापन था?

ऐसा होता, तो सभी उन वचनों को सुनकर भाग जाते क्योंकि खारा जल कोई पीना नहीं चाहता। सागर तो मानों इन श्रीगुरु के चरणों में अपनी हार मानकर मस्तक झुकाकर कह रहा था –

मैं तो नकली सागर हूँ किन्तु असली सागर तो आप ही हैं क्योंकि आप संसार सागर से लोगों को पार लगाकर मोक्ष पहुँचाते हैं किन्तु मैं तो मात्र खड़ा हिलोरे ही भर रहा हूँ।

वह तो बार-बार अपनी बदनसीबी पर आँसू बहाते हुए कहता है –

भगवन्! सैकड़ों, हजारों टन मिश्री मेरे पेट में डाल दी जावे तो भी मेरा दुःस्वाद्दु सुस्वादु अर्थात् मीठा नहीं बन पाता किन्तु आपके वचन तो स्वयमेव मिश्रीरूप ही हैं जोसारे संसार को मिष्टता प्रदान करते हैं अतः आप ही सच्चे सागर हैं, मैं तो नामधारी सागर ही रह गया।

ऐसे सागर की सार्थकता को पहचानने वाले वीरसागर महाराज थे। जिसने एक ही बार आपके धर्मामृत का पान किया हो तो उसकी बार-बार पीने की इच्छा होती थी। आपकी सहनशीलता अत्यन्त आश्चर्यकारी थी।

एक बार नागौर चातुर्मास में आपके पीठ में एक भयंकर फोड़ा हुआ जिसमें तीव्र वेदना होती थी, भयंकर ज्वर आता था परन्तु आपके मुख से कभी दुःखपूर्ण शब्द सुनने को नहीं मिला बल्कि फोड़ा पूरा पक जाने पर जब डॉक्टर को उसके आप्रेशन को बुलाया गया तब डॉक्टर तो भयभीत सा पीछे खड़ा था और महाराजश्री अपनी दैनिक क्रियाओं में संलग्न थे।

उस समय एक श्रावक ने महाराज का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा – **महाराज! डॉक्टर आ गए हैं, आपके फोड़े का आप्रेशन होगा।**

आचार्यश्री ने एक नजर से डॉक्टर को देखा और पूछा –

भाई! तुम मुझे यह बता दो कि इसके आप्रेशन में कितना समय लगेगा? डॉक्टर बोला – **गुरुदेव! आपके इतने बड़े फोड़े का आप्रेशन बिना बेहोशी के हो पाना असम्भव है, आप इस असह्य वेदना को सहन नहीं कर सकते।**

महाराज बोले – **भैया! जब हम अनादिकाल से जन्म-मरण के घोर कष्ट सहन करते आ रहे हैं तो यह कष्ट कौन सा असह्य है? तुम अपना काम शुरू करो, मुझे समय बता दो।**

डॉक्टर पूज्यश्री की दृढ़ता को भांप चुका था अतः काँपते हाथों से उसने औजार निकाले और मुनिश्री को कह दिया कि 1 घण्टा तो साधारण सी बात है। वह सोच रहा था कि मेरे तीखे पैने औजार इस भयंकर दर्दनाक फोड़े पर लगते ही ये बाबा तो चीत्कार कर उठेंगे किन्तु यह क्या! डॉक्टर 1 घण्टे तक उस पीठ पर अपना कार्य करते रहे, सारा कार्य सम्पन्न हो गया। वह तपस्वी अपने चिन्तन में मग्न। कुछ क्षण डॉक्टर उस आत्मसाधक को अपलक निहारता रहा पुनः ध्यान भंग किया –

मुनिवर! मैंने ऑप्रेशन कर दिया है। आचार्यश्री के चरणों में वह नतमस्तक हो गया।

हमारे पाठक बन्धुओं को भी आश्चर्य हो रहा होगा कि ऐसी कौन सी शक्ति आचार्यश्री के अन्दर समाविष्ट हो गई थी? आचार्यश्री ने शिष्यों के प्रश्न पर यही बताया कि **मैं अपने चित्त को गोम्मटसार कर्मकाण्ड में वर्णित कर्मप्रकृतियों के चिन्तन में लगाकर सोच रहा था कि यह जीव संसार में किस प्रकार से कौन-कौन से कर्मों का बंध करता है? किस**

गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय, अनुदय और उदयव्युच्छित्ति है? इस गणितीय विज्ञान में दर्द का अहसास नहीं हुआ।

धन्य हैं ऐसे धीरवीर महामना योगिराज! वास्तव में ऐसे ही योगी के प्रति पं. दौलतराम जी ने ये शब्द लिखे हैं–

तिन सुथिर मुद्रा देख मृगगण, उपल खाज खुजावते।

आपकी गुरुभक्ति विशिष्ट थी। प्रत्येक प्रतिक्रमण के दिन आप अपने गुरु का स्मरण अवश्य करते और शिष्यों से कहते थे कि **तुम लोग तो प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हो जाते हो परन्तु मेरे गुरु मेरे समीप नहीं हैं, मैं अपनी शुद्धि कैसे करूँ?**

इसी प्रकार से आचार्यश्री की प्रमुख शिष्याओं में से पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी कई बार अपने गुरुदेव के संस्मरण सुनाते हुए कहा करती हैं कि–

आचार्यश्री प्रायः सायंकाल के समय समस्त शिष्यों को सम्बोधित करते हुए कहते थे कि **देखो! तुम शिष्यगण मेरे अनुशासन में रहकर एकता के सूत्र में बंधे हो इसीलिए मेरे आचार्यपद की गरिमा है क्योंकि गुरु से शिष्यों की और शिष्यों से गुरु की शोभा रहती है।** उनकी शिक्षाओं में प्रमुख शिक्षा थी–

जीवन में सदैव सुई का काम करो, कैंची का नहीं अर्थात् समाज एवं परिवार में रहकर संगठन के कार्य करो, विघटन के नहीं क्योंकि कैंची कपड़े को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर देती है लेकिन एक छोटी सी सुई उन टुकड़ों को भी सिलकर एक कर देती है। उसी प्रकार से कभी ऐसे कार्य मत करो जिससे संघ के टुकड़े हों, सब लोग सहनशील बनकर संगठन के धागे से बंधे रहो। यही कारण था कि आचार्यश्री के जीवनकाल तक कोई भी शिष्य उन्हें छोड़कर कभी संघ से अलग नहीं हुआ।

सम्यक्त्व की दृढ़ता हेतु वे कहा करते थे–

तृण मत बनो, पत्थर बनो। पाश्चात्य संस्कृतिरूपी हवा के झकोरे में जो तृणवत् हल्के हैं, अस्थिर बुद्धि के हैं, वे बह जाते हैं किन्तु जो पत्थर के समान अचल हैं, जिनवाणी के दृढ़ श्रद्धालु हैं, वे अपने स्थान पर एवं सम्यक्त्व में अचल रहते हैं। वे गुरुदेव सम्यक्त्व में सदैव स्वयं भी अचल रहे हैं और अपने शिष्यों को भी आगममार्ग में अचल रखा है।

कभी-कभी महाराज पुत्रवत् अपने शिष्यों के मुँह से अमुक रोगों की चर्चा सुनकर हँसकर कहते कि–

मुझे तो मात्र दो रोग हैं–एक तो भूख लगती है, दूसरे नींद आती है अर्थात् जिनके ये दो रोग समाप्त हो जावेंगे, वे संसारी ही नहीं रहेंगे बल्कि मुक्त कहलाएँगे अतः इन्हीं दो रोगों के नष्ट करने का उपाय करना चाहिए।

शिष्य परिकर के मनोरंजन हेतु श्री वीरसागर महाराज सदैव कुछ न कुछ घूँटी पिलाने का प्रयास करते हुए कहते–

अपने दीक्षा दिवस को कभी मत भूलो अर्थात् दीक्षा के समय परिणामों में विशेष निर्मलता रहती है इसीलिए उस दिवस के उज्ज्वल भावों को हमेशा याद रखने वाला साधु कभी भी

अपने पद से च्युत नहीं हो सकता है और उत्तरोत्तर चारित्र की वृद्धि ही होती है।

ऐसे अनेकों सूत्ररूप वाक्य हैं जिन्हें आचार्यश्री अपने जीवनकाल में प्रयोग करते थे।

वे धवला की भिन्न-भिन्न पुस्तकों का स्वाध्याय दिन भर किया करते थे। एक बार उन्होंने कहा कि **इन ग्रन्थों के बहुत से विषयों को मैं समझ नहीं पाता हूँ फिर भी धवला की प्रथम पुस्तक में यह बात लिखी है कि स्वाध्याय के समय असंख्यातगुणितरूप से कर्मों की निर्जरा होती है इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैं सतत इन ग्रन्थों का स्वाध्याय करता रहता हूँ।**

शुद्धोपयोगरूप वीतराग निर्विकल्प समाधि में स्थित नहीं रह सकने वाले साधुओं के लिए श्रीकुन्दकुन्ददेव ने प्रवचनसार में कहा है कि–

दंसणणाणुवदेसो, सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं।
चरिया हि सरागाणं, जिणिंद पूजोवदेसो य ।। 248।।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का उपदेश, शिष्यों का ग्रहण तथा उनका पोषण और जिनेन्द्रदेव की पूजा का उपदेश वास्तव में सरागियों की (आचार्यों की) चर्या है। आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के अन्दर आचार्य के समस्त गुण विद्यमान थे। आपके शिष्यों की प्रत्यक्षदर्शी एक घटना है–

एक बार वीरसागर महाराज का संघ सम्मेदशिखर की यात्रा करने जा रहा था। भागलपुर के रास्ते में एक जंगल में जा रहे थे, शाम हो जाने पर संघ आचार्यश्री की आज्ञानुसार एक पाठशाला में ठहर गया। भयानक जंगल था, वहाँ से गाँव दो मील दूर था। गाँव के लोग कहते थे कि यहाँ चोरों का भय है परन्तु दिगम्बर साधुओं को किस बात का भय? संघ के सभी लोग वहीं ठहर गए।

रात्रि में दस बजे एक सिपाही वेषधारी मानव आया। उसके हाथ में डंडा था अतः सभी ने सोचा कि पुलिस का कोई आदमी होगा। सभी लोग सो गए, प्रातः जब चार बजे सब लोग उठे, तब तक वह बैठा था। संघ में एक ब्र. चांदमल जी थे, उन्होंने कहा कि प्रातःकाल इसको कुछ पुरस्कार देंगे। सामायिक के बाद देखा तो वहाँ कोई नहीं था। आसपास में उसे खोजा गया लेकिन कहीं पता नहीं लगा। अनुमानतः वह वास्तविक मानव नहीं था, महाराज के तपप्रभाव से संघ की रक्षा करने के लिए कोई मानव वेषधारी देव आया था।

आचार्यश्री के समीप आते ही प्रत्येक प्राणी एक अलौकिक शाँति की अनुभूति करता था। पूज्य अचार्यश्री की मधुरवाणी, स्पष्ट भाषा, तात्त्विक विवेचन गहन तो थे ही, पर वे उनके लिए आजकल के तथाकथित तत्त्ववेत्ताओं के समान वाणीविलास की मात्र चर्चा नहीं थी। वे जो कुछ कहते थे, उसे पहले अपने जीवन में उतारते थे। भगवान महावीर के पथ पर चलने वाले वे नरसिंह थे। उन्होंने आज के इस दुःषमकाल में भी शरीर और आत्मा के भेदविज्ञान को अपनी कठोर साधना द्वारा साक्षात् करके दिखाया था। अनेकों बार कठिन परीषह आने पर भी वे हिमालय की तरह अडिग थे।

श्री वीरसागर महाराज की असीम शांतमुद्रा से न केवल मनुष्य बल्कि पशु भी अपनी क्रूरता को छोड़कर शाँतचित्त हो जाते थे।

सन् 1956 में वैशाख कृष्णा दूज के दिन माधोराजपुरा (राज.) में आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज एक विशाल पाण्डाल में पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी को आर्यिका दीक्षा प्रदान करने के पश्चात् सिंहासन पर विराजमान होकर उपदेश दे रहे थे, उसी समय एक बहुत बड़ा साँड भरी सभा में घुस आया। उसे देखकर लोगों में खलबली मच गई, सब यत्र-तत्र भागने लगे। साँड विशाल भीड़ को चीरता हुआ आचार्यश्री की ओर वेग से बढ़ता जा रहा था। अब तो लोग और भी घबराए और अनिष्ट की आशंका से काँप उठे लेकिन दूसरे ही क्षण मनुष्यों को महान आश्चर्य हुआ जब उन्होंने देखा कि आचार्यश्री की तरफ वेग से बढ़ने वाला साँड दुष्ट नहीं, शिष्ट है। सांड आगे बढ़ता है और आचार्यश्री जिस तख्ते पर विराजमान थे, उस पर जाकर अपना सिर टेककर पाँच मिनट तक उसी अवस्था में खड़ा रहता है क्योंकि उस समय वृषभ के मन में आचार्यश्री के चरण-वंदन की महान भावना थी। आचार्यश्री ने उसे आशीर्वाद दिया और जनता ने उसे भक्ति का प्रसाद सुस्वादु मिष्टान्न दिया। यह दृश्य देखकर जैनाजैन जनता बहुत प्रभावित हुई। यह आचार्यश्री की महान वीतरागता का स्पष्ट प्रभाव था जिनके चरणों में तिर्यंच भी आकर सहर्ष नतमस्तक होकर अपने को धन्य समझते थे।

गुरु-शिष्य का रोमांचक मिलन–वि. सं. 1996 में इन्दौर के चातुर्मास के अनन्तर श्री वीरसागर महाराज ने अपने संघ सहित सिद्धक्षेत्र मांगीतुंगी की ओर विहार किया। मांगीतुंगी में उस समय कन्नड़ निवासी सेठ गुलाबचंद जी पहाड़े एक बिम्ब प्रतिष्ठा करवा रहे थे। इसी शुभ अवसर पर चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज भी यहाँ पधारे और उनके शिष्य पूज्य वीरसागर महाराज भी संघ सहित पधारे। गुरु के दर्शन प्राप्तकर वीरसागर जी के हर्षातिरेक में अश्रु झरने लगे, यह गुरु-शिष्य के संगम का अपूर्व दृश्य था।

गुरुचरणों की सेवा का पुनः सौभाग्य प्राप्तकर वीरसागर महाराज ने इस अमूल्य समय का पूर्ण सदुपयोग किया। 4 वर्षों में ही अपने शिष्य के संघवृद्धि, अनुशासन आदि गुणों को देखकर आचार्यश्री को बड़ी प्रसन्नता हुई।

चंद दिवसों का वह मिलन गुरु-शिष्य के मन में एक अमिट छाप छोड़ गया पुनः दोनों का यत्र-तत्र विहार हो गया।

वि. सं. 1997 का चातुर्मास पूज्य वीरसागर महाराज ने अपनी कर्मभूमि अतिशयक्षेत्र कचनेर में किया। इस चातुर्मास में पूज्य महाराजश्री के सानिध्य में पचासों मण्डल विधान के आयोजन हुए तथा अनेकों व्रती बने। चातुर्मास समाप्ति पर वहाँ के श्रावकों ने एक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई, उस मौके पर पानी की कमी थी, मंदिर के कुँए का पानी बिल्कुल खारा था। लोग चिन्तित थे कि पानी की व्यवस्था यात्रियों के लिए किस प्रकार की जाएगी किन्तु गुरुदेव के शुभाशीर्वाद से खारा पानी एकदम मीठा हो गया। यात्रियों को किसी प्रकार की तकलीफ नहीं हुई और प्रतिष्ठा महोत्सव सानंद सम्पन्न हो गया।

वि. सं. 1999 में आपका चातुर्मास कारंजा नगर में हुआ। वैसे तो यह कस्बा काफी बड़ा है तथा जैनियों के 300 घर भी हैं, विशाल तीन मंदिर तथा गाँव के बाहर विद्याध्ययनार्थ एक गुरुकुल है जिसमें विद्यार्थी पठन-पाठन करते हैं, यहाँ अध्यात्मवेत्ता बड़े-बड़े विद्वान भी रहते थे। पूज्य महाराजश्री से तरह-तरह के गूढ प्रश्न भी लोग करते थे किन्तु आचार्यश्री अपने प्रखर ज्ञान

से सभी के प्रश्नों का शास्त्रोक्त रीति से उत्तर देते थे। चातुर्मास के पश्चात् विहार करके महाराज संघ सहित मुक्तागिरि आ गए, जहाँ 3 महीने संघ रुका।

मुक्तागिरि से जब संघ खातेगाँव को रवाना हुआ, तब 300 मील तक कोई श्रावकों के घर नहीं थे, श्रावकों के 6-7 चौके संघ के साथ थे।

उसी रास्ते में एक चौरपाठा नामक गाँव मिला। वहाँ मुसलमान जाति की सुलीमा नामक एक जागीरदारिणी रहती थी, जो योग्य रीति से राज्य संचालन और प्रजा का पालन करती थी, उसकी शिक्षा बी.ए. तक थी, उम्र मात्र 25 वर्ष की थी।

दुर्भाग्यवश विवाह के दूसरे वर्ष ही उसे वैधव्य का असीम दुःख सहन करना पड़ा था। गाँव के लोग एवं परिवार वालों के आग्रह पर भी उसने पुनः विवाह करने से इंकार कर दिया था।

गाँव में इस संघ के पहुँचने पर उसने बड़ी भक्ति से आकर आचार्यश्री के दर्शन किए, उनका अहिंसात्मक उपदेश सुना, जिससे प्रभावित होकर आचार्यश्री के पादमूल में हिंसा करने का, माँस खाने का एवं रात्रि में भोजन करने का जीवनपर्यंत के लिए त्याग कर दिया। इतना ही नहीं, उसने अपने द्वारा शासित 300 गाँवों में हिंसा न करने की घोषणा करवा दी थी।

प्राणिमात्र को अभयदान देने वाले गुरुराज के चरणकमलों का ही प्रसाद इसे समझना चाहिए।

गाँव-गाँव, नगर-नगर में विहार करते हुए आचार्यश्री ने अनेकों स्थानों पर सदियों से चली आ रही हिंसक बलिपरम्परा को देखा, तब उन्होंने अनेक युक्तियों से पंच पापों के फल के दर्दनाक वर्णनपूर्वक अपने उपदेशों से बलिप्रथा बंद करवाई।

वर्तमान परम्परा के अनुसार उस समय दिगम्बर जैन साधुओं के अलग-अलग संघ नहीं थे और न उनकी कोई भिन्न-भिन्न परम्पराएँ थीं किन्तु सारे हिन्दुस्तान में आचार्य श्री शांतिसागर महाराज की आदर्श परम्परा वाला आचार्य श्री वीरसागर महाराज का संघ ही कहा जाता था। सम्पूर्ण अनुशासन पट्टाधीश आचार्यश्री का ही चलता था जिसका पालन आज तक भी उस पट्ट परम्परा वाले संघ में हो रहा है। उन आगमिक परम्पराओं एवं अनुशासन से संचालित संघ का वर्तमान में परम पूज्य आचार्यश्री अभिनंदनसागर जी महाराज छठे पट्टाधीश के रूप में नेतृत्व कर रहे हैं।

आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज ने अपने चतुर्विध संघ सहित सन् 1957 का चातुर्मास जयपुर-खानिया में किया। उस चातुर्मास के मध्य आपका शारीरिक स्वास्थ्य अत्यन्त क्षीण होने लगा और आश्विन कृष्णा अमावस्या के दिन महामंत्र का स्मरण करते हुए पद्मासनपूर्वक ध्यानस्थ मुद्रा में नश्वर शरीर का त्याग कर दिया। आज आचार्यश्री का भौतिक शरीर हमारे बीच में नहीं है किन्तु उनकी अमूल्य शिक्षाएँ विद्यमान हैं। उन पर अमल करते हुए हमें अपने जीवन को समुन्नत बनाना चाहिए क्योंकि ऐसे महापुरुषों के जीवन पर ही निम्न सूक्ति साकार होती है–

मूरत से कीरत बड़ी, बिना पंख उड़ जाय।
मूरत तो जाती रही, कीरत कभी न जाय।।

आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज के पश्चात् इस परम्परा के द्वितीय पट्टाधीश आचार्यश्री शिवसागर जी महाराज हुए। उनका परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

द्वितीय पट्टाधीश आचार्यश्री शिवसागर महाराज

दिगम्बर मुनिधर्म की अविच्छिन्न धारा से सुशोभित, दक्षिण भारत के अन्तर्गत, वर्तमान महाराष्ट्र प्रान्तस्थ औरंगाबाद जिले के अड़गांव ग्राम में रांवका गोत्रीय खण्डेलवाल श्रेष्ठी श्री नेमीचन्द्र जी के गृहांगण में माता दगड़ाबाई की कुक्षि से वि.सं. 1958 में आपका जन्म हुआ था। जन्म नाम हीरालाल रखा गया था। आप दो भाई थे, दो बहिनें भी थीं। प्रतिभावान व कुशाग्रबुद्धि होते हुए भी साधारण आर्थिक स्थिति के कारण आप विशेष शिक्षा नहीं ग्रहण कर पाए।

जिस प्रकार कमल कीचड़ में उत्पन्न होकर भी सबको प्यारा लगता है तथा हवा उसकी सुगंध को सब दिशाओं में फैला देती है, उसी प्रकार आचार्यश्री शिवसागर महाराज ने भी छोटे से गाँव में जन्म लेकर सम्यक् चारित्र की निष्ठता से, आचार्य के सम्पूर्ण गुणों से सुशोभित होते हुए उन गुणों तथा अपनी चर्या के द्वारा गाँव-गाँव को प्रभावित किया था। आप घोर तपस्वी व वाग्मी भी थे।

वर्तमान शताब्दी की दिगम्बर जैनाचार्य परम्परा के द्वितीय पट्टाधीश परमपूज्य प्रातःस्मरणीय परम तपस्वी, बाल ब्रह्मचारी आचार्यश्री शिवसागर जी महाराज थे। आचार्यश्री शिवसागर जी महाराज के समय में भारत वर्ष में साधु संघ का आदर्श प्रस्तुत हुआ था। आपने आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज द्वारा आर्षमार्गानुसार प्रस्थापित परम्परा को अक्षुण्ण तो बनाये ही रखा, साथ ही संघ में अभिवृद्धि कर संघानुशासन का आदर्श भी उपस्थित किया। भारतवर्ष का सम्पूर्ण जैन जगत आपके आदर्श संघ के प्रति नतमस्तक था। साधु समुदाय में ज्ञान-जिज्ञासा एवं उसकी प्राप्ति की सतत लगन के साथ चारित्र का उच्चादर्श देखकर विद्वत्वर्ग भी संघ के प्रति आकृष्ट था और प्रबुद्ध साधुवर्ग से अपनी शंकाओं के समाधान प्राप्तकर आनन्द प्राप्त करता था।

औरंगाबाद जिले के ही ईरगाँववासी ब्र. हीरालाल जी गंगवाल (स्व. आचार्यश्री वीरसागर जी) आपके शिक्षागुरु रहे। निकटस्थ अतिशयक्षेत्र कचनेर के पार्श्वनाथ दि. जैन विद्यालय में आपका प्राथमिक विद्याध्ययन हुआ। धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ हिन्दी का तीसरी कक्षा तक ही आपका अध्ययन हो पाया था कि अचानक महाराष्ट्र प्रांत में फैली प्लेग की भयंकर बीमारी की चपेट में आपके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। माता-पिता की वात्सल्यपूर्ण छत्रछाया में बालक अपना पूर्ण विकास कर पाता है, किन्तु आपके जीवन के तो प्राथमिक चरण में ही उसका अभाव हो गया। इसका प्रभाव आपके विद्याध्ययन पर पड़ा। आपके बड़े भाई का विवाह हो चुका था, किन्तु विवाह के कुछ समय बाद ही उनका भी देहान्त हो जाने के कारण 13 वर्षीय अल्पवय में ही आप पर गृहस्थ संचालन का भार आ पड़ा। कुशलतापूर्वक आपने इस उत्तरदायित्व को भी निभाया।

माता-पिता एवं बड़े भाई के आकस्मिक वियोग के कारण संसार की क्षणभंगुर परिस्थितियों ने आपके मन को उद्वेलित कर दिया। फलस्वरूप, गृहस्थी बसाने के विचारों को मन ने कभी भी स्वीकार नहीं किया। विवाह के प्रस्ताव प्राप्त होने पर भी आपने सदैव अपनी असहमति

ही प्रकट की। आप आजीवन ब्रह्मचारी ही रहे। 28 वर्ष की युवावस्था में असीम पुण्योदय से आपको आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज के दर्शन करने का मंगल अवसर मिला तथा उसी समय आपने यज्ञोपवीत धारण कर दो प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिये। महामनस्वी चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री के द्वारा बोया यह व्रतरूप बीज आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के चरण सानिध्य में पल्लवित पुष्पित हुआ।

वि. सं. 1999 की बात है, अब तक आपके आद्य विद्यागुरु ब्र. हीरालाल जी गंगवाल आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज से मुनि दीक्षा ग्रहण कर चुके थे और मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र पर विराजमान थे। आपने उनसे सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए तथा ब्रह्मचारी अवस्था में संघ में प्रवेश किया। बाल्यावस्था से ही आपकी स्वाध्याय में रुचि थी, वह अब और तीव्रतर होने लगी अतः आप विभिन्न ग्रंथों का अध्ययन करने लगे। **"ज्ञानं भारः क्रियां बिना"** की उक्ति आपके मन को आन्दोलित करने लगी। आपके मन में चारित्र ग्रहण करने की उत्कट भावना ने जन्म लिया। आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज का जब सिद्धवरकूट सिद्धक्षेत्र पर ससंघ पहुँचना हुआ तब आपने वि.सं. 2000 में क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। आपको क्षुल्लक शिवसागर नाम प्रदान किया गया। अद्भुत संयोग रहा हीरालाल जी का। गुरु और शिष्य दोनों ही हीरालाल थे। यह गुरु-शिष्य संयोग वीरसागर जी महाराज की सल्लेखना तक निर्बाधरूप से बना रहा।

निरन्तर ज्ञान-वैराग्य की अभिव्यक्ति ने आपको निर्ग्रन्थ-दिगम्बर दीक्षा धारण करने के लिए प्रेरित किया। फलस्वरूप वि.सं. 2006 में नागौर (राज.) में आषाढ़ शुक्ला 11 को आपने आचार्यश्री वीरसागर जी के पादमूल में मुनि दीक्षा ग्रहण की। वर्तमान पर्याय का यह आपका चरम विकास था। अब आप मुनि शिवसागर जी थे। मुनिदीक्षा के पश्चात् 8 वर्ष पर्यंत गुरु सन्निधि में आपकी योग्यता बढ़ती चली गई। आपने गुरुदेव के साथ श्री सम्मेदशिखर जी सिद्धक्षेत्र की यात्रा वि.सं. 2009 में की। जब वि.सं. 2014 (सन् 1957) में आपके गुरु का जयपुर खानियां में समाधिमरणपूर्वक स्वर्गवास हो गया तब आपको आचार्यपद प्रदान किया गया। इस अवधि में आपका ज्ञान भी परिष्कृत हो चुका था। आपने चारों अनुयोगसंबंधी ग्रंथों का अध्ययन कर लिया था तथा अनेक स्तोत्र पाठ, समयसार कलश, स्वयंभूस्तोत्र, समाधितंत्र, इष्टोपदेश आदि संस्कृत रचनाएँ कण्ठस्थ भी कर ली थीं। मातृभाषा मराठी होते हुए भी आप हिन्दी अच्छी बोल लेते थे।

वि.सं. 2014 में ही आचार्यपद ग्रहण के पश्चात् आपने ससंघ गिरनार क्षेत्र की यात्रा की। उसके बाद क्रमशः ब्यावर, अजमेर, सुजानगढ़, सीकर, लाडनूँ, खानिया (जयपुर), पपौरा, महावीर जी, कोटा, उदयपुर और प्रतापगढ़ में चातुर्मास किए। इन वर्षों में आपके द्वारा संघ की अभिवृद्धि के साथ-साथ धर्म की प्रभावना भी हुई। 11 वर्षीय इसी आचार्यत्व काल में आपने अनेक भव्यजीवों को मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक-क्षुल्लिका पद की दीक्षाएँ प्रदान कीं तथा सैकड़ों श्रावकों को अनेक प्रकार के व्रत, प्रतिमा आदि ग्रहण कराकर मोक्षमार्ग में अग्रसर किया। आपके सर्व प्रथम दीक्षित शिष्य मुनि ज्ञानसागर जी महाराज थे। उसके अनन्तर आपने वृषभसागर जी, भव्यसागर जी, अजितसागर जी, सुपार्श्वसागर जी, श्रेयांससागर जी, सुबुद्धिसागर

जी को मुनिदीक्षा प्रदान की। आपने सर्वप्रथम आर्यिका दीक्षा चन्द्रमती जी कोप्रदान की। उसके बाद क्रमशः पद्मावती जी, नेमामती जी, विद्यामती जी, बुद्धिमती जी, जिनमतीजी, राजुलमती जी, संभवमती जी, आदिमती जी, विशुद्धमती जी, अरहमती जी, श्रेयांसमती जी, कनकमती जी, भद्रमती जी, कल्याणमती जी, सुशीलमती जी, सन्मती जी, धन्यमती जी,विनयमती जी एवं श्रेष्ठमती जी आदि को आर्यिका दीक्षा दी। आपके द्वारा दीक्षित सर्वप्रथम क्षुल्लक शिष्य संभवसागर जी थे, साथ ही आपने शीतलसागर जी, यतीन्द्रसागर जी, धर्मेन्द्रसागर जी, भूपेन्द्रसागर जी व योगीन्द्रसागर जी को भी क्षुल्लक के व्रत दिये। क्षुल्लक धर्मेन्द्रसागर जी आपके द्वारा अंतिम दीक्षित भव्यप्राणी थे। सुव्रतमती क्षुल्लिका भी आपसे ही दीक्षित थीं। इसके अतिरिक्त तीन भव्य प्राणियों को उनकी सल्लेखना के अवसर पर आपसे मुनिदीक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य मिला था। वे थे आनन्दसागर जी, ज्ञानानंदसागर जी तथा समाधिसागर जी। इन तीनों ही साधुओं की सल्लेखना आपकी सन्निधि में ही हुई थी।

आपकी पारखी दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म थी, आत्मकल्याण का इच्छुक कोई नवीन व्यक्तिसंघ में आता और दीक्षा की याचना करता तो यदि वह आपकी पारखी दृष्टि में दीक्षा का पात्र सिद्ध हो जाता तो ही वह दीक्षा प्राप्त कर सकता था, अन्यथा नहीं। जिस व्यक्ति को जनसाधारण शीघ्र दीक्षा का पात्र नहीं समझता, वह व्यक्ति आचार्यश्री की दृष्टि से बच नहीं पाता था।उसकी क्षमता परीक्षण के पश्चात् ही उसे योग्यतानुसार क्षुल्लक, मुनि आदि दीक्षा आपने प्रदान की। विद्वानों का आकर्षण भी आपके एवं संघस्थ गहनतम स्वाध्यायी साधुओं के प्रति था इसीलिए प्रायः प्रत्येक चातुर्मास में संघ में कई-कई दिनों तक विद्वत्वर्ग आकर रहता था और सभी अनुयोगों की सूक्ष्म चर्चाओं का आनन्द लेता था। बातचीत के बीच सूत्ररूप वाक्यों के प्रयोग द्वारा बड़ी गहन बात कह जाना आचार्यश्री की प्रवृत्ति का अभिन्न अंग था। कुल मिलाकर आचार्यश्री अनेक गुणों के भण्डार थे। वि. सं. 2025 (सन् 1968) का अंतिम वर्षायोग आपने प्रतापगढ़ में किया था। वँहासे फाल्गुन माह में होने वाली शांतिवीर नगर महावीर जी की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में सम्मिलित होने के लिए आप ससंघ श्री महावीर जी आये थे। यहाँ आने के कुछ ही दिन बाद आपको ज्वर आया और 6-7 दिन के अल्पकालीन ज्वर में ही आपका समस्त संघ की उपस्थिति में फाल्गुन कृष्णा अमावस्या को दिन में लगभग 3 बजे समाधिमरण हो गया।

वस्तुतः आचार्यश्री ने अपने गुरु के परम्परागत इस संघ को चारित्र व ज्ञान की दृष्टि से परिष्कृत, परिवर्धित और संचालित किया था। उन जैसे महान् व्यक्तित्व का अभाव आज भी खटकता है।

परमपूज्य गुरुदेव श्री आचार्य शिवसागर जी महाराज के चरण युगलों में परोक्षरूप से कृति- कर्मपूर्वक नमोऽस्तु।

पुनः इन आचार्यश्री की समाधि के पश्चात् आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज को चतुर्विध संघ ने इस परम्परा का तृतीय पट्टाचार्य घोषित किया, इन्हीं आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज से पूज्य अभयमती माताजी ने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की, अब आप पढ़ें उन आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज का जीवन परिचय–

तृतीय पट्टाधीश आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज

(पूज्य अभयमती माताजी के आर्यिका दीक्षागुरु)

भारत की इस वसुन्धरा पर प्राचीनकाल से ही ऋषियों, मुनियों ने जन्म लिया है जिनकी त्याग-तपस्या के बल पर आज भी देश का मस्तक गौरव से ऊँचा उठा हुआ है।

इस युग की तीर्थंकर परम्परा में सर्वप्रथम भगवान आदिनाथ ने जन्म लेकर कर्मभूमि का शुभारंभ किया और आत्मसाधनारूपदैगम्बरी दीक्षा लेकर अनादिकालीन मोक्ष परम्परा का दिग्दर्शन कराया। उनके पश्चात् भगवान महावीर तक 24 तीर्थंकर हुए तथा अंतिम केवली जम्बूस्वामी ने भी इसी पंचमकाल के आरंभ में मोक्ष प्राप्त किया। इसके बाद किसी ने मोक्ष प्राप्त नहीं किया क्योंकि पंचमकाल में जन्म लेने वाले मनुष्यों के लिए साक्षात् मोक्ष का द्वार नहीं खुला है, लेकिन क्रम परम्परा से प्राप्त कराने वाला मोक्ष का मार्ग आज भी सुलभ है, वह है रत्नत्रय की प्राप्ति।

कलिकाल में महान ज्ञान के धारी, भगवान सीमंधर स्वामी की वाणी को साक्षात् हृदयंगम करने वाले आचार्य कुन्दकुन्द हुए, जिनकी शिष्यपरम्परा में आचार्य उमास्वामी आदि बहुत से परम्परागत आचार्य हुए हैं। उसी परम्परा में 19वीं-20वीं शताब्दी की महान विभूति चारित्रचक्रवर्ती आचार्य सम्राट् शांतिसागर महाराज ने दक्षिण प्रान्त में जन्म लिया जिनके निमित्त से सम्पूर्ण भारतवर्ष में जैन साधुओं का निर्बाधरूप से विहार हो रहा है और आज सैकड़ों की संख्या में दिगम्बर जैन साधु दृष्टिगत हो रहे हैं। उस साधु परम्परा के गणनायक तृतीय पट्टाधीश आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज का नाम भी उच्च कोटि में लिया जाता है।

जन्म और शैशव – विक्रम सं. 1970, पौष शुक्ला पूर्णिमा, भगवान धर्मनाथ के केवलज्ञान कल्याणक का पवित्र दिवस, राजस्थान प्रान्त के बूंदी जिलान्तर्गत गंभीरा ग्राम में श्रेष्ठी श्री बख्तावरमल जी की धर्मपत्नी श्रीमती उमरावबाई की कूख से एक पुत्ररत्न ने जन्म लिया, जिसका नाम रखा गया चिरंजीलाल। इनकी जाति खण्डेलवाल और गोत्र छाबड़ा था। चिरंजीलाल अपने माता-पिता के इकलौते बेटे थे। बचपन में ही आपके माता-पिता का असामयिक निधन हो गया अतः आपका जीवन अल्प समय में ही माँ-पिता के लाड़-प्यार भरे संरक्षण से वंचित रह गया था किन्तु आपके ताऊ श्री कँवरीलाल की पुत्री दाखाबाई, जो आपकी बड़ी बहन थीं, उनका प्यार व संरक्षण मिला। दाखाबाई बामणवास में रहती थीं, आप भी वहीं जाकर उनके पास रहने लगे। बहिन भी पति वियोग से दुखी थीं अतः आपका सानिध्य उनके भी दुःख का पूरक बना और भाई-बहन का निर्मल स्नेह बहिन के जीवनपर्यंत बना रहा।

लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा – पुरातन परम्परा में लौकिक शिक्षण को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता था। इष्टवियोगज दुःखों के निमित्त से भी चिरंजीलाल का प्रारंभिक अध्ययन अति अल्प ही रहा। बचपन में ही धार्मिक अनभिज्ञतावश आप मिथ्यादृष्टि देवी-देवताओं के मंदिर जाते रहे और उनकी भक्ति करते रहे। एक दिन आप जैन मंदिर में गए, वहाँ पर एक पंडित जी शास्त्र प्रवचन में मिथ्यात्व और सम्यक्त्व का प्रतिपादन कर रहे थे। वह बात आपके मस्तिष्क में बैठ गई और आपने मिथ्यात्व का त्याग कर दिया। बहिन दाखाबाई अच्छी धर्मपरायण महिला थीं, उनके संपर्क एवं अनुशासन में रहकर चिरंजीलाल

जिनेन्द्र भगवान के कट्टर भक्त बन गए और प्रतिदिन मंदिर जाने लगे। सत्य है कि आत्महित की ओर प्रेरित करने वाले बंधु ही सच्चे बंधु होते हैं।

व्यापार– जीवन निर्वाह और शरीर का पोषण करने के लिए व्यापार भी करना पड़ता है इसी उद्देश्य से आपने 14-15 वर्ष की अवस्था में छोटी-सी दुकान खोली। संतोषवृत्ति तो थी ही अतः जब दुकान पर आजीविकायोग्य लाभ हो जाता, उसी समय दुकान बंद कर देते तथा अपना शेष समय शास्त्र स्वाध्याय में लगाते।

रत्नत्रय मार्ग की ओर बढ़ते कदम– धार्मिक वृत्ति होते हुए भी जैन साधुओं का कभी निकटतम सानिध्य प्राप्त नहीं होने से धर्मकार्यों की ओर झुकाव नहीं हो पाया था। इसी मध्य नैनवाँ नगर में परमपूज्य आचार्यकल्प 108 श्री चन्द्रसागर जी महाराज का चातुर्मास हो गया। उन सिंहवृत्ति के धारक, आगम पोषक गुरु का समागम प्राप्त कर आपके जीवन में नया मोड़ आया और शुद्ध भोजन का नियम लेकर आहार देने लगे। साथ-साथ पूजा-दानादि षट्क्रियाओं का भी दृढ़तापूर्वक पालन करने लगे तथा आजीवन ब्रह्मचारी रहने का संकल्प मन में कर लिया।

कुछ ही दिनों बाद इंदौर नगर में पूज्य आचार्यकल्प श्री वीरसागर जी महाराज का समागम भी आपको प्राप्त हुआ। वहाँ पर पूज्य श्री की प्रेरणा से दो प्रतिमा के व्रतों को धारण कर लिया। जब आचार्यकल्प चन्द्रसागर महाराज का चातुर्मास बड़नगर में था, उस समय आप बहन दाखाबाई के साथ गुरु के दर्शन के लिए गये और वहीं पर आपने सप्तम प्रतिमारूप ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया। अब आपके हृदय में दीक्षा की प्रबल भावना जाग्रत होने लगी। गुरु के सानिध्य में एकदेश संयम का पालन तो हो ही रहा था, अवसर पाकर इन्होंने गुरुदेव के समक्ष दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की और वि.सं. 2001 चैत्र शुक्ला सप्तमी की मांल बेला में बालूज नगर के जनसमूह के मध्य क्षुल्लक दीक्षा प्राप्त की। दीक्षित नाम क्षुल्लक भद्रसागर जी रखा गया। गुरु वियोग का दुःख भी आपको अल्प समय में ही प्राप्त हो गया। वि.सं. 2001 फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा के दिन आचार्यकल्प चन्द्रसागर महाराज का सल्लेखनापूर्वक स्वर्गवास हो गया। इसके अनंतर क्षुल्लक भद्रसागर जी आचार्यकल्प श्री वीरसागर जी के सानिध्य में आ गये और क्षुल्लक अवस्था में 6 चातुर्मास गुरु के समीप ही किये। इसके बाद वि.सं. 2007 में फुलेरा नगर में पंचकल्याणक के अवसर पर तपकल्याणक के दिन ऐलक दीक्षा ग्रहण की किन्तु अब 1 लंगोटी भी आपको भार प्रतीत होती थी अतः 6 माह पश्चात् फुलेरा में ही कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी सं. 2008 के दिन आपको पूर्ण महाव्रतरूप दैगम्बरी दीक्षा प्राप्त हो गई।

अब आप मुनि धर्मसागर जी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हो गये। आपने गुरु के सानिध्य में रहकर सम्मेदशिखर आदि कई तीर्थ क्षेत्रों की वंदनाएँ कीं। वि.सं. 2012 में आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज ने अपनी सल्लेखना के समय कुंथलगिरि से अपना आचार्यपट्ट वीरसागर मुनिराज को प्रदान किया था तदनुसार जयपुर-खानियाँ में वर्षायोग के समय विशेष समारोहपूर्वक चतुर्विध संघ ने सं. 2012 में ही आचार्यकल्प वीरसागर महाराज को अपना आचार्य स्वीकार किया। आचार्य श्री वीरसागर महाराज ने कुशलतापूर्वक आचार्यपट्ट को निभाया और वि.सं. 2014 में जयपुर चातुर्मास में आश्विन कृ. अमावस्या को आचार्यश्री की सल्लेखनापूर्वक समाधि हो गई। वीरसागर महाराज की समाधि के अनंतर

समस्त संघ ने उनके प्रधान शिष्य मुनि श्री शिवसागर जी को आचार्यपट्ट प्रदान किया।

संघ से पृथक् विहार–अब आचार्य शिवसागर महाराज के संघ का विहार गिरनार की तरफ हुआ। गिरनार जी की वंदना करके वापस लौटते समय ब्यावर (राज.) में संघ का चातुर्मास हुआ। मुनि धर्मसागर जी ने एक और मुनिराज पद्मसागर को साथ लेकर संघ से पृथक् विहार करके आनंदपुरकालू में वर्षायोग स्थापित किया। इसके अनंतर अजमेर और बूंदी में चातुर्मास के पश्चात् बुंदेलखण्ड की यात्रा का विचार बनाया। अब आपके साथ दो मुनिराज थे। बुंदेलखण्ड में इस संघ के विहार से अभूतपूर्व धर्मप्रभावना हुई। 3 वर्षों की इस यात्रा के पश्चात् आपने मालवा प्रान्तीय तीर्थक्षेत्रों की वंदना की तथा राजस्थान के विभिन्न प्रान्तों में भ्रमण करके धर्मप्रभावना के साथ शिष्य- परम्परा में भी वृद्धि की। अब आपके साथ 4 मुनिराज एवं 1 ऐलक जी थे।

गुरु का संयोग-वियोग और आचार्यपट्ट–वि.सं. 2024 तक आपने अपने लघु संघ सहित विभिन्न प्रान्तों में भ्रमण किया। अनन्तर 2025 में बिजौलिया नगर में चातुर्मास सम्पन्न करके आपने श्री महावीर जी शांतिवीर नगर में होने वाले पंचकल्याणक महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए विहार कर दिया। यहाँ पर आचार्य शिवसागर महाराज का संघ भी विराजमान था। कहते हैं उस समय उभय संघ सम्मिलन का दृश्य अभूतपूर्व था। 10 वर्षों से बिछुड़े हुए गुरु भाइयों का यह अद्वितीय मिलन था। आचार्य शिवसागर महाराज को अचानक ज्वर चढ़ जाने से फाल्गुन कृष्णा अमावस को आकस्मिक उनका स्वर्गवास हो गया। समस्त संघ में शोकाकुल सा वातावरण हो गया।

चूँकि पंचकल्याणक प्रतिष्ठा भी सम्पन्न होनी थी और 11 व्रतियों की दीक्षाओं का निर्णय भी पूर्व से ही था अतः आठ दिनों तक समस्त संघ के ऊहापोह के अनन्तर अष्टमी को मुनि धर्मसागर जी को आचार्यपट्ट प्रदान किया गया। उसी दिन आपके करकमलों से 6 मुनि, 2 आर्यिका, 2 क्षुल्लक और 1 ऐलक ऐसी 11 दीक्षाएँ हुईं। ये वे ही दीक्षार्थी थे जिन्होंने आचार्य शिवसागर जी के समय दीक्षा की प्रार्थना की थी। तब से लेकर कई वर्षों तक आप अपने विशाल संघ का संचालन करते हुए पूरे भारतवर्ष में जैनधर्म की ध्वजा फहराई। समय-समय पर आपके करकमलों से बहुत सी दीक्षाएँ भी सम्पन्न हुईं हैं।

2500वें निर्वाण महोत्सव पर प्रभावना–ईसवी सन् 1974 में जब तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी का 2500वाँ निर्वाण महोत्सव अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर राजधानी दिल्ली में मनाने की योजना चल रही थी, उस समय आचार्य धर्मसागर महाराज का संघ अलवर (राज.) में था। पूज्य आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी दिल्ली में अपने संघ सहित थीं। आचार्यरत्न श्री देशभूषण महाराज एवं उपाध्याय मुनि श्री विद्यानंद जी महाराज भी दिल्ली में विराजमान थे। पूज्य माताजी के हृदय में यह प्रबल इच्छा थी कि ऐसे समय आचार्य धर्मसागर जी का संघ दिल्ली अवश्य आना चाहिए। माताजी ने समाज के गणमान्य व्यक्तियों के समक्ष विचार रखे किन्तु सबने इस विशाल संघ को और उस परम्परा की क्रियात्मक शुद्धि के पालन हेतु अपनी असमर्थता व्यक्त की किन्तु माताजी कहाँ मानने वाली थीं उन्होंने डॉ. लालबहादुर शास्त्री, लाला श्यामलाल जी ठेकेदार, डॉ. कैलाशचंद, कम्मोजी, पन्नालाल जी तेजप्रेस, आदि कई लोगों को आदेश देकर आचार्यसंघ के पास निवेदन करने को भेजा। दिल्ली

गांधीनगर की जैन समाज ने भी माताजी के आदेशानुसार पूर्ण सहयोग प्रदान कर आचार्यश्री के पास जाकर श्रीफल चढ़ाकर दिल्ली पदार्पण के लिए आग्रह किया।

सब के अथक प्रयासों से आचार्यसंघ का दिल्ली लाल मंदिर में चातुर्मास स्थापित हुआ और निर्वाण महोत्सव की प्रत्येक गतिविधि में आपका अंतिम निर्णय लियाजाता था। दिगम्बर सम्प्रदाय के परम्परागत पट्टाचार्य होने से आपका विशेष अतिथि के रूप में राष्ट्रीय समिति में भी नाम रखा गया था। आपने यहाँ पर भी निर्भयतापूर्वक अपनी परम्परा का पालन किया। दिल्ली में आपके ससंघ मंगल विहार से काफी धर्म प्रभावना हुई। 8 दीक्षाएँ भी दरियागंज के विशाल प्रांगण में सम्पन्न हुईं। सन् 1974 में ही पूज्य आर्यिका ज्ञानमती माताजी द्वारा अनुवादित अष्टसहस्री ग्रंथराज त्रिलोक शोध संस्थान ने प्रकाशित कराया जो कि वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला का प्रथम पुष्प था। वह विशाल जनसमूह के मध्य महापौर द्वारा विमोचन होकर पूज्य माताजी द्वारा दोनों गुरुओं (आचार्य धर्मसागर, आचार्य देशभूषण) के करकमलों में समर्पित किया गया था तथा सम्यग्ज्ञान हिन्दी मासिक का विमोचन भी आपके करकमलों से सम्पन्न हुआ था। जिसमें आपका पूर्ण शुभाशीर्वाद माताजी को व संस्थान को प्राप्त हुआ था।

दिल्ली महानगर में विविध कार्यक्रमों को सम्पन्न करके आपने गाजियाबाद, बड़ौत, मेरठ, सरधना, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर आदि उत्तरप्रदेश के नगरों में भ्रमण किया और हस्तिनापुर की पवित्र भूमि पर आपका ससंघ मंगल पदार्पण हुआ। भगवान शांति-कुंथु-अरहनाथ के चार-चार कल्याणक, महाभारत का युद्ध, सात सौ मुनियों पर उपसर्ग, दानतीर्थ का प्रवर्तक होने से इस तीर्थ को ऐतिहासिकता भी प्राप्त है। यहाँ पूज्य आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमतीमाताजी की प्रेरणा से दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान ने जम्बूद्वीप रचना के निर्माण हेतु भूमि का क्रय किया और सर्वप्रथम वहाँ पर 1008 भगवान महावीर स्वामी की अवगाहना प्रमाण 7 हाथ खड्गासन (सवा नौ फुट ऊँची) प्रतिमा को विराजमान करने हेतु एक छोटे से कमरे का निर्माण कराया गया। उसी समय प्राचीन तीर्थक्षेत्र पर नवनिर्मित बाहुबली मंदिर और जलमंदिर की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का मुहूर्त निकला। पूज्य माताजी के निर्देशानुसार तीर्थक्षेत्र कमेटी के महामंत्री बाबू सुकुमारचंद जी ने सोलापुर निवासी पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री को आमंत्रित किया। प्रतिष्ठा मुहूर्त के अनुसार समस्त विधि विधान सम्पन्न हुए। पूज्य आचार्यश्री ससंघ व मुनि विद्यानंद जी वहीं पर विराजमान थे। जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान महावीर की प्रतिमा जब खड़ी की गईं, उस समय आचार्यश्री ने अपने हाथों से उसके नीचे अचल यंत्र स्थापित किया और तीनों जगह की प्रतिमाओं पर आपने ही अपने करकमलों से सूरिमंत्र प्रदान किया।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सानंद सम्पन्न होने के पश्चात् संघस्थ वयोवृद्ध मुनि श्री वृषभसागर जी महाराज की सल्लेखना के निमित्त से संघ यहाँ 3-4 महीने ठहरा और शास्त्रोक्त विधि के अनुसार उनकी महामंत्र स्मरणपूर्वक हस्तिनापुर में समाधि हुई। उस समय हस्तिनापुर का दृश्य चतुर्थकाल का सा आनंद प्रदान कर रहा था। मुझे भी समस्त साधुओं के असीम वात्सल्य और आहारदान का सौभाग्य प्राप्त हुआ। 13-13 साधुओं का भी एक साथ मेरे चौके में पड़गाहन हुआ जो मेरे जीवन के लिए चिरस्मरणीय बन गया।

त्रिलोक शोध संस्थान को आशीर्वाद—आचार्यश्री जब अपने संघ सहित हस्तिनापुर

से विहार करने लगे, उस समय ज्ञानमती माताजी ने उनके समक्ष यहां रहने के बारे में ऊहापोह किया। तब आचार्यश्री ने बड़े प्रसन्नतापूर्वक शब्दों में माताजी से कहा कि– ''आपको जंबूद्वीप रचना पूर्ण होने तक यहीं रहना चाहिए। साधु को तीर्थक्षेत्र पर अधिक दिनों तक रहने में कोई बाधा नहीं है।'' आपके आशीर्वाद का ही फल है कि पूज्य माताजी की मंगल प्रेरणा व निर्देशन में त्रिलोक शोध संस्थान चहुँमुखी प्रगति कर रहा है।

4 जून 1982 को दिल्ली के ऐतिहासिक लालकिले के मैदान से प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा प्रवर्तित जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति ने भी आपके मंगल आशीर्वाद से देश के विभिन्न प्रान्तों में भ्रमण किया। राजस्थान प्राप्त में भ्रमण के समय 27 अक्टूबर 1982 को लोहारिया ग्राम में आपके ससंघ सानिध्य में ज्ञानज्योति का भव्य आयोजन किया गया जिसमें विशिष्ट श्रीमान विद्वान् भी पधारे थे। वहाँ पर बोलियों के बाद आपने ज्योति को मंगल शुभाशीर्वाद प्रदान किया और बाद में अपने विशाल संघ सहित उसकी शोभायात्रा के साथ भ्रमण कर धर्मवात्सल्य और प्रभावना का परिचय दिया। जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति के भारत भ्रमण के पश्चात् हस्तिनापुर में होने वाली विशाल पैमाने की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर भी पूज्य माताजी की इच्छानुसार आपके विशाल संघ का सानिध्य प्राप्त हुआ।

उन महान आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज के करकमलों से आर्यिका दीक्षा लेकर पूज्य अभयमती माताजी आज निरन्तर अपने ज्ञान और चारित्र की वृद्धि कर रही हैं।

ऐसे आचार्यपरमेष्ठी के चरणों में शतशः नमोस्तु।

इनके पश्चात् चतुर्थ पट्टाधीश आचार्यश्री अजितसागर महाराज हुए, पंचम पट्टाचार्य श्री श्रेयांससागर महाराज हुए हैं। पुनः सन् 1992 से श्रेयांससागर महाराज की समाधि के पश्चात् षष्ठम् पट्टाचार्य के रूप में आचार्यश्री अभिनंदनसागर महाराज चतुर्विध संघ का संचालन करते हुए जिनशासन की प्रभावना में तत्पर हैं।

स्वर्णिम व्यक्तित्व की धनी

गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय

(श्री अभयमती माताजी की क्षुल्लिका दीक्षागुरु)

कुन्दकुन्दान्वयो जीयात्, जीयात् श्री शांतिसागरः।
जीयात् पट्टाधिपस्तस्य, सूरिः श्री वीरसागरः।।
श्री ब्राह्मी गणिनी जीयात्, जीयादन्तिमचन्दना।
जीयात् ज्ञानमती माता, गणिन्यां प्रमुखा कलौ।।

जैनशासन के वर्तमान व्योम पर छिटके नक्षत्रों में दैदीप्यमान सूर्य की भाँति अपनी प्रकाश-रश्मियों को प्रकीर्णित कर रहीं पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर उठी लेखनी की अपूर्णता यद्यपि अवश्यंभावी है, तथापि आत्मकल्याण की भावना से पूज्य माताजी के श्रीचरणों में उनके दीर्घकालीन त्यागमयी जीवन के प्रति विनम्र विनयांजलिरूप मेरा यह विनीत प्रयास है।

1. जन्म, वैराग्य और दीक्षा – 22 अक्टूबर सन् 1934, शरदपूर्णिमा के दिन टिकैतनगर ग्राम (जि. बाराबंकी, उ.प्र.) के श्रेष्ठी श्री छोटेलाल जैन की धर्मपत्नी श्रीमती मोहिनी देवी के दांपत्य जीवन के प्रथम पुष्प के रूप में 'मैना' का जन्म परिवार में नवीन खुशियाँ लेकर आया था। माँ को दहेज में प्राप्त 'पद्मनंदिपंचविंशतिका' ग्रन्थ के नियमित स्वाध्याय एवं पूर्वजन्म से प्राप्त दृढ़ वैराग्य संस्कारों के बल पर मात्र 18 वर्ष की अल्प आयु में ही शरद पूर्णिमा के दिन मैना ने आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से सन् 1952 में आजन्म ब्रह्मचर्यव्रतरूप सप्तम प्रतिमा एवं गृहत्याग के नियमों को धारण कर लिया।

जैनेश्वरी दीक्षा की कामना को अपनी हर साँस में संजोये ब्र. मैना सन् 1953 में आचार्य श्री देशभूषण जी से ही चैत्र कृष्णा एकम् को श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र में 'क्षुल्लिका वीरमती' के रूप में दीक्षित हो गईं। सन् 1955 में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की समाधि के समय कुंथलगिरी पर एक माह तक प्राप्त उनके सान्निध्य एवं आज्ञा द्वारा 'क्षुल्लिका वीरमती' ने आचार्य श्री के प्रथम पट्टाचार्य शिष्य-वीरसागर जी महाराज से सन् 1956 में 'वैशाख कृष्णा दूज' को माधोराजपुरा (जयपुर-राज.) में आर्यिका दीक्षा धारण करके **''आर्यिका ज्ञानमती''** नाम प्राप्त किया।

2. अध्ययन और अध्यापन – ज्ञानप्राप्ति की पिपासा माता ज्ञानमती जी के रोम-रोम में प्रारंभ से ही कूट-कूट कर भरी थी। दीक्षा लेते ही स्वाध्याय-मनन-चिंतन की धारा में ही उन्होंने स्वयं को निबद्ध कर लिया। ज्ञान प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ स्रोत बना-संघस्थ मुनियों, आर्यिकाओं एवं संघस्थ शिष्य-शिष्याओं को जैनागम का तलस्पर्शी अध्यापन। 'कातंत्र रूपमाला' रूपी बीज से पूज्य माताजी की ज्ञानसाधनारूप वृक्ष प्रस्फुटित हुआ, जिस पर जो पत्ते, फूल-फल इत्यादि लगे, उन्होंने समस्त संसार को सुवासित कर दिया। गोम्मटसार, परीक्षामुख, न्यायदीपिका, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री, तत्त्वार्थराजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि, अनगारधर्मामृत, मूलाचार, त्रिलोकसार आदि अनेक ग्रंथों को अपनी शिष्याओं और संघस्थ साधुओं को पढ़ा-पढ़ाकर आपने अल्प समय में ही विस्तृत ज्ञानार्जन कर लिया। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, मराठी इत्यादि भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार हो गया।

3. लेखनी का प्रारंभीकरण संस्कृत भाषा से – भगवान महावीर के पश्चात् 2500 वर्ष के जिस इतिहास में जैन साध्वियों के द्वारा शास्त्र लेखन की कोई मिसाल दृष्टिगोचर नहीं होती थी, वह इतिहास जागृत हो उठा जब क्षुल्लिका वीरमती जी ने सन् 1954 में सहस्रनाम के 1008 मंत्रों से अपनी लेखनी का प्रारंभ किया। यही मंत्र सरस्वती माता का वरदहस्त बनकर पूज्य माताजी की लेखनी को ऊँचाइयों की सीमा तक ले गये। सन् 1969-70 में न्याय के सर्वोच्च ग्रंथ 'अष्टसहस्री' के हिन्दी अनुवाद ने उनकी अद्वितीय विद्वत्ता को संसार के सामने उजागर कर दिया। कितने ही ग्रंथों की संस्कृत टीका, कितनी ही टीकाओं के हिंदी अनुवाद, संस्कृत एवं हिन्दी में अनेक मौलिक ग्रंथों की रचना मिलकर आज 250 की संख्या को पार कर चुके हैं। पूज्य माताजी द्वारा लिखित समयसार, नियमसार इत्यादि की हिन्दी-संस्कृत टीकाएँ, जैनभारती, ज्ञानामृत, कातंत्र व्याकरण, त्रिलोक भास्कर, प्रवचन निर्देशिका इत्यादि स्वाध्याय ग्रंथ, प्रतिज्ञा, संस्कार, भक्ति, आदिब्रह्मा, आटे का मुर्गा,

जीवनदान इत्यादि जैन उपन्यास, द्रव्यसंग्रह-रत्नकरण्डश्रावकाचार इत्यादि के हिन्दी पद्यानुवाद व अर्थ, बाल विकास, बालभारती, नारी आलोक आदि का अध्ययन किसी को भी वर्तमान में उपलब्ध जैन वाङ्मय की विविध विधाओं का विस्तृत ज्ञान कराने में सक्षम है।

अध्यात्म, व्याकरण, न्याय, सिद्धांत, बाल साहित्य, उपन्यास चारों अनुयोगों रूप विविध विधाओं के अतिरिक्त पूज्य माताजी की लेखनी से विपुल भक्ति साहित्य उद्भूत हुआ है। इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम, सर्वतोभद्र, तीन लोक, सिद्धचक्र, विश्वशांति महावीर विधान इत्यादि भक्ति विधानों ने देश के कोने-कोने में जिनेन्द्र भक्ति की जो धारा प्रवाहित की है, वह अतुलनीय है। पूज्य माताजी का चिंतन एवं लेखन पूर्णतया जैन आगम से संबद्ध रहता है, यह उनकी महान विशेषता है।

धन्य हैं ऐसी महान प्रतिभावान् सरस्वती माता!

4. सिद्धांत चक्रेश्वरी–इसी प्रकार पूज्य माताजी ने जैनशासन के सर्वप्रथम सिद्धांत ग्रंथ 'षट्खण्डागम' के सूत्रों की संस्कृत टीका 'सिद्धांत चिंतामणि' के लेखन को पूर्ण किया है। 8 अक्टूबर सन् 1995 में उन्होंने इस टीका का मंगलाचरण लिखा और 4 अप्रैल 2007 को 3100 पृष्ठों में षट्खण्डागम की सोलहों पुस्तकों की टीका लिखकर पूर्ण करके एक नूतन कीर्तिमान स्थापित किया है, जिसमें से प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुस्तक हिन्दी टीका सहित प्रकाशित भी हो चुकी हैं, चौथी पुस्तक शीघ्र प्रकाशनाधीन है और आगे की पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद का कार्य सतत जारी है। आज से लगभग 1000 वर्ष पूर्व आचार्य श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने जिस प्रकार छह खण्डरूप द्वादशांगरूप जिनवाणी को परिपूर्ण आत्मसात करके साररूप में द्रव्य-संग्रह, गोम्मटसार, लब्धिसार इत्यादि ग्रंथ अपनी लेखनी से प्रसवित किये थे, उसी प्रकार इस बीसवीं सदी की माता ज्ञानमती जी ने समस्त उपलब्ध जैनागम का गहन अध्ययन-मनन-चिंतन करके इस सिद्धांतचिंतामणिरूप संस्कृत टीका लेखन के महत्तम कार्य से 'सिद्धांत चक्रेश्वरी' के पद को साकार कर सम्पूर्ण जैन समाज पर महान उपकार किया है। 1000 वर्ष पूर्व आचार्य श्री वीरसेन स्वामी द्वारा लिखित 'धवलाटीका' के पश्चात् इस महान ग्रंथ की सरल टीका लेखन का कार्य प्रथम बार हुआ है।

5. शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर–जैन सिद्धांतों का मर्म विद्वत्वर्ग समझ सके, इस भावना से कितने ही शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन पूज्य माताजी की प्रेरणास्वरूप किया गया। सन् 1969 में जयपुर चातुर्मास के मध्य 'जैन ज्योतिर्लोक' पर प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी द्वारा 'जैन भूगोल एवं खगोल' का विशेष ज्ञान विद्वत्वर्ग को कराया गया। अक्टूबर सन् 1978 में हस्तिनापुर में पं. मक्खनलाल जी शास्त्री, पं. मोतीचंद जी कोठारी, डा. लाल बहादुर शास्त्री आदि जैन समाज के उच्चकोटि के लगभग 100 विद्वानों का विद्वत् प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी ने विद्वत्समुदाय को यथेष्ट मार्गदर्शन प्रदान किया। आज तक भी यह श्रृंखला बराबर चल रही है।

6. राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार–सन् 1985 में 'जैन गणित एवं त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में सम्पन्न हुआ पुनः अनेक संगोष्ठियां सम्पन्न

होती रहीं और सन् 1998 में 'भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन' के भव्य आयोजन द्वारा देशभर के विश्वविद्यालयों से पधारे कुलपतियों को भगवान ऋषभदेव को भारतीय संस्कृति एवं जैनधर्म के वर्तमानयुगीन प्रणेता पुरुष के रूप में जानने का अवसर प्राप्त हुआ। 11 जून 2000 को 'जैनधर्म की प्राचीनता' विषय पर आयोजित इतिहासकारों के सम्मेलन द्वारा पाञ्च्य पुस्तकों में जैनधर्म संबंधी भ्रांतियों के सुधार के लिए विशेष दिशा-निर्देश 'राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद' (NCERT) तक पहुंचाये गये। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य सेमिनार भी समय-समय पर सम्पन्न हुए हैं, जिनके प्रतिफल में देश के समक्ष समय-समय पर साहित्यिक कृतियाँ प्रस्तुत हो चुकी हैं।

7. दिगम्बर समाज की साध्वी को प्रथम बार डी.लिट्. की उपाधि प्रदान कर विश्वविद्यालय भी गौरवान्वित हुआ—किसी महाविद्यालय, विश्वविद्यालय आदि में पारम्परिक डिग्रियों को प्राप्त किये बिना मात्र स्वयं के धार्मिक अध्ययन के बल पर विदुषी माताजी ने अध्ययन, अध्यापन, साहित्य निर्माण की जिन ऊँचाइयों को स्पर्श किया, उस अगाध विद्वत्ता के सम्मान हेतु अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद द्वारा 5 फरवरी 1995 को डी.लिट्. की मानद् उपाधि से पूज्य माताजी को सम्मानित करके स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया गया तथा दिगम्बर साधु-साध्वी परम्परा में पूज्य माताजी यह उपाधि प्राप्त करने वाली प्रथम व्यक्तित्व बन गईं।

इसी प्रकार से समय-समय पर विभिन्न आचार्यों एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा पूज्यमाताजी को न्याय प्रभाकर, आर्यिकारत्न, आर्यिकाशिरोमणि, गणिनीप्रमुख, वात्सल्यमूर्ति, तीर्थोद्धारिका, युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, राष्ट्रगौरव, वाग्देवी इत्यादि अनेक उपाधियों से अलंकृत किया गया है, किन्तु पूज्य माताजी इन सभी उपाधियों से निस्पृह होकर अपनी आत्म साधना को प्रमुखता देते हुए निर्दोष आर्यिका चर्या में निमग्न रहने का ही अपना मुख्य लक्ष्य रखती हैं।

8. इतिहास भी परिवर्तन के लिए बाध्य हुआ—सन् 1992 से पूज्य माताजी की दृष्टि आधुनिक शिक्षाजगत में पढ़ायी जाने वाली पाठ्य पुस्तकों में जैनधर्म संबंधी भ्रान्त विषयवस्तु पर गयी, तो 'भगवान महावीर जैनधर्म के संस्थापक हैं' इत्यादि भ्रांतियों को वहाँ देखकर उनका हृदय अत्यंत उद्वेलित हो उठा। फलस्वरूप प्रधानमंत्री, मानव संसाधन विकास मंत्री, निदेशक-NCERT इत्यादि से उनकी प्रत्यक्ष वार्ता द्वारा शिक्षाजगत तक यह संदेश पहुँचा और दस वर्षों के अथक प्रयास द्वारा पाठ्य पुस्तकों में संशोधन का क्रम प्रारंभ हो सका।

9. तीर्थ विकास की भावना—तीर्थंकर भगवन्तों की कल्याणक भूमियों एवं विशेष रूप से जन्मभूमियों के विकास की ओर पूज्य माताजी की विशेष आंतरिक रुचि सदा से रही है। पूज्य माताजी का कहना है कि हमारी संस्कृति का परिचय प्रदान करने वाली ये कल्याणक भूमियाँ हमारी महान संस्कृति की धरोहर हैं अतः इनका संरक्षण-संवर्धन-विकास अत्यंत आवश्यक है।

सर्वप्रथम भगवान शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ की जन्मभूमि 'हस्तिनापुर' में पूज्य माताजी की प्रेरणा से निर्मित जैन भूगोल की अद्वितीय रचना 'जम्बूद्वीप' आज विश्व के मानस पटल पर अंकित हो गयी है, उ.प्र. सरकार के पर्यटन विभाग ने जम्बूद्वीप से हस्तिनापुर की पहचान बताते हुए उसे एक अतुलनीय 'मानव निर्मित स्वर्ग' (A Man Made Heaven of

Unparallel Superlatives And Natural Wonders) की संज्ञा प्रदान की है। सन् 1993 से 1995 तक शाश्वत जन्मभूमि 'अयोध्या' में 'समवसरण मंदिर' और 'त्रिकाल चौबिसी मंदिर' का निर्माण करवाकर उसका विश्वव्यापी प्रचार, अकलूज (महाराष्ट्र) में नवदेवता मंदिर निर्माण की प्रेरणा, सनावद (म.प्र.) में णमोकार धाम, प्रीत विहार-दिल्ली में कमलमंदिर, मांगीतुंगी (महाराष्ट्र) में सहस्रकूट कमल मंदिर, अहिच्छत्र में ग्यारह शिखर वाला तीस चौबीसी मंदिर और भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान कल्याणक भूमि-प्रयाग में 'तीर्थंकरऋषभदेव तपस्थली तीर्थ' का भव्य निर्माण पूज्य माताजी की ही प्रेरणा के सुफल हैं।

कितने ही अन्य स्थानों पर भी अनेकानेक निर्माण पूज्य माताजी के निर्देशन द्वारा सम्पन्न हुए और हो रहे हैं। भगवान महावीर स्वामी की जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) के विकास हेतु भगवान महावीर स्वामी कीर्तिस्तंभ, भगवान महावीर की विशाल खड्गासन प्रतिमा सहित विश्वशांति महावीर मंदिर, नवग्रह शांति जिनमंदिर, त्रिकाल चौबीसी मंदिर एवं नंद्यावर्त महल आदि अनेक निर्माण आपकी प्रेरणा से इस क्षेत्र पर हुए हैं तथा कुण्डलपुर तीर्थ विश्वभर के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया है।

भगवान मुनिसुव्रतनाथ की जन्मभूमि 'राजगृही' में 'मुनिसुव्रतनाथजिनमंदिर' एवं विपुलाचल पर्वत की तलहटी में मानस्तंभ रचना, भगवान महावीर की निर्वाणस्थली पावापुरी में जलमंदिर के समक्ष पाण्डुकशिला परिसर में भगवान की खड्गासन प्रतिमा सहित 'भगवान महावीर जिनमंदिर', गौतम गणधर स्वामी की निर्वाणस्थली गुणावां जी में गौतम स्वामी की खड्गासन प्रतिमा सहित जिनमंदिर, श्री सम्मेदशिखर जी में भगवान ऋषभदेव मंदिर इत्यादि समस्त निर्माण भी पूज्य माताजी की संप्रेरणा से ही सम्पन्न हुए हैं।

वर्तमान में तीर्थंकर जन्मभूमि विकास की शृँखला में भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकंदी में 'पुष्पदंतनाथ जिनमंदिर' के निर्माण हेतु शिलान्यास सम्पन्न किया जा चुका है तथा शीघ्र ही निर्माणकार्य पूर्ण करके इस विस्मृत जन्मभूमि का परिचय भी विश्व को प्रदान किया जा सकेगा।

10. विश्व में अनोखी 108 फुट मूर्ति निर्माण की प्रेरणा – विश्व के अप्रतिम आश्चर्य के रूप में 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की खड्गासन प्रतिमा के निर्माण का कार्य मांगीतुंगी (महा.) के पर्वत पर पूज्य माताजी की प्रेरणा से प्रारंभ हो चुका है। युगों-युगों तक जिनशासन की महिमा को विकसित करने वाली यह प्रतिमा जैन संस्कृति के विशाल व्यक्तित्व का परिचय भी जनमानस को प्रदान करेगी।

11. शिरडी (महाराष्ट्र) में ज्ञानतीर्थ – शिरडी (महाराष्ट्र) को जैन संस्कृति केन्द्र के रूप में स्थापित करने हेतु महाराष्ट्र के कार्यकर्ताओं द्वारा वहाँ पर 'ज्ञानतीर्थ' के निर्माण की योजना मूर्तरूप ले रही है, जिसमें पूज्य माताजी के निर्देशानुसार भगवान पार्श्वनाथ की विशाल प्रतिमा विराजमान करके विशेष निर्माण सम्पन्न किया जायेगा।

12. धर्मप्रभावना के विविध आयाम – जम्बूद्वीप रचना के निर्माण का प्रमुख लक्ष्य लेकर 'दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान' नामक संस्था का राजधानी दिल्ली में पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में गठन किया गया। इसी संस्थान ने उपर्युक्त विविध

धर्मप्रभावना के कार्यों का निष्पादन किया है। संस्थान स्थित 'वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला' द्वारा लाखों की संख्या में ग्रंथ प्रकाशन, चारों अनुयोगों के ज्ञान से समन्वित 'सम्यग्ज्ञान' मासिक पत्रिका का प्रकाशन, णमोकार महामंत्र बैंक इत्यादि कितनी ही कार्ययोजनाएँ जिनशासन की कीर्ति को निरंतर प्रसारित कर रही हैं।

पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् 1982 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा राजधानी दिल्ली में उद्घाटित 'जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति' ने तीन वर्ष तक सम्पूर्ण भारतवर्ष में जैनधर्म के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार किया और अंत में यह ज्योति अखण्ड रूप से तत्कालीन केन्द्रीय रक्षामंत्री-श्री पी.वी. नरसिंहाराव द्वारा जम्बूद्वीप स्थल पर स्थापित कर दी गयी। इसी प्रकार अप्रैल सन् 1998 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार' का राजधानी दिल्ली से प्रवर्तन किया, जो समस्त प्रांतों में प्रवर्तन के पश्चात् सन् 2002 में भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञानकल्याणक भूमि प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में ''ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ'' पर निर्मित 'केवलज्ञान कल्याणक मंदिर' में स्थापित हो चुका है जो युगों-युगों तक भगवान ऋषभदेव के वास्तविक समवसरण की याद दिलाता रहेगा। भगवान महावीर जन्मभूमि-कुण्डलपुर (नालंदा) से सन् 2003 में 'भगवान महावीर ज्योति' का विविध प्रांतों में सफल प्रवर्तन भी इसी शृँखला की विशिष्ट कड़ी है।

जैनधर्म की प्राचीनता तथा भगवान ऋषभदेव के नाम एवं सिद्धांतों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए पूज्य माताजी ने राजधानी दिल्ली में विशाल 'चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान' आयोजित कराया, साथ ही 'भगवान ऋषभदेव जन्मजयंती वर्ष' तथा 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' (तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल जी द्वारा उद्घाटित) भी उनकी प्रेरणा द्वारा विविध धर्मप्रभावना के कार्यक्रमों सहित सम्पन्न हुए। आस्था टी.वी. चैनल द्वारा पूज्य माताजी के प्रभावक प्रवचन लम्बे समय से प्रसारित किये जा रहे हैं। पूज्य माताजी की प्रेरणा से स्थापित 'अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला संगठन' अपनी सैकड़ों इकाईयों द्वारा दिगम्बर जैन समाज की नारी शक्ति को सृजनात्मक कार्यों हेतु संगठित किये हुए है।

इसके अतिरिक्त कितने ही अन्य धर्मप्रभावना के कार्य इन 51 वर्षों में पूज्य माताजी ने सम्पन्न किये हैं जिनका यहाँ लेखन तो संभव नहीं है, किन्तु आज पूरा समाज उनके कार्यकलापों से परिचित होकर उन्हें कर्मठता की मूर्ति के रूप में पहचानता है।

13. संघर्ष विजेत्री—पूज्य माताजी ने प्रारंभ से अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया- प्रत्येक कार्य आगमानुकूल ही करना। पुनः उन कार्यों के निष्पादन में जो भी विघ्न आते हैं, उन्हें बहुत ही शांतिपूर्वक झेलकर पूरी तन्मयता के साथ उस कार्य को परिपूर्ण करना उनकी विशेषता रही है। उनका पूरा जीवन आर्षपरम्परा का संरक्षण करते हुए अपने मूलगुणों में बाधा न आने देकर जिनधर्म की अधिकाधिक प्रभावना के साथ व्यतीत हुआ है। किसी भी संस्था, तीर्थ, चंदे आदि की दानराशि को अपनी संघ व्यवस्था में समाहित न करने का उनका नियम है। निरन्तर 55 वर्षों से इस नियम का पालन करते हुए अपने कर्तव्य पथ पर वे अडिग हैं। यही कारण है कि उन्हें लम्बी-लम्बी यात्राएं कराने में अपना कर्तव्यपालन करने वाले संघपति श्रावक भी अपना सौभाग्य समझते हैं।

14. भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का आयोजन – 23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी में 6 जनवरी 2005 को पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं ससंघ सानिध्य में 'भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव' का उद्घाटन किया गया। भगवान की केवलज्ञान कल्याणक भूमि 'अहिच्छत्र', निर्वाणभूमि 'श्री सम्मेदशिखर जी' इत्यादि अनेकानेक तीर्थों पर विविध आयोजनों के साथ यह वर्ष मनाया गया। पुनः वर्ष 2006 को "सम्मेदशिखर वर्ष" के रूप में मनाने की प्रेरणा पूज्य माताजी ने प्रदान की, ताकि तन-मन-धन से दिगम्बर जैन समाज अपने महान तीर्थराज 'श्री सम्मेदशिखर जी' के प्रति समर्पित हो सके। इसके पश्चात् केवलज्ञानकल्याणक की भूमि "अहिच्छत्र" तीर्थ पर 7 दिसम्बर सन् 2007 से 4 जनवरी 2008 तक तिखाल वाले बाबा भगवान पार्श्वनाथ का सहस्राब्दि महोत्सव एवं महामस्तकाभिषेक महोत्सव करने की पुण्य प्रेरणा प्रदान कर तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव के त्रिवर्षीय आयोजन के समापन की घोषणा की जो उनके संघ सानिध्य में सम्पन्न हो चुका है।

भगवान नेमिनाथ की निर्वाणभूमि 'श्री गिरनार जी सिद्धक्षेत्र' की सुरक्षा हेतु भी पूज्य माताजी ने जनजागरण का शंखनाद किया है।

15. शताब्दी का अभूतपूर्व अवसर : दीक्षा स्वर्ण जयंती – वैशाख कृष्णा दूज, वी.नि.सं. 2532 अर्थात् 15 अप्रैल 2006 को अपनी आर्यिका दीक्षा के 50 वर्ष पूर्ण करने वाली पूज्य माताजी वर्तमान दिगम्बर जैन साधु परम्परा में सर्वाधिक प्राचीन दीक्षित होने के गौरव से युक्त होकर हम सभी के लिए अतिशयकारी प्राचीन प्रतिमा के सदृश बन गई हैं। इस अवसर पर 14 से 16 अप्रैल 2006 तक **'गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव'** का आयोजन करके समस्त समाज ने पूज्य माताजी के श्रीचरणों में अपनी विनम्र विनयांजलि अर्पित की।

इस महोत्सव के साथ ही दीक्षा स्वर्ण जयंती वर्ष भी धूमधाम से पूरे देश के विभिन्न दिगम्बर जैन संगठनों द्वारा मनाया गया।

16. अमृतमय हों वर्ष तुम्हारे- जिनकी दीर्घकालिक तपस्या के वर्षों की गिनती जानकर अनेक आचार्य, मुनि, आर्यिकाएँ इत्यादि भी इस बात को कहते हुए गौरव का अनुभव करते हैं कि आज जितनी मेरी उम्र भी नहीं है उससे अधिक तो पूज्य माताजी की दीक्षा आयु है, अर्थात् 18 वर्ष की उम्र से त्याग मार्ग पर जिन्होंने कदम रखा, उन्होंने अपनी जन्मतिथि-शरदपूर्णिमा को भी त्याग से सार्थक कर लिया तथा उस त्यागमयी जीवन के 55 वर्ष भी उन्होंने निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण किये हैं।

महान चतुर्मुखी प्रतिभा की धनी पूज्य माताजी के चरणों में कोटिशः नमन करते हुए भगवान जिनेन्द्र से यही प्रार्थना है कि उनके इस पवित्र त्यागमयी जीवन का हमें अमृत महोत्सव भी मनाने का लाभ प्राप्त हो तथा आपके द्वारा नया-नया साहित्य जनता को प्राप्त होता रहे, यही मंगलकामना है।

अब यहाँ प्रसंगोपात पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी की जन्मदात्री माता मोहिनी देवी (आर्यिका श्री रत्नमती माताजी) का परिचय प्रस्तुत है –

श्रीमती मोहिनी देवी
(जो बनीं आर्यिका श्री रत्नमती माताजी)

आदिब्रह्मा भगवान ऋषभदेव की जन्मभूमि अयोध्या और उसके आस-पास के क्षेत्र को भी आज अवध के नाम से जाना जाता है। वैसे इन प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव और उनके प्रथम पुत्र चक्रवर्ती सम्राट् भरत के समय यह अयोध्या नगरी 12 योजन लम्बी और 9 योजन चौड़ी मानी गई अतः मील के हिसाब से 96 मील (150 किमी.) होने से लखनऊ, टिकैतनगर, त्रिलोकपुर, बाराबंकी, महमूदाबाद आदि नगर उस समय अयोध्या नगरी की पवित्र भूमि के अंदर ही विद्यमान थे। वस्तुतः आज अयोध्या तीर्थ की पवित्रता से सम्पूर्ण अवध का वातावरण सुवासित, धर्मपरायण एवं परम पवित्र है।

उसी अवधप्रान्त के जिला सीतापुर के अन्तर्गत महमूदाबाद नामक एक नगर है, जहाँ विशाल जिनमंदिर के निकट वर्तमान में 60-70 जैन घर हैं। उसी नगर में एक सुखपालदास जी नाम के श्रेष्ठी निवास करते थे। अग्रवाल जातीय लाला सुखपालदास जी की धर्मपत्नी का नाम मत्तोदेवी था। पूरे नगर में धर्मात्मा के रूप में प्रसिद्ध सुखपालदास जी भगवान की नित्य पूजन के साथ-साथ स्वाध्याय भी करते थे। सात्त्विक प्रवृत्ति वाले इन महामना श्रावक की धर्मपत्नी भी पतिव्रता आदि गुणों से सहित धर्मपरायण एवं अत्यन्त सरल प्रकृति की थीं। इन धर्मनिष्ठ दम्पत्ति के चार संतानें थीं जिनके नाम क्रशमः इस प्रकार हैं – 1. शिवप्यारी देवी 2. मोहिनी देवी 3. महिपालदास 4. भगवानदास। पिता सुखपालदास जी ने इन सभी संतानों को धर्ममय संस्कारों से विशेष संस्कारित किया था।

ईसवी सन् 1914 में इन धर्मपरायण दम्पत्ति की बगिया में द्वितीय कन्या रत्न के रूप में जन्मीं 'मोहिनी' का नाम पिता ने बड़े ही प्यार से रखा था और माता-पिता कुटुम्बीजनों यहाँ तक कि नगरवासियों का भी इस कन्या पर विशेष स्नेह था। अपने सहज गुणों से हर मन को मंत्रमुग्ध एवं प्रसन्न करने वाली मोहिनी को पिता सुखपालदास जी सदैव अपने साथ लेकर घूमते थे और उसकी ओर अधिक ध्यान देते थे। प्रतिदिन रात्रि में अपने हाथों से बादाम भिगोकर प्रातः छीलकर दूध के साथ उसे देते तथा प्रतिदिन उसे अपने साथ मंदिर भी ले जाते थे। 5-6 वर्ष की उम्र में स्कूल जाने पर थोड़े ही दिनों में मोहिनी देवी ने 3-4 कक्षा तक अध्ययन कर लिया। चूँकि महमूदाबाद का इलाका मुस्लिम इलाका था अतः पिताजी ने अपने महीपाल पुत्र की शिक्षा हेतु एक मौलवी अध्यापक की व्यवस्था कर रखी थी, वे उन्हें उर्दू पढ़ाते थे और तीक्ष्ण बुद्धि की धनी कन्या मोहिनी अपने छोटे भाई को उर्दू पढ़ते देख स्वयं भी उर्दू पढ़ना सीख गई। चूँकि घर में अब छोटा बालक भगवानदास था अतः उसके प्रति विशेष वात्सल्य और खिलाने में मोहिनी ने स्कूल जाना छोड़ दिया। प्रायः देखा जाता है कि होनहार कुशाग्र बुद्धि के छात्र-छात्राएं गुरु के लिए विशेष कृपापात्र होते हैं और गुरु का उन पर विशेष स्नेह रहता है अतः जब कन्या मोहिनी कई दिन स्कूल नहीं गई तो उनकी

अध्यापिकाएँ आकर लाला सुखपालदास जी से उसकी कुशाग्र बुद्धि के कारण उसे स्कूल भेजने का आग्रह करतीं, साथ ही कहतीं कि इसके बगैर तो हमारा स्कूल ही सूना हो गया है। पिताजी की प्रेरणा के बाद भी मोहिनी अपने भाई को खिलाने का बहाना कर स्कूल जाने को मना कर देतीं। चूँकि उस समय कन्याओं को पढ़ाने की परम्परा नहीं थी और मुसलमानी इलाका होने के कारण माँ मत्तोदेवी भी कन्या को स्कूल भेजने का आग्रह नहीं करती थीं अतः उनकी लौकिक शिक्षा वहीं तक रहीं पुनः पिता ने मोहिनी के अंदर धार्मिक संस्कार डालने हेतु उसे भक्तामर, तत्त्वार्थसूत्र आदि का अध्ययन कराना प्रारंभ किया और रात्रि में पूरे परिवार को एक साथ बिठाकर मोहिनी से शास्त्र पढ़वाते और बड़े खुश होते थे पुनः सबको शास्त्र का अर्थ भी समझाते थे।

एक बार पिता ने मोहिनी को एक मुद्रित ग्रंथ पद्मनंदिपंचविंशतिका देकर उससे उसका स्वाध्याय करने को कहा। मोहिनी ने पिता की आज्ञा स्वीकार कर उस ग्रंथ का स्वाध्याय किया और उस स्वाध्याय का प्रतिफल यह रहा कि मोहिनी ने उस ग्रंथ में ब्रह्मचर्य के महत्त्व को पढ़कर भगवान की प्रतिमा के सम्मुख अष्टमी, चतुर्दशी के दिन ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया और किसी को इस व्रत के बारे में विदित भी न हो सका। चूँकि जिनमंदिर में प्रतिदिन सुखपालदास ही शास्त्र बांचते थे अतः सभी इन्हें पण्डितजी कहकर पुकारते थे। बड़े पुत्र महिपालदास जी कुश्ती के अच्छे खिलाड़ी बन गये थे और उस इलाके में बड़ी-बड़ी कुश्ती कर कई एक प्रतियोगिताएँ जीती थीं। मोहिनी देवी के पिताजी पहले कपड़े का व्यवसाय करते थे पुनः कपड़ा लेकर बिसवां जाने लगे और शुद्धता की दृष्टि से पूड़ी बनवाकर और दाल चावल लेकर जाते थे जिससे कभी-कभी अपने हाथ से खिचड़ी बनाकर खा लेते थे। इनका नियम था देवपूजा करके ही दुकान खोलना और अगर मंदिर न हो तो 'जाप्य' करके ही ग्राहक से बात करना। उनके इस नियम के कारण ही उनकी अंत समाधि बहुत ही अच्छी हुई है। एक बार वे बिसवां में व्यापार हेतु गये, प्रातः ही एक ग्राहक आ गया, तब उन्होंने कहा–भाई! मैं जाप्य करके ही वार्तालाप करूँगा। तब वह ग्राहक बाहर बैठ गया पुनः वह शुद्ध वस्त्र पहनकर जाप्य करने बैठे और जाप्य करते-करते ही उनके प्राण पखेरू उड़ जाने से उन्हें उत्तम गति की प्राप्ति हुई। उधर जब बहुत देर हो गई तो उस ग्राहक ने अंदर जाकर देखा तो उन्हें मृत पाया, तब परिवार के लोगों को बुलाकर उनकी अन्त्येष्टि की गई। वास्तव में बंधुओं! एक छोटा सा नियम भी इस जीव को संसार समुद्र से पार करने में सहकारी कारण बनजाता है इसीलिए धर्मगुरु सदैव हमें कोई न कोई व्रत-नियम लेने की प्रेरणा प्रदान करतेहैं।

सेठ सुखपालदास जी ने अपने सामने ही अपनी सभी पुत्र-पुत्रियों का विवाह कर दिया था, जिसमें से लाडली पुत्री मोहिनी का विवाह उन्होंने अयोध्या के निकट बसे धर्मपरायण नगर बाराबंकी जिले में स्थित टिकैतनगर नामक ग्राम के धर्मात्मा श्रावक लाला धन्यकुमार जी एवं उनकी धर्मपत्नी फूलमती देवी के द्वितीय पुत्र छोटेलाल जी के साथ किया था। चूँकि वह समय ऐसा था, जब लोग पुत्रियों को मांगकर विवाह करने में प्रसन्नता का अनुभव करते थे और लाला धन्यकुमार जी ने महमूदाबाद के लाला सुखपाल जी की बहुत ही प्रशंसा सुन

रखी थी, साथ ही मोहिनी के गुणों से भी वे बहुत प्रभावित थे अतः उन्होंने स्वयं अपने द्वितीय पुत्र के लिए उस मोहिनी कन्या की याचना की थी। सुखपालदास जी ने भी उनके पुत्र में एक वर के सभी गुणों को देखकर तुरंत स्वीकृति प्रदान कर दी और शुभ मुहूर्त में चि. छोटेलाल जी के साथ आयु. मोहिनी देवी का पाणिग्रहण संस्कार हो गया। माता-पिता ने अश्रुपूरित नेत्रों से अपनी प्यारी पुत्री को विदाई दी थी। उस समय सन् 1932 में मोहिनी देवी की उम्र 18 वर्ष मात्र थी। विदाई के समय यूँ तो पिताजी ने अपनी दुलारी बिटिया को दहेज में यथायोग्य सब कुछ प्रदान किया किन्तु जब उनके मन को पूर्ण संतुष्टि नहीं हुई तो उन्होंने मोहिनी को ''पद्मनंदिपंचविंशतिका'' ग्रंथ को सच्चे दहेज के रूप में देकर कहा – बिटिया मोहिनी! तुम हमेशा इस ग्रंथ का स्वाध्याय करती रहना, इसी से तुम्हारे गृहस्थाश्रम में सुख और शांति की वृद्धि होगी और तुम्हारा यह नरभव पाना सफल हो जायेगा। पुत्री मोहिनी ने भी पिता के द्वारा स्नेहपूर्वक प्रदत्त सच्चे दहेज को सबसे अधिक मूल्यवान समझा था।

बारात महमूदाबाद से टिकैतनगर आ गई और सबसे पहले वरवधू को जिनमंदिर ले जाया गया, वहाँ सातिशय भगवान पार्श्वनाथ के दर्शन कर प्रसन्नमना मोहिनी का माता-पिता वियोगजनित दुःख कम हो गया। घर में मंगल प्रवेश कर मोहिनी ने पिता द्वारा प्रदत्त उस शास्त्र को अनमोल निधि के रूप में संभाल कर रखा और नियमतः प्रतिदिन देवदर्शन के पश्चात् उसका स्वाध्याय किया। यहाँ इस भरे-पूरे परिवार में मोहिनी को घुलते-मिलते देर न लगी। सास और ससुर की सरल व धर्ममयी प्रवृत्ति, जेठ-जिठानी एवं देवर-ननदों के मधुरिम स्नेह से मोहिनी को उस घर का वातावरण बहुत ही सुखद लगता था। घर में देवदर्शन, रात्रिभोजन त्याग, जल छानकर पीना, सायंकाल मंदिर जाकर आरती करना और शास्त्र सभा में बैठकर विनयपूर्वक शास्त्र सुनना आदि श्रावकोचित्त सभी क्रियाएँ होती थीं। घर के निकट जिनमंदिर होने से मंदिर के घंटे, पूजा-पाठ व आरती की आवाज घर बैठे कानों में गूंजा करती थी। सन् 1934 में आसोज सुदी पूर्णिमा – शरदपूर्णिमा की रात्रि में मोहिनी देवी ने प्रथम पुष्प के रूप में एक कन्या रत्न को जन्म दिया जिसकी शुभ चांदनी आज सारे भारतवर्ष में फैल रही है। इस कन्या के पूर्व जन्म के संस्कार ही कुछ ऐसे थे कि 'यथा नाम तथा गुण'' के अनुरूप बचपन से ही कर्म सिद्धान्त पर अटल विश्वास था। मैना के जन्म से पहले मोहिनी देवी ने मैना सुन्दरी नाटक पढ़ा था और उन्हें सुरसुन्दरी-मैना सुन्दरी का संवाद याद था उसे वे हमेशा गुनगुनाया करती थीं और यही संस्कार गर्भस्थ बालिका पर अच्छी तरह से पड़ गये। सभी कुटुम्बीजनों एवं माता-पिता की अत्यन्त दुलारी बिटिया मैना तीक्ष्ण बुद्धि के कारण तीन-चार वर्ष में ही बहुत कुछ पढ़ गई, वहाँ पाठशाला में धार्मिक पढ़ाई की प्रमुखता के साथ-साथ प्रारंभिक गणित भी पढ़ाई जाती थी, मैना ने उसे भी पढ़ लिया और जीवन के लघुवय में ही पूर्णरूपेण हर क्रियाओं में निष्णात हो गईं। माता मोहिनी प्रतिदिन उठकर सामायिक करतीं, पुनः स्नानादि से निवृत्त होकर मंदिर में जाकर भगवान की पूजा करके ही रसोई बनाती थीं और छोटे बच्चों को दूध पिलाते समय स्वाध्याय और भक्तामर आदि के पाठ किया करती थीं जिससे वह दूध भी अमृततुल्य बन जाता था और बच्चों में धार्मिक

संस्कार पड़ते जाते थे। प्रतिदिन सायंकाल वे स्वयं मंदिर जातीं और बच्चों को भी भेजती थीं, प्रतिदिन किसी भी बालक को मंदिर जाए बिना नाश्ता नहीं मिलता था, यही कारण था कि माता मोहिनी की 13 संतानें इसी धर्म के सांचे में ढलती चली गईं। पूर्वकृत पुण्य एवं वर्तमान पर्याय में माता-पिता व स्वाध्याय से प्राप्त धर्म संस्कारों के प्रभाववश मैना ने घर से क्या, पूरे ग्राम से ही मिथ्यात्व को भगा दिया था और माता मोहिनी ने भी अपनी पुत्री मैना की बातों को जैनागम से प्रमाणित समझकर मान्य किया था और सासु जी को भी मैना की तर्कपूर्ण बातों से ही समझाकर प्रसन्न रखती थीं। मैना तर्क एवं युक्तिपूर्वक बातें जब दादी को सुनातीं, तो दादी यद्यपि समझ न पातीं परन्तु फिर भी उसे किसी देवी का अवतार मानकर संतोष कर लेती थीं।

इधर षोडशवर्षीय मैना के विवाह की चर्चा जब घर में चली तो उन्होंने येन-केन प्रकारेण गृहबंधन में न फंसकर बाराबंकी में आचार्यश्री देशभूषण जी महाराज के पास जाकर सप्तम प्रतिमा के व्रत ले लिए, उस समय माता मोहिनी ने बताया कि आज तुम्हारा 18 वर्ष पूर्ण कर 19वें वर्ष में मंगल प्रवेश है और सूर्योदय की उस घड़ी में लिए गए त्रैलोक्य पूज्य व्रत ने मैना के जीवन प्रभात को विकसित कर उनके द्वारा अगणित भव्यों का उद्धार किया। इधर मैना के गृहबंधन से निकलकर त्यागमार्ग को अंगीकार करने पर मैना के वियोग से दुःखी माता-पिता ने अपने पुत्र-पुत्रियों की शीघ्र ही शादियाँ सम्पन्न करनी प्रारंभ कर दी, फिर भी उस त्यागपथ पर निकलने का क्रमशः सभी ने प्रयास किया, जिनमें से मात्र कु. मनोवती, कु. माधुरी और रवीन्द्र कुमार जी ही त्यागमार्ग पर निकल सके और शेष ने गृहस्थधर्म को अपनी नियति समझकर अपनाया और गृहस्थी का कुशल संचालन करते हुए सदैव देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है और कु. मनोवती–आर्यिका अभयमती माताजी एवं मैं कु. माधुरी–आर्यिका चन्दनामती माताजी बनकर जिनधर्म की प्रभावना करते हुए अपनी आगमचर्या में दृढ़ हैं तथा संयम की उत्तरोत्तर वृद्धि कर रहे हैं, पुत्र रवीन्द्र कुमार जी लघुवय में ही ब्रह्मचर्य व्रत लेकर पूज्य माताजी के सुयोग शिष्य के रूप में उनके द्वारा निर्देशित जिनधर्म प्रभावना के प्रत्येक कार्यों को करके अनेक तीर्थों के अध्यक्ष पद का भार संभालते हुए उनके विकास-जीर्णोद्धार करवाकर महती धर्मप्रभावना कर रहे हैं।

इस प्रकार माता–मोहिनी ने अपनी सभी संतानों को सुसंस्कारित कर गृहस्थोचित सभी क्रियाओं का कुशल संचालन करते हुए अपने पति लाला छोटेलाल जी की सुन्दर समाधि करवाकर गृहस्थ महिलाओं के लिए एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। अपने पुत्र-पुत्रियों को उन्होंने उसी प्रकार पालने में शिक्षा प्रदान की जिस प्रकार रानी मदालसा ने अपने पुत्रों को पालने में शिक्षा दी थी कि–'शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि, संसार माया परिवर्जितोऽसि' हे पुत्र! तू शुद्ध है, बुद्ध है, निरंजन है और संसार की माया से रहित है। ऐसा सुन-सुनकर उसके सभी पुत्र युवा होकर विरक्त हो घर से चले जाते थे।

उन पुत्र-पुत्रियों की भांति ही माता मोहिनी के पुत्र-पुत्री एक-एक कर गृहबंधन से निकलते गए और कुछ न निकल पाने पर गृहस्थ धर्म में लगकर देव-शास्त्र-गुरु का दृढ़ श्रद्धान कर धर्माराधनापूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। स्वयं माता मोहिनी ने अपने गार्हस्थ जीवन में

जिनमंदिर में प्रतिदिन इच्छानुसार भगवान का खूब पंचामृत अभिषेक किया तथा पूजा की है।

मोहिनी माता बनीं आर्यिका रत्नमती–सन् 1971 में संघ का चातुर्मास अजमेर शहर में हो रहा था। उस समय अपने बड़े पुत्र कैलाशचंद व पुत्रवधू चंदारानी के साथ संघ के दर्शनार्थ आईं, उस समय उनके साथ मैं भी गई थी। संघ में आर्यिका पद्मावती माताजी ने गत वर्ष की भांति ही भाद्रपद मास में 1 माह का सोलहकारण उपवास कर रखा था और पूज्य ज्ञानमती माताजी के अत्यधिक आग्रह पर भी 21 दिनों तक जल नहीं लिया, 22वें दिन उन्होंने अपनी चर्या पालन हेतु अंतिम बार जल लिया, जिसे देने का सौभाग्य माता मोहिनी को प्राप्त हुआ, इस प्रकार माता मोहिनी प्रतिदिन कई एक साधुओं को आहार देकर अपना जीवन सफल कर रही थीं। आसोज वदी प्रतिपदा को सायंकाल में आर्यिका पद्मावती माताजी की प्रकृति कुछ बिगड़ी। संघ के सभी साधुगण आ गये और आर्यिका श्री पद्मावती माताजी ने आचार्यश्री एवं सभी साधुओं के दर्शन कर सबसे क्षमायाचना की और साधुओं के मुख से णमोकार महामंत्र सुनते हुए इस नश्वर देह को छोड़कर स्वर्ग पद प्राप्त कर लिया। ये पद्मावती माताजी जब तक माताजी के पास रहीं, सदैव इनकी छाया की भांति रहीं और माताजी ने पूर्ण वात्सल्यभाव से इनकी समाधि कराई थी। दूसरे दिन ही मासोपवासी आर्यिका शांतिमती जी की सल्लेखना हो गई। माता मोहिनी ने बड़ी तन्मयता से दोनोंमाताजी की सल्लेखना देखी और उसके बाद पुत्र के साथ केशरिया जी तीर्थ की यात्रा व श्रुतसागर महाराज के दर्शन कर वापस अजमेर आ गईं और कैलाश को यह कहकर समझाकर वापस भेज दिया कि मुझे आर्यिका अभयमती जी के पास एक माह तक रुकने की इच्छा है, वह अजमेर के पास किशनगढ़ में थीं। माता मोहिनी जी किशनगढ़ जाकर एक माह रहकर वापस अजमेर आ गईं और दीपावली के बाद एक दिन आकर माताश्री ज्ञानमती जी से कहने लगीं–

माताजी! अब मेरी इच्छा घर जाने की नहीं है। कैलाश, प्रकाश, सुभाष तीनों लड़के योग्य हैं, कुशल व्यापारी हैं। अब मेरा मन पूर्णरूपेण घर से विरक्त हो चुका है, मैं दीक्षालेकर अपना आत्मकल्याण करना चाहती हूँ। चूँकि माताजी ने तो इस संदर्भ में उन्हें अनेक बार प्रेरणा दी ही थी अतः इतना सुनते ही बहुत प्रसन्न होकर कहने लगीं कि आपने बहुत अच्छा सोचा है–देखो-

जब लो न रोग जरा गहे, तब लो झटिति निज हित करो।''

इस पंक्ति के अनुसार अभी आपका शरीर साथ दे रहा है अतः अब आपको किसीकी भी परवाह न कर आत्मसाधना में ही लग जाना है। इसके साथ ही पूज्य माताजी ने उन्हें यह भी बता दिया कि मैंने सुगंध दशमी के दिन माधुरी को ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया है,उसकी शादी का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यह सुनकर आश्चर्यचकित मोहिनी माता कह उठीं कि मताजी! अभी तो माधुरी मात्र 13 वर्ष की है, वह ब्रह्मचर्य का अर्थ क्या समझे! अभी से व्रत न देकर कुछ दिन संघ में रखकर धर्म पढ़ा देतीं तो अच्छा था। खैर! अब मैं किसी के मोक्षमार्ग मेंबाधक क्यों बनूँ, जिसका जो भाग्य होगा, सो होगा। मुझे तो अब आर्यिका दीक्षा लेनी है।''

माताजी ने उसी समय रवीन्द्र कुमार को बुलाकर माँ के भाव बता दिये जिसे सुनकर माँ के कमजोर शरीर एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से रवीन्द्र जी एकदम विक्षिप्त हो उठे, किन्तु

माता मोहिनी ने उस हेतु अपना दृढ़ निश्चय रखा। माताजी ने रवीन्द्र जी की विक्षिप्तता देख संघस्थ शिष्य मोतीचंद जी को बुलाकर सारी बात बताई और बाजार से श्रीफल लाने को कहा। मोतीचंद जी ने यह सुनकर बहुत ही प्रसन्न हो चुपचाप बाजार से श्रीफल लाकर माता मोहिनी के हाथ में दे दिया और मोहिनी देवी उसी समय माताजी के साथ सेठ साहब भागचन्द जी सोनी की नशिया में आचार्यश्री के समक्ष श्रीफल लेकर बोलीं – महाराज जी! मैं आपके करकमलों से आर्यिका दीक्षा लेना चाहती हूँ और श्रीफल चढ़ा दिया। आचार्यश्री उस समय प्रसन्नमना हो माता ज्ञानमती जी की ओर देखने लगे। उपस्थित सभी साधुवर्ग उनके वैराग्य की सराहना करने लगे। तब आचार्यश्री ने कहा कि तुम्हारा शरीर बहुत कमजोर है और यह जैनी दीक्षा खांडे की धार है। तब मोहिनी माता ने सारपूर्ण उत्तर देते हुए कहा कि महाराज जी! संसार में रहकर जितने कष्ट सहन करने पड़ते हैं, उनके आगे दीक्षा में कोई कष्ट नहीं है। फिर माताजी ने अजमेर के एक अति विश्वस्थ श्रावक जीवनलाल जैन को टिकैतनगर भेजकर यह समाचार पहुँचवा दिया। इधर घर में समाचार पहुँचते ही सबको ऐसा झटका लगा कि सब विक्षिप्त हो रोने लगे और येन-केन प्रकारेण मन को समझाकर शीघ्र ही उनके पुत्र-पुत्री, भाई आदि सब अजमेर आ गये और सभी मोहिनी जी से चिपटकर रोने लगे। सभी ने इनकी दीक्षा रोकने के बहुत प्रयत्न किये और बहुत उपद्रवभी किया। इन सभी प्रसंगों में मोहिनी जी निर्मोहिनी बन गईं और अपने निर्णय पर अडिगरहीं। अन्ततोगत्वा माता मोहिनी की दीक्षा का कार्यक्रम बहुत ही उल्लासपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ जो कि अजमेर नगर के लिए ऐतिहासिक अवसर था। दीक्षा के दिन मोहिनी जी के सिरके बाल छोटे थे क्योंकि उन्होंने एक माह पूर्व ही अपने केश काटे थे अतः छोटे केशों का लुंचन करना बड़ा कठिन था। जब पूज्य ज्ञानमती माताजी ने चुटकी से इनके केश निकालना शुरू कियातो सारा सिर लाल-लाल हो गया उस समय माता मोहिनी के पुत्र-पुत्री और कुटुम्बी ही क्या,अनेक देखने वाले लोग भी अश्रु गिराने लगे और मोहिनी के साहस और वैराग्य की प्रशंसा करनेलगे। उस समय दीक्षा के अवसर पर अनेक साधुओं ने निर्णय किया कि चूँकि माता मोहिनीसाक्षात् रत्नों की खान हैं अतः इनका 'रत्नमती' यह सार्थक नाम रखना चाहिए, तब आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज ने इन्हें ''आर्यिका रत्नमती माताजी'' के नाम से सम्बोधित किया। उस समय अपनी जन्मदात्री माँ के आर्यिका दीक्षा के अवसर पर आर्यिका अभयमती माताजी भी किशनगढ़ से वहाँ आ गई थीं। आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी को यूँ ही दीक्षा देने-दिलानेमें असीम आनंद की अनुभूति होती है फिर जब उनकी जन्मदात्री और वैराग्य पथ पर बढ़ने में सहयोग देने वाली सच्ची माता आर्यिका दीक्षा ले रही हों फिर उनकी खुशी का क्या ठिकाना! अजमेर में दीक्षा का यह भव्य कार्यक्रम राजस्थान मोइनिया इस्लामिया उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, स्टेशन रोड के भव्य प्रांगण में सम्पन्न हुआ था, जहाँ अगणित जैन-जैनेतरों ने भाग लिया था।

आर्यिका श्री रत्नमती माताजी ने दीक्षा के पश्चात् पूज्य माताजी के संघ में रहते हुए 13 चातुर्मास किए और दीक्षा के पूर्व तो अनेक ग्रंथों के स्वाध्याय किये ही थे, दीक्षा के पश्चात् चारों अनुयोगों के ग्रंथों का अच्छी तरह स्वाध्याय किया था। आर्यिका श्री रत्नमती

माताजी समय-समय पर आगत यात्रियों, महिलाओं, बालिकाओं को धर्म का उपदेश देकर देवदर्शन, पूजन, रात्रि भोजनत्याग, स्वाध्याय आदि का उपदेश देती थीं और क्षेत्र पर आगत जैनेतर बंधुओं को धर्मोपदेश देकर मद्य, मांस, मधु त्याग की प्रेरणा देती रहती थीं। आर्यिका रत्नमती माताजी का स्वास्थ्य पित्त प्रकोप की बहुलता से युक्त था अतः इन्हें जम्बूद्वीप स्थल पर खुले स्थान के कारण गर्मी की लू-लपट एवं सर्दी में ठण्ड की बाधा असह्य महसूस देती थी। कमरे को बंद करके कोदों या चावल की घास लेने के बाद भी मात्र एक साड़ी में हाथ-पैर ठण्डे पड़ जाते तथा वर्षा ऋतु में डांस, मच्छर के उपद्रव होते। रत्नमती माताजी उस समय ज्ञानमती माताजी से अन्यत्र विहार करने को कहती थीं किन्तु संस्थान के कार्यकर्ताओं का जम्बूद्वीप रचना की पूर्णता हेतु यहीं रहने का आग्रह विशेष देखकर माता रत्नमती जी उनकी प्रार्थना को ध्यान में रखकर यहाँ के कष्टों को हंसकर सहन करती थीं, यह उनका इस जम्बूद्वीप रचना में बहुत बड़ा सहयोग रहा। इनका आहार अति अल्प था, मूंग की दाल के पानी में भीगी रोटी और लौकी का उबला साग उन्हें दिया जाता था तथा थोड़ी सी दूध की दलिया, थोड़ा सा दूध, अनार का रस और कभी-कभी जरा सा पक्का केला, बस यही उनका आहार था। इनके इतने अधिक पथ्य को देखकर कभी-कभी वैद्य भी हैरान होकर कहते थे कि माताजी! श्रावक आहार में जो आपको देता है सो यदि आपका त्याग न हो तो ले लिया करें। मौसम में आने वाले फल तथा खिचड़ी, चावल भी ले लिया करें किन्तु ये किसी की नहीं सुनती थीं। घर में भी यह अपनी संतानों को भी ऐसे ही बहुत कड़ा पथ्य कराती रहती थीं यही कारण है कि इनके पुत्र-पुत्रियों में जिव्हा की लोलुपता नहीं दिखती, आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी का प्रायः सब त्याग है मात्र दो अन्न, दो रस और गिने चुने फल और उसमें भी अक्सर उनका भी त्याग कर देती हैं, अधिकतर नीरस भोजन करती हैं, अष्टमी-चतुर्दशी को अन्न का त्याग है।

आर्यिका श्री रत्नमती माताजी प्रातः 3-4 बजे उठकर महामंत्र का जाप्य करके अपररात्रिक स्वाध्याय में तत्त्वार्थसूत्र का पाठ कर पुनः मंदिर जाकर देवदर्शन करके सहस्रनाम, भक्तामर, त्रिलोकवंदना, निर्वाणकाण्ड आदि स्तोत्रों का पाठ करती थीं। 7 से 8 बजे तक सामूहिक स्वाध्याय में बैठतीं अनन्तर आहार के बाद सामायिक कर विश्राम करती थीं। पुनः 2 बजे से 4 बजे तक विद्यापीठ के विद्यार्थीगण और प्राचार्य जी आकर माताजी के सानिध्य में स्वाध्याय करते और वे मनोयोगपूर्वक उसे सुनती थीं, अनन्तर वृद्धावस्था के कारण कुछ क्षण शरीर की सेवा करवाकर दैवसिक प्रतिक्रमण करतीं पुनः सायंकाल भगवान के दर्शनकर सामायिक करती थीं। रात्रि में सर्दी के दिनों में तो पूर्व रात्रिक स्वाध्याय में छहढाला का पाठ सुनती थीं। इन्हें छहढाला से विशेष प्रेम था यदि किसी कारणवश यह छहढ़ाला न सुन सकें तो उन्हें लगता था कि मैंने कुछ सुना ही नहीं है। इस प्रकार यह अपनी दिनचर्या में तत्पर रहकर आगम चर्या का पूर्णतः पालन करती थीं। यदि कदाचित् पित्त प्रकोप आदि से विशेष अस्वस्थ रहती थीं तो संघस्थ आर्यिकाएँ उन क्रियाओं को सुनाती थीं। इन्हें ऋषिमण्डल स्तोत्र और मंत्र से भी विशेष प्रेम था। इनकी अस्वस्थता के कारण

प्रायः संघ में चैत्यालय रहता था फिर भी मंदिर जाकर भगवान का दर्शन करके ही इन्हें संतोष होता था। पित्त प्रकोप होने से इनके शरीर के लिए उपवास हितकर नहीं था फिर भी व्रतों का प्रेम और सल्लेखना विधि की भावना से पंचमेरु के व्रत (80 उपवासपूर्वक) किया।

इनकी सबसे बड़ी विशेषता थी इनकी निरभिमानता, ये कभी ज्ञानमती माताजी का नाम न लेकर उन्हें 'माताजी' कहकर सम्बोधित करती थीं। वास्तव में धन्य थीं उनके जीवन की वह घड़ियाँ, जब माघ कृ. नवमी, 15 जनवरी 1985 को उन्होंने पूज्य माताजी के चरण सानिध्य में हृदयस्पर्शी धार्मिक संबोधन प्राप्तकर सल्लेखनाविधि से जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में वीरमरण किया। 1 बजकर 45 मिनट पर इस नश्वर शरीर से वह आत्मा निकलकर देवलोक में जाकर विराजमान हो गई।

पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी के जीवन में 13 का अंक विशेष शुभ रहा।13 संतानों को जन्म देने वाली, दीक्षा लेकर 13 प्रकार के चारित्र का परिपालन कर 13 वर्ष तक दीक्षित जीवन में रहकर उन्होंने सदैव स्वपरकल्याण का भाव रखा और जब उनकी समाधि हुई तो उपस्थित लोगों ने रात्रि में देवों द्वारा की गई बाजों की ध्वनि सुनी थी। संभवतः वे देवगति की प्राप्ति कर वह देव बनकर तीर्थ वंदना हेतु जंबूद्वीप स्थल पर अवश्य आई होंगी।

वस्तुतः ऐसी तपःपूत, निरभिमानी, वात्सल्यमयी माता रत्नमती जी शीघ्र ही सिद्धगति की प्राप्ति करेंगी, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है और उनके चरण-कमलों में कोटिशः वंदन के साथ मैं अपनी लेखनी को विराम देती हूँ।

आर्यिका चन्दनामती माताजी का परिचय

इसी शृँखला में आगे चलकर माँ मोहिनी की 12वीं संतान के रूप में 18 मई 1958, ज्येष्ठ कृ. अमावस को जन्म लेकर पूर्व जन्मों के पुण्य, माँ से जन्मघूंटी के रूप में प्राप्त धार्मिक संस्कार एवं सन् 1969 में पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी के मिले सानिध्य ने मुझे भी इस कठोर त्याग पथ पर चलने हेतु प्रेरित किया, जिसके फलस्वरूप सन् 1971 में अजमेर (राज.) में भादों शु. दशमी (सुगंध दशमी) के दिन मैंने पूज्य माताजी से आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण कर गुरुमुख से धार्मिक अध्ययन प्रारंभ कर दिया। मेरा बचपन का नाम था – कु. माधुरी जैन। 13 वर्ष की लघु उम्र में मुझे अधिक तो कुछ ज्ञात नहीं था, किन्तु विवाह बंधन में न बंधकर गुरुचरणों में जीवन समर्पित कर देना ही मैंने ब्रह्मचर्य व्रत का अभिप्राय समझा था, उसी के फलस्वरूप धीरे-धीरे दो प्रतिमा, सात प्रतिमा आदि व्रतों को लेकर मेरे 18 वर्ष पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी एवं अपनी जन्मदात्री माँ पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी की छत्रछाया में ज्ञानार्जन, वैयावृत्ति, संघ व्यवस्था, धर्मप्रभावना एवं त्रिलोक शोध संस्थान के कार्यकलापों में व्यतीत हुए।

पुनः 13 अगस्त 1989, श्रावण शु. एकादशी के दिन हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने मुझे आर्यिका दीक्षा प्रदान कर "चंदनामती" बनाया। नारी जीवन के उत्कृष्ट त्याग को धारण करने के पश्चात् मानो नया जीवन ही प्राप्त हुआ हो, इसीलिए लगभग 16 हजार किमी. की पदयात्रा करके अनेक तीर्थों के दर्शन एवं उनके जीर्णोद्धार विकास

में अपने समय का सदुपयोग करके परम प्रसन्नता का अनुभव होता है।

सन् 1974 से प्रारंभ हुए जम्बूद्वीप रचना निर्माण आदि को मैंने स्वयं अपने चर्मचक्षुओं से प्रतिपल देखा है और संस्थान के द्वारा संपादित होने वाले सभी कार्यों में अपने पद के योग्य यथाशक्ति योगदान करके अपने जीवन को धन्य माना है। भविष्य में भी इसी प्रकार रत्नत्रय की साधना करते हुए दीक्षित जीवन के चरमलक्ष्यरूप बोधि-समाधि की प्राप्ति हो, यही भगवान शांतिनाथ के श्रीचरणों में प्रार्थना है।

पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी के संघस्थ शिष्य
पूज्य पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज का परिचय

गुरु और शिष्य के उपकार तथा कृतज्ञता के अनेकों उदाहरण प्राचीन इतिहास में पढ़ने को मिल जाते हैं। वर्तमान में हमें विरले ही ऐसे व्यक्ति मिलेंगे, जिन्होंने अपने जीवन में कृतज्ञता का अद्वितीय आदर्श उपस्थित किया हो किन्तु पूज्य क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी का व्यक्तित्व आज प्रत्यक्ष में हमारे सामने है जिन्होंने प्रारंभ से ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाया कि गुरु के प्रति अपना सर्वस्व समर्पित कर अपने कर्तव्य का पालन करना। कृतज्ञता और समर्पणभाव ये दोनों ही गुण व्यक्ति में दुर्लभता से मिलते हैं। पूज्य क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज के इन गुणों के कारण ही आज हमें विश्वप्रसिद्ध जम्बूद्वीप रचना के दर्शन हो रहे हैं जो अपने आप में एक अद्वितीय कृति है। सम्राट चन्द्रगुप्त और एकलव्य के उदाहरण हम पढ़ते हैं जिन्होंने अपनी गुरुभक्ति के बल पर अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति की। उसी आदर्श के रूप में आज पूज्य क्षुल्लक जी हमारे समक्ष हैं।

दिनाँक 30 सितम्बर सन् 1940 ई. आश्विन वदी 14, सोमवार, वि.सं. 1986 के शुभ दिन सनावद (म.प्र) के सुप्रसिद्ध श्रेष्ठी श्री अमोलकचंद जी सर्राफ की धर्मपत्नी श्रीमती रूपाबाई ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया, जिसका नाम रखा गया ''मोतीचंद''। चार भाई और तीन बहनें हैं। बड़ी दो बहनें–श्रीमती गुलाबबाई व चतुरमणीबाई। एक छोटी बहन श्रीमती किरणबाई एवं इन्दरचंद, प्रकाशचंद और (स्व.) अरुण कुमार ये तीनों छोटे भाई हैं। आपके परिवार का मूल व्यवसाय सर्राफे का रहा है। वर्तमान में भी आपके लघु भ्राता सर्राफे का व्यापार कर अपने दैनिक कर्तव्यों का पालन करते हैं।

ब्रह्मचर्य व्रत–इतने सम्पन्न परिवार के मध्य रहते हुए भी मोतीचंद जी को सांसारिक वैभव में रुचि नहीं रही और सन् 1958 में 18 वर्ष की लघु उम्र में ही स्वरुचि से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर लिया।

वैराग्य का कारण–प्रत्येक माता-पिता का सपना होता है कि मेरा बेटा बड़ा होकर घर के सारे कार्यभार को संभाल ले तथा शादी करके वह अपना सुखी गृहस्थ जीवन व्यतीत करे किन्तु मोतीचंद जी के लिए ये सब व्यर्थ था क्योंकि उन्होंने पहले ही अपना रास्ता चयन कर लिया था। व्यापार के कार्यों में रचे-पचे रहने पर भी वे हमेशा वज्रनाभि चक्रवर्ती की वैराग्य भावना की इन पंक्तियों का चिन्तन करते रहते थे–

किस ही घर कलिहारी नारी, के बैरी सम भाई।
किस ही के दुःख बाहर दीखे, किस ही उर दुचिताई।
कोई पुत्र बिना नित झूरे, होय मरे तब रोवे।
खोटी संतति सो दुख उपजे, क्यों प्राणी सुख सोवे।।
मोह महारिपु बैर विचारे, जग जिय संकट टारे।
घर कारागृह वनिता बेड़ी परिजन जन रखवारे।।

धार्मिक कार्यकलाप–इनका गृहस्थ जीवन बड़ा सुकुमार था, इसलिए ब्रह्मचर्य व्रत होते हुए भी कभी साधुसंघ में रहने का विचार नहीं आया। ये अपने नगर में होने वालेप्रत्येक धार्मिक कार्य में अग्रणी रहते थे तथा समय-समय पर धार्मिक झाँकियों व नाटकों के माध्यमसे भी समाज में धार्मिक अभिरुचि जागृत किया करते थे। स्वयं भी नाटकों में भाग लेते थे। एक बार आपने नाटक में निकलंक के पात्र का अभिनय किया, वही अभिनय आपके जीवन में अमिट छाप छोड़ गया कि संघर्षों के समय भी अपने कार्य से विचलित नहीं होना, जो कि व्यक्ति कोउन्नति के पथ पर ले जाता है। आप धार्मिक पाठशाला भी चलाते थे जिससे बच्चों में धार्मिक संस्कार बनें

संघ में प्रवेश–"होनहार को कौन टाल सकता है" इस सूक्ति के अनुसार मोतीचंद जी के जीवन में भी एक नया अध्याय जुड़ा और सन् 1967 में पूज्य आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी का संघ सहित सनावद में चातुर्मास हुआ। पूज्य माताजी को जब इनके ब्रह्मचर्य व्रत के बारे में पता चला तो उन्होंने मोतीचंद को सम्बोधित किया। चातुर्मास के पश्चात् पूज्य माताजी के साथ मुक्तागिरी की यात्रा का कार्यक्रम बना। उसके पश्चात् पूज्य माताजी आचार्य शिवसागर जी महाराज के संघ में आ गईं तभी सन् 1968 में ब्र. मोतीचंद भी संघ में अध्ययन के उद्देश्य से आये और माताजी की प्रेरणा से संघस्थ शिष्य के रूप में रहने लगे।

धार्मिक शिक्षण–आपने माताजी के पास गोम्मटसार जीवकांड, कर्मकांड, कातंत्र व्याकरण, परीक्षामुख, न्यायदीपिका, अष्टसहस्री आदि ग्रंथों का अध्ययन किया। तीन-चार वर्षों के अंदर आपने **शास्त्री व न्यायतीर्थ** की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लीं। तब से आज तक आप पूज्य माताजी के पास रहकर चारों अनुयोगों के स्वाध्याय में तत्पर रहते हैं।

जम्बूद्वीप रचना का श्रेय–सन् 1965 में पूज्य ज्ञानमती माताजी के मस्तिष्क में जम्बूद्वीप रचना की योजना आई, जिसे साकाररूप देने में पूज्य माताजी के निर्देशानुसार कई जगहों का निर्णय हुआ किन्तु जिस भूमि पर योग था, वहीं इस रचना का निर्माण हुआ। ब्र. मोतीचंद जी ने संघ में आते ही पूज्य माताजी को यह लिखकर दिया कि "मैं तन-मन-धन से आपकी इस योजना को सफल बनाऊँगा और आपके संयम में किसी प्रकार की बाधा नहीं आने दूँगा। आपको किसी से पैसे की याचना नहीं करनी पड़ेगी।" तब से लेकर आज तक अपने कर्तव्य का पालन कर इस अद्भुत रचना का निर्माण हस्तिनापुर की धरा पर सम्पन्न कराया। यदि आपको वर्तमान का चामुण्डराय भी कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि आपने पूज्य माताजी को जन्मदात्री माँ से भी अधिक मानकर उनकी आज्ञा का शत-प्रतिशत पालन किया है।

ज्ञानज्योति रथ के साथ भारत भ्रमण–4 जून सन् 1982 को भारत की राजधानी दिल्ली के लालकिला मैदान से पूज्य ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा व आशीर्वाद से तत्वालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने ''जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति रथ'' का भारत भ्रमण हेतु प्रवर्तन किया। आपने 1045 दिन तक रथ के साथ पूरे भारत में भ्रमण किया और अपने ओजस्वी भाषण से जन-जन तक अहिंसा व जैनधर्म के सिद्धान्तों का प्रचार किया। तब से आज तक आप जम्बूद्वीप स्थल पर होने वाली प्रत्येक गतिविधियों, निर्माणकार्य, साहित्य प्रकाशन आदि कार्यों में अपना पूर्ण मार्गदर्शन प्रदान कर व्यवस्थाओं को सुचारूरूप से चलाने में समय देते हैं।

त्यागमय जीवन–माताजी ने इनकी सुकुमारता देखकर कभी इन्हें त्याग की प्रेरणा नहीं दी किन्तु ''जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन'' वाली सूक्ति के अनुसार अपने आप ही आपके मन में त्याग भावना उत्पन्न हुई। आपने सन् 1981 में स्वरुचि से माताजी के समक्ष नमक व मीठे का त्याग कर दिया जो सन् 1985 की जम्बूद्वीप पंचकल्याणक प्रतिष्ठा तक रहा। 4 वर्ष की लम्बी अवधि के पश्चात् ही आपका त्याग का संकल्प पूर्ण हुआ।

दीक्षा के पथ पर–4-5 वर्षों से आप दीक्षा के लिए आतुर थे किन्तु सन् 1987 में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण पूर्ण होने पर आपने माताजी के समक्ष जम्बूद्वीप पर ही दीक्षा लेने की भावना व्यक्त की, जिसे पूज्य माताजी ने सहर्ष स्वीकृति प्रदान की।

जम्बूद्वीप स्थल पर प्रथम ऐतिहासिक दीक्षा समारोह–पूज्य माताजी की भावनानुसार परमपूज्य आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज ने संघ सहित हस्तिनापुर आगमन की स्वीकृति प्रदान की तथा फाल्गुन शुक्ला नवमी, 8 मार्च 1987 को शुभ मुहूर्त में विशाल जनसमुदाय के बीच आचार्यश्री ने मोतीचंद पर क्षुल्लक दीक्षा के संस्कार कर ''मोतीसागर'' नाम प्रदान किया। पूज्य आचार्यश्री ने अपने शुभाशीर्वाद में कहा कि आज मुझे इन्हें दीक्षा देते हुए गर्व है क्योंकि मोतीचंद जी की दीक्षा एक चक्रवर्ती की दीक्षा जैसी है। जिस प्रकार चक्रवर्ती ने छह खण्ड पर विजय प्राप्त की थी उसी प्रकार इन्होंने पूरे भारत में भ्रमण कर धर्म का डंका बजाया है। इसी दीक्षा महोत्सव में हस्तिनापुर की पुण्य भूमि पर एक और इतिहास स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गया।

पीठाधीश पद–दीक्षा के पश्चात् भी पूज्य क्षुल्लक मोतीसागर जी संस्थान की गतिविधियों में पूर्ववत् निर्देशन प्रदान कर अपने पद के योग्य कार्यों को सम्पन्न करवाते हैं अपने स्वाध्याय, पठन-पाठन व अपनी चर्या का निर्बाधरूप से पालन कर रहे हैं। पूज्य माताजी ने 2अगस्त सन् 1987, श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन आपको संस्थान के ''पीठाधीश'' पद पर आसीन किया।

प्रत्येक कार्य में अग्रणी रहते हैं–पूज्य माताजी द्वारा प्रारंभ किये गये प्रत्येक कार्य में पूज्य क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज का विशेष योगदान रहता है। किसी भी कार्य को किस प्रकार पूर्ण सफलता एवं अनुशासनपूर्वक सफल किया जाये, यही इनका प्रयास रहता है। सन् 1993 में पूज्य माताजी ने अयोध्या तीर्थक्षेत्र के लिए विहार किया तथा 1994 में वहाँ भगवान ऋषभदेव का महामस्तकाभिषेक कराया पुनः सन् 1995 में महाराष्ट्र प्रान्त के मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र के लिए वहाँ के ट्रस्टियों के विशेष आग्रह पर विहार किया तथा लम्बी

यात्रा कर वहाँ विशाल पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं मस्तकाभिषेक कराया पुनः वहाँ से आकर सन् 1997 में दिल्ली में ''चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान'' का महा आयोजन हुआ, जो दिल्ली के इतिहास में ही नहीं अपितु सारे भारत में प्रथम बार एक अद्भुत अनुष्ठान था। इन सभी कार्यों में पूज्य क्षुल्लक जी ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर इन्हें सफलतापूर्वक सम्पन्न कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनके कार्यकलापों को देखकर पूज्य माताजी ने इन्हें सन् 1997 में दिल्ली के लाल मंदिर की सभा में **''धर्म दिवाकर क्षुल्लकरत्न''** इस उपाधि से विभूषित किया। 22 मार्च 1998 को दिल्ली के लालकिला मैदान से पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा एवं मंगल आशीर्वाद से ''भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार'' रथ का उद्घाटन हुआ, जिसका प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने भारत भ्रमण हेतु प्रवर्तन किया।

4 फरवरी 2000 को भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सव वर्ष मनाने की घोषणा हुई जिसके अन्तर्गत सर्वप्रथम 4 से 10 फरवरी तक दिल्ली के लाल किला मैदान में भगवान ऋषभदेव मेले का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन माननीय प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने किया। प्रधानमंत्री ने तथा हजारों श्रद्धालुओं ने कैलाशपर्वत के समक्ष निर्वाणलाडू चढ़ाकर अपने को धन्य माना। अनेक संगोष्ठियों, प्रश्नमंच, भाषण, वादविवाद प्रतियोगिता आदि के माध्यम से भगवान ऋषभदेव का खूब प्रचार-प्रसार हुआ। जिसमें पूज्य क्षुल्लक जी प्रत्येक व्यक्ति को बोलने के लिए उत्साहित कर मार्गदर्शन प्रदान करते रहते थे तथा पूज्य माताजी की प्रेरणा से स्थापित अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला संगठन की महिलाओं को विशेषरूप से प्रेरणाएँ प्रदान करते हैं। पूज्य माताजी की प्रेरणा से भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं ज्ञानकल्याणक भूमि प्रयाग-इलाहाबाद में निर्मित ''तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली'' एवं भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर में निर्मित ''नंद्यावर्त तीर्थ'' निर्माण में भी आपका विशेष निर्देशन प्राप्त हुआ।

इस प्रकार अपने जीवन में महान कार्यों को जन्म देने वाली चारित्रचन्द्रिका गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के चरण सानिध्य में रहते हुए आपने इस दीर्घ समय में उनेसअनुभव ज्ञान प्राप्त कर अपने ज्ञान व चारित्र की वृद्धि कर अपने जीवन को सार्थक किया है पूज्य क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज स्वस्थ रहते हुए इसी प्रकार आगे भी अपने मार्गदर्शन एंवअनुभव ज्ञान से जन-जन को लाभान्वित करते रहें, यही उनके भावी जीवन के लिए मेरी मंगलकामना है।

पूज्य अभयमती माताजी की संघस्थ शिष्या

क्षुल्लिका शांतिमती माताजी का जीवन परिचय

क्षुल्लिका शांतिमती जी का जन्म सन् 1930 फाल्गुन शु. 8 को मोहनगढ़ (टीकमाढ़-म.प्र.) में पिता धर्मदास जी मोदी एवं माता भूरीबाई के यहाँ हुआ था। आपके रूपचंद, राजकुमार, श्रीचन्द्र, सुमतिचन्द्र चार भाई हैं। आप की एक बहन हैं, गृहस्थावस्था में आपका नाम कस्तूरीबाई था। पांचवी कक्षा पास करने के बाद आपकी शादी ग्राम मवई (टीकमगढ़) निवासी दानवीर श्री छक्कीलाल जैन बजाज के साथ हुई थी, आपके गृहस्थावस्था में पुष्पा,

अशोक एवं विजय देवी नाम से तीन पुत्रियाँ एवं निर्मल कुमार एक पुत्र था।आपकी धर्म के प्रति विशेष रुचि प्रारंभ से ही थी। आज भी आपका पूरा परिवार धार्मिक है। उन लोगों ने एक चैत्यालय भी बनवाया है। क्षयरोग से पीड़ित आपके पति की कुछ दिनों के बाद मृत्यु हो गई। जिससे संसार को असार समझकर आप विशेषरूप से धर्मध्यान में समय बिताने लगीं। कुछ पुण्य योग से आप टीकमगढ़ में आचार्यश्री पार्श्वसागर जी आ गये, उनसे आपने सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। पुनः बमौरी में सन् 1979 फाल्गुन वदी 5 को क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण कर ली। तब से आप क्षुल्लिका शांतिमती जी बन गईं। निर्दोष चारित्र का पालन करती हुई एक वर्ष तक गुरु के संघ में रहीं। पुनः सन् 1980 में पूज्य आर्यिकारत्न श्री अभयमती माताजी के संघ में ललितपुर पधारीं। पूज्य माताजी के पास आपने 28 वर्ष से रहकर बालबोध छहढाला, द्रव्यसंग्रह आदि 35 ग्रंथों का अध्ययन किया। इस प्रकार आपके दीक्षा गुरु पूज्य आचार्यश्री पार्श्वसागर जी महाराज एवं ज्ञान गुरु परम विदुषीरत्न पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी हैं। पूज्य माताजी से शिक्षा प्राप्त कर आप भी धन्य बन गईं एवं इनके साथ अनेकों यात्राएं की।

गुरु का अनुकरण करती हुई क्षुल्लिका शांतिमती माताजी ने भी 1 करोड़ णमोकार मंत्र और 1 करोड़ सिद्धचक्र मंत्र, 5 लाख पार्श्वनाथ के, सवा लाख नेमिनाथ के, सवा लाख भगवान महावीर के मंत्र जपे और पूज्य माताजी के संघ में रहकर आपने कर्मदहन व्रत किये, जिसमें 156 उपवास हैं पुनः जिनगुणसंपत्ति व्रत किये जिसमें 63 उपवास पुनः णमोकार मंत्र के व्रत किये जिसमें 35 उपवास हैं इस प्रकार आपने 254 उपवास किये।

वर्तमान में आप पूज्य अभयमती माताजी के साथ रहकर अध्ययन एवं निर्दोष व्रत का पालन कर रही हैं। आपको गृह त्याग करके 28 वर्ष हुए। क्षुल्लिका शांतिमती जी स्वस्थ रहकर सदैव रत्नत्रय आराधना में वृद्धि करती रहें तथा उन्हें मानवजीवन के अंतिम लक्ष्य में समाधि की सिद्धि होवे, यही भगवान से प्रार्थना है।

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन का परिचय

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन का परिचय – नवयुवकों के आदर्श कर्मयोगी ब्रह्मचारी भाई रवीन्द्र जी माता मोहिनी व पिता श्री छोटेलाल जी की नवमीं संतान हैं। इनका जन्म ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी (श्रुतपंचमी) सन् 1950 में हुआ है। पिता श्री छोटेलाल जी एवं माता मोहिनी ने अपने चार पुत्रों में से एकमात्र रवीन्द्र जी को लखनऊ यूनिवर्सिटी से बी.ए. तक अध्ययन कराया था। स्नातक होने के बाद भी संसार के मोहचक्र में फंसना इन्होंने स्वीकार नहीं किया।

भोगों को भोगने के बाद उससे विरक्ति होना तो प्रायः देखा जाता है परन्तु जब पूर्ण यौवन और भोगोपभोग के समस्त साधन उपस्थित हों उस समय उन सबका परित्याग कर त्याग के कठिन मार्ग पर स्वयं को समर्पित कर देने वाले विरले ही लोग होते हैं। उसी शृंखला की एक कड़ी ब्र.रवीन्द्र जी भी हैं जिन्होंने सन् 1968 से पूज्य माताजी द्वारा प्रेरित किये जाने पर अन्ततोगत्वा सन् 1972 में पूज्य आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज से नागौर

(राज.) में आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण किया। उसके बाद से जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में ब्र. मोतीचंद जी के साथ संस्थान का सम्पूर्ण दायित्व संभालते हुए सन् 1987 में पूज्य माताजी के पास सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर आप गृहविरत हो गये।

जम्बूद्वीप स्थल आपकी विशेष कर्मभूमि है यहीं से अपनी धार्मिक क्रियाओं का पालन करते हुए आप संस्था संचालन, सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका का सम्पादन, पूज्य माताजी द्वारा लिखित सैकड़ों ग्रंथों का सम्पादन आदि कर रहे हैं। आप जहाँ श्री दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, श्री अयोध्या दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, श्री 1008 माँगीतुंगी बड़ी मूर्ति निर्माण कमेटी, तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग तीर्थक्षेत्र कमेटी, भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर दि. जैन समिति आदि अनेकों तीर्थों के अध्यक्ष हैं वहीं आप अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन युवा परिषद के भी अध्यक्ष पद का भार संभाल रहे हैं। इतने अधिक कार्यों को करते हुए भी आपकी सबसे बड़ी विशेषता रही है कि कभी भी आपके चेहरे पर शिथिलता या क्रोध के भाव नहीं दिखते। हमेशा हंसता-मुस्कराता, मधुरता बिखेरता आपका व्यक्तित्व आइने की तरह स्वच्छ है। तभी तो अपनी ओजस्वी वाणी, स्पष्टवादिता, कर्मठता, सहजता आदि गुणों के द्वारा भाई रवीन्द्र जी से आज सारा देश परिचित हो चुका है। पूज्य माताजी से प्राप्त संस्कारों के अनुसार संघर्ष झेलकर भी सत्य को उजागर करना आपकी पहचान बन गयी है। जिनके जीवन का प्रत्येक क्षण धर्म, धर्मायतन एवं गुरुओं की सेवा में व्यतीत हुआ हो, समाज सेवा में व्यतीत हुआ, हो ऐसे भाई जी के नाम से जाना जाने वाला व्यक्तित्व अखिल भारतवर्षीय शास्त्री परिषद द्वारा सन् 1992 में **'कर्मयोगी'** की उपाधि से विभूषित किया गया जो कि नवयुवकों के लिए **'कर्मयोगी भाई जी'** के रूप में सचमुच अनुकरणीय है।

सन् 1996 में मांगीतुंगी (महा.) में आयोजित पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के सुअवसर पर वीर सेवा दल की ओर से आपके कार्यकलापों का मूल्यांकन करते हुए **'धर्मसंरक्षणाचार्य'** की उपाधि से विभूषित किया गया। आप विद्वत्ता के साथ-साथ अपूर्व कार्यप्रणाली की क्षमता के धनी हैं। पूज्य माताजी के द्वारा संकल्पित प्रत्येक क्षेत्र में साहित्यिक, निर्माणात्मक, सृजनात्मक कार्यों को मूर्तरूप प्रदान करने वाले भाई श्री रवीन्द्र जी ने सन् 2000 में न्यूयार्क-अमेरिका (यू.एन.ओ.) में आयोजित **विश्वशांति शिखर सम्मेलन** में जैन धर्माचार्य के रूप में सम्मिलित होकर जैनधर्म का प्रचार-प्रसार किया और आज भी जैनधर्म के प्रचार-प्रसार हेतु सतत संलग्न हैं। वास्तव में देखा जाये तो योग्य व्यक्ति की पहचान उसके कर्मठ व्यक्तित्व से ही होती है। कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जी जैन समाज के क्षितिज पर चमकते अनोखे सितारे हैं। आपके दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन के लिए मंगल कामना है।

पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी के जनक

चैतन्यरत्नाकर लाला श्री छोटेलाल जी

आर्यखण्ड की परम पावन धरा पर समय-समय पर अनेक महापुरुषों, वीर नारियों आदि ने जन्म लेकर इसकी गौरवमयी भूमि को और भी अधिक गौरवान्वित किया है। यूँ तो विश्व में अनेकों विकसित देश हैं, जो प्रत्येक क्षेत्र में भारतवर्ष की प्रगति से काफी आगे अपना स्थान रखते हैं किन्तु अगर हम आध्यात्मिक क्षेत्र (धार्मिक क्षेत्र) में दृष्टिपात करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि एकमात्र भारत ही ऐसा देश है जिसकी माटी में अनन्तानन्त तीर्थंकर भगवन्त खेले हैं और सम्पूर्ण जगत को अपनी अमृतमयी वाणी से अभिसिंचित करते हुए उन्होंने प्राणीमात्र का कल्याण करने के साथ-साथ अपनी आत्मा का भी उत्थान किया है। धर्म की इस अजस्र प्रवाहमान धारा में उन्हीं भगवन्तों की अमृतमयी वाणी को दिग्दिगन्त प्रसारित करने में अनेक पूर्वाचार्यों ने अपनी अहम् भूमिका निभाई, पुनः इसी परम्परा में बीसवीं शताब्दी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज हुए जिनकी अक्षुण्ण परम्परा में छह पट्टाचार्य हुए जिन्होंने धर्म की उस गंगा में अनेकों भव्य जीवों को अवगाहन कराया और यह भारतवर्ष का गौरव ही कहा जायेगा कि उसी ज्ञानसरिता को और अधिक वृद्धिंगत करने में बीसवीं सदी की प्रथम बालब्रह्मचारिणी गणिनीप्रमुख, राष्ट्रगौरव आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी हैं जिन्होंने आज के युग में अनेकों कुमारी कन्याओं के लिए त्याग का मार्ग प्रशस्त कर दिया, आज वर्तमान में हमें आर्यिका माताओं के दर्शन कराने का सम्पूर्ण श्रेय पूज्य माताजी को जाता है और ऐसे भगवन्तों एवं संतों के दर्शन, वंदन एवं अभिवंदन से हमारे कर्मों की निर्जरा होने के साथ-साथ सातिशय पुण्य का बंध होता है।

बंधुओं! जहाँ हम ऐसे महामना महापुरुषों का वंदन कर, उनका गुणानुवाद कर अपने जन्म को सार्थक समझते हैं वहीं एक बार हमारा मस्तक उन भव्यात्माओं के जन्मदाता माता-पिता के लिए भी झुकता है क्योंकि जिस प्रकार वृक्ष के हरे-भरे एवं फलदार होने में उसकी जड़ की मुख्यता है, जिस प्रकार किसी भी सुन्दर, आकर्षक एवं सुसज्जित मकान में उसकी नींव की प्रमुखता है, ठीक उसी प्रकार उन संतों की महानता, उनके व्यक्तित्व आदि में उनके माता-पिता की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वस्तुतः सन्तान की प्रथम पाठशाला उसके माता-पिता होते हैं जिनके द्वारा प्रदत्त संस्कार सन्तान को महान से महान और अधम से अधम भी बना देते हैं और यह तो सभी जानते हैं कि जीवन में संस्कारों का विशेष महत्व होता है, हमारे जीवन के प्रत्येक क्षण में संस्कार अपनी अहम भूमिका निभाते हैं। उन महापुरुषों के जन्मदाता को नमन करते हुए मैं आपको परिचित कराती हूँ पूज्य आर्यिका श्री अभयमती माताजी के गृहस्थावस्था के पिता श्री छोटेलाल जी से, जिन्हें हम "चैतन्य रत्नाकर" कहते हुए स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हैं।

शाश्वत तीर्थ अयोध्या के निकट बाराबंकी जिले के अन्तर्गत टिकैतनगर नामक धर्मपरायण नगर में लाला श्री नौबतराय जी के सुपौत्र एवं लाला श्री धन्यकुमार जी के सुपुत्र श्रेष्ठी श्री छोटेलाल जी निवास करते थे। चार पुत्र एवं तीन पुत्रियों में द्वितीय पुत्र के रूप में जन्मे लाला जी को धार्मिक संस्कार विरासत में ही प्राप्त हुए थे। तभी तो ये प्रतिदिन देवदर्शन करके ही नाश्ता आदि लेते थे। इन्होंने बचपन में स्कूल में 3-4 कक्षा तक ही अध्ययन किया पुनः व्यापार में रुचि अधिक होने से यह कपड़े का व्यापार करने लगे। बचपन से ही प्रतिदिन मंदिर जाते, पानी छानकर पीते और रात्रि में भोजन नहीं करते थे। पिता धन्यकुमार ने परम्परा के अनुसार इन्हें आठ वर्ष की उम्र से ही अष्टमूलगुण दिलाकर जनेऊ पहना दिया था। व्यापारिक मुड़िया भाषा इन्हें अच्छी तरह से आती थी। 14-15 वर्ष की छोटी सी उम्र में यह घोड़ा चलाना सीख गए और दो-चार साथियों के साथ घोड़े पर कपड़े लादकर ये टिकैतनगर के बाहर गांवों में व्यापार करने लगे। देखते ही देखते यह कुशल व्यापारी बन गए और अपने भुजबल के श्रम से अच्छा धन कमाया और प्रतिष्ठित महानुभावों में गिने जाने लगे।

युवावस्था में इनका विवाह अवध प्रान्त के महमूदाबाद नगर के लाला श्री सुखपालदास जी की सुपुत्री मोहिनी देवी के साथ सम्पन्न हुआ। पति और पत्नी गाड़ी के उन दो पहियों के समान होते हैं जिनके साथ-साथ चलने से गृहस्थीरूपी मंजिल शीघ्र पार हो जाती है। मोहिनी देवी को भी अपने पिता से विरासत में सुसंस्कार प्राप्त हुए थे, इन्होंने अपने पिता से धार्मिक अध्ययन किया था फिर तो सोने में सुहागा की कहावत चरितार्थ हो गई और गृहस्थावस्था में प्रवेश कर ये दम्पत्ति धर्मध्यानपूर्वक अपना कालयापन करने लगे। इनके चार पुत्र एवं नौ पुत्रियाँ ऐसी 13 संतानें हुईं जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं–1. मैना 2. शांति 3. कैलाश 4. श्रीमती 5. मनोवती 6. प्रकाश 7. सुभाष 8. कुमुदनी 9. रवीन्द्र 10. मालती 11. कामिनी 12. माधुरी और 13. त्रिशला (आगे क्रमशः इनकी प्रत्येक संतान का परिचय दिया गया है)।

कहा जाता है कि कोई भी व्रत अथवा नियम जब लिया जाता है तब उसकी परीक्षा अवश्य होती है। कैसी ही व्यापारिक व्यस्तता क्यों न हो, भले ही दिन में 12-1 बज जाये किन्तु लाला जी घर में आकर मंदिर जाकर दर्शन करके ही भोजन करते थे। घर में स्वाध्याय भी करते थे जिसकी प्रेरणा इन्हें अपनी बड़ी पुत्री मैना से प्राप्त हुई थी। बाद में कभी-कभी तो शास्त्र पढ़ते-पढ़ते गद्गद हो जाते और उसमें मग्न हो जाते और उस आनंद की अनुभूति वह घर में पत्नी व बच्चों को शास्त्र की बातें सुनाते हुए करते थे। उनका प्रायः यही कहना था कि भइया! तुम चाहे धर्म-कर्म थोड़ा करो, व्रत उपवास मत करो, किन्तु झूठ मत बोलो, दूसरों का गला मत काटो अर्थात् बेईमानी करके दूसरों का पैसा मत हड़पो, किसी को कड़ुवे वचन मत बोलो, यही सबसे बड़ा धर्म है। यह धर्म ही मनुष्य को मनुष्यता का पाठ सिखाता है। अन्यथा मनुष्य न रहकर पशु अथवा हैवान बन जाता है।

उन्हें यह दृढ़ विश्वास था कि तीर्थयात्रा करने से, दान देने से, मंदिर में धन लगाने से, धार्मिक उत्सवों में बोलियाँ आदि लेने से, सच्चे साधुओं की सेवा-वैय्यावृत्ति करने से व्यापार बढ़ता है इसलिए वे सदा इन कार्यों में भाग लिया करते थे। अवध प्रान्त में शाश्वत तीर्थ अयोध्या से कुछ दूरी पर भगवान धर्मनाथ की जन्मभूमि रत्नपुरी है, उसकी वेदीप्रतिष्ठा के समय की बात है, लाला श्री छोटेलाल जी ने उसमें वेदी का पर्दा खोलने की बोली ली थी, जब श्री जी को विराजमान करने का समय आया, तब लालाजी ने अपनी बड़ी पुत्री कु. मैना से पर्दा खुलवाया। चूँकि मैना में धार्मिक संस्कार कुछ विशेष ही थे अतः उन्होंने ज्यों ही महामंत्र का स्मरण कर पर्दा खोला कि अकस्मात् वहाँ पर एक दिव्य प्रकाश चमक उठा। वहाँ पर खड़े हुए सभी की आँखों में चकाचौंध सा हुआ और सबने प्रतिमा जी का चमत्कार और लाला जी की सुपुत्री का विशेष पुण्य जान उच्चस्वर में जय-जयकार के नारे लगाना शुरू कर दिया।

लाला जी को जिनमंदिर में होने वाली धार्मिक मीटिंगों में भी विशेष रुचि थी। वे प्रायः सभी मीटिंगों में जाते और वहाँ से आकर समाज की सारी गतिविधियों की जानकारी घर के सभी सदस्यों को दिया करते थे तथा दुकान पर होने वाली विशेष बातों को घर जाकर पुत्री मैना को सुनाया करते थे। वस्तुतः लाला जी को अपनी पुत्री मैना पर बड़ा गर्व था, जब से कु. मैना 9-10 वर्ष की हुई थी, तभी से लालाजी अपनी पुत्री मैना को अपने पुत्र के समान समझकर घर एवं दुकान की तिजोरी की चाबियाँ, रुपये-पैसे आदि सब उन्हीं को संभलवाते थे। इन्होंने जब अपना नया घर बनवाना प्रारंभ किया तो स्वयं खड़े रहकर बनवाया, ये प्रारंभ से ही बहुत परिश्रमी थे, पिता धन्यकुमार जी इनके श्रम से बहुत ही प्रसन्न रहते थे अतः वृद्धावस्था में वे अपने इन्हीं पुत्र छोटेलाल की बैठक में रहा करते थे और लालाजी भी अपने पिता की सेवा-सुश्रूषा अपने हाथों करके बहुत प्रसन्न होते थे, सन् 1939 में आपके पिताजी स्वर्गस्थ हो गये।

आज के युग में प्रायः युवा संतान अपने वृद्ध माता-पिता की इज्जत करना तो दूर, उन्हें अपने साथ भी नहीं रखना चाहते हैं परन्तु लाला श्री छोटेलाल जी उन सबके लिए एक मिशाल थे, उन्होंने अपनी माँ के वचनों का सदैव सम्मान किया था। कभी भी उन्हें अपमानजनक वचन स्वयं कहना तो दूर, बहुत दूर तक किसी अन्य को कहने भी नहीं दिया था, माँ के मन को किसी बात से दुःख हो, ऐसा कार्य भी कभी नहीं करते थे। माँ की इच्छा के अनुसार अपनी बहनों को बुलाकर सदा उन्हें यथायोग्य मान-सम्मान एवं वस्तुएँ दिया करते थे। साथ ही घर तथा व्यापार के प्रत्येक कार्यों में अपने बड़े भाई बब्बूमल और छोटे भाई बालचंद की सलाह से ही कार्य किया करते थे, इन्होंने यह आदर्श अपने घर में भाइयों के जीवित रहने तक बराबर जीवित रखा था, आज के युग में प्रत्येक भाई के लिए यह उदाहरण अनुकरणीय है।

लाला जी में एक गुण विशेष था वह यह कि यह अपनी पुत्रियों को रत्न के समान

मानते थे यदि कोई भी इनसे कह देता कि लाला छोटेलाल जी! आपकी तो इतनी सारी पुत्रियाँ हैं तो इन शब्दों से इन्हें ऐसी नाराजगी होती कि शान्त स्वभावी लालाजी उसी समय चिढ़कर कहते कि भइया! तुम कौन होते हो मेरी पुत्रियों की गिनती करने वाले, मेरी सभी बेटियाँ अपना-अपना भाग्य लेकर आई हैं...इत्यादि। उन्होंने जीवन में कभी भी अपनी पुत्रियों को डांटा नहीं अपितु कभी भाइयों ने कुछ कह दिया तो उन्हें डांटा, साथ ही जो लोग कन्या के जन्म से दुःखी होते या चिन्ता व्यक्त करते तो उन्हें समझाया ही है। उनका कहना था भइया! कन्या भी एक रत्न है, अपनी संतान है, उसे भार क्यों समझते हो? उसके जन्म के समय दुःखी क्यों होते हो? देखो! पुरुष तो एक ही कुल की शोभा है, जबकि कन्या तो दो कुलों की शोभा होती है और फिर जन्म लेते ही सब अपना-अपना भाग्य साथ लाई हैं, वे किसी के भाग्य का रत्ती भर भी नहीं ले जाएंगी। यह उदाहरण भी वर्तमान युग के माता-पिता के लिए अनुकरणीय ही नहीं, सर्वथा ग्रहण करने योग्य है। इससे कन्या का मन तो जीवन भर प्रसन्न रहता ही है, साथ ही भाई-बहनों का भी आपस में जीवन भर सच्चा प्रेम बना रहता है। यही कारण है कि आज भी उस हरे-भरे परिवार में कन्याओं के प्रति माता-पिताओं का विशेष अनुरागभाव देखा जाता है। आज भी सबको अपने माता-पिता का उतना ही प्रेम मिल रहा है जितना उनके भाइयों को मिलता है, इतना ही नहीं, कभी-कभी तो पिता छोटेलाल जी ने पुत्र से भी अधिक पुत्रियों को प्यार दिया था। पुत्रों की गलती होने पर फटकार भी देते थे किन्तु पुत्रियों को स्वप्न में भी नहीं फटकारा था।

लाला जी अत्यन्त मोही प्रकृति के थे, इन्हें अपनी प्रत्येक संतान से बहुत मोह था। जब इनकी बड़ी पुत्री मैना को छोटी सी उम्र में वैराग्य हुआ और अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी उन्होंने दीक्षा ले ली, तब पिता छोटेलाल जी को बहुत ही दुःख हुआ था। उसके बाद में वे साधुओं के संघ में आते-जाते रहते थे किन्तु कुछ जन्मान्तर के संस्कार ही समझना चाहिए कि इनके सभी पुत्र-पुत्रियों ने जीवन में त्याग के लिए कदम उठाया है। उनमें जिनका पुरुषार्थ फल गया वे त्यागमार्ग में निकल गए और जो त्याग की ओर नहीं बढ़ सके, वे आज भी अपने परिवार सहित दान, पूजा, स्वाध्याय आदि में निरत हैं। इन त्यागी पुत्र-पुत्रियों के संघ में रहने के प्रसंग पर ये बहुत ही दुःखी हो जाते थे और लाखों प्रयत्नों से उन्हें रोकना चाहते थे।

सन् 1969 की बात है, शायद उनके जीवन का अन्त समय नजदीक आ रहा था, इन्हें पीलिया हो गया, जिससे ये काफी अस्वस्थ रहने लग गये थे। चूँकि समय-समय पर पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी (कु. मैना) ने घर के सभी लोगों को यही शिक्षा दी थी कि जीवन का किया हुआ धर्मकार्य अगर अन्त समाधि बिगड़ जाए तो निरर्थक हो जाता है अतः पिता की अच्छी तरह से सल्लेखना करवा देना और उनके अंत समय में कोई भी उनके पास रोना नहीं। इस प्रकार माताजी की प्रेरणा से उनके पुत्रों के साथ-साथ सभी

पुत्रवधुएँ और पुत्रियाँ भी उनके पास धार्मिक पाठ भक्तामर स्तोत्र, समाधिमरण आदि सुनाया करते थे। उनकी पत्नी मोहिनी देवी जी ने पतिसेवा करते हुए उनकी बीमारी में अन्त समय जानकर बहुत ही सावधानीपूर्वक उन्हें सम्बोधा था। जिस समय लाला जी अस्वस्थ थे, उस समय टिकैतनगर में आचार्य श्री सुमतिसागर जी महाराज संघ सहित आ गए थे, तब मोहिनी जी ने आचार्यश्री से प्रार्थना की थी कि "महाराज जी! आप कृपया इन्हें सम्बोधन प्रदान करें। उस समय महाराज जी ने उन्हें बहुत ही सुन्दर शब्दों में सम्बोधित करते हुए कहा था कि लाला जी! तुमने आर्यिका ज्ञानमती जैसी पुत्री को जन्म देकर अपना जीवन धन्य कर लिया है, सभी यात्राएँ कर ली हैं और सभी साधुओं के दर्शन करके उनका उपदेश भी सुना है, उन्हें आहार देना, वैयावृत्ति आदि भी आपने किया है। इस नश्वर शरीर से आपने अपने जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग किया है अतः अपने कुटुम्ब से मोह छोड़कर शरीर से भी मोह छोड़कर अपना अगला भव सुधार लो।" इत्यादि प्रकार से महाराज जी ने बहुत कुछ कहा था। जहाँ लालाजी लेटते थे, वहीं उनके सामने ऊपर में ज्ञानमती माताजी की पुरानी पिच्छी टंगी रहती थी, जिसे देखकर वे हाथ जोड़कर उसे नमस्कार करते थे। उनका अंत समय जानकर औषधि-अन्न आदि का त्याग कराकर उन्हें धर्मरूपी अमृत ही पिलाया जा रहा था, उन्होंने पत्नी मोहिनी देवी एवं अपने सभी पुत्र-पुत्रवधुओं आदि परिवारजनों से क्षमायाचना करके स्वयं क्षमाभाव धारण कर लिया था।

करीब मरण के एक घण्टे पूर्व की बात है, पुत्री मैना को याद करते हुए उन्होंने कहा था कि मुझे मेरी ज्ञानमती माताजी के दर्शन करवा दो। जब उन्होंने यह इच्छा कई बार व्यक्त की, तब मोहिनी देवी तथा बड़े पुत्र कैलाशचंद ने कहा कि इस समय माताजी यहाँ से बहुत दूर जयपुर में विराजमान हैं, उन्होंने आपके लिए आशीर्वाद भिजवाया है। पुनरपि जब वह बोले–मुझे मेरी ज्ञानमती माताजी के दर्शन करा दो। तब घर के लोगों ने उनके सामने एक महिला जो कि ब्रह्मचारिणी थी, श्वेत साड़ी पहने थी, उसे लाकर खड़ा कर दिया और कहा कि ये आपकी ज्ञानमती माताजी आ गई हैं, दर्शन कर लो। तब उन्होंने आँख खोलकर देखा और सिर हिलाकर धीरे से कहा-"ये हमारी माताजी नहीं हैं, तब उनके मस्तक पर माताजी की पुरानी पिच्छी लग गई। बस फिर! पिताजी (छोटेलाल जी) ने णमोकार मंत्र सुनते-सुनते आँख बंद कर ली पुनः वापस नहीं खोली। उस समय उनका अंत जानकर भी कोई रोया नहीं अपितु उनके पास मौजूद सभी कुटुम्बीजनों ने लगातार जोर-जोर से णमोकार मंत्र का पाठ लगभग एक घण्टे तक किया और उनकी सुन्दर समाधि बनाई, जिसकी आकांक्षा प्रत्येक गृहस्थ को रहती है और विरले ही लोगों को अन्त समाधि का सौभाग्य मिल पाता है।

इस प्रकार गणिनी ज्ञानमती माताजी की स्मृति हृदय में लेकर सभी परिवार के मुख से णमोकार मंत्र सुनते-सुनते लाला छोटेलाल जी ने 25 दिसम्बर 1969 के दिन इस नश्वर

शरीर को छोड़कर स्वर्गधाम को प्राप्त किया और यह उनकी पत्नी और पुत्र-पुत्रियों की गंभीरता और महानता ही रही कि प्राण निकल जाने के बाद भी सब एक घण्टे तक णमोकार मंत्र बोलते रहे, कोई भी वहाँ रोया-धोया नहीं। अनन्तर जब शरीर ठण्डा हो गया, तब रोना-धोना प्रारंभ हुआ। सभी ने पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी की आज्ञा को ध्यान में रखकर पिता के जीवित क्षणों तक धैर्य धारण कर णमोकार मंत्र सुनाया, उनकी सच्ची सेवा की तथा अच्छी सल्लेखना कराकर एक आदर्श उपस्थित किया है।

कहा जाता है कि जो अपने जीवन को सत्कर्मों में लगाता है उसे सुगति की प्राप्ति होती है। श्रीमान् लाला छोटेलाल जी ने अपने जीवन में संघ दर्शन, आहारदान, तीर्थयात्रा, गुरुओं के उपदेश तथा आशीर्वाद ग्रहण आदि से जो पुण्य संचित किया था, इसी के फलस्वरूप उनकी अच्छी आयु बंध गई होगी और यही कारण भी है कि अंत समय घर के अंदर इतने बड़े परिवार के बीच में रहते हुए भी उनकी अच्छी समाधि का लाभ मिला है। आज लालाजी हमारे और आपके बीच में इस नश्वर तन से भले ही न हों परन्तु उनकी संतानों को देखकर हम उनकी महानता का परिज्ञान कर सकते हैं। उनके द्वारा उन संतानों को प्रदत्त संस्कार आज पुष्पित और पल्लवित होकर अपनी सुरभि से समस्त संसार को महका रहे हैं। धन्य हैं ऐसे पिता, जिनके व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्मुख समूचा विश्व नतमस्तक है।

अब यहाँ पिता छोटेलाल जी के परिचय के पश्चात् उनकी 13 संतानों के नाम क्रम-क्रम से दिये जा रहे हैं–

1. कु. मैना (गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी)
2. श्रीमती शांति देवी जैन, लखनऊ
3. श्री कैलाशचंद जैन सर्राफ, लखनऊ
4. सौ. श्रीमती जैन, बहराइच (उ.प्र.)
5. कु. मनोवती जैन (आर्यिका श्री अभयमती माताजी)
6. स्व. श्री प्रकाशचंद जैन, टिकैतनगर
7. श्री सुभाषचंद जैन सर्राफ, टिकैतनगर
8. श्रीमती कुमुदनी जैन, कानपुर
9. कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन (जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर)
10. श्रीमती मालती जैन, दिल्ली
11. श्रीमती कामिनी जैन, दरियाबाद (उ.प्र.)
12. कु. माधुरी शास्त्री (प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती)
13. श्रीमती त्रिशला जैन, लखनऊ

इन 13 संतानों में से त्यागमार्ग पर आरूढ़ सन्तानों का परिचय संक्षेप में दिया जा चुका है अब यहाँ शेष 6 पुत्रियाँ एवं 3 पुत्रों के परिचय प्रस्तुत है–

श्रीमती शांतिदेवी जैन

माता मोहिनी देवी की द्वितीय संतान के रूप में आपका जन्म सन् 1937 में हुआ। युवावस्था में आपका विवाह मोहोना (लखनऊ के निकट) निवासी श्री गुलाबराय के सुपुत्र श्री राजकुमार जैन के साथ सम्पन्न हुआ। आपके चार पुत्र एवं तीन पुत्रियाँ हैं। सभी पुत्र-पुत्रियाँ विवाहित होकर यथायोग्य गृहस्थधर्म के परिपालन करने के साथ-साथ धार्मिक क्रियाओं में भी संलग्न हैं। आपके आठ पौत्र-पौत्री एवं पाँच नाती-नातिन हैं।

श्री राजकुमार जी कपड़ा एवं सर्राफा के व्यवसायी हैं। चारों पुत्र भी कुशलता के साथ व्यवसायवृद्धि में निरन्तर तत्पर हैं। वर्तमान में आप डालीगंज-लखनऊ में निवासरत हैं।

श्री कैलाशचंद जैन

आपका जन्म सन् 1939 में हुआ। विवाह योग्य होने पर आपका विवाह टिकैतनगर के ही श्रेष्ठी श्री शांतिप्रसाद जी की सुपुत्री चन्दारानी के साथ किया गया।

पिछले कई वर्षों से आप चौक-लखनऊ में निवास कर रहे हैं। आपके दो पुत्र एवं दो पुत्रियाँ हैं। आपकी बड़ी पुत्री कु. मंजू जैन शास्त्री बालब्रह्मचारिणी हैं और प्रायः पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी के संघ में धर्माराधन करती हैं। आपके चार पौत्र, दो नाती-नातिन, एक प्रपौत्र एवं एक प्रपौत्री है। आप सर्राफा एवं हीरा-कुन्दन आदि के कुशल व्यापारी हैं तथा दीर्घकाल से लखनऊ सर्राफा एसोसिएशन के अध्यक्ष हैं एवं उत्तरप्रदेश सर्राफा एसोसिएशन के मुख्य संयोजक हैं।

सौ. श्रीमती जैन

चतुर्थ संतान के रूप में श्रीमती जैन का जन्म सन् 1941 में हुआ। आपका विवाह पखरपुर जि. बहराइच (उ.प्र.) निवासी श्री सुखानंद जैन के सुपुत्र श्री प्रेमचंद जैन के साथ सम्पन्न हुआ। आपके दो पुत्र एवं चार पुत्रियाँ हैं। सबसे छोटी पुत्री कु. आस्था जैन पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी से आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लेकर संघ में ही आत्मकल्याण एवं ज्ञानाराधना कर रही हैं। आपके पाँच पौत्र-पौत्री एवं छः नाती-नातिन हैं।

आपके दोनों पुत्रों का बहराइच में ही कपड़े-सर्राफे का व्यापार है। जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में अप्रैल 2007 में तेरहद्वीप पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में आपने अपने पति के साथ माता-पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त किया और ये पुण्यशाली दम्पत्ति आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर सद्गृहस्थ का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

श्री प्रकाशचन्द्र जैन

आपका जन्म चैत्र शुक्ला नवमी, सन् 1945 को हुआ। आपका विवाह नेपालगंज-निकट बहराइच निवासी श्री जयकुमार जैन की सुपुत्री ज्ञानादेवी के साथ किया गया। आपके 4 पुत्र एवं 3 पुत्रियाँ हैं। सबसे छोटी पुत्री कु. इन्दू जैन पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी से आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लेकर आत्मसाधना में संलग्न हैं। आपके आठ पौत्र-पौत्री एवं एक नाती है।

सन् 2005 में अस्वस्थता के कारण आपका निधन हो गया।

आपके चारों पुत्र लखनऊ एवं टिकैतनगर में कपड़ा, सर्राफा आदि व्यापारों में संलग्न हैं तथा अकलंक जैन नाम के सुपुत्र कुशल प्रतिष्ठाचार्य एवं विधानाचार्य हैं।

श्री सुभाषचन्द्र जैन

सन् 1947 में आपका जन्म हुआ। विवाहयोग्य होने पर आपका विवाह गणेशपुर जि.-बाराबंकी (उ.प्र.) निवासी श्री कृष्णचंद्र जैन की सुपुत्री सुषमा जैन के साथ सम्पन्न हुआ। आपके दो पुत्र एवं चार पुत्रियाँ तथा दो पौत्र एवं छः नाती-नातिन हैं।

आप कपड़ा-सर्राफा के व्यापारी हैं तथा पूरा परिवार सदैव धार्मिक क्रियाओं में संलग्न रहता है।

श्रीमती कुमुदनी जैन

आपका जन्म सन् 1948 में हुआ। युवावस्था में आपका विवाह जायस निवासी श्री रिसबदास जैन के सुपुत्र श्री प्रकाशचंद जैन के साथ किया गया। आपके दो पुत्र एवं तीन पुत्रियाँ हैं। उनमें से एक पुत्री कु. बीना जैन पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी से आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत लेकर संघ में आत्मकल्याण एवं ज्ञानाराधना में तत्पर हैं। आपके एक पौत्र एवं चार नाती-नातिन हैं। दोनों पुत्र व्यापार करते हैं तथा छोटे पुत्र विजय कुमार जैन कुशल विधानाचार्य एवं प्रवचनकार हैं।

सन् 1984 में पति का आकस्मिक निधन हो जाने के बाद से आपका जीवन अत्यंत सादगीपूर्ण धर्मध्यान में व्यतीत होता है।

श्रीमती मालती जैन

आपका जन्म श्रावण कृ. ग्यारस, सन् 1952 में हुआ। घर के धार्मिक संस्कारों के साथ-साथ पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी से भी कई वर्ष आपको अनेक ग्रंथों के अध्ययन का लाभ प्राप्त हुआ तथा शास्त्री, धर्मालंकार उपाधि की परीक्षा देकर प्रथम श्रेणी

में उत्तीर्णता प्राप्त की। आपका विवाह मोरीगेट-दिल्ली निवासी श्रावक श्री सतवीर जैन के सुपुत्र श्री यशवीर जैन के साथ सम्पन्न हुआ। आपके एक पुत्र है। श्री यशवीर जैन कपड़े के व्यापारी हैं। दिल्ली बसंतकुंज में "रत्नत्रय शिक्षा शोध संस्थान" नामक संस्था का संचालन करते हुए सद्गृहस्थ के रूप में ये दम्पत्ति धार्मिक-सामाजिक क्रियाओं में तत्पर रहते हैं।

श्रीमती कामिनी जैन

आपका जन्म कार्तिक कृष्णा अमावस्या, सन् 1955 में हुआ। युवावस्था में आपका विवाह दरियाबाद निवासी श्री सुखानंद जैन के सुपुत्र श्री जयप्रकाश जैन के साथ सम्पन्न हुआ। आपके दो पुत्र एवं तीन पुत्रियाँ हैं। एक पुत्री कु. सारिका जैन पूज्य गणिनीप्रमुखी श्री ज्ञानमती माताजी से आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लेकर ज्ञानाराधना में लीन हैं। आपके 1 पौत्री एवं 2 नाती हैं।

श्री जयप्रकाश जी कपड़ा एवं सर्राफा के व्यापारी हैं।

श्रीमती त्रिशला जैन

आपका जन्म वैशाख शु. पंचमी, सन् 1960 में हुआ। आपका विवाह नाका हिंडोला चारबाग-लखनऊ निवासी श्री अनन्त प्रकाश जैन के सुपुत्र श्री चन्द्र प्रकाश जैन के साथ किया गया। आप माता मोहिनी देवी की अंतिम तेरहवीं संतान हैं।

आपके दो पुत्र एवं 1 पौत्री है। श्री चन्द्रप्रकाश जैन प्लाईवुड फैक्ट्री का संचालन करते हुए दानादि क्रियाओं में सदैव तत्पर रहते हैं।

त्रिशला जी को माँ से प्राप्त विरासती धार्मिक संस्कारों के साथ ही पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी के मुखारविंद से धार्मिक अध्ययन करने का भी सौभाग्य बचपन में ही प्राप्त हुआ जिसके फलस्वरूप 12 वर्ष की उम्र में सोलापुर बोर्ड से शास्त्री परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर विद्वज्जगत को आश्चर्यचकित किया और विवाहोपरान्त भी आप साहित्यिक लेखन में संलग्न रहती हैं। रत्नकरंड श्रावकाचार, जीवनदान, जैन रामायण, श्री छोटेलाल शतक आदि को हिन्दी पद्य में प्रस्तुत किया है, जिनका प्रकाशन भी हो चुका है।

माता मोहिनी एवं पिता छोटेलाल जी की तेरह सन्तानों की सन्तान परम्परा

1. कु. मैना – पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी (बाल ब्रह्मचारिणी)

2. श्रीमती शांति देवी – श्री राजकुमार जैन (पति), 4 पुत्र, 4 पुत्रवधू, 3 पुत्री, 3 दामाद, 6 पौत्र, 3 पौत्री, 1 दामाद, 2 नाती, 2 नातिन – कुल सदस्य संख्या 30

3. श्री कैलाशचंद जैन –स्व. श्रीमती चन्दारानी जैन (पत्नी), 2 पुत्र, 2 पुत्रवधू, 2 पुत्री, 1 दामाद, 4 पौत्र, 2 पौत्रवधू, 1 प्रपौत्र, 1 प्रपौत्री, 1 नाती, 1 नातिन–कुल सदस्य संख्या 19

4. सौ. श्रीमती देवी –श्री प्रेमचंद जैन (पति), 2 पुत्र, 2 पुत्रवधू, 4 पुत्री, 3 दामाद, 2 पौत्र, 3 पौत्री, 3 नाती, 2 नातिन–कुल सदस्य संख्या 23

5. कु. मनोवती –पूज्य आर्यिकारत्न श्री अभयमती माताजी (बाल ब्रह्मचारिणी)

6. स्व. श्री प्रकाशचंद जैन–श्रीमती ज्ञानारानी जैन (पत्नी), 4 पुत्र, 3 पुत्रवधू, 3 पुत्री, 1 दामाद, 4 पौत्र, 4 पौत्री, 1 नाती–कुल सदस्य संख्या 22

7. श्री सुभाषचंद जैन –श्रीमती सुषमारानी जैन (पत्नी), 2 पुत्र, 1 पुत्रवधू, 4 पुत्री, 4 दामाद, 2 पौत्र, 1 नाती, 5 नातिन–कुल सदस्य संख्या 21

8. श्रीमती कुमुदनी देवी –स्व. श्री प्रकाशचंद जैन (पति), 2 पुत्र, 1 पुत्रवधू, 3 पुत्री, 2 दामाद, 1 पौत्र, 3 नाती, 1 नातिन–कुल सदस्य संख्या 15

9. श्री रवीन्द्र कुमार जैन –बाल ब्रह्मचारी

10. श्रीमती मालती देवी –श्री यशवीर जैन (पति), 1 पुत्र–कुल सदस्य संख्या 3

11. श्रीमती कामिनी देवी –श्री जयप्रकाश जैन (पति), 2 पुत्र, 3 पुत्री, 1 दामाद, 1 पौत्री, 2 नाती–कुल सदस्य संख्या 11

12. कु. माधुरी –प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी (बाल ब्रह्मचारिणी)

13. श्रीमती त्रिशला जैन –श्री चन्द्रप्रकाश जैन (पति), 2 पुत्र, 1 पुत्रवधू, 1 पौत्री–कुल सदस्य संख्या 6

1+30+19+23+1+22+21+15+1+3+11+1+6–कुल योग 154

नोट–उपरोक्त संख्या में श्री कैलाशचंद जी की धर्मपत्नी चंदारानी एवं उनके पुत्र जम्बू कुमार तथा द्वितीय भाई प्रकाशचंद एवं कुमुदनी जी के पति प्रकाशचंद जी, ये 4 लोक स्वर्गस्थ हो चुके हैं अतः विद्यमान संतान परम्परा की संख्या कुल 150 है।

''असली दहेज'' नाटक

भूमिका—प्रिय पाठक बन्धुओं! परम पूज्य गणिनी आर्यिका रत्नश्री ज्ञानमती माताजी एवं अभयमती माताजी की जन्मदात्री पूज्य 105 आर्यिका श्री रत्नमती माताजी का 15 जनवरी सन् 1985 को हस्तिनापुर में सल्लेखनापूर्वक समाधिमरण हुआ था।

उनके सम्पूर्ण जीवनवृत्त को एक लघु नाटक के रूप में लिखकर मैंने जनमानस को माता रत्नमती जी के जीवन से परिचित कराने का पुरुषार्थ किया है।

इस नाटक का मंचन करने वालों से विशेष रूप से मेरा आग्रह है कि नाटक खेलने के साथ-साथ शास्त्रीय सिद्धांत और भारतीय संस्कृति का ध्यान रखते हुए सर्वप्रथम नाटक के सभी पात्र या तो लड़कियाँ ही रखें या लड़कों को ही समस्त पात्र बनाएं अथवा पति-पत्नी का पाठ केवल लड़कियाँ या लड़के-लड़के ही करें।

दूसरी बात यह है कि नाटक में जहाँ भगवान, मुनिराज या आर्यिका-साधु के दृश्य आएँ, वहाँ मात्र उनके बड़े चित्र या स्टेचू ही रखें क्योंकि खेल में भी पिच्छी- कमण्डलु देकर पात्र बनाना दोषास्पद है।

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

मातृ—वन्दना

जिनकी त्याग साधना से,पावन हो जाता मन है।
पूज्य आर्यिका रत्नमती को, वंदन अभिनंदन है।।टेक.।।
पावन भारत वसुन्धरा का, है इतिहास गवाही।
जिसको मिटा न पाया कोई, ऐसी अमिट है स्याही।।
जिस नारी की शक्ती से, सुरपति भी हिल जाता है।
रत्नमती माताजी का, चारित्र ये बतलाता है।।
भौतिक सुख को ठोकर मारी, धन्य किया जीवन है।
पूज्य आर्यिका रत्नमती को, वंदन अभिनंदन है।।1।।
जिन्हें वासना के बंधन ने, किंचित् बांध न पाया।
आत्म तपोबल से अपना, जीवन आदर्श बनाया।।
चन्दनबाला राजुल सा, इनमें संयम का पानी।
युग युग तक युग दुहराएगा, इनकी विशद कहानी।।
लख संसार असार सभी का, पहिचाना क्रन्दन है।
पूज्य आर्यिका रत्नमती को, वंदन अभिनंदन है।।2।।
प्रांत अवध का धन्य है जिस पर, मां ने जनम लिया है।
जैन धर्म का ध्वज फहराकर, निज उत्थान किया है।।

इसी धरा की पुण्य धरोहर, सच्चरित्र हितकारी।
गौरवशाली महामनीषी, मृदुभाषी सुखकारी।।
हस्तिनागपुर की माटी, ये मधुर हुई चन्दन है।
पूज्य आर्यिका रत्नमती को, वंदन अभिनंदन है।।3।।

(प्रथम दृश्य)

समय–प्रातः काल।

स्थान–महमूदाबाद में सेठ सुखपाल जी का घर (लगभग 16 वर्ष की उम्र वाली कन्या मोहिनी बैठी हुई शास्त्र स्वाध्याय कर रही है।)

माँ–बेटी मोहिनी, अकेली क्या पढ़ रही है? मेरे पास आ, मुझे भी कुछ स्वाध्याय सुना दे।

मोहिनी–(माँ के पास शास्त्र की चौकी लेकर जाती हुई) सुनो माँ, यह पद्मनंदिपंचविंशतिका शास्त्र है। पिताजी ने इसका स्वाध्याय करने के लिए कहा है। इसमें तो बहुत अच्छी-अच्छी बातें लिखी हुई हैं। सुनो, मैं तुम्हें भी सुनाती हूँ–

बहिर्विषयसंबंधः, सर्वः सर्वस्य सर्वदा।
अतस्तद्भिन्नचैतन्य-बोधयोगौ तु दुर्लभौ।।

अर्थात् सब बाह्य विषयों का सदाकाल से सभी प्राणियों के साथ संबंध चला हीआ रहा है किन्तु उससे भिन्न चैतन्य और समीचीन ज्ञान इन दोनों को प्राप्त करना ही दुर्लभ है।

(शास्त्र को सुनकर माँ-बेटी दोनों गृहस्थी के कार्य में लग जाती हैं, दूसरे दिन मोहिनी अपनी बड़ी विवाहित बहन राजदुलारी के साथ मंदिर दर्शन करने जाती है तो भगवान के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगती है।)

मोहिनी–(मंदिर में पहुँचकर दर्शन पाठ बोलते हुए नमस्कार करती हुई)

हे भगवान! बड़ी दुर्लभता से मनुष्य जन्म मिला है जिसे पाने के लिए इंद्र भी तरसते हैं। (अन्तर्जल्प) कुछ दिनों में पिताजी मेरी शादी कर देंगे। मैं ससुराल चली जाऊँगी फिर भी हे भगवन् ! मैं आपकी साक्षीपूर्वक आजीवन शीलव्रत धारण करती हूँ और यह प्रतिज्ञा करती हूँ कि एक अपने पति के सिवाय किसी परपुरुष का मन में ध्यान भी नहीं लाऊँगी और हाँ.....एक बात और भी है कि प्रत्येक अष्टमी चतुर्दशी एवं पर्व के दिनों में मैं पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करूँगी। (पुनः नमस्कार करती हुई।)

बड़ी बहिन–अरी मोहिनी, अब बहुत देर हो गई,चलो घर चलते हैं। (दोनों बहनों का मंदिर से प्रस्थान)

(घर में पति-पत्नी में बहस चल रही है)

सुखपाल जी–(कई फोटो दिखाते हुए) अरे मोहिनी की माँ! बताओ तो सही, तुम्हें कौन सा लड़का पसंद है?

धर्मपत्नी मत्तो देवी–मुझे तो टिकैतनगर के धन्यकुमार जी का लड़का छोटेलाल पसंद है। लड़का भी सुन्दर है और उनका परिवार भी धर्मात्मा है।

सुखपाल जी—बस तो रिश्ता पक्का रहा। बेटा महीपाल! भगवानदास! शादी की तैयारियाँ करो। अब तुम्हारी बहन मोहिनी दुल्हन बनेगी।

(शादी के बाजे बजते हैं। मोहिनी माता-पिता के चरण छूकर अंतिम आशीर्वाद्लेती है)

सुखपाल जी—(बेटी को गले से लगाते हुए) बेटी मोहिनी! तेरे जाने से तो मेरे घर की रौनक ही चली जा रही है। ओह! मैं कैसे तेरे बिना रह सकूँगा (कलेजा थामते हुए) मेरी मोहिनी! ले, मैं तुझे यह तेरा प्रिय ग्रंथ पद्मनंदिपंचविंशतिका दे रहा हूँ यही मेरा दहेज है, तुम इसका प्रतिदिन स्वाध्याय करना।

(विनयपूर्वक ग्रंथ लेकर मोहिनी माँ एवं पिता के चरण स्पर्श कर रही है)

माँ—(विह्वल होकर बेटी को छाती से चिपकाती हुई) बेटी! अब तुम जिस घर में जा रही हो, वही तुम्हारा अपना घर होगा। तुम सास-ससुर को ही अपने माता-पिता मानना और पति को देवता।

यह तो विधाता की लीला है कि इतने वर्षों तक बेटी को पाला जाता है फिर उसे पराई बना दिया जाता है। बेटी! तेरे जाने से हमारा घर तो जरूर सूना हो जाएगा किन्तु धन्यकुमार के घर में एक नई बहार आ जाएगी क्योंकि मुझे विश्वास है कि मेरी मोहिनी जहाँ भी जाएगी, सभी का मन मोह लेगी।

(मोहिनी अपने भाई-बहन, माता-पिता सभी का मोह अपने दिल में समेटे हुए ससुराल को जाती हुई।)

(दृश्य-2)

समय—मध्यान्ह

(मोहिनी घर में काम करती हुई कुछ गीत की पंक्तियाँ गुनगुना रही है)

यह तन जाए तो जाए, मेरा शील रतन नहिं जाए...

सासु जी—बहू! क्या गा रही हो, तुम तो हर समय अपने स्वाध्याय और पाठ में लीन रहती हो। बेटी, कभी मुझसे भी तो कुछ बोला करो। मैंने तो पहले से ही तुम्हारी बहुत प्रशंसा सुन रखी है।

मोहिनी—नहीं, नहीं अम्मा जी! यह तो सब आप लोगों का आशीर्वाद है। मैं तो कुछ भी नहीं जानती। माँ जी! घर में मेरे पिताजी मुझे भजन वगैरह सिखाते और कहते थे कि खाना बनाते समय और सभी काम करते हुए इनको पढ़ा करो तो घर का वातावरण सुखी और शांत रहता है। आप बुरा मत मानना माँ जी! मेरी वही आदत पड़ी हुई है।

सासु जी—नहीं बहू! इसमें बुरा मानने की क्या बात है? तुम तो जब से इस घर में आई हो, मेरे घर की रौनक ही बदल गई है। बेटी! तुम्हीं बहुएँ तो इस घर की लक्ष्मी हो। तुम मुझे भी यह सब धर्म की बातें जरूर सुनाया करो।

(इसी प्रकार खुशहालीपूर्वक मोहिनी के 2 वर्ष निकल गए। अब तो इस घर के सभी लोग उसके अपने हो गए थे। एक दिन मोहिनी ने प्रथम सन्तान के रूप में एक कन्या को

जन्म दिया। सभी लोगों ने कन्या को रत्न मानकर घर में खुशियाँ मनाईं।

मोहिनी उस कन्या को लेकर अपने पीहर गई तो उसके रूप-लावण्य और बालसुलभ लीलाओं को देखकर उसके नाना ने नाम रखा 'मैना'। मैना जब कुछ बड़ी हुई तो वह भी माँ मोहिनी के समान धार्मिक पुस्तकों को पढ़ने लगी। यह तो आप सभी जानते हैं कि वही मैना आज गणिनी आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी के रूप में लोक प्रसिद्ध साध्वी हैं। उन्हें प्रारंभ में वैराग्य कैसे हुआ? यह बात यहाँ संक्षेप में बताई जा रही है।)

(लगभग 9-10 वर्ष की एक लड़की फ्राक पहने हुए मैना के रूप में)

मैना–माँ, देखो, मेरी सब सहेलियाँ बाहर खेल रही हैं, मुझे भी खेलने जाने दो न।

मोहिनी–बेटी, इन खेलों में क्या रखा है? आओ मेरे पास ये शील कथा, दर्शन कथा पढ़ो, इनमें बड़ा आनन्द आता है और मेरे साथ घर के काम भी किया करो जिससे तुम एक होशियार लड़की बन सको।

मैना–(उन कथाओं को पढ़ती हुई और फिर माँ के साथ पद्मनंदिपंचविंशतिका ग्रंथ को भी पढ़ती हुई बड़ी प्रसन्न होकर कहती है।)

माँ, देखो, कितनी वैराग्यपूर्ण बात इसमें लिखी है–

'इन्द्रत्वं च निगोदतां च बहुधा मध्ये तथा योनयः।'

अर्थात् हे देव! मैंने चिरकाल से संसार में परिभ्रमण करते हुए बहुत बार उत्तम इन्द्रपद प्राप्त किया है तथा निंद्य निगोदपर्याय भी अनन्त बार प्राप्त की है। बीच में जो और भी समस्त अनंत भव हैं, उन सबको भी अनन्त बार प्राप्त कर-करके दुःख उठाये हैं।

ओह! अब मैं सोचती हूँ कि किस प्रकार से इस संसार को जल्दी से जल्दी समाप्त करके कब मैं भी भगवान बन जाऊँ जिससे कि मुझे संसार में कभी वापस न आना पड़े।

(बस यहीं से मैना के हृदय में वैराग्य के अंकुर उत्पन्न होने लगे और आखिर एक दिन उन अंकुरों को पुष्पित और फलित होने का अवसर भी मिल गया अर्थात् कुछ दिनों बाद सन् 1952 में आचार्य श्री देशभूषण महाराज का संघ टिकैतनगर में आ गया। सभी दर्शनार्थियों की भांति मैना भी महाराज के दर्शन करने गई और सबसे पहले मैना ने महाराज से पूछा) (यहाँ नाटक में महाराज के स्थान पर फोटो या स्टेचू रखें।)

मैना–नमोऽस्तु महाराज जी! महाराज! मैं दीक्षा लेना चाहती हूँ।

महाराज–सद्धर्मवृद्धिरस्तु (आशीर्वाद देकर उसकी ओर देखते हुए) बेटी, तुम्हारा ललाट उज्ज्वल भविष्य की सूचना दे रहा है। तुम्हारा मनोरथ अवश्य सिद्ध होगा। (फिर तो मैना को अपने और भी भाव प्रगट करने का साहस प्राप्त हुआ, वह बोली-)

मैना–मुनिवर! मैं आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत लेकर ब्राह्मी-सुन्दरी के पथ पर चलना चाहती हूँ किन्तु परिवार और समाज वाले न जाने क्यों विरोध कर रहे हैं?

महाराज–मैना! जो आत्मकल्याण का इच्छुक होता है, वह इन संघर्षों की परवाह नहीं करता। केवल तुम अपने में दृढ़ रहो, सब काम बन जाएगा।

मैना–(मस्तक झुकाकर) गुरुवर का आशीर्वाद मुझे अवश्य शक्ति प्रदान करेगा।

इसके कुछ दिन पश्चात् आचार्यश्री का संघ टिकैतनगर से विहार कर गया और बाराबंकी शहर में चातुर्मास हुआ। इधर मैना किसी प्रकार अपना कार्य सिद्ध करना चाहती है क्योंकि घर में उसके विवाह की चर्चाएँ शुरू हो गई हैं कि जल्दी से जल्दी इसे गृहस्थी के बंधन में फंसा दिया जाए। मैना और परिवार वालों में राग वैराग्य-का मूक द्वन्द्व चल रहा है। दोनों पक्ष अपनी-अपनी मनोभावनाओं को सफल करने में लगे हैं।

अन्ततोगत्वा एक दिन मैना आचार्यश्री के दर्शन करने जबरदस्ती माता-पिता की आज्ञा लेकर छोटे भाई कैलाशचंद को साथ में लेकर चल दीं। जाते समय माँ कहती हैं–

मोहिनी–(रोती हुई) मैना बेटी! तुम्हीं मेरी सबसे बड़ी सन्तान हो। देखो, यह मालती तो अभी 22 दिन की है, घर में छोटे-छोटे बच्चे हैं, कौन संभालेगा इनको? तुम आज शाम तक जरूर आ जाना।

मैना–(बाहर जाती हुई) हाँ, हाँ माँ! तुम चिंता मत करो, मैं आ जाऊँगी। चलो कैलाश, नहीं तो बस निकल जाएगी।

(भाई-बहन दोनों बाराबंकी आचार्यश्री के चरणों में पहुँच गये, दर्शन कर आशीर्वाद प्राप्त किया। बन्धुओं! मैना का यह घर से अंतिम प्रस्थान था। सारा परिवार बाराबंकी में आचार्यश्री और मैना के विरोध में लगा रहा। महमूदाबाद से मैना के दोनों मामाभी आ गये, उन्होंने मोह के आवेश में बहुत सारे अपशब्द भी कहे लेकिन मैना टस से मस नहुई। उसने चतुराहार त्याग कर दिया और मंदिर में जाकर भगवान के पास ध्यानस्थ हो गई। अन्ततः मैना की ही विजय हुई। सारा परिवार रोता-बिलखता रहा और आश्विन शुक्ला पूर्णिमा (शरदपूर्णिमा) को मैना अपने जीवन के 18 वर्ष पूर्ण कर चुकी थी, संयोगवश आज भी वही दिवस था जब मैना ने आचार्यश्री के पास श्रीफल चढ़ाकर सप्तम प्रतिमा के व्रतरूप आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण किया। पास में खड़ी हुई माता मोहिनी आचार्य श्री से निवेदन कर रही हैं।)

मोहिनी–महाराज! इसे समझा दीजिए कि अभी घर में ही रहे अन्यथा इसके पिताजी मुझे बहुत परेशान करेंगे। महाराज! मैना के बिना मेरा घर उजड़ जाएगा।

महाराज–अरे बाई! आज तेरा मातृत्व धन्य हो गया।

(मुस्कराकर) मोहिनी! तुमने ही तो पहले इसे धर्म ग्रंथ पढ़ा-पढ़ाकर इसके अन्दर ठूस-ठूस कर वैराग्य की भावना भर दी और आज तुम मुझसे इसे समझाने को कह रही हो। अरे, इसे तो असली वैराग्य हो चुका है इसे ब्रह्मा भी नहीं हिला सकता।

(रोते हुए परिवार वालों का और मैना का संवाद-एक गीत में)

मैना– अम्मा रूठे पापा रूठे, रूठे भाई और बहना।
मैं दीक्षा लेने जाऊँगी, तुम देखते रहना।।

माता– मानो बेटी बात हमारी, आयु अभी थोड़ी है।
इतनी आयु में क्यों बिटिया, त्याग से ममता जोड़ी है।।

दीक्षा में है कष्ट घनेरे, तुमरे बस की न सहना।
मैं दीक्षा नहिं लेने दूँगी, तुम देखती रहना।।

मैना– कष्टों का ही नाम है जीवन, क्यों घबराती हो माता।
झूठे सांसारिक सुख हैं और, झूठा है जग का नाता।।
वीरा के चरणों में बीते, मेरे दिन और रैना।
मैं दीक्षा लेने जाऊँगी, तुम देखते रहना।।

पिता जी– ऐसा न सोचो बिटिया तुम, बड़े लाड़ से पाली हो।
सम्पन्न है परिवार ये सारा, फिर भी कोठी खाली हो।।
हम बेटी हैं बाप तुम्हारे, कहना मान लो अपना।
मैं दीक्षा नहिं लेने दूँगा, तुम देखती रहना।।

सभी भाई– माँ-बाप का कहना मानो जीजी, हम सब तुमरे चरण पड़े।
कैसे मन को कड़ा करोगी, जब हम रोएंगे खड़े-खड़े।।
रक्षाबन्धन जब आयेगा, मेरे याद आए बहिना।
हम दीक्षा नहिं लेने देंगे, तुम देखती रहना।।

अन्य कोई– समझाया सब घर वालों ने, कोई रहा नहीं बाकी।
छोटा भाई भी रोता आया, हाथ में लेके इक राखी।।
इसको बहना बाँधती जाओ, ये है प्यार का गहना।
ये दीक्षा लेने जाएंगी, सब देखते रहना।।

(सभी लोग अनन्य प्रयास करने के बावजूद भी मैना को वापस घर नहीं ले जा सके, हारकर सबको वापस घर जाना पड़ा। मैना तो अब रात-दिन अपना संपूर्ण समय ज्ञान-ध्यान में बिताती थी। ब्रह्मचारिणी के वेश में एक आर्यिका का ही रूप थी। फिर कुछ ही दिनों में महावीर जी तीर्थक्षेत्र पर उन्हें दीक्षा भी मिल गई और बन गईं क्षुल्लिका वीरमतीजी। आचार्य श्री से क्षुल्लिका दीक्षा प्राप्त कर लगभग दो ढ़ाई वर्षों के बाद चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर महाराज की सल्लेखना देखने के लिए क्षुल्लिका श्री विशालमती मातजी के साथ कुंथलगिरि पहुँची। वहाँ पर आचार्य श्री का आशीर्वाद और शिक्षाएं प्राप्त कीं। पुनः उनकी समाधि के पश्चात् उन्हीं के पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के पास मधोराजपुरा (राज.) में आर्यिका दीक्षा प्राप्त की। तब से गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी के रूप में साधुजगत में अलौकिक कार्यों के द्वारा अपना नाम अमर कर रही हैं।)

(दृश्य-3)

समय– मध्याह्न

(मोहिनी अपने घर में विचारमग्न हैं, क्योंकि मैना के घर से जाने के 9-10 वर्षपश्चात् उनकी एक पुत्री मनोवती भी गृहबंधन को ठुकराकर ज्ञानमती माताजी के पास चली गई थीं। उन्होंने भी धीरे-धीरे दीक्षा धारण कर ली और आर्यिका श्री अभयमती माताजीबन गईं।)

(दोनों माताजी के चित्र रखें।)

अब तक मोहिनी 13 संतानों की माँ बन चुकी थीं और गृहस्थी के खट्टे-मीठे अनुभवों से एवं अपनी दो-दो पुत्रियों के दीक्षा ले लेने पर उनका मन घर में नहीं लगता था। गृहस्थी की जिम्मेदारी होने के नाते उन्होंने 3 पुत्रों (कैलाश, प्रकाश, सुभाष) के एवं पुत्रियों (शान्ति, श्रीमती, कुमुदनी आदि) के विवाह कर दिये।

25 दिसम्बर सन् 1969 में इनके पति श्री छोटेलाल जी का स्वर्गवास हो गया। उस समय मोहिनी ने अपने असली कर्तव्य का निर्वाह किया। उन्होंने महामंत्र का पाठ सुनाते हुए एक साध्वी की तरह उनकी समाधि कराई। एक वर्ष बाद माँ को घर में विक्षिप्त देखकर बड़े पुत्र कैलाशचंद माँ से बोले–

कैलाशचंद–माँ! आप कहें तो कुछ दिन ज्ञानमती माताजी के पास चलकर साधुओं के दर्शन किए जाएँ।

माँ–(प्रसन्नतापूर्वक) बेटा! तुमने तो मेरे मन की बात ही कह दी, मैं यही सोच रही थी। देखो! तुम्हारे पिताजी भी मुझे लेकर माताजी के पास जाकर 15-15 दिन चौका लगाते थे। चलो, बहू को भी साथ में ले चलो, फिर हम सब साधुओं की वैयावृत्ति कर धर्म लाभ प्राप्त करेंगे लेकिन पता नहीं कहाँ होंगी आजकल ज्ञानमती माताजी?

कैलाशचंद–माँ! मुझे पता है माताजी आजकल आचार्य धर्मसागर महाराज के साथ अजमेर में चातुर्मास कर रही हैं।

(कैलाशचंद परिवार सहित माँ और छोटी बहिन कु. माधुरी को साथ लेकर अजमेर (राज.) में पूज्य ज्ञानमती माताजी के पास आ गए। आचार्य श्री एवं समस्त संघ केदर्शन किए। बस दूसरे दिन से ही सास-बहू दोनों ने मिलकर चौका लगाना शुरू कर दिया। चौके में प्रतिदिन 2-4 साधुओं का पड़गाहन होता, माँ मोहिनी आहारदान देकर फूली नहीं समातीं।चौके से बचा शेष समय मोहिनी अपनी पुत्री (ज्ञानमती माताजी और अभयमती माताजी) के पास बितातीं। कैलाशचंद मुनियों की वैयावृत्ति का लाभ प्राप्त करते रहे। पर्यूषण पर्व भी सम्पन्न हो गया।

इस प्रकार 15 दिन देखते-देखते निकल गए, तब एक दिन कैलाशचंद ने माँ से कहा-

कैलाशचंद–माँ, अब कई दिन हो गए हैं। आपकी आज्ञा हो तो घर चलने का प्रोग्राम बनाया जावे?

मां–हाँ, अब तुम्हारे व्यापार का भी समय आ गया है। घर में सब बच्चे भी इंतजार करते होंगे।

(कैलाशचंद और बहू चंदा ने मिलकर सारा सामान बांध लिया। वापस जाने का दिवस भी आ गया तो कैलाशचंद ने माँ से कहा–)

कैलाशचंद–मां, समय हो रहा है घर चलने का। अभी तक तुम्हारा सामान भी नहीं बंधा, लाओ मैं जल्दी-जल्दी बाँध देता हूँ।

मां–(कुछ रूआंसी हैं) बेटा! मेरी इच्छा है कि मैं अब कुछ दिन ज्ञानमती माताजी के पास

रहकर इनकी सेवा कर लूँ। देखो! ये चौबीस घंटे अपने शिष्य-शिष्याओं को डाँटती रहती हैं, कैसी कमजोर हो गई हैं ये। जब से घर से निकली है मैंने कभी भी तो इनकी खबर नहीं ली है।

कैलाशचंद–(घबड़ाते हुए) ओह, माँ! यह आप क्या कह रही हैं। घर में पिताजी भी नहीं हैं। (रोते हुए) और आप भी इस तरह हम लोगों को छोड़ देंगी। नहीं, नहीं, मैं अकेला घर नहीं जा सकता, सब भाई मुझे क्या कहेंगे? जल्दी चलो, माँ! जल्दी चलो, अब मैं तुम्हें यहाँ कभी नहीं लाऊँगा, नहीं तो ज्ञानमती माताजी ऐसी चुम्बक हैं कि वे तुम्हें हम सबसे छीन लेंगी।

बहू–(मां के पैर पकड़कर रोती हुई) माँ जी! हम लोग इन चरणों के बिना कैसे रह सकते हैं? फिर यहाँ आपकी सेवा भी कौन करेगा? आप तो ज्ञानमती माताजी से भी ज्यादा कमजोर हैं। आपको अपनी सेहत का भी कुछ पता नहीं है, माँ! मैं आपको लिए बिना घर नहीं जा सकती।

मां–बेटे, तुम लोग इतने अधीर क्यों हो रहे हो? थोड़े दिन में किसी बच्चे को भेज देना, मैं आ जाऊँगी।

कैलाशचंद–अरे माँ, क्या भरोसा! यहाँ माताजी की संगति में रहकर कहीं आप भी वैसी ही न बन जायें, मुझे संदेह हो रहा है।

मां–दीक्षा लेना कोई हँसी-मजाक है क्या? (थोड़ा नाराजगी की मुद्रा में)

तुम लोग कुछ भी कहो, मैंने काफी जिंदगी तुब सबकी सेवा कर दी, अब क्या मैं अपनी इच्छा से कुछ दिन यहाँ नहीं रह सकती? मैं अभी तो घर जाऊँगी नहीं।

सारी उम्र तुम्हारे पिताजी की आज्ञा पालन में बिताई, तो क्या अब बेटों की आज्ञा में मुझे रहना पड़ेगा?

कैलाशचंद–(कुछ सहमे हुए) नहीं माँ, मेरा कोई ऐसा गलत अभिप्राय नहीं है। मुझे तुम पर पूरा विश्वास है कि 10-15 दिन बाद जब मैं छोटे भाई को यहाँ भेजूँगा, तब तुम उसके साथ जरूर आ जाओगी। (प्रश्न भरी मुद्रा से माँ को देखते हुए)

माँ–हाँ बेटा! तुम समझदार हो। देखो! अब मुझे भी तो अपनी आत्मा के लिए कुछ पुरुषार्थ करना चाहिए। वैसे मैं थोड़े दिन में ही जरूर आ जाऊँगी, तुम चिंता मत करना। बड़े भाई के नाते परिवार में सबके साथ पिता जैसे कर्तव्य को निभाना।

(उदासचित्त मन में विश्वास का दीप जलाकर कैलाशचंद अपने परिवार के साथ छोटी बहन माधुरी और त्रिशला को लेकर घर आ गए। यहाँ यह बता देना उचित होगा कि अजमेर के इस प्रवास के मध्य 13 वर्षीय कु. माधुरी ने (मैंने) ज्ञानमती माताजी के पास अपनी कुछ त्याग भावना को बतलाकर उनकी प्रेरणा से किसी से पूछे बिना ही सुगंधदशमी के दिन चुपचाप आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया जिसकी प्रगटता काफी दिनों बाद हुई। आज वह माताजी के पास ही गृहविरक्त होकर सप्तम प्रतिमा के व्रत पालन कर पुनः 1989 में आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर "आर्यिका चन्दनामती" बनकर ज्ञानार्जन के साथ-साथ जैनधर्म की प्रभावना कर रही हैं। घर में कैलाशचंद के वापस आने पर माँ के नहीं आने

का समाचार सुनकर सब भाई-भाभियाँ और बच्चे बहुत दुखी हुए। बड़े भाई कैलाश ने अपने स्नेह से सांत्वना प्रदान की और दिन बीतने लगे।

लगभग महीना निकल गया। एक दिन प्रकाशचंद ने कहा– भैया, अब मैं माँ को लेने जाऊँगा। शाम के समय सभी भाई बैठकर प्रकाश को अजमेर भेजने का कार्यक्रम बनाते हैं कि दो दिन बाद ये माँ को लेने जायेंगे। किन्तु दूसरे ही दिन अकस्मात् अजमेर से एक श्रावक पत्र लेकर आए।)

कैलाशचंद–(घर में आकर घबड़ाए हुए स्वर में) भाइयों! यह क्या हुआ? अजमेर से पत्र आया है, कि अगहन वदी तीज को तुम्हारी माँ की दीक्षा है? ओह! आखिर वही हुआ न जिसकी मुझे आशंका थी।

प्रकाशचंद–(गुस्से में भरे हुए) देखता हूँ कैसे दीक्षा हो जाती है? मैं आज ही जाता हूँ आचार्यश्री के विरोध में बड़े-बड़े पोस्टर छपवाकर सारे अजमेर में तहलका मचा दूँगा।

सुभाषचंद–हाँ, दीक्षा देना कोई हँसी खेल है। बिना हम लोगों की अनुमति के दीक्षा देने वाले आचार्य कौन होते हैं? हम सब जबरदस्ती माँ को पकड़कर घर ले आएंगे। (गुस्से में) ये जैन साधु किसी की घर गृहस्थी को उजड़ते हुए देखकर तरस भी नहीं खाते हैं। ओह! यह कैसी अनहोनी हो रही है, भगवान्! तुम जरूर हमारा साथ देना।

(यहाँ यह ज्ञात करना आवश्यक होगा कि चौथे भाई रवीन्द्र कुमार जो कुंवारे थे, वे बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर कुछ दिन पूर्व ज्ञानमती माताजी के दर्शन करने गए थे, तब माताजी ने उन्हें धार्मिक शास्त्री परीक्षा का कोर्स पढ़ने के लिए रोक लिया था। अजमेर में इस समय रवीन्द्र मौजूद थे और माँ की दीक्षा का खूब विरोध कर रहे थे, तभी इधर से सारा परिवार भी अजमेर पहुँच गया। महमूदाबाद से मोहिनी के छोटे भाई भगवानदास और न जाने कितने लोग पहुँच गए।

अजमेर का उस समय का करुण क्रन्दन जनमानस के हृदय को विदीर्ण कर देता था। सभी बेटियाँ, दामाद, बेटे, बहुएं, नाती, पोते मोहिनी को पकड़-पकड़कर करुण विलाप कर रहे थे। भाई भगवानदास खड़े-खड़े रोते हुए बहन को मना रहे थे। पुत्र सुभाषचंद तो बेहोश पड़े थे,बच्चे दादी-दादी कहकर बिलख रहे थे जिन्हें देखने वाला हर व्यक्ति रो-रोकर आचार्य श्री से कहता था कि महाराज! यह दीक्षा कभी नहीं होनी चाहिए, आप तो करुणा के सागर हैं, इन बच्चों को इनकी माँ वापस दे दीजिए।

इक बार सभी के होठों से, यह शब्द अवश्य निकल जाता।
ऐसी दीक्षा मत होने दो, इनको दे दो इनकी माता।।

आचार्यश्री भी धर्मसंकट में थे किन्तु मोहिनी तो मानो हाड़ मांस की नहीं, पत्थर की बन गई थीं। वे सबसे पीछा छुड़ाने के लिए चतुराहार त्याग कर बैठ गईं। अब सभी परिवारजन ज्ञानमती माताजी के पास जाकर यद्वा–तद्वा बकने लगे और मां को छुड़ाने का सारा श्रेय माताजी को ही दिया।

लेकिन मोहिनी प्रतिज्ञा का, पालन करके दिखलाएगी।
मोहिनी आज निर्मोहिनि बन, गृह पिंजड़े से उड़ जाएगी।।

अन्ततोगत्वा सबके प्रयास असफल रहे। मोहिनी की दृढ़ प्रतिज्ञा के आगे सबको झुकना पड़ा और निश्चित तिथि के अनुसार आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज ने उन्हें दीक्षा प्रदान करके 'आर्यिका रत्नमती' नाम घोषित किया।

लगभग 50 हजार की विशाल भीड़ के सामने ऊँचे मंच पर माँ मोहिनी का केशलोंच उनकी ही पुत्रियाँ आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी, आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने कियाऔर अब मोहिनी जगत् माता 'रत्नमती' बन गईं। माँ की दीक्षा के 3-4 महीने के पश्चात् ही सन् 1972 में रवीन्द्र कुमार ने आचार्य श्री धर्मसागर जी से नागौर (राज.) में आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण कर लिया, जो ज्ञानमती माताजी के पास रहकर प्रारंभ से ही जंबूद्वीप रचना निर्माणके मूल स्तम्भ रहे हैं और आज भी दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अध्यक्ष पदभार को संभालते हुए संस्थान की चहुमुँखी प्रगति में संलग्न हैं।

यह पूज्य रत्नमती माताजी का अति संक्षिप्त जीवन परिचय दर्शाया गया।

पूज्य रत्नमती माताजी के जीवन की सर्वाधिक विशेषता यही रही कि उन्होंनगृहस्थ के समस्त कर्तव्यपालन के पश्चात् 58 वर्ष की उम्र में आर्यिका दीक्षा धारणकर अपने जीवन को सफल बनाया एवं अपनी निर्दोष चर्या का पालन करते हुए 15 जनवरी 1985 माघ कृ. नवमी को हस्तिनापुर में सल्लेखनापूर्वक समाधिमरण करके अपने नरभवरूपी स्वर्णमंदिर के ऊपर मणिमयी कलश का आरोहण किया। धन्य है वह रत्नप्रसूता माता ''माता रत्नमती''।

अब इस संसार में उनके द्वारा प्रदत्त रत्न धर्म का प्रकाश प्रदान कर रहे हैं।

(अंत में सभी पात्र मिलकर गीत गाते हैं) –

सुखपाल जी दहेज में यदि ग्रन्थ न देते।
तो रत्नमती माँ के हमें दर्श न होते।।
उस शास्त्र ने जो रत्नमती को बोध दे दिया।
उस बोध ने ही ज्ञानमती को गोद में दिया।।1।।
जिसने धरा में ज्ञान का प्रकाश भर दिया।
निज आत्मा का त्याग से विकास कर लिया।।
कितने ही भव्य जीवों को आदर्श बनाया।
मुनि आर्यिका श्रावक बना शिवमार्ग बताया।।2।।
तुम भी दहेज देते समय ध्यान ये रखना।
कन्या के हाथ में धरम का ग्रंथ भी रखना।।
लाखों की सम्पत्ति से अधिक वह अमोल है।
मां रत्नमती जीवनी का यही मूल्य है।।3।।

मातृभक्ति

रचयित्री-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती[1]

यह भारत आज नहीं युग से, नारी से रहा न खाली है।
नारी के ही कारण इसकी, गौरव गरिमा बलशाली है।।
जहाँ ब्राह्मी और सुन्दरी की, माता यशस्वती-सुनन्दा है।
वहाँ मोहिनी माता ने पाया, मैना सा पूनम चन्दा है।।1।।

संतान मात की गोदी में, पलकर शैशव को प्राप्त करे।
विधि का विधान देखो यह भी, माता खुद उन्हें प्रणाम करे।।
इन अजब निराली बातों का, साक्षात् दर्श करवाती हूँ।
माँ रत्नमती जी का किंचित्, मैं जीवन चरित सुनाती हूँ।।2।।

तीर्थंकर अभिषव से पवित्र, साकेतपुरी इक नगरी है।
कण-कण पवित्र इस स्थल का, नहिं इस सम दूजी नगरी है।।
श्री भरतराज का एकछत्र, शासन फैला जब से जग में।
इस वसुन्धरा का भारत भू, यह नाम पड़ा तब से सच में।।3।।

षट्खंड वसुधा को जीत प्रभू ने, चक्रवर्ति पद प्राप्त किया।
पुनरपि भुजबलि श्री बाहुबली पर, चक्ररत्न को चला दिया।।
सब राज्य विभव को त्याग बाहुबलि, गिरि कैलाश पधारे थे।
तब भरत अयोध्यापति बनकर, कुण्ठित मन राज्य संभारे थे।।4।।

इस नगरि अयोध्या के मधि में, सीतापुर जिला निराला है।
महमूदाबाद ग्राम जहाँ पर, नभ से टूटा इक तारा है।।
भक्तों की भीड़ लगी रहती, मंदिर मेले रथयात्रा पर।
घंटे बाजों की ध्वनि प्रभु का, संदेश सुनाती है घर-घर।।5।।

मंदिर के ही निकटस्थ भवन, श्रेष्ठी सुखपाल रहा करते।
दाम्पत्य सुखों से पूर्ण तथा, श्रावक षट्कर्म सदा करते।।
द्वय पुत्र पुत्रिद्वय के संग में, परिवारिक आनंद बाँटा था।
निज के धार्मिक संस्कारों को, सब सन्तानों में डाला था।।6।।

राजदुलारी मोहिनी इन दो, कन्या रत्नों को पा करके।
पितुमात के हर्ष की वृद्धि हुई, इनका लालन-पालन करके।।
महिपालदास भगवानदास, इक महल के दो स्तंभ बने।
इनसे शोभित सुखपाल दास, होते मन में संतुष्ट घने।।7।।

राजदुलारी ने बाल्य अवस्था से, तरुणावस्था को प्राप्त किया।
व्यवहारिक रीतिरिवाजों ने, माता से उसको पृथक् किया।।

---

1. ब्र. कु. माधुरी के रूप में सन् 1980 में लिखी गई।

वह सास-ससुर के घर पहुँची, तब नवजीवन प्रारंभ किया।
वैवाहिक प्रथा पुरानी है, उसको इनने आरंभ किया।।8।।

मोहिनी सभी को मोह रही, दोनों भाई संग खेल रही।
सब लाड़प्यार में पली मोहिनी, माँ के मन को मोह रही।।
पर कोई पुत्री माता के संग, कितने दिन रह सकती है।
पुत्री पर का धन है निश्चित, वह तो पर की ही शक्ति है।।9।।

मोहिनी किशोरा को लख कर, माँ-बाप सोचते हैं मन में।
इस योग्य गुणों वाला वर हो, जिससे जोड़ी वरदान बने।।
वर की तलाश तो दूर रही, वर पक्ष तरफ से माँग हुई।
सुन्दर सुयोग्य वर को लखकर, मन की सब पूरी आश हुई।।10।।

बाराबंकी है जिला जहाँ, इक ग्राम टिकैतनगर शोभे।
जिनमंदिर के ही निकटस्थ भवन में, धनकुमार श्रेष्ठी रहते।।
सब पुत्र-पुत्रियों के संग में, आनन्द मग्न हो रमण करें।
इन सबमें छोटेलाल पुत्र के, संग मोहिनि संबंध करें।।11।।

यह बात जची सबके दिल में, बस शीघ्र कार्य प्रारंभ हुआ।
वर-वधू की राशि मिला करके, शुभ लग्न में यह संबंध हुआ।।
मोहिनि उस घर को छोड़ चली, जिसको निज मान रही अब तक।
बेटी जब तक अविवाहित है, घर से संबंध रहे तब तक।।12।।

फिर तो पति के ही चरणों में, उसका जीवन न्यौछावर है।
पति के ही घर को अपना कर, उसमें निज पर का भान करे।।
यह है रिश्ता नाता जग का, कब से चलता ही आया है।
इस बिन संसार और मुक्ति का, मार्ग नहीं बन पाया है।।13।।

दो वर्ष अनंतर मोहिनि ने, इक कन्या रत्न प्रदान किया।
जो मैना से बन ज्ञानमती, सारे जग का कल्याण किया।।
जन-जन को ज्ञानदान देकर, निज सम्यग्ज्ञान प्रचार करें।
जिनकी वाणी रस अमृत से, नर निर्झर अमृत प्राप्त करें।।14।।

मैना के दीक्षित जीवन से, इनके मन में वैराग्य हुआ।
सामान्य संयमित जीवन कर, दो प्रतिमा के व्रत ग्रहण किया।।
निज व्रत को पालन करके भी, पति आज्ञा में अग्रणी रहीं।
कर्तव्यपरायण हो करके, सब पुत्रपुत्रि को पाल रहीं।।15।।

कुछ काल अनंतर ही इनके, घर में इक घटना-चक्र घटा।
इक पुत्री मनोवती ने भी, मैना के पथ पर कदम रखा।।

सब भाई-बंधु और मातपिता, समझा-समझाकर हार गए।
उस अडिग प्रतिज्ञा के समक्ष, सबने ही मस्तक झुका दिए।।16।।

माता मोहिनी के ऊपर यह, क्या वज्राघात प्रहार हुआ।
वे समझ नहीं पा रहीं कि यह, किस कालचक्र का वार हुआ।।
कुछ क्षण विचार करतीं वे भी, संसार पंक से निकलूँ मैं।
पर पुनः नारिजीवन के कर्तव्यों, का ध्यान करें मन में।।17।।

वह मनोवती बन अभयमती, जग अभयदान का पात्र बना।
गुरु ज्ञानमती से ज्ञान ग्रहण कर, जीवन का कल्याण किया।।
मोहिनी गृहस्थ में रह करके, षट्कर्मों का पालन करतीं।
नित धर्मनीति से चार पुत्र, और पुत्रियों का लालन करतीं।।18।।

ज्यों समय बीतता जाता है, पितुमात सभी घबड़ाते हैं।
कोई पुत्र या पुत्री न जाए चला, बस यही भावना भाते हैं।।
पर क्या कोई नर है जग में, विधि का विधान जो टाल सके।
अनहोनी भी होके रहती, नहिं होनहार कोई टाल सके।।19।।

जैसे-तैसे कर सहन किया, तब पिता ने इन आघातों को।
पच्चीस दिसंबर सन् उनहत्तर, चले स्वर्ग तज प्राणों को।।
सब नरनारी के बीच समाधी-मरण हुआ बहुशांती से।
जिनमुनि का आशीर्वाद मिला, नवकार मंत्र पढ़ते-पढ़ते।।20।।

उस दिन से माँ के जीवन में, 'माधुरी' आ गया परिवर्तन।
इस जग में अपना कौन बचा, जिसमें करती मैं अपनापन।।
पर पुत्रों की विक्षिप्त दशा को, देख हृदय कुछ द्रवित हुआ।
कुछ दिन गृह आश्रम में रहकर, कामिनी पुत्रि का ब्याह किया।।21।।

माधुरी और त्रिशला इन दो, पुत्री का और सहारा था।
अविवाहित बेटा था रविन्द्र, जो एकमात्र गृहतारा था।।
भादों दशलक्षण महापर्व, जो एक वर्ष में आता है।
अजमेर महानगरी में नर-नारी का लग रहा तांता है।।22।।

आचार्य धर्मसागर जी का, चउविध संघ वहाँ विराज रहा।
श्री ज्ञानमती माताजी के, उपदेशामृत का ठाठ वहाँ।।
कैलाशपुत्र निज परिकर सह, माँ को संग लेकर निकल पड़े।
मुनिसंघ दर्श के इच्छुक हो, आहारदान के भाव लिये।।23।।

दश दिवस वहाँ पर रह करके, चउविध दानों का लाभ लिया।
संघ साधू की परिचर्या कर, उपदेशामृत का पान किया।।

इक दिन कैलाशचन्द्र बोले, माँ अब घर को चलना चाहिए।
गृहकाज और व्यापार सभी की, देखभाल करना चाहिए।।24।।

माँ बोलीं तुम सब घर जाओ, थोड़े दिन मुझको रहने दो।
इन सबकी त्याग-तपस्या से, मुझको भी शिक्षा लेने दो।।
घबड़ाओ मत बेटा मैं तो, कुछ ही दिन में घर आऊँगी।
मेरा शारीरिक स्वास्थ कहाँ, जो दीक्षा मैं ले पाऊँगी।।25।।

मैं तो केवल इक बाला की, प्रतिभा शक्ती को देखूँगी।
इस अल्प आयु में केशलोंच, कैसे करती यह देखूँगी।।
माँ की इन बातों को सुनकर, बेटे को कुछ तो धैर्य बंधा।
बोले, माँ मैं कुछ ही दिन में, छोटे भाई को भेजूँगा।।26।।

दोनों छोटी बहनों को ले, कैलाश चल दिए थे घर को।
लेकिन इक संशय बार-बार, होता रहता उनके मन को।।
माँ कभी न सोचे यह मन में, मेरा इस जग में कौन रहा।
मैं भी माताजी बन जाऊँ, यह सांसारिक संबंध रहा।।27।।

कुछ दिवस बीतते ही देखो, यह कैसा हुआ धमाका था।
माँ मोहिनी भी दीक्षा लेंगी, यह आया घर संदेशा था।।
इस समाचार को सुन करके, मानो सबको मूर्च्छा आई।
यह अनहोनी कैसे होगी, यह कैसी अशुभ घड़ी आई।।28।।

कैलाश-प्रकाश-सुभाष सभी, तत्क्षण ही घर से निकल पड़े।
माँ की दीक्षा रुकवाने को, आचार्यश्री के चरण पड़े।।
क्या ऐसी भी दीक्षा होती, जिसमें न किसी की सम्मति हो।
किसकी हस्ती है जो मेरी, माँ को दीक्षा दे सकती हो।।29।।

आचार्यश्री पड़ गए धर्मसंकट में सोच करें मन में।
इक ओर मोहिनी खड़ी सुदृढ़, हाथों में श्रीफल ले करके।।
चतुराहारों का त्याग किया, जब तक दीक्षा नहिं पाऊँगी।
सांसारिक संबंध पुत्र-बहू, मैं वापस घर नहिं जाऊँगी।।30।।

सब पुत्र-पुत्रियाँ बिलख रहीं, माँ तुमने क्या सोचा मन में।
पितु का साया तो उठ ही गया, माँ भी निर्मम हो गयी हमसे।।
कुछ दिन तो चलो रहो घर में, हम सबको धैर्य बंधाओ तुम।
माँ-बाप बिना असहाय बालकों, को कुछ तो समझाओ तुम।।31।।

बेटियाँ सभी रोतीं कहतीं, माँ पीहर कैसे जाएंगे।
माँ बिन क्या घर अच्छा लगता, अरमान सभी खो जाएंगे।।

दामाद सभी रो रहे खड़े, माँ ऐसा अभी न सोचो तुम।
छोटे भाई भगवानदास, रो रहे बहन कुछ बोलो तुम।।32।।

सब कुटुंबियों का रुदन देख, अजमेर भी विह्वल हो उठता।
जन-जन की आँखों में अश्रू, यह दृश्य परम कारुणिक रहा।।
इक बार सभी के होठों से, यह शब्द अवश्य निकल जाता।
ऐसी दीक्षा मत होने दो, इनको दे दो इनकी माता।।33।।

लेकिन मोहिनी प्रतिज्ञा का, पालन करके दिखलाएगी।
मोहिनी आज निर्मोहिनी बन, गृहपिंजड़े से उड़ जाएगी।।
माँ को देखा जब निराहार, तो सबका ही दिल कांप गया।
लाखों प्रयत्न करके हारे, तब माँ के चरण प्रणाम किया।।34।।

माँ जैसी मरजी हो कर लो, आहार चलो तुम ग्रहण करो।
हम निराहार नहिं देख सकें, तुम क्यों शरीर कमजोर करो।।
देखो सुभाष बेहोश पड़ा, इस पर तो थोड़ा तरस करो।
सब पुत्र-पुत्रियों को खुद ही, क्यों दुख सागर में मग्न करो।।35।।

लेकिन माँ जैसे पत्थर की, नहिं एक अश्रु है आँखों में।
वैरागिन बन दीक्षा लेऊँ, इक यही आश है बस मन में।।
मगशिर वदी तीज तभी आई, यह आशा पूरी करने को।
मोहिनी बन गईं ''रत्नमती'', तब मोक्षलक्ष्मी वरने को।।36।।

कर रहीं ज्ञानमती केशलोंच, अपने सम उन्हें बनाने को।
लाखों जन समुदायों के मधि, जैनी चर्या समझाने को।।
परिजन-पुरजन सब खड़े हुए, आँखों से अश्रू बहा रहे।
नहिं बोल सके लेकिन कुछ भी, बस मौन सम्मती दिला रहे।।37।।

आचार्यश्री ने सोच-समझकर, एक बार पूछा फिर से।
मोहिनी तुम्हें तो मोह नहीं, किसी पुत्र-मित्र संबंधी से।।
तब उठीं मोहिनी हिम्मत से, चउसंघ की साक्षी ले करके।
सब जीवों से कर क्षमाभाव, मन में समता धारण करके।।38।।

फिर निश्चल होकर बैठ गईं, गुरुवर मुझको दीक्षा दीजे।
श्रीवीतराग के चरणों में, हो मति ऐसी शिक्षा दीजे।।
आर्यिका व्रतों को धारण कर, स्त्रीलिंग से मुक्ती पाऊँ।
बनकर निर्ग्रंथ तपश्चर्या कर, निज में ही मैं रम जाऊँ।।39।।

मुनिसंघ ने भी विमर्श करके, तब ''रत्नमती'' यह नाम दिया।
रत्नों की खान कहाती हैं, यह रत्नप्रसूता मात महा।।

चल दिए कुटुंबी सभी दुखित, मन माँ का आशीर्वाद लिए।
अब मात बन गई जगतमात, यह कह सब गृह प्रस्थान किए।।40।।

माधुरी यह दिल में सोच रही, मैं ही अब क्यों घर में जाऊँ।
आजीवन ब्रह्मचर्य लेकर, माँ की छाया में रह जाऊँ।।
नहिं रोक सके कोई बंधू, उसकी भी अटल प्रतिज्ञा को।
सब मान रहे इसको कोई, भव-भव में करी तपस्या हो।।41।।

यह दृश्य देख करके रवीन्द्र भी, सोचे तत्त्वव्यवस्था को।
स्त्रीपुत्रादि नहीं कोई, संग जाते जीव अकेला हो।।
कुछ दिन घर जाकर भाई के, संग रह सबको संतुष्ट किया।
दो वर्षों के पश्चात् धर्मसागराचार्य का दर्श किया।।42।।

श्रीफल ले करके हाथों में, जा गुरुवर चरण प्रणाम किया।
भवबंधन से मुक्ती हेतू, शुभ ब्रह्मचर्य व्रत प्राप्त किया।।
इस समाचार के मिलने पर, घर में भी हाहाकार हुआ।
भाई-भाभी सब रोते थे, मानो क्या वज्राघात हुआ।।43।।

यह दैव बड़ा निर्दयी बली, कैसा यह रंग दिखाता है।
छोटे-छोटे भाई बहनों को, हम सबसे छुड़वाता है।।
इस तरह सोचते सब भाई, सांसारिक भोग न रुचते हैं।
फिर भी गृहस्थ में रह करके, पूजादानादिक करते हैं।।44।।

श्री ज्ञानमती माता सदृश ही, रत्नमती आर्यिका बनीं।
मातापुत्री संबंध नहीं, रह गया धर्मनीति समझीं।।
कुछ दिन आचार्य संघ रह करके, धर्मसाधना करती थीं।
गुरु का आशीर्वाद पा करके, निज को धन्य समझती थीं।।45।।

आर्यिकासंघ मंगल विहार, दिल्ली की ओर करा जब ही।
माँ रत्नमती भी इस ही संघ में, ज्ञानमती के संग रहीं।।
दिल्ली महानगरी इन्द्रप्रस्थ, कहलाती है इस भूतल पर।
पच्चीस सौवें निर्वाणोत्सव की, धूम मच रही इस थल पर।।46।।

दिल्लीवासी के भाग्य जगे, माँ ज्ञानमती दर्शन करके।
निर्वाणोत्सव के अवसर पर, ऐसी विदुषी को पा करके।।
फिर क्या था इस सुन्दर सुवर्ण, अवसर पर चार चाँद लगते।
भारत के कोने-कोने से, कितने ही संत तभी चमके।।47।।

श्री धर्मसागराचार्य देशभूषण आचार्य पधारे थे।
मुनि विद्यानंद माँ ज्ञानमती, ये साधूजगत सितारे थे।।

इन गुरुओं के दर्शन कर करके, रत्नमती पुलकित होतीं।
कुछ दिवस बाद माँ ज्ञानमती संग, हस्तिनागपुर चल देतीं।।48।।

जहाँ जम्बूद्वीप विशाल तीर्थ, बन गया जगत में न्यारा है।
इसके मधि मेरु सुदर्शन गिरि, जिनवर अभिषव से प्यारा है।।
मेरू के सिद्ध जिनालय के, दर्शन-वंदन करती रहतीं।
शास्त्रिक पौराणिक बातों का, साक्षात् दर्श करती रहतीं।।49।।

ये रत्नमती माताजी के, जीवन की सब स्मृतियाँ हैं।
माँ ज्ञानमती और अभयमती, सब इनकी ही तो कृतियाँ हैं।।
गर बाँस नहीं होते तो नहिं, बज सकती थी बांसुरी कभी।
जग उऋण नहीं हो सकता है, उपकारों से ''माधुरी'' कभी।।50।।

इस जग में सूरज और चंदा का, वास प्रकाश रहे जब तक।
माता की दिगदिगन्तव्यापी, चहुँ ओर कीर्ति फैले तब तक।।
माँ रत्नमती के चरणों में, सुमनांजलि अर्पित करती हूँ।
मेरा प्रयास यह और फले, सर्वस्व समर्पण करती हूँ।।51।।

चतुर्थ अध्याय

अमृत-प्रवचन

इस चतुर्थ अध्याय में आपको पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी, आर्यिका श्री अभयमती माताजी के मंगल प्रवचनों को पढ़ने का अवसर प्राप्त होगा तथा ध्यान-साधना कैसे करें? इस विषय में मैंने भी थोड़ा सा विवेचन किया है जिसे पढ़कर आप सभी ध्यान करने की प्रक्रिया को सीख सकते हैं, सर्वप्रथम प्रस्तुत हैं पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा समय-समय पर किए गए अमृत प्रवचन –

प्रवचन नं. – 1

सम्यग्दर्शन की महिमा

भव्यात्माओं! आचार्यों ने कहा है–

न सम्यक्त्व समं किञ्चित्, त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयो श्रेयश्च मिथ्यात्व-समं नान्यत् तनु भृताम्।।

संसार में सम्यक्त्व के समान तीनों लोकों में और तीनों कालों में कोई हित करने वाला श्रेयस्कर, उत्तम, श्रेष्ठ नहीं है और मिथ्यात्व के समान प्राणियों के लिए संसार में कोई अकल्याणकारी, शत्रु, अहितकारी नहीं है। सम्यक्त्व को एक रत्न की उपमा दी है, सम्यक्त्व एक महान रत्न है, रत्नत्रय में प्रथम रत्न है। सम्यग्दर्शन के बिना किसी भी व्यक्ति ने आज तक मोक्ष को प्राप्त नहीं किया है और न आगे कर सकता है।

संसार के अनेक वैभव, अनेक अभ्युदय ऐसे हैं, जो सम्यक्त्व के प्रभाव से ही मिलते हैं। जैसे-चक्रवर्ती पद, नारायण आदि पद, तीर्थंकर पद, ये विशेष पद हैं जो सम्यक्त्व के प्रभाव से ही प्राप्त होते हैं। सौधर्म इन्द्र आदि पद भी सम्यक्त्व के प्रभाव से ही मिलते हैं। संसार में सम्यग्दर्शन सर्वश्रेष्ठ और महान है। हम और आप आज भाग्यशाली हैं, पुण्यशाली हैं जो कि पंचमकाल में जन्म लेकर भी भगवान की भक्ति करने के अधिकारी हैं, पात्र बने हुए हैं। हमें जैनधर्म मिला है, जैनकुल मिला है और उसमें भी भगवन्तों की भक्ति करने का उत्तम अवसर अर्थात् सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ है।

इस सम्यग्दर्शन की महिमा विशेषरूप से विद्वानों ने भी बतलाई है–

''मोक्ष महल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यक्त्वा न लहे सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।।''

यह मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी है, ज्ञान और चारित्र कितना भी हो जाये लेकिन सम्यग्दर्शन के बिना पुनः-पुनः यह जीव संसार में परिभ्रमण करता ही रहता है और सम्यग्दर्शन के प्रभाव से इस भव में भी मोक्ष प्राप्त कर सकता है। यद्यपि पंचमकाल में

यहाँ से मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते पर चतुर्थकाल में उसी भव से मोक्ष प्राप्त कर लेते थे और आज जहाँ चतुर्थकालवर्त रहा है, ऐसे विदेह क्षेत्रों में वहाँ से उसी भव से मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं या तीसरे भव से मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। सम्यग्दृष्टि नियम से देवगति को ही प्राप्त करता है। अगर स्त्री को सम्यग्दर्शन हो गया है तो नियम है कि वह देवगति और पुरुषवेद ही प्राप्त करेगी। सम्यग्दृष्टि स्त्रीपर्याय में, नपुंसक पर्याय में, तिर्यंचों में जन्म नहीं लेता, एकेन्द्रिय आदि तुच्छ योनियों में नहीं जाता, यह सम्यग्दृष्टि की अपनी एक विशेष महिमा है।

मान लीजिए किसी ने पहले नरक की आयु बांध ली, जैसे-राजा श्रेणिक ने नरक की आयु बांध ली, पुनः भगवान महावीर के समवसरण में पहुँचे। वहाँ पर भक्ति किया, सम्यग्दृष्टि बने तो उन्हें नरक तो जाना पड़ा लेकिन सातवें नरक की आयु घट-घट के पहले नरक की रह गई और आगे महामना राजा श्रेणिक तीर्थंकर बन जायेंगे। ऐसे ही किसी ने पहले तिर्यंचायु बांध ली, फिर सम्यग्दर्शन हुआ तो वह भोगभूमि का तिर्यंच होगा और यदि पहले मनुष्यायु बांध ली फिर सम्यग्दृष्टि बना तो वह भोगभूमि का मनुष्य होगा, कर्मभूमि का नहीं, ऐसा नियम है और आयु नहीं बांधी है तो सम्यग्दर्शन होने पर नियम से वह देवयोनि को ही प्राप्त करेगा। सम्यग्दर्शन की महिमा के बारे में एक बहुत ही सुन्दर उदाहरण मैं आपको बताती हूँ–

भगवान ऋषभदेव जब दशवें भव पूर्व राजा महाबल की पर्याय में थे, उस समय की घटना है। विदेह क्षेत्र में विजयार्ध पर्वत पर अलका नाम की नगरी में विद्याधर राजा महाबल राज्य करते थे। उनके चार मंत्री थे– शतमति, महामति, संभिन्नमति और स्वयंबुद्ध। चार मंत्रियों में तीन मंत्री मिथ्यादृष्टि थे। यद्यपि विदेह क्षेत्र का यह नियम है कि वहाँ पर 'द्रव्य' से मिथ्यात्व नहीं है, 'भाव' से मिथ्यात्व है। द्रव्य से मिथ्यात्व यानि पाखण्ड वेषधारी साधु नहीं हैं और न अनेक प्रकार के देव-देवियों के मंदिर हैं।

उन चारों मंत्रियों में तीन मंत्री भावों से मिथ्यादृष्टि थे और स्वयंबुद्ध मंत्री जैन, सम्यग्दृष्टि, स्याद्वादनय का अनुसरण करने वाला, अनेकांत दृष्टि वाला था। एक दिन राजा महाबल का जन्मदिन आया। इसे वर्षगांठ भी कहते हैं। उस दिन राज्य में खूब उत्सव मनाया गया। राजमहल में, राजदरबार में भी खूब उत्सव मनाया गया। सारे नगर में खूब ध्वजाएँ लहराईं, तोरण बांधे गए, वन्दनवार सजाए गए और भी अनेक प्रकार से लोगों ने उत्सव किए पुनः राजसभा में राजसिंहासन पर राजा आरूढ़ थे तो मंत्रियों ने पूर्वजों का बखान करना शुरू किया। आपके पूर्वज ऐसे थे, ऐसे थे और धर्म चर्चाएँ और धर्मगोष्ठी भी की। इसी बीच पहले मंत्री ने कहा– राजन्! परलोक नाम की कोई चीज है ही नहीं। न ईश्वर है, न परलोक है, न स्वर्ग नरक है, कुछ नहीं सब कल्पनाएँ हैं। केवल चारभूतों से या पंचभूतों से समझ लीजिए। पृथ्वी, जल, अग्नि,

वायु मिली, कोई आकाश तत्व कहते हैं तो पांचभूत मानते हैं इन पंचभूतों से शरीर बना है जो कि नष्ट हो जाएगा। अतः खूब खाओ-पिओ-मौज करो। परलोक के लिए यह धर्म- अनुष्ठान आदि सब बेकार है, इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। कहते हैं परलोक की सिद्धि के लिए उपवास करो, दीक्षा लेओ, तपश्चरण करो, लेकिन जब परलोक नाम की कोई चीज ही नहीं है तो बिना कारण शरीर को कष्ट देने से क्या फायदा? ऐसा पहले मंत्री ने अपना मत रखा।

दूसरे मंत्री ने कहा–सब चीज क्षणभुंगुर है, क्षण-क्षण में नष्ट हो रही है। तीसरे मंत्री ने कहा–सब शून्य है, शून्य है, कुछ नहीं, सब कल्पना है, इन्द्रजाल का खेल है, कुछ भी नहीं है।

स्वयंबुद्ध मंत्री इन तीनों मंत्री की बात सुनकर चुप न बैठ सका। उसने अपने स्याद्वाद के बल से अनेकांत स्वरूप जैनधर्म का अच्छी तरह से प्रतिपादन किया। उसने कहा– आत्मा नित्य भी है और अनित्य भी। आत्मा द्रव्य की अपेक्षा नित्य है और पर्याय की अपेक्षा अनित्य है। आत्मा अजर, अमर है, शाश्वत है। अनादिकाल से वही आत्मा चतुर्गति में भ्रमण कर रहा है आदि। इस प्रकार उसने सच्चे धर्म का, अहिंसामयी परमोधर्म का समर्थन किया और उन मंत्रियों को चुप कर दिया।

राजा महाबल स्वयंबुद्ध मंत्री की बात को सुनते हुए मुस्कराते ही रहे। उन्होंने अपना कोई निर्णय नहीं दिया। एक दिन क्या होता है। स्वयंबुद्ध मंत्री सुमेरु पर्वत की वंदना के लिए गए हुए थे। चूँकि वे विद्याधर थे, अतः विद्या के बल से कहीं भी आकाश मार्ग से विचरण करते रहते थे। उन्होंने सुदर्शन मेरु की वंदना करते हुए भद्रसालवन में चार मंदिरों की वंदना की। प्रत्येक मंदिरों में 108-108 जिनप्रतिमाओं के दर्शन किए। फिर नन्दनवन में चार जिनमंदिरों की वंदना की पुनः सौमनसवन में चार जिनमंदिरों की वंदना की। सौमनस वन में एक तरफ देखते हैं शिला पर दो महामुनि विराजमान हैं, उनके निकट जाकर उन्हें नमस्कार किया, उनकी प्रदक्षिणा दी, उनकी भक्ति की। वे महामुनि चारण ऋद्धिधारी थे, उनके नाम थे–आदित्यगति और अरिंजय। वे महामुनि विदेहक्षेत्र में विराजमान भगवान सीमंधर और युगमंधर के समवसरण में उनका दर्शन करने आये थे।

स्वयंबुद्ध मंत्री ने उन महामुनियों की भक्ति करते हुए उनसे प्रश्न किया–भगवन्! हमारा राजा महाबल भव्य है कि अभव्य? वह निकट भविष्य में मोक्ष को प्राप्त करेगा या नहीं। वह जैनधर्म को स्वीकारेगा या नहीं? आदि प्रश्न किए। देखिए! हितैषी इसे कहते हैं जो अपने मित्रों के लिए भी धर्म के बारे में सोचें, न केवल अपनी आत्मा के बारे में। आज क्या है? लोग गुरु के पास जाते हैं, धन की प्राप्ति, पुत्र की प्राप्ति आदि अनेक सांसारिक सुखों की इच्छा रखते हुए अनेक भावनाएँ, कामनाएँ लेकर आते हैं लेकिन ऐसे

लोग विरले ही हैं, जो आते ही गुरु के पास प्रश्न करें कि गुरुदेव! 'आत्मने किम् हितम्'- अर्थात् आत्मा का हित किसमें है? आत्मा के लिए हितकर क्या है, ऐसा बहुत कम पूछने वाले होते हैं।

स्वयंबुद्ध मंत्री ने अपनी आत्मा के लिए और राजा के लिए पूछा। तब मुनिराज ने अपने दिव्य अवधिज्ञान से और भगवान के समवसरण में जो सुनकर आये थे, उसके आधार से प्रसन्नमना होकर मुस्कराते हुए कहा–हे मंत्रीवर! हे भव्योत्तम! तुम्हारा राजा भव्य है, आज से दशवें भव में तीर्थंकर ऋषभदेव होगा और मोक्ष को प्राप्त करेगा। इस भव में भी तुम्हारी बात स्वीकारेगा। आज उसे दो स्वप्न हुए हैं और वे तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठे हुए सोच रहे हैं। कब स्वयंबुद्ध मंत्री आवे और मैं उससे अपने प्रश्नों का उत्तर समझूँ। तुम जाकर उनके प्रश्नों का फल बताकर उन्हें सम्बोधित करो। राजा प्रसन्नमना होकर तुम्हारी बात को धारण करेंगे और धर्म को स्वीकारेंगे। मंत्री बहुत ही प्रसन्नमना,गद्गद होकर पुनः पुनः गुरु को नमस्कार करके उनके चरणों का स्पर्श करके अपने मस्तक को पवित्र करता हुआ वहाँ से चला आया और सीधे राजमहल में पहुँच गया। राजा उसकी प्रतीक्षा में बैठे हुए थे। मंत्री ने कुशल समाचार पूछकर पहले ही बता दिया कि आज आपने दो स्वप्न देखे हैं। राजा ने कहा–हाँ, मैंने पहले स्वप्न में देखा है कि तीनों मंत्रियों ने मुझे जबरदस्ती कीचड़ में डाल दिया है और तुमने उनकी भर्त्सना करके मुझे कीचड़ से निकाला है और सिंहासन पर बिठाकर मेरा राज्याभिषेक करके मुझे बहुत सम्मानित किया है और दूसरा स्वप्न मैंने देखा है कि दीपक की लौ क्षीण हो रही है।

तब मंत्री ने कहा–राजन्! आज मुझे सुमेरु पर्वत की वंदना करते समय सौमनस वन में दो महामुनि के दर्शन हुए। मैंने उनसे आपके बारे में पूछा था तो उन्होंने बताया है। पहले प्रश्न का समाधान तो स्पष्ट है कि तीनों मंत्री ने जो आपको उपदेश दिया, वह आपके लिए हितकर नहीं है और जो मैंने कहा वह सत्य कहा है, भगवान की वाणी का मैंने प्रतिपादन किया है। मैंने अपना निजी कुछ नहीं कहा। मैंने आपके हित के लिए स्याद्वादनय से बताया कि आत्मा कथंचित् नित्य है, कथंचित् अनित्य है। संसार कथंचित् नित्य है, कथंचित् अनित्य है आदि।

अब दूसरा स्वप्न जो आपने देखा है उसका फल यह है कि आपकी आयु मात्र एक महीने की रह गई है, ऐसा महामुनि ने मुझे बताया है। राजा को कोई दुःख नहीं हुआ, उसने प्रसन्नमना होकर गुरु का और स्वयंबुद्ध मंत्री का उपकार माना। राजा ने कहा– तुमने मुझे सचेत कर मेरा बड़ा उपकार किया है, अब मुझे क्या करना है, यह देखते हैं। राजा ने अपने पुत्र को राज्य देकर विजयार्ध पर्वत पर जाकर सिद्धकूट जिनमंदिर में आठ दिन तक आष्टान्हिक महापर्व की पूजा करके 22 दिन की सल्लेखना ले ली और स्वयंबुद्ध मंत्री को निर्यापकाचार्य बनाकर कहा कि आप मुझे बराबर तत्त्व ज्ञान

का उपदेश देते रहेंगे। आत्मा भिन्न है शरीर भिन्न है, आखिर इस शरीर को एक दिन तो छोड़ना ही है। खुशी-खुशी, धैर्यपूर्वक, प्रसन्नमना होकर भगवान का नाम स्मरण करते हुए शरीर को छोड़ेंगे तो निश्चित ही देवपद मिलेगा और हाहाकार करके, विलाप करके, दुखी होकर शरीर को छोड़ेंगे तो दुर्गति में जाना पड़ेगा। 'आर्तध्यान' से सेठ का जीव मरकर मेढ़क हो गया। आर्तध्यान से धन के लोभ में मरकर जीव साँप हो जाते हैं, रौद्रध्यान से मरकर नरक चले जाते हैं आदि।

राजा महाबल 22 दिन की सल्लेखना से शरीर का त्याग करके दूसरे स्वर्ग में ललितांग नाम के देव हो गए। वहाँ की आयु पूरी करके, दिव्य वैभव को भोग करके, वहाँ से च्युत होकर राजा वज्रजंघ हुए। पुनः राजा वज्रजंघ आहारदान के प्रभाव से मरकर भोगभूमि में आर्य हुए। भोगभूमि में जाने वाले मनुष्य, स्त्री, पुरुष, तिर्यंच कोई भी हो, युगलिया नियम से मरकर एक देवयोनि को ही प्राप्त करेंगे। स्वर्ग में अधिकतम पहला स्वर्ग या दूसरा स्वर्ग। अथवा सम्यग्दर्शन नहीं है तो भवनत्रिक में भवनवासी, व्यंतरवासी, ज्योतिर्वासी कोई भी देव हो जायेंगे। भोगभूमिज मर करके न तो मनुष्य होंगे, न तिर्यंच, न नरक में जायेंगे। पुनः वे राजा महाबल के जीव भोगभूमि से मरकर दूसरे स्वर्ग में श्रीप्रभ विमान में श्रीधर नाम के देव हो गए। एक दिन उन्हें अवधिज्ञान से ज्ञात हुआ कि प्रीतिंकर महामुनि को केवलज्ञान प्रगट हुआ है, उनकी गंधकुटी की रचना हुई है, उनकी दिव्यध्वनि खिर रही है, वहाँ असंख्यातों भव्यप्राणी उनका उपदेश सुन रहे हैं।

गंधकुटी में भी समवसरण जैसी व्यवस्था रहती है लेकिन तीर्थंकरों के समवसरण जैसा वैभव वहाँ नहीं रहता, कुछ कम रहता है। श्रीधर देव वहाँ आ गए और प्रीतिंकर केवली के मुख से बहुत कुछ सुनकर प्रसन्नमना हुए। उन्होंने प्रश्न किया कि भगवन्! आज से पाँचवें भव पूर्व महाबल की पर्याय में मेरे चार मंत्री थे। शतमति, महामति, संभिन्नमति और आप थे स्वयंबुद्ध मंत्री। आपने तो दीक्षा लेकर स्वर्गपद पाया पुनः मनुष्य बने, दीक्षा लेकर केवली हो गए। आपने तीसरे भव में ही अपने संसार का अंत कर लिया। यह तो निश्चित ही है केवली भगवान मोक्ष को प्राप्त करेंगे। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि मेरे तीन मंत्री कहाँ है? भगवान केवली ने बताया कि तीन मंत्री में से एक का जीव तो नरक चला गया है और दो मंत्री के जीव निगोद चले गए हैं।

तीसरे नरक तक तो जाकर देव सम्बोधित कर सकते हैं, उसके आगे नहीं। निगोद पर्याय में तो सम्बोधित भी नहीं कर सकते। निगोद पर्याय क्या है? छहढाला में कहा है–

एक श्वास में अठ दस बार, जन्म्यो मर्‌यो भर्‌यो दुख भार।

जहाँ एक श्वास में 18 बार जन्म मरण करते हैं, ऐसी तुच्छ योनि निगोद है, एकेन्द्रिय

पर्याय है। अब वह श्रीधरदेव विचार करते हैं कि राजा महाबल की पर्याय में मैंने जैनधर्म को स्वीकारा, तो आज मैं देव की पर्याय में हूँ और स्वयंबुद्ध मंत्री जिसने मुझे संबोधा था, वह आज केवली बन गए हैं। लेकिन देखो! मिथ्यात्व के निमित्त से दो मंत्री निगोद चले गए, जहाँ उनको हम तो क्या, केवली भगवान भी सम्बोधित नहीं कर सकते। तीन लोक में तीन काल में कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो उन्हें सम्बोधित करके उस योनि से निकाल सके। एकेन्द्रिय योनि में कान नहीं है केवल शरीर है, काय है, श्वासोच्छ्वास और आयु ये चार प्राण हैं। जब वहाँ वचन नहीं, कान नहीं, मन नहीं तो उन्हें कौन सम्बोधित कर सकता है? एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, इन पर्यायों में कोई सम्बोधन किसी प्रकार से कोई नहीं कर सकता, जब उसका स्वयं का पाप क्षीण हो, मंद हो, तब भले ही वह जीव वहाँ से निकलकर मनुष्य योनि को प्राप्त कर सकता है। इसमें असंख्यातों वर्ष, अनन्तों भव, अनन्तकाल निकल जाते हैं।

श्रीधरदेव ने दूसरे नरक जाकर शतमति मंत्री के जीव को सम्बोधित किया, उसे सम्यग्दर्शन ग्रहण कराया और कहा–मंत्रिवर! राजा महाबल की पर्याय में तुम मेरे मंत्री थे, तुमने मुझे मिथ्यात्व का उपदेश दिया था, तुम मिथ्यादृष्टि थे। मिथ्यात्व के निमित्त से तुम इस नरक में आए हो। अब सम्यग्दर्शन को धारण करो तो यहाँ से निकलकर अपनी आत्मा का कल्याण कर सकते हो। उस शतमति मंत्री के जीव नारकी ने इसे स्वीकारा और स्वीकार करके, नरक की आयु को पूर्ण करके, नरक के दुखों को भोग करके पुष्करद्वीप के विदेह क्षेत्र में महीधर चक्रवर्ती का पुत्र जयसेन हुआ और जब उसका यौवन अवस्था में विवाह हो रहा था तो फिर श्रीधरदेव ने उसको जाकर सम्बोधा। अरे जयसेन! तुम नरक से आए हो, नरक के दुःखों को याद करो। अब इस विवाह के चक्कर में और गृहस्थी के चक्कर में पड़ करके, विषयभोगों में फंस करके फिर अपने मनुष्य भव के अमूल्य क्षणों को व्यर्थ में मत गंवाओ। उसने फिर इस बात को स्वीकारा और दीक्षा लेकर कालान्तर में स्वर्ग को प्राप्त किया।

देखो! संसार में मिथ्यात्व से बढ़कर कोई शत्रु नहीं है। मिथ्यात्व के कारण एक ने नरक पाया और दो ने निगोद। मिथ्यात्व क्या है? सम्यक्त्व क्या है? इसे भी जानना आवश्यक है।

सच्चे देव–अर्हंत देव–जिन्होंने चार घातिया कर्मों का नाश किया है और सिद्ध परमेष्ठी, जिन्होंने आठों कर्मों का नाश किया है, सिद्धालय में विराजमान हैं, ऐसे सच्चे देव, जिनकी मूर्तियाँ आज मंदिरों में विराजमान हैं। वीतराग छवि जिनकी है, ऐसे सच्चे देव, उनके द्वारा कथित सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु–निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधु, मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिका आदि इनको नमस्कार करना, इनकी भक्ति करना और शास्त्र में कथित जो सम्यग्दर्शन के आठ अंग हैं, उन अष्ट अंगों को धारण करना, पालन

करना, उनके अनुसार प्रवृत्ति करना, छः अनायतन का, तीन मूढ़ता का त्याग करना, आठ मदों को छोड़ना, 25 मल दोष रहित सम्यग्दर्शन को धारण करना यह सम्यग्दर्शन है। रत्नकरण्डश्रावकाचार में आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने लिखा है–

भयाशास्नेहलोभाच्च, कुदेवागमलिङ्गिनाम्।
प्रणामं विनयं चैव, न कुर्युः शुद्धदृष्टयः।।

भय से, आशा से–किसी प्रकार की धन आदि की आशा से, लोभ से, स्नेह से–कोई स्नेही कह रहे हैं इनको हाथ जोड़ लो आदि भय, आशा, स्नेह और लोभ किसी भी निमित्त से कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु को नमन नहीं करना, प्रणाम नहीं करना, उनकी विनय नहीं करना आदि, यही मिथ्यात्व का त्याग है और सच्चे देव, शास्त्र, गुरु को नमन करना, उनकी भक्ति आदि करना, उनकी आज्ञा का पालन आदि करना यही सम्यग्दर्शन है। ऐसे इसकी व्याख्या अनेक प्रकार से की है।

जीवादि सात तत्त्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। समन्तभद्रस्वामी का यही कहना है–

न सम्यक्त्व समं किंचित्.....। सम्यक्त्व के समान तीनों लोकों और तीनों कालों में कोई श्रेयस्कर, हितकर, कल्याणकर वस्तु नहीं है और मिथ्यात्व के समान कोई शत्रु-अहितकर नहीं है। मिथ्यात्व का त्याग करो, सम्यक्त्व को ग्रहण करो, धारण करो। यह सम्यग्दर्शन ही आज इस पंचमकाल में सर्वश्रेष्ठ रत्न है और नियम से देवपद को और परम्परा से मोक्ष को प्राप्त कराएगा। संसार में जितने भी सुख है उनमें कोई भी ऐसा सुख नहीं है जो सम्यग्दर्शन के प्रसाद से न प्राप्त हो सके। आचार्यों ने स्वयं कहा है–

'धर्माराम् तरूणाम् फलानि सर्वेन्द्रयार्थ सौख्यानि।' जितने भी सांसारिक वैभव हैं, पंचेन्द्रिय के वैभव हैं, सभी सम्यग्दर्शन के प्रसाद से मिलते हैं। 'भक्ति' भी सम्यग्दर्शन है। समयसार में श्री जयसेन स्वामी ने तो स्पष्ट कहा है–जिनेन्द्र भगवान की भक्ति, पंचपरमेष्ठी की भक्ति यही सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दृष्टि सही मायने में जो सुन्दर भक्ति, अतिशयपूर्ण भक्ति, विशेष भक्ति कर सकता है, मिथ्यादृष्टि वह भक्ति नहीं कर सकता है। आप सम्यग्दृष्टि हैं भगवान की प्रतिदिन पूजा करें, अभिषेक करें, उनकी भक्ति करते हुए संसार के भी अनेक अभ्युदयों को प्राप्त करें। धन, सुख, सम्पत्ति सब कुछ सम्यग्दर्शन के प्रसाद से मिल सकता है। कोई ऐसी वस्तु संसार में है ही नहीं, जो सम्यग्दृष्टि को न मिल सके। आप स्वयं चिंतन करें, जब चक्रवर्ती पद सम्यग्दृष्टि को मिल सकता है, तब सौधर्म इन्द्र का पद, लौकान्तिक पद आदि तो मिल ही जायेंगे।

चौबीस तीर्थंकर की भक्ति और उनकी पूजा-भुक्ति मुक्ति दातार है। भुक्ति यानि संसार के वैभव, संसार के सुख और मुक्ति यानि मोक्ष। तो जब तक हम मोक्ष को प्राप्त नहीं कर

सकते, तब तक संसार के सभी सुख-वैभव सम्यग्दर्शन के प्रसाद से मिल सकते हैं, मिलते हैं और मिलेंगे। एक भक्त भगवान से क्या कहता है–

जिनधर्म विनिर्मुक्तो, मा भवच्चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिनधर्मानुवासितः।।

हे भगवन्! मैं इस जिनधर्म को छोड़कर, आपकी भक्ति को छोड़कर चक्रवर्ती भी नहीं होना चाहता हूँ। चूँकि सुभौम चक्रवर्ती ने णमोकार मंत्र का अपमान किया तो वह नरक चला गया। भले ही मैं किसी का दास हो जाऊँ, दरिद्र अवस्था में ही क्यों न रहूँ लेकिन सम्यग्दर्शनरूपी रत्न मेरे पास है तो मैं समझता हूँ कि मैं सबसे बड़ा धनवान हूँ। मैंने पूजन की पंक्तियों में कई जगह संजोया है–

सम्यक्त्व रत्न पाय मैं निहाल हो गया। बस तीन रत्न से ही मालामाल हो गया।

अर्थात् हे भगवन्! मैंने सम्यक्त्वरत्न को पाया है अतः मेरा जीवन निहाल हो गया है। इस प्रकार की भक्ति करते हुए मनुष्य जीवन को सफल करना चाहिए।

प्रवचन नं.–2

जनवाणी नहीं जिनवाणी के अनुरूप बोलो

''नमः ऋषभदेवाय, धर्मतीर्थ प्रवर्तिने।
सर्वाः विद्या-कला यस्मादाविर्भूता महीतले।।''

महानुभावों! धर्म शाश्वत है धर्म की व्याख्या तो यही है कि **'उत्तमे सुखे धरति इति धर्मः'** अथवा **'शुभधामनि धातारं वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम्'** शुभ धाम अर्थात् जो उत्तम सुख में पहुँचाये, उसी का नाम धर्म है। **'कर्मारातीन् जयति इति जिनः'** कर्म शत्रुओं को जीतने वाले जिन हैं **'जिनो देवता अस्य इति जैनः'** और जिन देवता हैं जिनके अर्थात् जो जिनेन्द्रदेव की उपासना करने वाले हैं, वे जैन हैं। इसलिए जैनधर्म शाश्वत धर्म है। जितेन्द्रिय धर्म शमदम आसनस्वरूप धर्म है जहाँ शम यानि कषायों की मन्दता और दम यानि इन्द्रियों का निग्रह ये मुख्यरूप से पाये जाते हैं। प्रकारान्तर से यही अर्थ हुआ कि जैनधर्म शाश्वत है, अनादि निधनहै। तीर्थंकर परम्परा भी शाश्वत है, अनादिनिधन है। तीर्थंकर किसे कहते हैं? जो धर्म तीर्थ को चलावें अर्थात् प्रवर्तन करें, वही तीर्थंकर कहलाते हैं।

अब विषय यह आता है कि इस जैन शासन में वक्ता और श्रोता कैसा होना चाहिए? वक्ता वही उत्तम माने गये हैं जो मोक्षमार्ग के अनुकूल, आगम के अनुकूल, गुरुओं के अनुकूल वचन बोलें। प्रवचन में भय से, स्नेह से, मोह से या किसी प्रकार से जनता के अनुकूल न बोलकर आगम के अनुकूल बोलें, क्योंकि उनके ये वचन जिनवाणी के अंश होने चाहिए न कि जनवाणी के। इस बात को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए। मैं कई बार विद्वानों के सामने कहा करती हूँ कि आप जो भी लिखते हैं, कोई

भी लेख या कोई भी ग्रंथ लिखें, उसमें जो भी लिखें सावधानी से लिखें कि ये आगम के अनुकूल है कि नहीं, किसी न किसी आगम का आधार लेकर ही लिखना चाहिए और साथ ही यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि आप अपने लेख में अन्य किसी ग्रंथों का आधार लेते हैं, तो उसमें नीचे उसका टिप्पण जरूर दे दें कि अमुक ग्रंथ से, अमुक पृष्ठ से मैंने यह विषय लिया है। यह अवश्य ईमानदारी के साथ लिख देना चाहिए अन्यथा बहुत अर्थ का अनर्थ हुआ देखा जा रहा है।

'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा' पुस्तक आप देखें, उसके प्रथम भाग में ही भगवान महावीर का जीवन दर्शन लिखा गया है। जब मैं इसे पढ़ती हूँ तो आश्चर्य होता है। भगवान के चातुर्मास, उनके ऊपर अनेक प्रकार के पग-पग पर उपद्रव–उपसर्ग, कहीं बालक उन पर धूल फेंक रहे हैं, कहीं कंकड़ फेक रहे हैं, कहीं पत्थर फेंक रहे हैं आदि-आदि। कहीं अग्नि से झुलस जाना आदि अनेक बातें ऐसी हैं, जो दिगम्बर जैन ग्रंथों से, दिगम्बर जैन परम्परा से सर्वथा विरुद्ध है। दिगम्बर जैन परम्परा में तीर्थंकर महावीर पर एक बार ही उज्जयिनी में शमशान भूमि में रुद्र के द्वारा उपसर्ग हुआ था, बार-बार उपसर्ग नहीं हुआ है। तीर्थंकर जैसे महापुरुष जहाँ कदम रखें, वहाँ शत्रु भी परस्पर में प्रेम भाव को, मैत्रीभाव को प्राप्त हो जाते हैं। पशु भी आपस में वैरभाव को छोड़ करके प्रीति का अनुसरण करने लगते हैं। तो ऐसे तीर्थंकर भगवन्तों के ऊपर उपसर्ग हो जाना, भगवान पार्श्वनाथ के ऊपर शंबर ज्योतिषी के द्वारा उपसर्ग हो जाना आदि ये हुण्डावसर्पिणी काल का दोष है। अगर उस ग्रंथ में उन विद्वान ने श्वेताम्बर ग्रंथों के नाम के उद्धरण दे दिए होते तो अच्छा रहता, लोग भ्रम में न पड़ते। वैशाली को भगवान महावीर की जन्मभूमि मानना, गणतंत्र की व्यवस्था मानना, भगवान महावीर को लिच्छविवंश परम्परा वाले मानना आदि ये सब दिगम्बर परम्परा में हैं ही नहीं। दिगम्बर जैन परम्परा में भगवान महावीर का वंश नाथवंश था। राजा चेटक का सोमवंश आया है। महावीर देशना ग्रंथ में मैंने इसके बहुत से प्रमाण दिए हैं। 'कुण्डलपुर अभिनंदन' ग्रंथ में भी ये सब छप चुके हैं।

एक बार एक विद्वान ने अनेक पत्रों में लेख छाप दिया कि भगवान ऋषभदेव की दूसरी पत्नी सुनन्दा विधवा थी। प्रश्न उठा–क्या बाहुबली विधवा की संतान थे? सन् 1993-94 में इस पर बहुत ही संघर्ष हुए। श्रवणबेलगोल में भट्टारक जी ने भी इस बात का विरोध किया। साहू अशोक जी ने भी इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त की और उन पत्रकार अजित प्रसाद-लखनऊ के पास समाचार गया, मैंने भी उन्हें समझाने का प्रयास किया कि ऐसे लेख मत छापें। वह श्वेताम्बर ग्रंथ से उद्धृत किया गया था, जिसे उन्होंने दिखाया जिसमें लिखा था कि सुनन्दा भोगभूमियाँ की युगलिया थी, उसके पति के ऊपर ताड़फल आदि गिरकर मृत्यु हुई, तब वह रो रही थी। लोगों ने उसे लाकर महाराजा नाभिराज के पास उपस्थित किया। महाराजा नाभिराज ने अपने पुत्र ऋषभदेव से उसका विवाह कर दिया।

ऐसी अप्रासंगिक बातें दिगम्बर जैन परम्परा से मेल नहीं खाती हैं। दिगम्बर परम्परा में तो लिखा हुआ है कि उत्तम कुल के कच्छ और महाकच्छ की दोनों बहनें यशस्वती और सुनन्दा कुमारिकायें थीं, जिनका इन्द्र की अनुमति से महाराजा नाभिराय ने ऋषभदेव के साथ विवाह किया था। श्वेताम्बर ग्रंथ में तो यह भी लिखा है कि ब्राह्मी, सुन्दरी से भरत और बाहुबली का विवाह हुआ। कर्मभूमि में सगे भाई-बहन का विवाह होना ऐसी व्यवस्था नहीं बनती है। ब्राह्मी-सुन्दरी दोनों ने ही विवाह न करके भगवान ऋषभदेव के केवलज्ञान होने के बाद दीक्षा ले ली और ब्राह्मी ने गणिनी पद को प्राप्त किया यानि आर्यिकाओं में प्रधान हुई। अतः दिगम्बर जैन परम्परा के अनुसार ही विद्वानों को बोलना चाहिए, लिखना चाहिए। अगर कदाचित् कहीं से देखकर कुछ कहते और लिखते भी हैं तो उसी जगह या नीचे उसमें टिप्पण दे दें। एक बालिका ने भगवान ऋषभदेव पर एक ग्रंथ लिखा, उसमें उसने लिख दिया कि भगवान ऋषभदेव जंगल में पागल के समान विचर रहे थे, बाल बिखरे हुए थे, वहाँ पर दावानल अग्नि भड़की, भगवान उसमें भस्मसात् हो गए अर्थात् जलकर भस्म हो गये। एक सज्जन मेरे पास वह पुस्तक लेकर आए और बोले इसमें क्या लिखा हुआ है? जब उस बालिका से कहा गया, तो उसने कहा कि ऐसा मेरे भागवत ग्रंथ में लिखा है। उसने प्रमाण दिखा दिया। मैंने कहा– तुमने इसमें नीचे अगर टिप्पण दे दिया होता, तो यह विरोध का विषय नहीं बनता।

दिगम्बर जैन परम्परा में तो भगवान तीर्थंकर केवलज्ञान को प्राप्त करके दिव्य समवसरण में विराजमान होते हैं, उनका श्रीविहार होता है। उनके चरण के नीचे देवगण स्वर्णमयी कमलों की रचना करते हैं। अनंतर जब निर्वाण गमन होता है तब देव आकर उनकी पूजा करते हैं, उनके शरीर का संस्कार करते हैं। केवली अवस्था में उनका दिव्य परमौदारिक शरीर हो जाता है। तो ऐसे अग्नि में जलकर भस्म होना आदि तीर्थंकरों के लिए संभव ही नहीं है। विद्वानों के लिए ऐसे बहुत से विषय विचारणीय हैं। जो विद्वान् समाज में प्रवचन करते हैं, पुस्तक, लेख वगैरह लिखते हैं, उनको बहुत ही सावधानी से बोलना चाहिए और अपनी कलम चलानी चाहिए। ब्यावर में सन् 1958 में पं. श्री पन्नालाल जी सोनी कहा करते थे कि अगर मैं एक शब्द आगम के प्रतिकूल बोल दूँगा या लिख दूँगा तो मुझे निगोद में जाना पड़ेगा, मुझे निगोद से बहुत डर लगता है। तो ऐसे ही पापभीरू होना चाहिए। मैंने देखा है धवला आदि ग्रंथों में जहाँ दो मत आए हैं, वहाँ पर श्री वीरसेन स्वामी धवला टीकाकार ने यह लिख दिया कि जब तक हमारे सामने केवली, श्रुतकेवली नहीं हैं, हम इसका निर्णय नहीं कर सकते कि कौन सा मत सत्य है? उस समय हमारा कर्तव्य है कि हम दोनों मत को प्रामाणीक मानें। अब यह प्रश्न उठता है कि दोनों मत में से सही तो कोई एक ही होगा, तो हमारे पास इसका निर्णय करने का कोई साधन नहीं है। उदाहरण के लिए-जैसे

देवियों की आयु के बारे में मूलाचार में दो मत हैं तो उसमें टीकाकार ने यही लिख दिया कि हमारे पास इसका निर्णय करने का वर्तमान में कोई साधन नहीं है। केवली और श्रुतकेवली आज नहीं हैं अतः हम निर्णय नहीं कर सकते, हमारे लिए दोनों मत प्रमाण हैं। ऐसे दो मत वाले बहुत से विषय हैं।

आजकल देखा जा रहा है कि बहुत से विद्वान किसी ग्रंथ की हिन्दी लिखकर ग्रंथ के मूल नाम को बदल देते हैं जबकि हिन्दी तो अनुवाद है, शब्दशः उसका भाषान्तर है अतः ग्रंथ का नाम नहीं बदलना चाहिए। देखिए एक ग्रंथ का 'समयसार' नाम कुन्दकुन्द स्वामी ने रखा, उस पर टीका करने वाले श्री अमृतचन्द्रसूरि ने और श्री जयसेनाचार्य ने उस ग्रंथ का नाम नहीं बदला। अपनी टीका का नाम आत्मख्याति टीका एवं तात्पर्यवृत्ति टीका रखा। मैंने भी समयसार ग्रंथ पर टीका लिखी, उस टीका का नाम रखा ''ज्ञानज्योति टीका'' और ग्रंथ का नाम मूल में समयसार ही रखा। महापुराण ग्रंथ इतना प्रामाणिक, महत्वपूर्ण ग्रंथ है, उसकी अपने आप में एक विशेष गरिमा, महिमा है लेकिन आज हमारे यहाँ से महापुराण नाम उठ गया है। अनुवाद करने वालों ने उसका नाम रख दिया 'आदिपुराण'। महापुराण नाम का ग्रंथ ही खत्म हो गया। यह देखकर बड़ा खेद होता है अरे! ग्रंथ का महापुराण नाम लिखकर ब्रेकेट में (आदिपुराण) लिखना चाहिए क्योंकि आदिनाथ से संबंधित उसमें परिचय है। महापुराण मूल नाम नहीं बदलना चाहिए। 'भगवती आराधना' का किसी ने नाम रख दिया 'विशुद्ध समाधि भावना' अपना नाम भी उसके साथ जोड़ दिया। देखा जाये तो यह परम्परा कहाँ तक उचित है? अभी मैंने देखा कि ज्ञानपीठ से सागारधर्मामृत और अनगार धर्मामृत ग्रंथ छपा है, जिनका नाम मूल में सागारधर्मामृत-अनगार धर्मामृत है, अब उसका नाम उन्होंने बदल दिया। ऊपर लिखा है धर्मामृत ब्रेकेट में लिख दिया (सागार), यह गलत हो गया। मूल में उसे सागार धर्मामृत ही लिखना चाहिए क्योंकि धर्मामृत नाम से और भी अनेक आध्यात्मिक ग्रंथ हैं।

आचार्यश्री अजितसागर महाराज ने खूब सारे सूक्ति के श्लोक संग्रहीत किए, मैंने स्वयं देखा है, जब वे ब्रह्मचारी राजमल जी थे, खूब सूक्तियाँ संग्रह करते रहते थे, किसी भी ग्रंथ में जो उनको अच्छी लगे, वे नोट कर लेते थे। एक कापी उनकी गिरनार जी के रास्ते में खो गई थी। उससे वे काफी दुखी हुए थे। यह मेरे सामने की घटना है। मैंने उन्हें 2-3 बार कहा था कि आप सूक्तियाँ लिखते हैं तो इनके नीचे उस ग्रंथ का नाम जरूर डाल दें, जिससे कि प्रामाणिकता रहेगी कि यह जैनाचार्यों ने कहा है या किसी अन्य ने कहा है। हम जैसे प्रबुद्ध साधुओं के लिए प्रामाणिकता आ जाती है और यह श्लोक अपने जैन ग्रंथों का है, यह जानकर उस पर श्रद्धा ज्यादा आती है अन्यथा श्रद्धा डगमगा जाती है लेकिन उन्होंने मेरी उस बात पर गौर नहीं किया। नीचे

टिप्पण में ग्रंथ का नाम नहीं लिखा। बाद में सारे श्लोकों का संग्रह हो गया, तो उसका **सर्वोपयोगी श्लोक संग्रह** ऐसा नाम रख करके बहुत मोटा ग्रंथ छपा है। पं. श्री पन्नालाल जी ने उसका हिन्दी अनुवाद भी किया है। बाद में आचार्य श्री अजितसागर जी ने पं. पन्नालाल जी से कहा कि आप ग्रंथों से इन सूक्तियों को ढूँढ करके उनका नाम डाल सकें, तो डाल दीजिए लेकिन पं.पन्नालाल जी ने कहा कि अब यह मेहनत कौन कर पाएगा? यह काम बहुत कठिन है, अब संभव नहीं है। हमारे पास तो लोगों ने आकर कहा कि महाराज ने इतने श्लोक बनाए, उनको संस्कृत का ज्ञान बहुत विशेष है। मैंने कहा – यह ग्रंथ महाराज का बनाया हुआ नहीं है, यह तो ग्रंथों से संकलन है। उसी ग्रंथ में प्रस्तावना में ऐसा लिखा हुआ है।

अनगार धर्मामृत में टीकाकार पं. श्री आशाधर जी ने जहाँ भी उक्तं च लिखा है तो कहीं-कहीं तो उन्होंने ग्रंथों के नाम और आचार्यों के नाम दिए हैं। श्री अमृतचन्द्रसूरि ने तो कहीं उद्धरण लिए ही नहीं। श्री जयसेन स्वामी ने अधिकतर उद्धरण लिए हैं तो प्रायः ग्रंथों के नाम लिए हैं। देखिए स्वस्थ परम्परा है ग्रंथों का नाम दे देना। मान लीजिए टीकाकार 'उक्तं च' कहकर लिखते हैं तो यह निश्चित हो जाता है कि यह इनकी वाणी नहीं है किसी न किसी अन्य जैन आचार्य की है। बात यह है कि आज भी विद्वानों पर बहुत बड़ा दायित्व एवं बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। समाज ही नहीं साधु भी विद्वान को अपना दायाँ-बायाँ हाथ मानते हैं। आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज ने विद्वानों का अत्यधिक गौरव किया। कुंथलगिरि में मैंने स्वयं देखा है, अनुभव किया है कि चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री विद्वानों को बहुत प्रेम से सम्मानित करते थे, सम्बोधित करते थे। उन्होंने विद्वानों को धवला टीका का हिन्दी अनुवाद करने की प्रेरणाएं दी। उनसे अनेक ग्रंथों के अनुवाद आदि भी कराए। प्रामाणिकता की कोटि में उन्हें रखा। आज विद्वानों का यह कर्त्तव्य है कि यदि वे किसी ग्रंथ का अनुवाद कर रहे हैं, तो अक्षरशः उसका अनुवाद करना चाहिए। पुनः विशेषार्थ कह करके या भावार्थ कह करके आगे आगम के परिप्रेक्ष्य में लिखना चाहिए। अपने मन में जो आए सो लिख देना, ऐसा नहीं करना चाहिए। मैंने मूलाचार का अनुवाद किया तो उसमें विशेषार्थ, भावार्थ कहीं-कहीं दिए हैं। ग्रंथ प्रकाशन के प्रारंभ में ज्ञानपीठ वालों ने हम लोगों से अष्टसहस्री छपाने के लिए मांगी थी। हमने अष्टसहस्री ग्रंथ नहीं दिया क्योंकि अपने ग्रंथमाला का यह प्रथम पुष्प था। फिर मूलाचार के लिए कहा तो हमने कहा ठीक है इसे आप ज्ञानपीठ से छपा लीजिए। उन्होंने उसके लिए पं. पन्नालाल जी, कैलाशचंद जी को उसमें निर्धारित किया कि वे इसकी वाचना करके एक बार देख लें। हालांकि आर्यिका के लिखे ग्रंथ को पण्डित देखें, यह कोई उचित बात नहीं थी, फिर भी मैंने कहा कि देख लें कोई बात नहीं, विद्वान अपने हैं। विद्वानों ने उसे पढ़ा और अक्षरशः

उसे बहुत सुन्दर कहा, उन्होंने मुझसे कई जगह विशेषार्थ को बढ़ाने के लिए कहा। उसमें विशेषार्थ करने में मैं निर्णय नहीं कर पा रही थी कि इसमें मैं अपना क्या अभिमत देऊँ। तब मैंने उन विद्वानों को स्पष्ट कह दिया कि मैं इसका विशेषार्थ नहीं लिख सकती क्योंकि यह भेद का विषय है। अर्थात् इससे हमारी परम्परा में भेद पड़ सकता है। कहीं आया है कि पुष्प आदि से पूजा आदि का, कहीं कृतिकर्म की व्याख्या करते समय पूजा आदि का वर्णन आ गया है। मैंने कहा इसका विशेषार्थ क्या खोलें, साधु तो पूजा करते नहीं हैं। उपदेश आदि करते हैं अतः जितना अर्थ मैंने किया, सो ठीक है।

आज क्या है? प्रवचनों में बहुत सी ऐसी बातें अपनी दिगम्बर परम्परा में हो रही हैं, जिससे एक भिन्न सम्प्रदाय बन गया है, जिसे आज कांजीपंथ के नाम से कहा जाता है। उनका तो एक फर्मा हो गया कि बस चारित्र ग्रहण किया, साधु बने या व्रती-प्रतिमाधारी बने, तो उनका सम्यक्त्व ही नहीं है। मैं कई बार उनसे प्रश्न कर देती हूँ कि आपके पास ऐसा कौन सा थर्मामीटर है जिससे आप कहते हैं कि चारित्र ग्रहण करते ही सम्यक्त्व नहीं रहता है। जो अपने आप को सम्यग्दृष्टि गौरव के साथ और बड़े आत्म विश्वास के साथ घोषित करते हैं, वे चारित्र नहीं ग्रहण करते हैं ऐसा नियम कहाँ लिखा हुआ है? जितने चारित्रवान हैं उनके सम्यग्दर्शन नहीं है, इसका आप निर्णय नहीं कर सकते। सम्यग्दर्शन बहुत सूक्ष्म विषय है। भावलिंगी मुनि तो नवग्रैवेयक आदि जाते ही हैं लेकिन द्रव्यलिंगी मुनि भी निर्दोष चारित्र के प्रभाव से नवग्रैवेयक तक जा सकते हैं, अब उनके सम्यक्त्व में कहाँ कमी है? इसका निर्णय सर्वज्ञ के सिवाय हम और आप जैसे कोई व्यक्ति कर ही नहीं सकते। निर्दोष चारित्र एवं उत्तम भाव हुए बिना नवग्रैवेयक नहीं प्राप्त कर सकते। सोलह स्वर्ग से ऊपर नहीं जा सकते। सम्यक्त्व के लिए यह निर्णय तो आचार्यों का है, लेकिन व्यवहार में भी देखा जाये तो सच्चे देव, शास्त्र, गुरु पर श्रद्धान, सात तत्त्वों का श्रद्धान आदि यही सम्यग्दर्शन है। मिथ्यात्व का पूर्णरूपेण त्याग करना सम्यग्दर्शन है। जो सम्यग्दृष्टी बनते हैं चारित्र के प्रति उनका अनुराग, उनकी रुचि होना आवश्यक है। यह सम्यग्दृष्टि का गुण है कि वह किसी की निंदा नहीं करेगा, चारित्र के प्रति उनकी अभिरुचि बनेगी। अगर वह चारित्र मोहनीय के तीव्र उदय से चारित्र नहीं ग्रहण कर सकता तो भी चारित्रवंतों के प्रति उसका विशेष महत्त्वपूर्ण अनुराग होगा। सम्यग्दृष्टि का अनुराग मुनियों के प्रति जैसा हो सकता है, वैसा सामान्य व्यक्तियों के प्रति नहीं हो सकता। सम्यग्दृष्टि के वात्सल्य अंग आदि अंग अवश्य रहेंगे। सागार धर्मामृत में जो श्लोक कहा है, उस पर कई बार मैं प्रवचन करती हूँ। उन्होंने कहा–

अथ नत्वाऽर्हतोऽक्षूणचरणान् श्रमणानपि।
तद्धर्मरागिणां धर्मः सागाराणां प्रणेष्यते।।1।।

अथ शब्द से यह सूचित होता है कि पहले उन्होंने मुनियों का अनगार धर्मामृत बनाया फिर श्रावकों का सागार धर्मामृत बनाया। उन्होंने कहा कि अब मैं अर्हंत भगवान को नमस्कार करके अक्षूण यानि निर्दोष परिपूर्ण सकल चारित्र को धारण करने वाले, महाव्रत को धारण करने वाले श्रमणों को, मुनियों को नमस्कार करके उनके धर्म में अनुराग रखने वाले सागारों का धर्म कहूँगा।

सागार की व्याख्या कितनी सुन्दर की है कि सागार अर्थात् गृहस्थ श्रावक कैसा होना चाहिए? वह मुनि के धर्म में अनुरागी होना चाहिए। यह पंक्ति इनके मंगलाचरण की मुझे बहुत अच्छी लगती है। सभी लोग इसे बहुत अच्छा कहते थे। पं. पन्नालाल सोनी, पं. श्री खूबचंद आदि इस पंक्ति को बहुत ही महत्वपूर्ण कहते थे। वर्तमान में यह देखा जाता है अथवा वर्तमान क्या अनादिकालीन विषय है, हर बात में विपरीतता, जैसे उदाहरण के लिए देखा जाये किसी बालक को अगर घर में वैराग्य हो जाये, उसकी दीक्षा या ब्रह्मचर्य व्रत लेने की भावना हो जाये तो मोही लोग क्या कहते हैं? इसको डिप्रेशन हो गया है। जल्दी ले चलो डाक्टर के यहाँ, इसको भर्ती करो, इसको शॉक लगवाओ। इसको डिप्रेशन की दवाई दो और अगर उसने ज्यादा आग्रह किया, जिद पकड़ी तो अब यह पागल हो गया है, ऐसी स्थिति होती है। मैंने बहुतों के ऐसे अनुभव किए हैं। वही विरक्तमना भव्यात्मा पुरुषार्थ करके अगर घर से निकल जाते हैं तो भव से पार हो जाते है। कई एक उदाहरण ऐसे भी हैं। वर्तमान साधुओं में कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें ब्रह्मचारी अवस्था में घर के अंदर बंद कर दिया गया, तो भी वे दरवाजा तोड़ के भाग आए। इसमें मेरे शिष्य सुरेश ब्रह्मचारी थे। मैंने जिन्हें ब्रह्मचारी अवस्था में ब्रह्मचर्य व्रत एवं सप्तम प्रतिमा आदि दी थी। उन्होंने पहले क्षुल्लक दीक्षा लेकर फिर मुनि बन करके संभवसागर नाम पाया। ब्रह्मचारी अवस्था में उनके माता-पिता उन्हें ले जाकर कमरे में बंद कर देते और वह किवाड़ तोड़कर जैसे-तैसे भाग आते थे। पुरुषार्थ करके वे सफल हो गये। कोई सफल हो जाते हैं और कोई असफल रहते हैं और मोह में फंस जाते हैं। मैंने देखा है ऐसे माता-पिता भी हैं जो अपने बालक एवं बालिकाओं को ब्रह्मचर्य व्रत लेने के लिए प्रेरित भी करते हैं। मैं साक्षात् उदाहरण तुम्हें बताऊँ। ब्र. सुमति बाई का जो कि सोलापुर श्राविका आश्रम की संचालिका थीं। इनके पिताजी अपनी बेटी से नहीं कह पाए कि तुम ब्रह्मचर्य व्रत ले लो क्योंकि एक ही बहुत योग्य बेटी थी लेकिन उन्होंने किसी के सामने भाव व्यक्त किए कि मेरी बेटी अगर आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ले ले तो मैं इस आश्रम में उसे साध्वी या संचालिका बना करके गौरव के साथ अपना द्रव्य दान में दे दूँगा तब मुझे बड़ी प्रसन्नता हो जायेगी। सोलापुर के श्राविका आश्रम को चलाने में भी बहुत आनंद आएगा और गौरव का अनुभव होगा। किसी ने यह बात सुमतिबाई को कह दी। उन्हें यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि मेरे

पिताजी की ऐसी भावना है तो मैं उसे क्यों न पूरी कर दूँ, यह बहुत अच्छी बात है। उन्होंने आचार्य शांतिसागर जी महाराज के पास जाकर आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया। स्वयं मुझे उन्होंने अपने संस्मरण सुनाये थे। सन् 1966 का चातुर्मास मैंने सोलापुर (महा.) में किया। ब्र. सुमती बाई जी को ज्ञान के प्रति इतनी ज्यादा पिपासा थी कि उन्होंने मेरे से कहा–माताजी मुझे कोई ऊँचा ग्रंथ पढ़ाओ। तब मैंने लब्धिसार, समयसार ग्रंथ का स्वाध्याय शुरू कर किया। ब्र. सुमतीबाई जी दोनों ग्रंथ के स्वाध्याय में और मध्यान्ह में त्रिलोकसार के स्वाध्याय में बड़े आनंद से समय निकालकर बैठती थीं। हमारी शिष्याएं आर्यिका श्री जिनमती जी, आर्यिका श्री आदिमती जी भी बैठती थीं। ब्र. सुमतिबाई जी ने शास्त्री वगैरह सब परीक्षाएँ पास कर ली थीं। बहुत अच्छी विदुषी थीं। आज वहाँ संचालिका ब्र. विद्युल्लता जी हैं। इनको भी ऐसे ही संस्कार इनकी माँ ने दिए। माँ की ये अकेली बेटी थीं। माँ छोटी उमर में विधवा हो गई थीं। अतः उन्होंने आचार्य वीरसागर जी से क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। कई वर्षों तक वे मेरे पास रही हैं फिर आर्यिका बनीं। वे भी खूब स्वाध्याय करती थीं। खूब अध्ययन करती थीं, उन्हें मेरे प्रति अकाट्य प्रेम और अनुराग था। ऐसे अभी बहुत से लोग हैं जो वैराग्य की अनुमोदना भी करते हैं। ऐसे माता-पिता भी हैं, जो वैराग्य में सहयोगी बनते हैं।

मेरा स्वयं का अनुभव है मेरे वैराग्य में मेरी माँ ने भी मुझे सहयोग दिया। पहले उन्होंने मुझे दीक्षा नहीं लेने के लिए समझाने के लाखों प्रयास किए लेकिन मैंने उन्हें दीक्षा की स्वीकृति देने के लिए समझा दिया, जिससे वे समझ गईं और उन्होंने मेरे बारे में लिखकर आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज को दे दिया कि आप इन्हें दीक्षा दे सकते हैं तथा उस समय उन्होंने मेरे से एक शर्त कराई– बेटी! आज मैं तुझे दीक्षा लेने के लिए लिखकर दे रही हूँ, किसी दिन तुम भी मुझे गृहस्थ आश्रम से निकालकर दीक्षा दिला देना। मैंने भी उस वचन को पूरा किया, इसका मुझे गौरव एवं बहुत प्रसन्नता है। बात यह है कि संसार में देखा जाता है कि पग-पग पर व्यवहारिकता में विपरीतताएं अनुभव में आती है। लेकिन विद्वानों का एवं साधुओं का कर्तव्य है कि जन-जन के अनुकूल प्रवचन न दे करके शास्त्र के अनुकूल ही बोलना चाहिए। एक बार मेरे सामने कलकत्ता में प्रश्न आया कि माताजी आपको ऐसा प्रवचन करना चाहिए जिससे समाज में शांति भंग न हो, किसी प्रकार से किसी को अशांति न हो, तब मैंने कहा–भैय्या! देखो, शांति में धर्म नहीं है, धर्म में शांति है। अब किसी को बुरा लग जाये, तो लग जाये, कोई प्रवचन ऐसा हो सकता है जो लोगों को कटु लगे। अरे भाई बात यह है कि चोर को चांदनी नहीं सुहाती है अतः अभी हम गृहस्थी के सामने वैराग्य का उपदेश दें तो उनको कम अच्छा लगता है। तत्त्व के उपदेश में भी कहीं मतभेद हो जाता है।

वहाँ पर थोड़ा विषय पंथवाद का भी था और थोड़ा निश्चय और व्यवहार का भी था। कतिपय व्यक्ति निश्चयाभासी थे। वे चाहते थे मेरे अनुकूल माताजी बोलें लेकिन मैं वहाँ व्यवहार का समर्थन करती थी। व्यवहार और निश्चय को लेकर चलती थी क्योंकि दोनों का परस्पर में मैत्री भाव है अतः मैंने उनसे कहा कि पात्र – कटोरा आधार है घी के लिए तो पात्र में घी है **'पात्रे घृतं न कि घृते पात्रं'** घी में पात्र नहीं है अतः धर्म में शांति है न कि शांति में धर्म। अगर शांति में धर्म मानो तो यदि आपका बेटा शराब पीता है, सिगरेट, बीड़ी पीता है, तम्बाखू, पान-मसाला खाता है उसमें कुछ भी व्यसन है, तब यदि आप उसे मना करते हैं तो शांति भंग होती है। वह अशांत होता है। भागने की, मरने की धमकी देता है, कई बच्चे भाग भी जाते हैं लेकिन ऐसे समय माता-पिता का कर्तव्य है कि बच्चे को प्रेम से, शांति से, धीरे से समझाएं। उसमें अच्छे संस्कार डालें, गुरुओं के पास ले जाएँ, बार-बार उसे तीर्थों पर ले जाएँ, उसे सत्संगति में ले जायें, जिससे उसमें अपने आप परिवर्तन आ जाये। ये सभी बातें विद्वानों को भी समझ लेनी हैं कि वे जन के अनुकूल न बोल करके जिनेन्द्र भगवान की वाणी के अनुकूल बोलें, यह सबसे बड़ी बात है। एक सूक्ति है –

सुलभाः पुरुषाः लोके, सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य चापि पथ्यस्य, वक्ता श्रोता च दुर्लभाः।।

ऐसे वक्ता संसार में बहुत सुलभ हैं, जो हमेशा मधुर बोलने वाले, आपके अनुकूल बोलने वाले, आपको खुश करने वाले हैं लेकिन ऐसे वक्ता दुर्लभ हैं जिनके वचन भले ही आपको अप्रिय लगें, पर उनके वचन हितकर हों। आचार्यों ने तो साधुओं के लिए यहाँ तक कह दिया है कि जो पहले श्रावक को मुनिधर्म का उपदेश न देकर गृहस्थ धर्म का उपदेश देते हैं, वे साधु जैन शासन में निग्रह के – प्रायश्चित्त के भागी हैं अतः मुनिगण श्रावकों को पहले मुनिधर्म का उपदेश दें, अगर उनमें ग्रहण करने की शक्ति नहीं है तब श्रावक धर्म का उपदेश दें। आज हम देखते हैं कि कहीं कुसंगतियों में पड़कर बालक शराब पीने लगता है, कहीं अण्डे को शाकाहारी कहकर खाने लगता है, अनेक प्रकार की ऐसी समस्याएं आ गई हैं। हमें उन बालकों के लिए यही प्रेरणा देनी पड़ती है कि भैय्या, आप शाकाहारी बनो, आप मंदिर जाने का नियम करो। मैं कई बार बालकों को पूछती हूँ कि आप मंदिर जाते हैं क्या? वे कहते हैं – नहीं, माताजी मुझे फुर्सत नहीं है। अरे! फुर्सत तो अपनी आत्मा के लिए निकाली जाती है, मैं उनसे पूछ बैठती हूँ कि मंदिर जाने पर भगवान तुमसे कुछ लेंगे कि देंगे? तब वे बेचारे बालक एकदम चुप हो जाते हैं या कहते हैं कि माताजी देंगे, लेंगे नहीं। अगर देंगे तो तुम प्रतिदिन मंदिर जाओ। तुम भगवान का दर्शन करके व्यापार करोगे, पढ़ाई करोगे, या कोई भी कार्य करोगे तो तुम्हें सफलता ज्यादा मिलेगी और आनंद भी आएगा।

मानसिक संतुष्टि, धन की वृद्धि, विद्या की वृद्धि सब प्रकार से वृद्धि ही वृद्धि होगी, तब उन्हें विश्वास हो जाता है और वे दर्शन का नियम ले लेते हैं। बात यही है कि किसी भी तरह समझाकर आज नवयुवकों के गले धर्म को उतारना चाहिए। रात्रि भोजन त्याग के गुण उन्हें बताना चाहिए कि त्याग से क्या गुण है और रात्रि भोजन करने से क्या दोष और हानि है। रात्रि भोजन से स्वास्थ्य की हानि है, परलोक की भी हानि है और रात्रि भोजन त्याग करने से गुण ही गुण हैं। पानी छानकर पीना वैज्ञानिक दृष्टि से भी बहुत उत्तम माना है। ऐसे ही जब जैनेतर बंधुओं के बीच प्रवचन करना हो, तो उन्हें केवल शाकाहार के बारे में, व्यसन मुक्ति के बारे में ही विशेष बताना चाहिए, तभी वे उसे ग्रहण कर सकते हैं।

इस प्रकार सभी विद्वानों को समयोचित इन सभी बातों को समझकर ही सभा में प्रवचन करना चाहिए। ।

प्रवचन नं.–3

आर्यिकाओं की पूजा एवं शासन देव-देवियों की आराधना आगम के अनुकूल है।

अर्हन्तो मंगलं कुर्युः सिद्धाः कुर्युश्च मंगलम्।
आचार्याः पाठकाश्चापि साधवो मम मंगलम् ।।

भव्यात्माओं! श्री समन्तभद्रस्वामी के शब्दों में सम्यग्दर्शन के बारे में मैं आपको बताती हूँ। सम्यग्दृष्टि कैसा होता है?

सम्यग्दर्शन शुद्धा, संसार-शरीर-भोग निर्विण्णाः।
पंचगुरुचरण शरणाः, दर्शनकस्तत्त्व कथयगृह्यः।।

सम्यग्दर्शन से शुद्ध भव्यात्मा श्रावक या श्राविका कोई भी है, वह पंचपरमेष्ठी के चरणों की शरण ले लेता है अर्थात् अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु इनका परम भक्त, उपासक–इनकी आराधना करने वाला, नित्य प्रति इनकी पूजा करने वाला भव्यात्मा जीव होता है। शास्त्रों में बतलाया है कि आज तक जितने भी महापुरुष हुए हैं सभी ने भगवान की भक्ति और पूजा करते हुए अपने गृहस्थ धर्म को सार्थक किया है। प्रारंभ से हीआप देखें भरत चक्रवर्ती ने घर में रहते हुए प्रतिदिन भगवान की पूजा, भक्ति की है, कैलाशपर्वत पर त्रिकालचौबीसी के मंदिर बनवाए और उनमें रत्नों की प्रतिमाएँ विराजमान कराईं।

सती सुलोचना के बारे में लिखा है कि उनने भी मंदिर बनवाए एवं उनमें रत्नों की प्रतिमाएँ विराजमान कराईं। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्र जी ने भी कुंथलगिरि पर्वत पर अनेकों जिनमंदिर बनवाए और उनमें अनेकों जिनप्रतिमाएँ विराजमान करवाकर उनकी खूब पूजा, भक्ति, आराधना की है और भी वर्णन आता है कि महाराजा दशरथ ने भरत

चक्रवर्ती के द्वारा कैलाशपर्वत पर बनवाए गए जिनमंदिरों का जीर्णोद्धार कराया था। हरिषेण चक्रवर्ती ने अनेकों जिनमंदिर बनवाए थे। यह परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है। आज कुछ लोग कहते हैं कि मूर्ति बनाने की परम्परा अर्वाचीन है किन्तु यह गलत है। मूर्तियाँ तो अकृत्रिम अनादिनिधन भी हैं। मध्यलोक में 458 अकृत्रिम जिनमंदिर हैं जिनमें 108-108 जिनप्रतिमाएँ अनादि-अनिधन-शाश्वत है। सुमेरु पर्वत आदि शाश्वत हैं।

पद्मासन प्रतिमा, नासाग्रदृष्टि, सौम्यछवि, वीतराग मुद्रा में जिनप्रतिमाओं की आकृति दो आसन में दिखती हैं–एक खड्गासन और एक पद्मासन मुद्रा में। कृत्रिम प्रतिमाओं की परम्परा काल प्रवाह की अपेक्षा तो अनादि है अर्थात् चतुर्थकाल में तो हमेशा चक्रवर्ती आदि महापुरुष जिनप्रतिमाओं का निर्माण करवाते ही रहे हैं। पंचमकाल में भी अनेकों महापुरुषों ने अनेकों जिनप्रतिमाएँ विराजमान कराई हैं। अनेकों पर्वत पर, मंदिरों में, पर्वतों के शिलाखण्डों में उत्कीर्ण कराई हैं। प्रतिमाएँ रत्नों की, पाषाण की, धातु की, सोने-चाँदी की बनाई जाती हैं, उनकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा होती है और वे पूज्य हो जाती हैं। इन सभी अकृत्रिम-कृत्रिम जिनप्रतिमाओं की भक्ति महान पुण्य का बंध कराती है। शास्त्रों में पंचपरमेष्ठी की मूर्ति का भी वर्णन है अर्थात् अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओं की भी मूर्ति का वर्णन है। श्रुतदेवी यानि सरस्वती माता की मूर्ति का भी वर्णन है जो कि द्वादशांग के रूप में मानी गई हैं।

बारह अंगंगिज्जा, दंसणतिलया चरित्तवत्थहरा।
चोद्दसपुव्वाहरणा, ठावे दव्वाय सुयदेवी।।

द्वादशांगरूप श्रुतज्ञान से जिनके शरीर का निर्माण माना गया है, ऐसी रचना का वर्णन प्रतिष्ठातिलक आदि ग्रंथों में मिलता है। देखा जाये तो जिनेन्द्र भगवान की भक्ति कामदुहि-कामदायिनी अर्थात् इच्छानुसार फलों को देने वाली है। मन को पराङ्मुख कराने वाली अर्थात् विषय भोगों से प्राणियों का मन हटाने वाली है। 'जल तें भिन्न कमल है' जैसे कमल जल से भिन्न हैं, उसी प्रकार जो श्रावक उदासीन भाव से गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी अपनी आवश्यक क्रियाओं का पालन करता है, तो वह श्रावक समाधिपूर्वक मरणकर सोलहवें स्वर्ग तक को प्राप्त कर सकता है। यही कारण है पद्मपुराण (जैन रामायण) में कहा है यह गृहस्थ धर्म मुनिधर्म का लघु भ्राता है। पंचपरमेष्ठी की आराधना, भक्ति करने वाला भव्य प्राणी अपने अनेक प्रकार के मनोरथों को सफल कर लेता है।

मैना सुन्दरी ने जब अपने पति के कुष्ट रोग को दूर करने में अनेक प्रकार की औषधियों का प्रयोग करके भी सफलता नहीं प्राप्त की, तब उसने एक दिन मंदिर में गुरु के दर्शन करके उनसे प्रश्न किया–भगवन्! हमारे पति के और उनके साथ में 500 योद्धाओं के जो कुष्ट रोग हैं, वो कैसे दूर होंगे? तब मुनि ने उसे सम्बोधित करते हुए कहा–बेटी! तू सिद्धचक्र की उपासना कर, सिद्धचक्र मण्डल विधान करके सिद्धचक्र यंत्र और भगवन्तों के अभिषेक का जल अर्थात् गंधोदक ला करके कुष्ट रोगियों पर छिड़केगी

तो निश्चित ही इनका यह कुष्टरोग समाप्त हो जायेगा। मैना सुन्दरी ने वैसा ही किया और उसका साक्षात् फल प्राप्त किया। सिद्धचक्र विधान में यह भजन बहुत प्रसिद्ध है–

श्री सिद्धचक्र का पाठ, करो दिन ठाठ बाठ से प्राणी,
फल पायो मैना रानी।

देखा जाये तो ऐसे बहुत से उदाहरण शास्त्रों में भरे पड़े हैं। जिन्हें मैं अनेकों बार सुनाया करती हूँ। एक घटना मैं आपको और बताती हूँ– पोदनपुर के राजा विजयनरेश, जब उन्हें निमित्तज्ञानी से विदित हुआ कि उनकी आयु मात्र सात दिन की शेष रह गई है, आज से सातवें दिन उनके सिर पर वज्र गिरेगा और वे मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे, तब उन्होंने मंत्रियों से मंत्रणा करके सात दिन तक लगातार जिनमंदिर में बैठकर भगवान की पूजा-आराधना किया, अखण्ड अनुष्ठान किया। सातवें दिन जब वज्रपात की घड़ी आने वाली थी तब उन्होंने ध्यानमुद्रा में बैठकर भगवान का स्मरण किया। वे ध्यान मुद्रा में अपनी आत्मा का ध्यान कर रहे थे कि आकस्मिक आकाश में बादल घिर आये, घटाघोट बिजली की गर्जना और वज्रपात हुआ। भव्यात्माओं! उत्तरपुराण में कथा वर्णित है कि वह वज्रपात राजसिंहासन पर हुआ। राजसिंहासन पर मंत्रियों ने एक यक्ष की पत्थर की मूर्ति विराजमान कर दी थी अतः उस मूर्ति पर वज्रपात हुआ और जिनेन्द्रदेव की भक्ति से राजा की अकाल मृत्यु टल गई।

अकाल मृत्यु का योग मनुष्यों और तिर्यंचों के माना गया है। देवों और नारकियों की अकाल मृत्यु नहीं होती है। अकाल मृत्य को अपमृत्यु भी कहते हैं। मनुष्यों के अपमृत्यु का योग आ सकता है पर उसे टाला भी जा सकता है। यही कारण है कि शास्त्रों में अनेक प्रकार की औषधियों के प्रयोग वर्णित हैं। औषधालय, चिकित्सालय, शल्य चिकित्सालय अनेक प्रकार के उपायों से रोग को दूर करके, असाता को शमन करके, अकाल मृत्यु से बचा लेते हैं। सभी के अकाल मृत्यु का योग नहीं टाला जा सकता। किन्हीं-किन्हीं के अकाल मृत्यु का योग टाला जा सकता है। विशेष धर्माराधना से, पुण्य प्रभाव से, मृत्युंजय विधान के अनुष्ठान से, मृत्युंजय जाप्य से, मृत्युंजय यंत्र से अकालमृत्यु टाली जा सकती है, ऐसा शास्त्रों में वर्णन है।

विचार करके देखा जाये तो भगवान की भक्ति एक ऐसी अमोघ शक्ति है जिसे सहज दूर नहीं किया जा सकता, इसका फल निश्चित ही मिलेगा। भगवान की भक्ति आपको फल देगी ही देगी। कदाचित् तीव्र कर्म का उदय है तो आज भले ही फल न मिले लेकिन कालान्तर में, कुछ दिनों के बाद, कुछ वर्षों के बाद फल मिलेगा, निश्चित है परलोक में तो मिलेगा ही मिलेगा। भगवान की भक्ति का फल कभी निरर्थक नहीं जाता है।

आज कुछ लोगों में एक प्रश्न उठ रहा है कि क्षेत्रपाल, पद्मावती, धरणेन्द्र आदि जो शासन देव देवी हैं, इन्हें मंदिर में नहीं रखना चाहिए, इन्हें नमस्कार नहीं करना चाहिए। वस्त्रधारी आर्यिकाएँ पूज्य नहीं हैं, क्षुल्लक-क्षुल्लिकाएँ पूज्य नहीं हैं लेकिन यह बात गलत

है। आप इस बात को हमेशा ध्यान में रखना। आप ग्रंथों को, जिनवाणी को, वस्त्र में अच्छी तरह से बांध कर रखते हैं, फिर भी वस्त्र सहित उनकी पूजा करते हैं, उन्हें नमस्कार करते हैं। चूँकि वह जिनवाणी है, जिनेन्द्र भगवान की वाणी है उसी प्रकार से आर्यिकाएँ भी उपचार से महाव्रती हैं। मुनियों के समान वे पूज्य हैं उनकी नवधाभक्ति की जाती है ऐसा ग्रंथों से सिद्ध है। मूलाचार आदि ग्रंथों में मुनियों के समान आर्यिकाओं की चर्या मानी है। समाचारी विधि भी मुनियों के समान आर्यिकाओं की मानी है। चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की परम्परा में तो बराबर आर्यिकाओं की नवधाभक्ति आदि की विधि चली आ रही है। शास्त्रों में भी आर्यिकाओं की पूजा के विधान हैं।

यह प्रश्न उठता है कि यक्ष-यक्षिणी चतुर्थ गुणस्थानवर्ती है अतः पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक उनकी कैसे पूजा करें, उनको कैसे अर्घ्य चढ़ाएँ आदि। लेकिन मैं तो यही जानती हूँ कि शास्त्रों में जो वर्णन है, उन पर यह अनेक प्रकार के तर्क नहीं उठाना चाहिए। हजारों वर्ष पूर्व श्री पूज्यपादस्वामी एक महान आचार्य हुए हैं, उनके द्वारा रचित सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ, समाधिशतक आदि ग्रंथ प्रसिद्ध हैं, जैनेन्द्र व्याकरण भी प्रसिद्ध है। दिगम्बर परम्परा में इन्हें महान पूज्य माना है। ऐसे पूज्यपाद स्वामी का बनाया हुआ एक पंचामृत अभिषेक पाठ उपलब्ध होता है जिसमें उन्होंने भगवान की पूजा-विधि का वर्णन करते हुए लिखा है–

भगवान की पूजा करने में प्रारंभ में 15 तिथि देवता, नवग्रह, सुरपति आदि यक्ष-यक्षिणी की स्थापना करने का विधान है। 24 तीर्थंकरों के जिनशासन देव गोमुख आदि 24 यक्ष और चक्रेश्वरी आदि 24 यक्षिणी जिनशासन देवी मानी गई हैं, प्रत्येक तीर्थंकर के एक-एक शासन देव और एक-एक शासन देवी हैं। क्षेत्रपाल 5 माने हैं– मणिभद्र, भैरव आदि। इन सबको क्रम से और द्वारपाल, लोकपाल की स्थापना मंत्रों से की जानी चाहिए। उन्होंने दशदिग्पाल का मंत्र भी दिया है–

ॐ ह्रीं क्रों प्रशस्तवर्णसर्वलक्षणसम्पूर्णस्वायुधवाहनवधूचिन्ह सपरिवारा इन्द्राग्नियमनैऋतवरुण-वायुकुबेरेशानधरणेन्द्रसोमनाम दशदिग्पालाः आगच्छत आगच्छत संवौषट् स्वस्थाने तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः मम अत्र सन्निहिता भवत भवत वषट् इदं अर्घ्यं पाद्यं गृण्हीध्वं गृण्हीध्वं ॐ भूर्भुवः स्व स्वाहा स्वधा।

यह पूज्यपाद स्वामी का दिग्पाल के आह्वान का मंत्र है, उनको अर्घ्य चढ़ाने का मंत्र है। तो भव्यात्माओं! यह विचार करने का विषय है जब पूज्यपाद स्वामी जैसे महान आचार्य दिग्पालकों के, यक्ष-यक्षिणी के आह्वान के मंत्र, अर्घ्य चढ़ाने के मंत्र दे सकते हैं जो कि ग्रंथों में वर्णित हैं तो इसे मिथ्यात्व कहना और इन देव-देवी को मंदिर से हटाने का आदेश देना मैं समझती हूँ यह आगम से विपरीत है, उचित नहीं है। किसी को भी ऐसा नहीं करना चाहिए। आप देखिए! जितने भी प्राचीन मंदिर हैं चाहे दक्षिण में हों चाहे उत्तर में, प्रायः सभी जगह क्षेत्रपाल, पद्मावती माता की मूर्ति मिलती हैं। बड़वानी में भगवान ऋषभदेव की 84 फुट ऊँची प्रतिमा जो कि पाषाण में उत्कीर्ण हैं, उनके आजू-बाजू में

गोमुख यक्ष और चक्रेश्वरी देवी भी विराजमान हैं। भगवान पार्श्वनाथ के शासनदेव धरणेन्द्र देव और शासन देवी पद्मावती माता हैं इनकी मान्यता आज पूरे भारत में चाहे उत्तर हो या दक्षिण, पूरब हो या पश्चिम, सर्वत्र प्रत्येक मंदिरों में प्रायः विशेषरूप से देखी जाती है। यह शासन देव-देवी हमेशा धर्म की रक्षा करने वाले माने गये हैं। इन्हें भगवान अर्हंत देव या सिद्ध मानकर पूजा नहीं करते हैं। इन्हें शासन देव मानकर ही इनकी आराधना करते हैं। इनकी उपासना की पद्धति में अन्तर है जिसे आपको ग्रंथों से समझ लेना चाहिए।

भगवान की पूजा करते समय जब हम जल चढ़ाते हैं तो बोलते हैं– **ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।**

लेकिन शासन देव-देवी के सामने जल चढ़ाते हुए जलधारा छोड़ेंगे तो उसमें जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं.....नहीं कहेंगे क्योंकि अभी उनका जन्मजरामृत्यु नहीं नष्टहुआ है अतः वे आपका भी नहीं नष्ट कर सकते अतः उन्हें जल चढ़ाते समय मंत्र बोलेंगे–

श्री पद्मावती देव्यै इदं जलं समर्पयामि स्वाहा।

आप उन्हें अष्टद्रव्य समर्पित करते हैं जिससे आपके गार्हस्थ्य जीवन में आने वाले या संसार में आने वाले अनेक प्रकार के विघ्नों को वे दूर कर सकते हैं। यह एक नियोग है, विधि है, आगम की आज्ञा है। मैं समझती हूँ कि आगम की आज्ञा का उल्लंघन करने से और पूज्यपाद जैसे महान आचार्यों की अवहेलना करने से अवश्य मिथ्यात्व आ जाता है अतः विचार करके देखा जाये तो जिनशासन देवी-देवताओं की मान्यता, उपासना या भक्ति मिथ्यात्व नहीं है। बल्कि आज किसी न किसी रूप में घर-घर में प्रायः मिथ्यात्व डेरा डाले हुए है, कहीं किसी ने घर में मिट्टी के लक्ष्मी-गणेश को स्थापित कर रखा है, कहीं आफिस में, घरों में, कहीं दुकानों पर लक्ष्मी-गणेश की मूर्ति दिखती है। कोई विद्या के लिए, कोई धन के लिए वैष्णव देवी जा रहे हैं। कोई दुर्गादेवी की उपासना कर रहे हैं और न जाने कहाँ-कहाँ जाते हैं। कहीं हनुमान को प्रसाद चढ़ा रहे हैं। पता नहीं क्या-क्या मिथ्यात्व करते हैं। कोई छिपकर करते हैं, कोई खुलेआम करते हैं। यहाँ तक कि कोई पीर परचादर चढ़ाते हुए भी देखे गये हैं।

ऐसी स्थिति में अगर अपने गार्हस्थ्य जीवन में समस्याओं के समाधान के लिए कोई भी शासन देव-देवी की भक्ति करता है तो वह मिथ्यात्व नहीं है, यह निश्चित है। जैन ग्रंथों के अनुसार-तिलोयपण्णत्ति आदि ग्रंथ, उमास्वामी श्रावकाचार, वसुनन्दिश्रावकाचार के आधार से और भी अनेक श्रावकाचार ग्रंथों से, प्रतिष्ठातिलक आदि ग्रंथों से, पूज्यपाद स्वामी के अभिषेक पाठ की व्यवस्था से इसे मिथ्यात्व नहीं कहना चाहिए।

सम्यग्दृष्टि का लक्षण बताते हुए कहा है– सम्यग्दृष्टि पंचपरमेष्ठी की शरण लेता है। यथाशक्ति और आगम की आज्ञा के अनुरूप शासन देव-देवी की आराधना करता है। साथ ही आर्यिकाओं की भक्ति और पूजा भी करता है। क्षुल्लक और क्षुल्लिकाओं को भी अर्घ्य चढ़ाता है। अनेक जगह शास्त्रों में ऐसा वर्णन आया है।

जिनके मन में अनेक प्रकार की शंकाएँ उठती हैं तो मैं समझती हूँ कि उन्हें परम्परागत प्राचीन जो चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के साधुवर्ग हैं, उनके निकट पहुँच करके और ग्रंथों का अवलोकन करके समाधान प्राप्त करना चाहिए।

सम्यग्दर्शन के 25 मलदोष माने गये हैं। निःशंकित आदि आठ अंग हैं। उन अंगों से विपरीत– जिनेन्द्र भगवान के वचनों में शंका करना, भोगों की आकांक्षा करना, गुरुओं के मलिन शरीर को देखकर ग्लानि करना आदि आठ दोष और ज्ञान का मद, पूजा, कुल आदि का मद ये 8 मद माने गये हैं। छः आयतन माने गये हैं। देव-शास्त्र-गुरु और उनके भक्त अर्थात् इन्हें मानने वाले ये तो आयतन हैं और इसके विपरीत जो उपासना के योग्य न हो वे अनायतन कहलाते हैं। कुदेव, कुशास्त्र, गुरु और इनको मानने वाले, ये छः अनायतन हैं। तीन मूढताएं– देवमूढ़ता, गुरुमूढ़ता और पाखंडिमूढ़ता है। इन मूढ़ताओं से अपने आपको दूर रखना चाहिए। आज मूढ़ताएं इतनी प्रसिद्ध हैं– कहीं-कहीं बालू का ढेर लगाते हैं और उसे नदी में विसर्जित कर देते हैं और वे समझते हैं कि हमने बहुत बड़ा पुण्य संचित कर लिया। कोई वृक्षों की पूजा कर रहे हैं, उसमें तमाम सिंदूर आदि लेपते हैं, न जाने क्या-क्या फूल-फल चढ़ाकर उपासना करते हैं, प्रदक्षिणा देते हैं। यह वृक्षों की पूजा, बालू के ढेर की पूजा, जहाँ-तहाँ पत्थरों की पूजा आदि अनेक प्रकार की कल्पनाएँ, मूढ़ताओं में गर्भित हैं।

इन मूढ़ताओं से और मिथ्यात्व से अपने आपको बचाते हुए जो जैनशासन में वर्णित देव-देवी हैं, उनकी उपासना करने वाले सम्यग्दृष्टि अपने सम्यग्दर्शन को मलिन नहीं करते हैं। देखा जाये तो 25 मलदोषरहित सम्यग्दर्शन ग्राह्य है। इस सम्यग्दर्शन को धारण करने वाला व्यक्ति हमेशा-**'संसारशरीरभोगनिर्विण्णा'** अर्थात् संसार, शरीर और भोगों से उदासीन रहता है। **'जगत्काय स्वभावौ वा संवेग वैराग्यार्थम्'** संसार के स्वरूप का चिंतन करता है, संवेग और वैराग्य को बढ़ाता है, भोग को भुजंग के समान समझता है।

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर संपत्ति पर प्रकट है, पर हैं परिजन लोय।।

सम्यग्दृष्टि का हमेशा यही चिंतन चलता है कि यह संसार असार है, जहाँ पर शरीर ही अपना नहीं है, वहाँ परिवार के लोग, सगे-संबंधी, धन वैभव, दुकान, मकान आदि अपने कैसे हो सकते हैं?

जहाँ शरीर ही अपना नहीं है, वहाँ शरीर के आश्रित कुटुम्ब परिवार आदि अपने कैसे हो सकते हैं, ये तो सर्वथा अपने से पृथक् हैं इत्यादि संसार के स्वरूप का चिंतन करता रहता है। संसार के भोग क्षणिक हैं, क्षणभंगुर हैं, दुर्गति में ले जाने वाले हैं, अनंत संसार में परिभ्रमण कराने वाले हैं। अनंतकाल से मैंने इनका अनुभव किया है, इन्हें भोगा है, ये उच्छिष्ट के समान निःस्सार हैं ऐसा चिंतन करते हुए संसार, शरीर, भोगों से उदासीन होना चाहिए। शरीर का स्वभाव कैसा है? तो आचार्यों ने लिखा है–

पोषत तो दुख दोष करे, अति सोषत सुख उपजावे।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावे।।

यह शरीर दुर्जन के समान है इसका जितना-पोषण करेंगे, उतना-उतना ही दुख को उत्पन्न करेगा और पाप का आश्रव कराएगा और जितना-जितना शोषण करेंगे–तपस्या आदि के द्वारा सुखायेंगे, उतना-उतना ही यह पुण्य का आस्रव कराएगा और आपको सुगति की ओर–स्वर्ग, मोक्ष की ओर ले जाने वाला होगा।

आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में कहा है–

यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्यापकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय, तज्जीवस्यापकारकम्।।

अर्थात् जिन क्रियाओं से शरीर का उपकार होता है उनसे आत्मा का अपकार होता है और जिनसे आत्मा का उपकार होता है उनसे शरीर का अपकार होता है, यह प्रत्यक्ष देखने में आता है। तभी जैन शासन में क्या प्रत्येक शासन में, प्रत्येक सम्प्रदाय में उपवासों का, व्रतों का महत्व बतलाया गया है इसीलिए व्रत आदि किये जाते हैं।

देखा जाये तो संसार, शरीर और भोगों से उदासीनता रखते हुए, मन में विरक्त भाव रखते हुए जो श्रावक गृहस्थ आश्रम में रहते हैं, पंचपरमेष्ठी की भक्ति आराधना करते हैं, सम्यग्दर्शन से शुद्ध वे भव्यात्मा अपने जीवन को सार्थक कर लेते हैं, अपने मनुष्य पर्याय को धन्य कर लेते हैं, एक दिन परम्परा से मोक्ष के अधिकारी बन जाते हैं, सल्लेखनापूर्वक मरण करके वे निश्चित ही स्वर्ग को प्राप्त कर सकते हैं, इसलिए गृहस्थ धर्म भीकिसी दृष्टि से सर्वथा हेय नहीं है, बल्कि उपादेय भी है। गृहस्थाश्रम में रहते हुए, धन का संचयकरते हुए उस धन को भगवान की भक्ति में, गुरुओं की भक्ति में, तीर्थयात्रा में लगातेरहना चाहिए, यही इस धन की एवं समय की सफलता है और यही मनुष्य जीवन की सार्थकता है। इसी प्रकार से अपने गार्हस्थ्य जीवन को आप लोग भी सफल करें, यही मेरी मंगल प्रेरणा है।

प्रवचन नं.–4

यदि चतुर्थकालीन मुनि की भावना भाते हो, तो पहले चतुर्थकालीन श्रावक बनकर दिखाओ

अर्हन्तो मंगलं कुर्युः, सिद्धाः कुर्युश्च मंगलम्।
आचार्याः पाठकाश्चापि, साधवो मम मंगलम् ।।

भव्यात्माओं! जैसे सृष्टि, संसार, जैनधर्म अनादि है–शाश्वत है, वैसे ही मुनिपरम्परा, चतुर्विध संघ परम्परा–मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका की परम्परा भी अनादि है। भगवन पुष्पदंतनाथ से धर्मनाथ भगवान के काल तक कुछ-कुछ दिन की धर्मतीर्थ व्युच्छित्ति मानी गई है।

तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में बताया है कि धर्म तीर्थ की व्युच्छित्ति होने पर चतुर्विध संघ परम्परा का अभाव हो जाता है। यह हमेशा ध्यान में रखना है, संसार में जब तक धर्म है, तब तक मुनि, आर्यिकाएँ, श्रावक और श्राविकाएं हैं। श्रावक, श्राविका के बिना मुनि, आर्यिका नहीं रहते और मुनि, आर्यिकाओं के बिना श्रावक-श्राविकाएँ नहीं रहते हैं इसलिए मुनि परम्परा अनादि है। आज दिगम्बर परम्परा में एक ऐसा सम्प्रदाय बन गया है जो मुनियों को, आर्यिकाओं को, पिच्छीधारी साधुओं को, संयमियों को नहीं मानता है। वे कहते हैं, पंचमकाल में निर्दोष चारित्र को पालन करने वाले साधु नहीं हैं। मैं आपको बताऊँ? यह सर्वथा गलत है। श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है–

''अज्जवि तियरण सुद्धा, अप्पा झाएव लहइ इन्दत्तं।
लोयन्तिय देवत्तं, तत्थ चुदा णिव्वुदिं जंति।।''

आज भी इस पंचमकाल में रत्नत्रय से शुद्ध साधु पवित्र आत्मा का ध्यान करके इन्द्रपद को प्राप्त कर सकते हैं, लौकान्तिक पद को भी प्राप्त कर सकते हैं और फिर एक भव धारणकर मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं।

श्री कुन्दकुन्द स्वामी पंचमकाल के थे। चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज, जिनके मैंने दर्शन किए, वे इस पंचमकाल के थे। मेरे दीक्षागुरु आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज, आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज आदि इनकी तपश्चर्या, इनकी निर्दोष चर्या मैंने स्वयं अपनी दृष्टि से देखी है और भी कई लोगों ने देखी है। अभी भी सच्चे साधु हैं और पंचमकाल के अंत तक रहेंगे। तिलोयपण्णत्ति ग्रंथकार का कहना है कि भगवान महावीर का शासन पंचमकाल के अंत तक वीरांगज मुनि और सर्वश्री आर्यिका तक अविच्छिन्न चलता रहेगा।

आचार्य श्री यतिवृषभदेव–तिलोयपण्णत्ति ग्रंथकार निर्दोष साधुओं को मानते हैं। श्री कुन्दकुन्दस्वामी ने निर्दोष साधु माना है। हाँ! कोई सदोष भी हो सकते हैं अतः सबको सदोष अथवा सभी को निर्दोष नहीं कहा जा सकता है। एक कॉलेज में, विश्वविद्यालय में या पाठशाला में पढ़ने वाले सभी विद्यार्थी पास हों, यह कोई नियम नहीं है, कुछ फेल भी हो जाते हैं लेकिन सभी विद्यार्थी फेल हों, ऐसा भी नहीं है।

जो आज के साधुओं को नहीं मानते हैं, उस परम्परा वाले कैसे साधु ढूँढ़ते हैं? वे कहते हैं ''धन्य मुनि दशा'' वे मुनियों की प्रशंसा करते हैं, चतुर्थकालीन साधुओं के गुणों का बखान करते हैं और उनकी स्थिति का बार-बार चिंतन करते हैं।

हम भी समयसार में चतुर्थकालीन साधुओं के बारे में पढ़ते हैं–

ऐसे साधु अर्थात् सम्यग्दृष्टि मुनि का ही यह साहस है जहाँ ऐसा वज्रपात हो, जो तीनों लोकों को चलायमान कर दें, भय से कम्पित कर दें लेकिन सम्यग्दृष्टि स्वभाव से निर्भय होने से समस्त शंकाओं को छोड़कर अपनी आत्मा के ध्यान में लीन रहता है, वह सोचता है कि मैं ज्ञानरूपी शरीर को धारण करने वाला हूँ, मेरा ज्ञानरूपी शरीर किसी से

नष्ट नहीं हो सकता, आत्मा अजर-अमर है, वह वज्र के पात से, अग्नि के निमित्त से कभी नष्ट नहीं हो सकती, जल से कभी भीग नहीं सकती, पवन से कभी हिल नहीं सकती, मृत्यु से मर नहीं सकती, ऐसी आत्मा का ध्यान, अनुभव, चिन्तन करते हुए सम्यग्दृष्टि अपने ज्ञान से च्युत नहीं होते हैं। ऐसा साहस करने वाले महासाधु, विचार करके देखा जाए तो हमें और आपको सभी को अच्छे लगते हैं, किसे बुरे लगेंगे। मैं प्रतिदिन, प्रतिक्षण यह भावना भाती हूँ कि हे भगवन्! ऐसे साधु की अवस्था को प्राप्त करने का दिन मेरा कब आएगा? ऐसे मार्ग में संचरण करते हुए मैं प्रशम भाव को धारण करूँ, ऐसा मेरा समय कब आएगा। आज वैसे साधु न मिले तो दूसरे साधु-मुनि-आर्यिका जो कि 28 मूलगुणों का पालन करते हुए आगम की चर्या के अनुरूप प्रवृत्ति करते हैं क्या वे साधु नहीं हैं? ऐसी बात नहीं है।

भावसंग्रह आदि ग्रंथ में साधु के दो भेद किए हैं–1. जिनकल्पी 2. स्थविरकल्पी।

जिनकल्पी ऐसे महासाधु हैं जो एकाकी विचरण करने वाले, गुफाओं में पर्वत की चोटियों पर ध्यान करने वाले महामुनि, उपसर्गविजयी हैं। स्थविरकल्पी जो संघ में रहते हैं, अस्वस्थ होने पर कष्ट आदि को नहीं झेल पाते हैं, तब गुरु उनकी औषधि आदि की व्यवस्था कराते हैं, उनकी परिचर्या करते हैं और उनके चारित्र को पालन कराने में पूर्णरूपेण सहयोगी बनते हैं। वर्तमान में जिनकल्पी होने का एकाकी विचरण का निषेध है क्योंकि आज उत्तम संहनन नहीं है। श्री कुन्दकुन्दस्वामी ने स्वयं कहा है–**''मा भूत मे सत्त्व एकागी''** मेरा शत्रु भी एकाकी विचरण न करे, संघ में ही रहे। इसका मतलब यह है कि पंचमकाल के सभी साधु स्थविरकल्पी हैं। संघ से ही उनकी चर्या निर्दोषपल सकती है।

एक बात मैं आप लोगों को और बताऊँ कि हम साधुओं के दीक्षा लेने के भाव कैसे हुए और हमारा साहस कैसे बढ़ा? इसके लिए भावसंग्रह ग्रंथ में श्री देवसेन आचार्य ने बहुत सुन्दर और महत्त्वपूर्ण श्लोक लिखा है–

वरिस्सहस्सेण पुरा, जं कम्मं हणइ तेण काएण।
ते संपइ वरिसेण हु, णिज्जरयइ हीणसंहणणे।।131।।

चतुर्थकाल में साधु जितने कर्मों को अपने शरीर से 1000 वर्ष में नष्ट करते थे, उतने कर्मों को वर्तमान काल में हीन संहननधारी साधु 1 वर्ष में नष्ट कर देते हैं। आप उदाहरण देख लीजिए भगवान ऋषभदेव की आयु 84 लाख पूर्व वर्ष की थी, उन्होंने एक हजार वर्ष में कर्म नष्ट करके केवलज्ञान प्राप्त किया। भगवान महावीर को 12 वर्ष में केवलज्ञन हो गया।

मैं अपनी बताऊँ, जैसा मैंने अनुभव किया है। सन् 1952 में मैंने घर छोड़ा, सन् 1953 में मैंने दीक्षा धारण की, उस समय की शक्ति और संहनन बहुत अच्छा था। सन् 1962 की दिसम्बर में मैंने सम्मेदशिखर की यात्रा के लिए विहार किया, उस समय प्रातः पौष, माघ की भयंकर ठण्डी में हम लोग विहार कर देते थे जबकि कुहरे के कारण एक-दूसरे का हाथ भी नहीं दिखता था। धोती एकदम गीली हो जाती थी फिर भी जुकाम, बुखार

नहीं आता था लेकिन आज क्या है? शरीर वही है, पर धीरे-धीरे शक्ति और संहनन में इतनी कमी आई है कि सर्दी में अन्दर कमरे में बैठे-बैठे ही जरा सी बाहर बारिश हुई कि जुकाम हो जाता है, छींक आने लगती है, हाथ पैर गलने लगते हैं। उस समय ऐसे मौसम में भी विहार करते-करते हम लोग छः महीने में सम्मेदशिखर पहुँच गये थे लेकिन 2002 में जब दिल्ली से कुण्डलपुर के लिए विहार किया, तब कुण्डलपुर पहुँचने में एक वर्ष लग गया। एक चातुर्मास प्रयाग में किया फिर कुण्डलपुर पहुँची, बात यही है कि उम्र के अनुसार शक्ति की हीनता अपने शरीर में ही आती है जिसे हम सभी अनुभव करते हैं।

युवावस्था में मैं 2-2 घंटे एक आसन से बैठ जाती थी, पिण्डस्थ, पदस्थ आदि का ध्यान भी करती थी। 2-2 घंटे आसन नहीं बदलती थी और आज 48 मिनट भी एक आसन में बैठना कठिन हो जाता है। कहीं कमर में दर्द हो जाता है, कहीं पैर में। बात यही है कि समय के अनुसार शक्ति में अन्तर तो पड़ता ही है। चतुर्थकालीन साधु की शक्ति और वर्तमानकालीन साधु के शरीर की शक्ति में बहुत ज्यादा अन्तर है।

आज सभी का शरीर माता-पिता के रजवीर्य से बना हुआ है। मैं हमेशा चिन्तन करती हूँ और कहती हूँ कि आप जो चतुर्थकालीन साधु, जिनकल्पी, एकाकी विचरण करने वाले महान साधु, पर्वत की चोटी पर ध्यान करने वाले, वज्र भी सिर पर गिरे, कोई सिगड़ी भी जला दे, ऐसे साधु को ढूंढ रहे हैं। देखो! पाण्डवों को मुनि अवस्था में लोहे के तपाये हुए आभूषण पहना दिए, पर वे आत्मध्यान में लीन होकर कर्मों को नष्ट करके क्षणमात्र में मोक्ष को प्राप्त हो गये। तद्भव मोक्षगामी-चरम शरीरी ऐसे साधु को आप ढूंढ रहे हैं, तो हम ढूंढ रहे हैं चतुर्थकालीन श्रावक को। देखो! वारिषेण, सुदर्शन श्रावक अष्टमी-चतुर्दशी को श्मशान भूमि में जाकर वस्त्र का त्याग करके नग्न होकर ध्यान में पाषाण की मूर्ति के समान खड़े हो जाते थे। एक बार राजा श्रेणिक के सुपुत्र वारिषेण कुमार के सामने ध्यान अवस्था में चोर ने एक हार चोरी करके लाकर डाल दिया। कर्मचारियों ने समझा यही चोर है उन्होंने राजा श्रेणिक से जाकर सब बता दिया। राजा श्रेणिक ने कहा– इसे मृत्युदण्ड दिया जाए, तलवार की धार से इसकी गर्दन अलग कर दो लेकिन वारिषेण की तपस्या का प्रभाव, वह तलवार फूल की माला बन गई। जब राजा श्रेणिक को पता लगा तो वे दौड़े-दौड़े आए और अपने पुत्र से माँफी मांगने लगे लेकिन वारिषेण कुमार ने कहा– पूज्य पिताजी! इसमें आपका कोई दोष नहीं है। यह तो मेरे पूर्वजन्म के अशुभ कर्मका उदय आ गया था लेकिन आज मैंने नियम कर लिया था कि अगर मैं इस संकट से बचूँगा तो मैं नियम से जैनेश्वरी दीक्षा ले लूँगा, करपात्र में ही आहार करूँगा, अब वस्त्र पहनकर घर नहींजाऊँगा।

तो आज हमें भी ऐसे श्रावक चाहिए। जब आप ऐसे श्रावक बनोगे तो ऐसे मुनि भी बन जायेंगे, जैसे की आप चाहते हो। आप में से ही मुनि बनेंगे। मुनि अलग आकाश से नहीं गिरते हैं, कहीं स्वर्ग से नहीं आते हैं वे भी आप जैसे माता-पिता से ही जन्म लेकर मुनि बनते हैं।

सेठ सुदर्शन जी भी अष्टमी-चतुर्दशी को श्मशान भूमि में जाकर नग्न दिगम्बर मुनि बन करके ध्यान में लीन हो जाते थे। एक बार रानी सेठ सुदर्शन पर मोहित हो गई थी, तब उसने युक्ति से श्मशान भूमि में दासियों को भेजकर उन्हें महल में उठवा लिया। रानी ने लाखों चेष्टाएं की लेकिन वे रंचमात्र भी चारित्र से च्युत नहीं हुए। **'काष्ठवत् त्यक्त देहा'** काठ की मूर्ति के समान, पत्थर की मूर्ति के समान बने रहे, टस से मस नहीं हुए। उन्होंने रानी के उपसर्ग को पूर्णरूपेण सहन किया। जब रानी ने देखा कि इस पर कोई असर नहीं हो रहा है और प्रातःकाल होने को है, तब उसने उपद्रव कर दिया। अपने कपड़े फाड़ दिए, शरीर पर खरोंचे बना लीं और कहा कि यह मेरा शील भंग करने आया था। जब राजा को इस बात का पता चला तो उन्होंने आकर सेठ सुदर्शन के लिए प्राणदण्ड का हुक्म दे दिया लेकिन उनकी भी देवों ने आकर रक्षा की। तलवार की धार फूलों की माला बनती चली गई। हम भी ऐसे श्रावकों को चाहते हैं कि जो अष्टमी, चतुर्दशी को उपवास करें, ध्यान करें। आज ऐसे श्रावक हों तो हमें कितना अच्छा लगे।

शिवकुमार श्रावक जो कि चक्रवर्ती के पुत्र थे, जिन्होंने तीन हजार वर्ष तक रानियों के बीच में रह करके अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत पाला और उन्हें उपदेश दिया। उसके मित्र भोजन लाकर भोजन कराते थे, तो वे करते थे। पिता ने दीक्षा लेने की आज्ञा नहीं दी थी। घर में रहकर उन्होंने इस प्रकार से असिधारा व्रत पाला था। कालान्तर में वे मरकर जम्बूकुमार हुए हैं। माँ-पिता ने जम्बूकुमार की जबरदस्ती शादी कर दी। रात्रि में उसकी चारों पत्नियाँ उसे समझाती रहीं, राग की बातें करती रहीं लेकिन वे वैराग्य की बातें करते रहे और प्रातः मुनिराज के पास जाकर दीक्षा ले ली। तो ऐसे श्रावक बनो, यह हम भी चाहते हैं, बात यही है कि कहना सहज है लेकिन आज आप चतुर्थकालीन श्रावक नहीं बन सकते, अप रात्रि भोजन नहीं त्याग कर सकते, प्रातः होते ही आपको चाय चाहिए। आप संयम नहीं धारण कर सकते, व्रती नहीं बन सकते, अणुव्रती नहीं बन सकते, प्रतिमाधारी नहीं बन सकते।

फिर भी आज आप घर में रहकर 6 प्रतिमा तक धारण कर सकते हैं, घर में पत्नी के बीच रहते हुए ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर सप्तम प्रतिमा धारी श्रावक बन सकते हैं। सोलापुर में श्रीगुलाबचंद चंडक और उनकी पत्नी सप्तम प्रतिमाधारी थे, घर में रहते थे। उनके साथ में एक और सज्जन शायद कस्तूरचंद नाम था, वे भी सप्तम प्रतिमाधारी थे। जब हमने सोलापुर से विहार किया तो वे विहार में संघ का संचालन करते हुए साथ में रहे। ऐसे अनेकों श्रावक देखे जाते हैं।

आचार्यों ने पंचमकाल के साधुओं के लिए कहा है कि वे मंदिरों में, शहरों में, गाँवों में, खाली मकान में, धर्मशाला आदि में रह सकते हैं इसमें कोई बाधा नहीं है। मैंने इसके बहुत से प्रमाण 'दिगम्बर मुनि' और 'प्रवचननिर्देशिका पुस्तक में दिये हैं। सम्यग्ज्ञान में भी बहुत से प्रमाण छपाए हैं। चतुर्थकाल में भी मुनि घरों में, धर्मशालाओं में, मंदिरों में रहते थे। श्रीरामचन्द्रजी जिस समय वन में चले गये, उनके भाई भरत अयोध्या के मंदिर में पहुँचे

और वहाँ द्युति नाम के भट्टारक–आचार्य विराजमान थे, उनका बहुत बड़ा संघ था भरत ने उनसे नियम लिया कि मेरे भाई श्री रामचन्द्र जी के वापस आने के बाद मैं दीक्षा ले लूँगा आदि-आदि। और भी बहुत से उदाहरण हैं–मुनियों के संघ, आर्यिकाओं के संघ मंदिर में रहते थे। आप पुराण पढ़ के देखें तो ज्ञात होगा कि पहले सब साधु जंगल में ही रहते थे, ऐसी बात नहीं है।

पंचमकाल में आज संहनन हीन होने से तपस्या विशेष नहीं हो सकती है। जंगल में ध्यान विशेष नहीं हो सकता है। आतापन योग आदि तो उत्तरगुण हैं। 28 मूलगुणों का पालन करने वाले साधु आज भी हैं। 28 मूलगुणों का कोई जंगल से संबंध नहीं है। आतापनयोग करना, प्रतिमायोग करना, जंगल में जाकर ध्यान में खड़े होना, जंगल में रहना आदि उत्तरगुण हैं। आज हीन संहनन से जितना तपश्चरण आदि करके कर्म निर्जरा कर रहे हैं, उससे शीघ्र मोक्ष के निकट पहुँच रहे हैं। आगे निसर्गतः ऐसी शक्ति प्रगट होगी। इस भव में तो निश्चित है, मोक्ष तो होगा नहीं। स्त्री पर्याय से मोक्ष होता नहीं। पुरुषों को भी पंचमकाल में मोक्ष होगा नहीं, वे स्वर्ग जायेंगे, वहाँ देव होंगे और वहाँ से आकर मनुष्य बनेंगे, तब तक चतुर्थकाल आ जायेगा क्योंकि देवों की जघन्य आयु 84 हजार वर्ष है। तब इतनी शक्ति अपने आप मिल जायेगी कि खूब अच्छी तरह से परीषहों और उपसर्गों को सहन करके, आतापन आदि योगों को धारण करते हुए कर्मों की निर्जरा करते हुए मोक्ष को प्राप्त कर लेंगे।

चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज का उदाहरण मैं दिया करती हूँ–जब आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज कोन्नूर की एक गुफा में बैठे हुए थे, उस समय दो ब्रह्मचारी उनके पास पहुँचे, उन्होंने उन्हें नमस्कार नहीं किया। उनके नाम थे–खुशालचंद जी पहाड़े और हीरालाल जी गंगवाल। उन्होंने महाराज से प्रश्नोत्तर चालू कर दिया, फिर बीच में ही बोले–मुनि श्री! हम आपको साधु नहीं मानते, साधु को तो अवधिज्ञान होना चाहिए, ऋद्धियाँ होनी चाहिए, जो आपमें दिखती नहीं हैं। महाराज जी ने प्रेम से ही उन्हें उत्तर दिया, ठीक है, मत मानो बाबा। वे और भी जो प्रश्न करते रहे, वे शान्तिपूर्वक उनका उत्तर देते रहे। मुनि श्री शांतिसागर जी महाराज बहुत विलक्षण बुद्धि के धारक महान थे, उन्हें अपने चारित्र पर बहुत गौरव, आत्मविश्वास और स्वाभिमान था कि हम निर्दोष चारित्र को पालन करने वाले सच्चे साधु हैं। भगवान महावीर के शासन में कुन्दकुन्ददेव के मूलाचार के अनुसार हमारी प्रवृत्ति है। भगवती आराधना आदि ग्रंथों के अनुसार हमारी प्रवृत्ति है। उन्होंने उन दोनों ब्रह्मचारियों को अपने सामने एक वृक्ष दिखाया, बोले–यह वृक्ष किसका है? वे दोनों बोले–आम का, मराठी में बोले–अम्बा च आहे। तो महाराज बोले–मैं इसको आम का वृक्ष नहीं मानता। उन्होंने कहा–क्यों नहीं मानते? क्योंकि इसमें बौर नहीं है, फल नहीं है, इसलिए हम इनको आम का वृक्ष नहीं मानते। तो ब्रह्मचारी बोल पड़े–अरे महाराज जी! यह आम का ही वृक्ष है, अभी आम का

मौसम नहीं है, जब मौसम आयेगा, तब इसी वृक्ष में बौर आयेगा, फूल आयेगा और इसी में फल आयेगा। बस महाराज जी बोल पड़े–वैसे ही हम साधु हैं, आज हीन संहनन है अतः अवधिज्ञान, ऋद्धि आदि का समय नहीं है, उत्तरगुणों को पालन करने का समय नहीं है, जबकि उनके उत्तरगुण विशेष थे फिर भी उन्होंने कहा कि जब समय आयेगा, चतुर्थकाल आयेगा, उत्तमक्षेत्र, काल, भाव की सामग्री मिलेगी, तब हम घोर तपस्या करके अवधिज्ञान क्या केवलज्ञान प्राप्त कर लेंगे। यह सुन वे दोनों आचार्यश्री के प्रति नतमस्तक हो गये और उन्हें अपना गुरु बना लिया।

देखिए, उनका 36 वर्ष का दीक्षित जीवन जिसमें उनके उपवासों की गणना कीजिए। साढ़े पच्चीस वर्ष की संख्या उपवासों की आती हैं ये उत्तरगुण नहीं तो क्या हैं? बारह प्रकार के तप और 22 प्रकार के परीषहों को सहन करना ये उत्तरगुण हैं। वे गुफाओं में, जंगलों में बैठकर ध्यान करते थे। कई बार उन पर सर्प चढ़ गया, चींटी का उन पर उपसर्ग हुआ, उन्होंने अनेकों उपसर्ग झेले हैं। सर्दी-गर्मी को भी सहन करते थे। 4-4, 5-5 घंटे बैठकर ध्यान किया है। कितने दिनों तक अन्न का त्याग किया है। इसके पूर्व भी एक रस लेते थे।

आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज का आहार मैंने देखा है। श्रावक रोटी बनाकर उसे चूर देते थे, उस रोटी के चूरमे को मट्ठे से वे लेते थे। पहले दूध लेते एक रस। दीक्षा के बाद मैंने उन्हें कभी छहों रस लेते नहीं देखा। 6-6, 7-7 वर्ष तक एक धान लिया है। केवल एक गेहूँ अथवा चावल धान। मैंने स्वयं भी कभी एक रस, कभी दो रस लिया है। बात यह है कि यह सब त्याग करना जिह्वा इन्द्रिय को अपने वश में रखना है। समय-समय पर जितना बन सके, उतना उपवास आदि करना चाहिए। मैंने देखा है एक-एक महीने का उपवास करने वाले भी साधु रहे हैं। हमारे साथ में एक पद्मावती नाम की आर्यिका थी, जिन्होंने दो बार भादों में 1-1 महीने के उपवास किए। पहली बार जब बत्तीस उपवास किए तो उसमें बीच में 1-2 बार पानी और 1-2 बार दूध लिया था, दूसरी बार 32 उपवास में दूध नहीं लिया था, 2 बार पानी लिया था। दूसरी बार 32 उपवास के अंत में उनकी समाधि हुई है। 1 दिन उपवास और 1 दिन पारणा करने वाली, हमारी कई शिष्याएँ रही हैं। आर्यिका पद्मावती, आर्यिका जिनमती आदि जो 1 उपवास, 1 पारणा करके विहार भी करतीं, मेरी वैय्यावृत्ति भी करतीं, स्वाध्याय भी करतीं, पढ़तीं और पढ़ाती भी। उनकी पूरी दैनिक चर्या निराबाध निर्विघ्न चलती थी।

आज भी साधु 10-10 उपवास करके आपके सामने आदर्श प्रस्तुत कर रहे हैं। आपके साधु पदविहार करते हैं, केशलोंच करते हैं, एक बार ही करपात्र में भोजन करते हैं, कभी दूसरी बार भोजन नहीं करते हैं। कितनी भी सर्दी पड़े, केवल घास लेते हैं, कभी कम्बल नहीं लेते हैं। आज साधु समय, शरीर की शक्ति के अनुसार चर्या का पालन कर रहे हैं। तृण–घास लेने की, चटाई, पाटा लेने की शास्त्र में आज्ञा है। आर्यिकाएं एक वस्त्र मात्र परिग्रह रखती हैं, दो साड़ी का नियम है। 1 साड़ी 1 दिन, दूसरी दूसरे दिन। अगर बुखार

आ गया या कोई विशेष समस्या हुई तो यह नहीं कि दूसरी साड़ी ओढ़ लें। उसी एक साड़ी में रहेंगी, दूसरी साड़ी दूसरे दिन पहनेंगी।

सन् 1985 में जब मैं बहुत अस्वस्थ थी, उस समय कई बार यहाँ श्वेताम्बर साध्वियाँ और श्वेताम्बर साधु आ जाते थे। वे मुझसे बहुत आग्रह करते और कहते– अरे! **'आपत्तिकाले मर्यादा नास्ति'।** आप तो और वस्त्र लो, औषधि भी लो, बाद में प्रायश्चित्त ले लेना। क्या होता है? उनके यहाँ साधु अस्वस्थ होते हैं, तत्काल ही हॉस्पिटल ले जाकर भर्ती करा देते हैं, सब दवाई लेते हैं। आप्रेशन, दवाई, इंजेक्शन उनका सब चलता है। रात-दिन का कोई भेदभाव नहीं रहता है। चातुर्मास में भी दूसरे स्थान इलाज कराने ले जाते हैं लेकिन अपनी दिगम्बर चर्या में ऐसा नहीं है। कैसी भी सीरियस स्थिति आ जाये। मई 2007 में मुझे बुखार आ गया था, टाइफाईड हो गया था, जरा सा पानी, रस लेना भी मुश्किल हो रहा था। बैठना मुश्किल हो रहा था, ऐसी स्थिति में भी जैसे-तैसे 24 घंटे में एक बार जरा सा जल, जरा सा शुद्ध चिरायते का काढ़ा लिया। उसी के बल पर, संयम के बल पर, आत्मबल पर ,मनोबल पर और भगवान का नाम स्मरण करते हुए उठकर बैठ गई। तो बात यही है कि आज भी दिगम्बर जैन साधु बीमारी को, कष्ट को झेलते हैं लेकिन चर्या में शिथिलता नहीं आने देते, यह क्या है? यह निर्दोष चर्या आगम के अनुरूप है। देखा जाये तो आज भी दिगम्बर जैन साधु अपने पूरे 28 मूलगुणों का पालन कर रहे हैं।

श्री यतिवृषभाचार्य, श्री कुन्दकुन्ददेव ने कहा है–

भरहे दुस्समकाले, धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।
तं अप्पसहावठिदे, ण हु मण्णइ सो हु अण्णाणी।।

इस भरत क्षेत्र में दुःषमकाल में साधुओं को आत्म स्वभाव में स्थित होने पर धर्मध्यान होता है, शुक्लध्यान नहीं होता, किन्तु जो ऐसा नहीं मानते, वे अज्ञानी हैं, मिथ्यादृष्टि हैं इसलिए हमेशा ध्यान में रखो कि आज भी चतुर्विध संघ परम्परा अविच्छिन्न चल रही है। मुझे आज गौरव है सन् 1952 में जब मैंने घर छोड़ा था, उस समय मुश्किल से अधिकतम 100 के अंदर ही साधु थे। उत्तर और दक्षिण के मिलाकर अधिकतम 15 या 20 मुनि थे, 15-20 करीब आर्यिकाएं थीं, कुछ क्षुल्लक और क्षुल्लिकाएं थीं। आज वृद्धि होते-होते, मेरे देखते-देखते सन् 1952 से आज 1000 से अधिक संख्या में दिगम्बर जैन साधु-साध्वी हैं। मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक और क्षुल्लिका ये पाँच प्रकार के साधु होते हैं, इनमें से लंगोटी मात्र को धारण करने वाले ऐलक हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि आज छोटी-छोटी उमर में दीक्षा ले रहे हैं, तपश्चरण कर रहे हैं, धर्म की खूब प्रभावना कर रहे हैं, पढ़-लिखकर खूब प्रवचन कर रहे हैं और अपनी चर्या निराबाध पाल रहे हैं। वे ध्यान कर रहे हैं, पद विहार कर रहे हैं, केशलोंच कर रहे हैं।

एक बात और ध्यान में रखना कि दिगम्बर जैन साधुओं की चर्या एक खुली किताब है जिसे आप जब चाहे पढ़ लें। वे केशलोंच, आहार, विहार, सामायिक आदि खुले में करते

हैं। सारी चर्या उनकी खुली है, जब चाहे दिन में, रात में आकर उनकी चर्या देख सकते हैं।

सन् 1975-76 में एक फ्रांस की महिला मेरे पास आई – एन. शांता। उन्हें विद्वानों ने मेरे पास भेजा था। वो क्रिश्चियन साध्वी एवं जैन साध्वी पर थीसिस लिख रही थी। लोगों ने कहा कि ज्ञानमती माताजी से जैन साधुओं की चर्या जाकर समझो। वह केवल मुझसे साधुओं की चर्या ही नहीं पूछना चाहती थीं बल्कि वह चाहती थीं कि मैं पूरी चर्या सुबह से शाम तक देखूँ। मैंने कहा – बिल्कुल ठीक है, देखो आप। हम शौच को जाते, लघुशंका को जाते, साथ-साथ आती, महिला थी अतः कोई बात का संकोच नहीं था। हमको देखती, कैसे हम शुद्धी करते हैं, कैसे कायोत्सर्ग करते हैं, कैसे मौन से रहते हैं, इनकी चर्या क्या है, आहार भी पूरा देखती, आहार के बाद उसी थाली का प्रसाद लेती। उस समय मैं नमक नहीं लेती थी, बिना नमक का रूखा-सूखा भोजन। 22 वर्ष तक मेरा नमक का त्याग रहा है। उस समय मैं नमक नहीं लेती, घी नहीं लेती, कभी दूध लिया तो लिया नहीं तो नहीं। ऐसा नीरस भोजन, फिर भी वो कहती कि हम इसी थाली का खायेंगे और भी सब चर्या मेरी देखती कैसे सामायिक करती हैं, कैसे आवर्त करती हैं, कितने आवर्त, कितनी शिरोनति, कितनी बार पंचांग प्रणाम, कितनी बार किस प्रकार कौन सी मुद्रा से सामायिक भक्ति का पाठ करना, चैत्यभक्ति का पाठ करना आदि सारी क्रियाएं बहुत बारीकी से देखती थीं। माताजी एक साड़ी कैसे पहनती हैं? कैसे एक साड़ी में रहती हैं, ये सारी क्रियाएँ देखती। तो बात यही है कि जैन साधु की सारी क्रियाएँ खुली किताब है। जब चाहे आप उसे देख लो और दूसरे साधुओं को मैंने देखा है कि भोजन कमरा बंद करके करते हैं, प्रतिक्रमण में किसी को आने नहीं देते हैं..... आदि।

कलकत्ते में जब मेरा चातुर्मास हुआ था, उस समय कुछ लोगों ने कुछ चर्चाएँ उठाई थीं, उस समय मैंने उनसे कहा था कि आप यह नियम करो कि पहले हम एक महीना साधु के संघ में रहेंगे, फिर आप अनुभव करेंगे कि ये पंचमकालीन साधु सही हैं, सच्चे हैं कि नहीं, भावलिंगी हैं कि नहीं और निर्दोष चारित्र को पालन करते हैं कि नहीं।

पण्डित श्री जगन्मोहनलालजी-कटनी ने आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज की महीनों परीक्षा की थी गुप्तचर बन करके, सी.आई.डी के रूप में परीक्षा करते रहे थे। जब उन्हें महाराज की चर्या अच्छी लगी, तब उन्होंने अपने आपको महाराज के प्रति समर्पित किया और उनसे प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए। यह संस्मरण उन्होंने स्वयं लिखा हुआ है। बात यही है जब अजीब व्यक्ति निकट आता है, तब उसे साधु के बारे में सही पता चलता है कि ये कैसे हैं, क्या हैं?

जो साधुओं को नहीं मानते हैं, मेरा उनके लिए बार-बार कहना है, आह्वान है, चैलेंज है कि आओ, साधुओं की चर्या देखो और स्वयं साधु बनकर दिखाओ, तब ज्ञात होगा कि साधु की कैसी चर्या पंचमकाल में होती है? इस प्रकार देखा जाये तो यह बिल्कुल सत्य है कि जब आप चतुर्थकालीन श्रावक बनकर दिखायेंगे तो आपको अवश्य चतुर्थकालीन मुनि भी दिख जायेंगे।

प्रवचन नं.–5

समवसरण की महिमा

श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमित विद्वषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते।।

भव्यात्माओं! समवसरण की महिमा और समवसरण कैसा होता है? इस बारे में मैं संक्षेप में किंचित् वर्णन करती हूँ। विस्तार से आप ग्रंथों में पढ़ें, उसका कितना सुन्दर वर्णन है। उसका वर्णन साक्षात् गणधरदेव भी पूर्णरूपेण नहीं कर सकते। प्रश्न यह उठता है कि समवसरण किनका बनता है? जो भव्य जीव हैं, जो महापुरुष संसार में रहते हुए सम्यग्दृष्टि बन करके सोलहकारण भावनाओं को भाते हैं। तीर्थंकर केवली भगवन्तों के पादमूल में या श्रुतकेवली के पादमूल में दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं का चिन्तन करते हैं, उस रूप अपनी प्रवृत्ति बना लेते हैं, वही महापुरुष तीर्थंकर प्रकृति का बंध करते हैं। तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके मनुष्य स्वर्ग में जाकर देव होते हैं और जब वहाँ से मध्यलोक में अवतीर्ण होने को होते हैं, तब छः महीने पहले से ही रत्नों की वर्षा आदि का होना शुरू हो जाता है। तीर्थंकर भगवान का गर्भकल्याणक, जन्मकल्याणक, दीक्षाकल्याणक इन्द्रगण मनाते हैं। तपश्चरण करते हुए तीर्थंकर भगवान जब शुक्लध्यान के बल से घातिया कर्मों को नाश करके केवली बन जाते हैं अर्थात् केवलज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं कि उसी क्षण एक सेकेण्ड में ही इन्द्रों के आसन कम्पित हो उठते हैं। इन्द्रगण असंख्य देव परिवार के साथ भगवान के समवसरण के दर्शन के लिए आते हैं। उसके पूर्व इन्द्र कुबेर को आज्ञा देते हैं और कुबेर आ करके इस मध्यलोक में अर्धनिमिष मात्र में भगवान का समवसरण आकाश में अधर बना देता है अर्थात् व्यवस्था यह है कि भगवान के केवलज्ञान होते ही वे पृथ्वीतल से 5000 धनुष यानि 20 हजार हाथ ऊपर आकाश मेंअधर पहुँच जाते हैं। उसी क्षण इन्द्र की आज्ञा से कुबेर के द्वारा समवसरण की रचना बनजाती है और भगवान समवसरण में गंधकुटी में चार अंगुल अधर विराजमान हो जाते हैं।

समवसरण में पृथ्वी से एक हाथ ऊपर से सीढ़ियाँ शुरू होती हैं क्योंकि समवसरण पृथ्वी का स्पर्श न करते हुए अधर ही रहता है, चारों तरफ एक-एक हाथ ऊँची, ऐसी 20 हजार सीढ़ियाँ होती हैं। इनसे चढ़कर मनुष्य, तिर्यंच आदि सभी भव्य जीव बाल, वृद्ध, अंधे, लूले, लंगड़े, रोगी आदि सभी अन्तर्मुहूर्त यानि 48 मिनट में ऊपर पहुँच जाते हैं, ये समवसरण की अपनी एक विशेष महिमा है। भगवान ऋषभदेव के समवसरण का विस्तार 12 योजन का था। एक योजन में 4 कोस और 8 मील होता है अतः 96 मील का भगवान ऋषभदेव का समवसरण और भगवान महावीर स्वामी का समवसरण एक योजन का अर्थात् 8 मील का सबसे छोटा था। बीच के तीर्थंकरों के समवसरण क्रमशः घटते-घटते आए हैं। भगवान ऋषभदेव का समवसरण इन्द्रनील मणि की सुन्दर 12 योजन चौड़ी गोलाकार शिला पर और भगवान महावीर का समवसरण 1 योजन विस्तृत गोलाकार

शिला पर बना था। आज कल जो लोग समवसरण की रचना क्रम से सीढ़ियों के समान बनाते हैं, स्टेप बाई स्टेप, ये आगम के अनुकूल नहीं है। समवसरण की व्यवस्था तो समतल पर ही बनती है। उसमें आठ भूमियाँ होती है। ये भूमियाँ एक के ऊपर एक, एक के ऊपर एक ऐसी, नहीं दिखाई जा सकती हैं। प्राचीन समवसरण आप जहाँ भी देखेंगे, वे सब समतल पर बने हुए हैं। अजमेर में शहर के मंदिर में, सुजानगढ़ में समतल पर समवसरण बना है। नया समवसरण आप देखिए अयोध्या में, प्रयाग में मेरी प्रेरणा से समतल पर बना हुआ है। ये समवसरण शास्त्रोक्त विधि से बने हुए हैं, इनमें पृथ्वी तल पर आठ भूमियाँ दिखाई गई हैं।

इस समवसरण में चार परकोटे होते हैं, पाँच वेदियाँ होती हैं। चार परकोटे और पाँच वेदियों के अन्दर अन्तराल में आठ भूमियाँ हो जाती हैं। चारों दिशा में बहुत विस्तृत वीथी, जिसे शास्त्रीय भाषा में वीथी कहा है अर्थात् बड़ी-बड़ी और बहुत चौड़ी-चौड़ी गलियाँ होती हैं। भगवान ऋषभदेव के समवसरण में 2-2 कोस की बहुत चौड़ी गलियाँ थी। प्रत्येक चारों गलियों में क्रम से सबसे प्रथम बहुत ऊँचे मानस्तंभ के दर्शन होते हैं। ये मानस्तंभ भगवान के शरीर की ऊँचाई से 12 गुने ऊँचे माने गये हैं। इनमें बहुत सुन्दर हजार पहलू माने गये हैं। इनके ऊपर भगवान की प्रतिमाएं रहती हैं। इन मानस्तंभ के दर्शन से मानियों के मान गलित हो जाते हैं। मिथ्यात्व खण्ड-खण्ड हो जाता है और सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है। इसमें प्रत्येक परकोटे और वेदियों में चारों दिशाओं में एक-एक गोपुरद्वार हैं। जिनमें से पूर्व दिशा के गोपुर द्वार का नाम है विजय। दक्षिण के गोपुरद्वार का नाम है वैजयन्त। पश्चिम में जयंत और उत्तर में अपराजित ऐसे नाम वाले 4 गोपुर द्वार अर्थात् मुख्य द्वार बने हुए हैं। इन चारों के उभय पार्श्व भाग में 2-2 नाट्यशालाएं रहती हैं। जिनमें देवांगनाएं भगवान की भक्ति में विभोर होकर पुष्पांजलि बिखेरकर नृत्य करती रहती हैं। भगवान के गुणों का गान करती रहती हैं। वहाँ द्वार के दोनों ओर नवनिधियाँ, मंगल घट, धूपघट आदि स्थित रहते हैं। प्रत्येक परकोटे के द्वारों पर देवगण हाथ में दण्ड-मुद्गर आदि लेकर द्वारपाल के समान रक्षक बनकर खड़े रहते हैं।

इस समवसरण में प्रवेश करते ही चारों गली में दिव्य रत्नमयी मानस्तंभ जो कि भगवान से 12 गुने ऊँचाई से बना होता है, दिव्य इनकी आभा-प्रभा बहुत दूर तक फैलती है, ये बहुत दूर से ही दिखने लगते हैं। केवली भगवान के प्रभाव से जहाँ उनका समवसरण रहता है, वहाँ चारों तरफ चार सौ कोस तक सुभिक्ष रहता है। दुर्भिक्ष अर्थात् अकाल नहीं पड़ता है। हिंसा, उपसर्ग आदि नहीं होते हैं। सभी जन्मजात शत्रु पशु सिंह, हिरण आदि आपस में मैत्री भाव को धारण कर लेते हैं। छहों ऋतुओं के फल-फूल एक साथ आ जाते हैं। ये विशेषता, चमत्कार अतिशय दिखने लगता है। भगवान जब श्रीविहार करते हैं यानि आकस्मिक भगवान खड़े हुए चल पड़े तो समवसरण विघटित हो जाता है यह निःसर्ग प्रक्रिया होती है, किसी के निवेदन से या किसी के आग्रह से नहीं होती है किन्तु **''भवि**

भागन वश जोगे वसाय'' भव्यों का भाग्य जिधर जोर मारता है, उधर ही अपने आप भगवान का श्रीविहार हो जाता है। आकाश में अधर भगवान चलते हैं, उनके चरण कमल के नीचे देवगण स्वर्णमयी कमलों की रचना करते हैं। वह स्वर्णिम कमल सुगंधित रहते हैं। कहते हैं सोने में सुगंधि आ गई तो सोने में सुगंधि केवल भगवान के श्रीविहार में उनके चरण के नीचे जो कमल हैं, उसी से आती है और कभी किसी सोने में सुगंधि नहीं आती है। अहिंसा धर्म के लिए सूचक दिग्विजय के समान जब भगवान का श्रीविहार होता है, तब उनके आगे-आगे धर्मचक्र चलता है जिसमें हजार आरे होते हैं। भगवान के आजू-बाजू में लक्ष्मी और सरस्वती देवी चलती हैं। सरस्वती के हाथ में वीणा, पुस्तक आदि रहती है। लक्ष्मी के हाथ में कमल रहता है। असंख्य देवगण-देवियाँ चलते हैं। इन्द्राणीगण सब भगवान के पीछे-पीछे चलते हैं। साधारण मुनि, आर्यिकाएं, मनुष्य, पशु आदि सब नीचे चलते हैं। भगवान जहाँ रुकें, वहीं एक सेकेण्ड के अंदर कुबेर दिव्य समवसरण की आकाश में अधर रचना कर देता है। समवसरण में पहले पंचवर्णी सुन्दर रत्नों से निर्मित धूलिसाल परकोटा होता है। फिर चैत्यप्रासाद भूमि होती है। इसमें 1-1 मंदिर के अंतराल में देवों के 5-5 प्रासाद होते हैं। बहुत सुन्दर रचना होती है। जगह-जगह बावड़ियाँ, जगह-जगह बगीचे, जगह-जगह सुन्दर-सुन्दर क्यारी आदि। ऐसे सुन्दर छोटे-छोटे पहाड़ वगैरह दिखाए जाते हैं, जिनमें लोग क्रीड़ा करते हैं। धूलिसाल परकोटे के बाद एक वेदी आती है। वेदी के बाद दूसरी भूमि आती है खातिका भूमि। यह भगवान की अवगाहना प्रमाण से चतुर्थांश प्रमाण गहरी रहती है। इसमें स्वच्छ जल भरा रहता है। इसमें हंस आदि प्राणी कलरव ध्वनि करते रहते हैं, कमल आदि इसमें खिले रहते हैं पुनः एक वेदी आ जाती है– स्वर्णिम वेदिका। परकोटे से वेदी नीची रहती है पुनः तीसरी भूमि आती है– लता भूमि। इसमें छहों ऋतुओं के बहुत सुन्दर पुष्प खिले रहते हैं। यहाँ के पुष्पों को लेकर चक्रवर्ती आदि महापुरुष आगे बढ़ते हुए भगवन्तों की पूजा करते हुए जाते हैं पुनः आगे परकोटा आता है। फिर चौथी उपवन भूमि आती है इसमें पूर्व आदि दिशा में क्रम से अशोक, सप्तच्छद, चम्पक और आम्र के उद्यान– बड़े-बड़े बगीचे रहते हैं। प्रत्येक वन में प्रत्येक बगीचे में एक-एक चैत्यवृक्ष है, जैसे पूर्व में अशोक वृक्ष है जोकि भगवान की ऊँचाई से 12 गुना ऊँचा हैद्ध उसमें चैत्यवृक्ष माना गया है, उसकी कटनी पर चारों तरफ 1-1 प्रतिमाएं होती हैं, उनके आगे छोटे-छोटे मानस्तंभ होते हैं आदि। ये प्रतिमाएं पूज्य होती हैं जिनको इन्द्रगण भी नमस्कार करते हैं, मनुष्य भी नमस्कार करते हैं। ऐसी चार-चार जिनप्रतिमाएं 1-1 चैत्यवृक्ष में विराजमान रहती हैं। तो इस उपवन भूमि में अशोक, सप्तच्छद, चंपक और आम्रवन में एक-एक चैत्यवृक्ष और एक-एक चैत्यवृक्ष में 4-4 प्रतिमाएं और 1-1 प्रतिमाओं के सामने 1-1 मानस्तंभ आदि ये सब व्यवस्थाएं बहुत सुन्दर रहती हैं।

पाँचवी भूमि 'ध्वजाभूमि' है, इसमें 10 प्रकार की ध्वजाएं होती हैं जिसमें सुन्दर चिन्ह बने रहते हैं। ये सब रत्नों की बहुत सुन्दर ध्वजाएं हैं, जो कि हवा के झकोरों से हिलती

हैं। इनमें सिंह, गज, वृषभ, गरुड़, मयूर, चन्द्र, सूर्य, हंस, चक्र और पद्म ये चिन्ह बने हुए हैं। इन दश चिन्हों से चिन्हित महाध्वजाएं और उनके आश्रित 108-108 लघु ध्वजाएं होती हैं। सब मिला करके चार लाख सत्तर हजार आठ सौ अस्सी ध्वजाएं इस भूमि में हो जाती हैं।

आगे छठी कल्पवृक्ष भूमि है, जिसे कल्पभूमि भी कहते हैं। इसमें भूषणांग आदि नाम के दस प्रकार के कल्पवृक्ष हैं। दस जाति के 10-10 कल्पवृक्ष रहते हैं। जैसे भोगभूमियों में कल्पवृक्ष माने हैं, वैसे ही ये पृथ्वीकायिक हैं, वनस्पतिकायिक नहीं है। इसमें वैसे-वैसे ही फल को देने वाले कल्पवृक्ष रहते हैं। इस भूमि में चारों दिशाओं में क्रम से नमेरु, मंदार, संतानक और पारिजात ऐसे एक-एक सिद्धार्थ वृक्ष भी हैं, जिन पर चार-चार सिद्धों की प्रतिमाएं विराजमान हैं अतः सिद्धार्थवृक्ष इनका नाम सार्थक है। मेरी प्रेरणा से त्रिलोकपुर में एक पारिजात सिद्धार्थवृक्ष बनवाया गया है, जिसमें चारों ओर सिद्ध प्रतिमाएं विराजमान की हैं जिसका दर्शन करने लोग अतिशय क्षेत्र त्रिलोकपुर में पहुँच जाते हैं। हमें तो उसका दर्शन कर बड़ा आनंद आता है। महावीर जी में शांतिवीर नगर में मेरी प्रेरणा से एक मंदार सिद्धार्थ वृक्ष विराजमान किया गया है। इसमें भी चार सिद्धों की प्रतिमाएं विराजमान हैं। लोग दर्शन करके अपने मनोरथों को सफल किया करते हैं।

सातवीं भूमि भवनभूमि है। इस भवनभूमि में बहुत सुन्दर-सुन्दर भवन बने हुए हैं। ये सब कुबेर के द्वारा निर्मित हैं। इसके पार्श्वभागों में नव-नव स्तूप बने हैं। नव-नव स्तूपों में अर्हंत और सिद्धों की प्रतिमाएं विराजमान हैं। ये बहुत सुन्दर स्तूप हैं, इसका वर्णन आप तिलोयपण्णत्ति, महापुराण आदि ग्रंथों में पढ़ें, बहुत सुन्दर रचना है। इन प्रतिमाओं को महामुनि चारणऋद्धिधारी आदि भी नमस्कार करते हैं, इनकी वंदना करते हैं।

आठवीं भूमि का नाम है श्रीमण्डपभूमि। इस श्रीमण्डपभूमि में 16 दिवाल हैं। बीच में 12 कोठे अर्थात् कक्ष हैं। प्रथम कक्ष में गणधर आदि महामुनि बैठते हैं एवं सभी प्रकार के मुनि बैठते हैं। दूसरे कक्ष में कल्पवासिनी देवियाँ रहती हैं। तीसरे में आर्यिकाएँ और श्राविकाएँ रहती हैं। चौथे में ज्योतिर्वासी देवियाँ, पाँचवें में व्यंतर देवियाँ, छठे में भवनवासिनी देवियाँ, सातवें में भवनवासी देव, आठवें में व्यंतर देव, नवमें में ज्योतिषी देव, दसवें में कल्पवासी देव, ग्यारहवें में चक्रवर्ती आदि मनुष्यगण और बारहवें में सिंह आदि तिर्यंच बैठते हैं। इन 12 सभाओं में क्रम से ये सब बैठकर भगवान की दिव्यध्वनि को सुन करके धर्मामृत का पान करके अपने जीवन को धन्य करते हैं। इन बारह कोठों में–कक्षों में असंख्यातों भव्य जीव बैठकर धर्मोपदेश सुनते हैं। असंख्यात कैसे हुए तो मैं आपको बताऊँ, यहाँ देव-देवियों की संख्या असंख्यात मानी है। समवसरण में असंख्यातों देव-देवी आ जाते हैं और ये भगवान के 8 मील के समवसरण में आठवीं भूमि में एक कक्ष में समा जाते हैं। ऐसी एक विशेषशक्ति विशेष महिमा, विशेष चमत्कार, समवसरण का है। मनुष्य तो संख्यात ही होते हैं। सिंह आदि तिर्यंच भी संख्यात हैं। मुनि भी संख्यात ही

बैठते हैं। आर्यिकाएँ-श्राविकाएँ भी संख्यात ही रहती हैं। समवसरण में जो प्राणी बैठते हैं, उनको न तो रोग है न शोक है, न जन्म है न मरण है, न उपद्रव है न कोई बाधाएं हैं, वे सब निराबाध होकर एक-दूसरे का स्पर्श न करते हुए, एक-दूसरे को बाधा न पहुँचाते हुए सुख शांतिपूर्वक बैठते हैं। यह भगवान की भक्ति का एक महात्म्य, उनके समवसरण का महात्म्य–चमत्कार समझना चाहिए।

अब मैं आपको अक्षीण ऋद्धि के बारे में बताती हूँ–अक्षीण ऋद्धि के दो भेद हैं- महानस और महालय। जिस जगह अक्षीण महालय ऋद्धि के धारी मुनि बैठ जाएँ तो वहाँपर भले ही वह कक्ष छोटा ही क्यों न हो, दस फुट का ही क्यों न हो, उसमें असंख्यातेंादेव-देवी आ करके बैठ करके उनका प्रवचन सुन लेंगे। यह विशेषता जब एक ऋद्धिधारी मुनि में आ सकती है तो भगवान के समवसरण में ऐसी बड़ी विशेषता आ जाए, यह कोई बहुत बड़े आश्चर्य की बात नहीं है। ऐसे मुनि जिनको अक्षीण महालय ऋद्धि हो जाती है, तो चक्रवर्ती का कटक भी पूरा वहाँ आ जाये, उनके सानिध्य में बैठ जाए और प्रवचन सुन ले लेकिन वोई बाधा नहीं आती है। यह तो अक्षीण महालय ऋद्धि हुई। अक्षीण महानस ऋद्धि का प्रभाव है कि जिस घर में उनका आहार हो जाये, भले ही एक छोटे से पात्र में एक किलो की ही खीरबनाई गई हो, लेकिन उस खीर से मुनि का आहार करा देने के बाद वह खीर अक्षय हो जातीहै, उस दिन चक्रवर्ती के पूरे कटक को भी जिमा दे, सारे गाँव को, कितने ही लोगों को जिमा दे, हजारों, लाखों, करोड़ों लोगों को जिमाते चले जायें, लेकिन वह खीर कम नहींपड़ेगी, यह अक्षीण महानस ऋद्धि का प्रभाव है। ये ऋद्धियाँ चतुर्थकाल में प्रकट होती थीं, आज तो नहीं दिखती हैं। फिर भी में आपको बताऊँ कि जो विशेष तपस्वी और भावलिंगी निर्दोषचारित्र का पालन करने वाले चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज महासाधु हुए हैं, उनके आहार होने में, आहार के बाद में बहुत बार ऐसा देखा जाता है कि भोजन खूब वृद्धिंगत हो गया। तमाम लोगों ने जीम लिया, फिर भी घटा नहीं। ऐसे बहुत से दृश्य आज भी देखे जाते हैं। मैंने स्वयं भी कई बार ऐसे अनुभव किए हैं, देखे हैं, सुने हैं। सन् 1993 में अयोध्या की तरफ मेरा संघ सहित विहार हो रहा था। फतेहपुर नाम के गाँव में हम लोग ठहरे हुए थे। धर्मशाला में हमारे संघ के संचालक, प्रद्युम्न कुमार शाह (टिकैतनगर) ने खीर बनाई थी, थोड़ी सी खीर थी। सहज मैं उधर से निकली, वे बोले– माताजी खीर तो थोड़ी ही बन रही है। आज जीमने वाले बहुत लोग आ रहे हैं, मुझे दूध ज्यादा नहीं मिल पाया है, क्या करूँ, मैं चाहता हूँ सबको खीर मिल जाये। मैंने कहा–चिंता न करो, सबको खीर मिल जायेगी। फिर क्या हुआ, बाद में वे आकर बोले–माताजी! आज मैंने कितने लोगों को खीर खिला दी लेकिन खीर कम नहीं हुई, घटी नहीं शाम तक भी वह खीर उन लोगों ने खाई। तो ऐसा कभी-कभी देखने में आता है, सुनने में तो बहुत बार आ जाता है। भगवान की महिमा का तो वर्णन इन्द्र भी नहीं कर सकते। गणधर देव भी नहीं कर सकते तो हम और आप जैसे क्या कर पायेंगे, उनकी महिमा तो अचिन्त्य है। आठ

भूमियाँ जो मैंने बताई, उनके बीच में चार परकोटे हैं। पहला परकोटा धूलिसाल है, जो पंचरंगी है, दूसरा परकोटा स्वर्णिम है, तीसरा परकोटा बीच में आता है, जो रजतमयी है और चौथा परकोटा जो श्रीमण्डप भूमि के पहले आता है, वह परकोटा स्फटिक मणि का बना हुआ है और उसमें जो दीवालें हैं, वह भी स्फटिक मणि से बनी हुई हैं, जो कि 12 कक्ष को विभक्त करने वाली हैं। इस प्रकार समवसरण में सब एक-दूसरे को दिखते भी रहते हैं। यह वहाँ का बहुत सुन्दर दृश्य रहता है। वहाँ न जाने कितने ऐसे स्तूप हैं, तीन लोक के स्तूप, कहीं सर्वार्थसिद्धि स्तूप, कहीं सिद्धशिला स्तूप, जहाँ भगवान की छाया दिख जाती है। सर्वार्थसिद्धि स्तूप में सर्वार्थसिद्धि के देव दिख रहे हैं। तीन लोक के स्तूप में तीन लोक की रचना दिख रही है। मध्यलोक स्तूप, जिसमें असंख्यात द्वीप-समुद्र दिख रहे हैं। देखा जाये तो ये सब चीजें वहाँ कुबेर इतनी सुन्दर बनाता है और इस प्रकार से बनाता है कि तीन लोक की सम्पत्ति समझ लीजिए, वहाँ पर लाकर सारी एकत्रित कर देता है। आचार्यों ने बताया है कि अगर वे कुबेर भगवान की अनुपस्थिति में और कहीं ऐसी रचना बनाना चाहे, तो नहीं बना सकता है। मानस्तंभ की एक विशेष महिमा है। जगह-जगह बहुत से मानस्तंभ बनते हैं लेकिन वे सभी मानस्तंभ मान को गलित नहीं कर सकते। श्री वादिराजसूरि ने एकीभाव स्तोत्र में कहा है–

पाषाणात्मा तदितरसमा, केवलम् रत्नमूर्तिः।
मानस्तंभो भवति च परस्तादृशोरत्नवर्गः।।

हे भगवन्! पाषाण से बने हुए, रत्नों से बने हुए, स्वर्ण से बने हुए बहुत से मानस्तंभ उस प्रकार की महिमा को नहीं प्राप्त कर सकते, जो आपके सानिध्य में अर्थात् समवसरण में मानस्तंभ की महिमा गाई जाती है, देखी जाती है और लोग अनुभव करते हैं। मान गलित करके भव्यात्मा सम्यग्दृष्टि बन जाते हैं। भगवान महावीर स्वामी के समवसरण में मानस्तंभ का दर्शन करते ही गौतम स्वामी का मान गलित हो गया और वे सम्यग्दृष्टि बन गये, भगवान के प्रथम गणधर बन गये। आज जो भी जैन ग्रंथ उपलब्ध हैं, सब उन्हीं के उपकार का फल है।

इस प्रकार से मैंने समवसरण के बारे में आपको बहुत ही संक्षेप में बताया। अब आगे समवसरण में क्या होता है। आठवीं भूमि के बाद तीन कटनी मानी गई हैं। 16 सीढ़ी ऊपर चढ़कर पहली कटनी है। 8 सीढ़ी चढ़कर दूसरी कटनी है, तीसरी कटनी भी 8 सीढ़ी चढ़कर है। पहली कटनी पर तो सर्वाण्हयक्ष धर्मचक्र को मस्तक पर लिए हैं और मंगल द्रव्य सामग्री वगैरह बहुत सी चीजें रखी हैं। दूसरी कटनी पर आठ महाध्वजाएं, मंगल द्रव्य आदिक हैं। तीसरी कटनी पर भगवान की बहुत सुन्दर गंधकुटी बनी है। गंधकुटी, इसका नाम इसलिए सार्थक है कि इसमें ऐसी दिव्यगंध है जो कहीं नहीं है। इसमें तमाम फूलमालाएँ, रत्नों की मालाएं लटक रही हैं। इस पर सहस्रों शिखर बने हुए हैं। भगवान से ड्योढ़ी गंधकुटी होती है, जिसमें भगवान पद्मासन में विराजमान रहते हैं, वहाँ

8 महाप्रातिहार्य रहते हैं। अशोक वृक्ष हैं, देव पुष्पवृष्टि कर रहे हैं, दिव्यध्वनि, भगवान के ऊपर 64 चंवर यक्षगण ढोर रहे हैं। चारों तरफ से सुन्दर बढ़िया सिंहासन है। सिंहासन पर सुन्दर कमल रखा हुआ है, उस पर भगवान अधर बैठते हैं। देव दुदुंभी – साढ़े बारह करोड़ प्रकार के बाजे बजते रहते हैं। भामंडल – भगवान के पीछे प्रभामण्डल ऐसा बन जाता है, जिसमें लोग अपने सात-सात भव देख लेते हैं। तीन पिछले, तीन अगले और एक वर्तमान का। बहुत सुन्दर तीन छत्र भगवान के ऊपर लगे रहते हैं।

ये आठ प्रातिहार्य भगवान के पास होते हैं, अष्ट मंगल आदि रखे रहते हैं। भगवान गंधकुटी पर 4 अंगुल अधर रहते हैं। इतना समवसरण का वैभव आप कल्पद्रुम विधान में देख सकते हैं। उसमें समवसरण के वैभव की पूजा बहुत सुन्दर है। समवसरण का सारा वर्णन आपको बहुत अच्छा लगेगा। गुजरात में विहार करते हुए अहमदाबाद के एक महानुभाव ने मेरे से प्रश्न किया कि माताजी! आप जब कल्पद्रुम विधान बना रहीं थी, तो कहाँ बैठी थीं? मैंने कहा – भावों से तो मैं समवसरण में बैठी थी। सचमुच में जब मैं विधान लिख रही थी, उस समय इतना आनंद आता था, ऐसा लगता था कि मैं साक्षात् समवसरण में बैठी हूँ और समवसरण के सारे दृश्य मुझे दिख रहे हैं। आगम के परिप्रेक्ष्य में यह जिनवाणी साधुओं का तीसरा नेत्र माना गया है। **'आगम चक्खू साहू'** आगमरूपी नेत्र से समवसरण दिख जाता है। आप भी देख सकते हैं। समवसरण विधान कीजिए, कल्पद्रुम विधान कीजिए, आपको बहुत आनंद आयेगा। तिलोयपण्णत्ति, महापुराण, शांतिपुराण आदि ग्रंथों के स्वाध्याय से आपको समवसरण का सारा विवरण मालूम पड़ेगा। मैंने तो आपको संक्षेप में बताया है। भगवान जब गंधकुटी में विराजमान होते हैं, शासन देव-देवी भी पास में रहते हैं। भगवान ऋषभदेव के शासन देव-देवी गोमुखयक्ष और चक्रेश्वरी देवी हैं, भगवान महावीर के मातंग यक्ष, सिद्धायिनी देवी हैं। भगवान पार्श्वनाथ के धरणेन्द्र यक्ष, पद्मावती देवी हैं आदि। ये सब शासन देव-देवी सम्यग्दृष्टि हैं। आज जो शासन देव-देवी की आराधना पूजा आदि का निषेध करते हैं, उन्हें आगम के परिप्रेक्ष्य में समझना चाहिए कि इन्हें अर्घ्य चढ़ाने का, इनके आह्वान का विधान पूज्यपाद जैसे आचार्यों ने, बड़े-बड़े आचार्यों ने संस्कृत के पूजा ग्रंथों में लिखा है।

समवसरण की महिमा विशेष है। भगवान ऋषभदेव के समवसरण के बारे में मैं आपको बताऊँ – भरत चक्रवर्ती मुख्य श्रोता थे। भगवान के तृतीय पुत्र वृषभसेन प्रमुख गणधर थे और उनकी पुत्री ब्राह्मी प्रथम गणिनी आर्यिका के रूप में विराजमान थीं। चक्रवर्ती भरत के विवर्धन कुमार आदि 923 पुत्र जन्म से गूंगे थे लेकिन चक्रवर्ती भरत चिन्तन किया करते थे-अरे! मुझ जैसे चक्रवर्ती के पुत्र गूंगे, उन्हें आश्चर्य होता था, कष्ट भी होता था लेकिन वे सभी पुत्र समवसरण में पहुँचते ही बोल पड़े, भगवान की स्तुति करने लग गये पुनः विरक्तमना हो करके उन्होंने वहीं जैनेश्वरी दीक्षा ले ली और तपश्चरण करके उसी भव से मोक्ष प्राप्त कर लिया था। भरतचक्रवर्ती ने प्रश्न किया – भगवन्! मेरे

पुत्र होकर के गूंगे, आपके पोते होकर के गूंगे ऐसे उत्तम इक्ष्वाकुवंश में जन्मे और गूंगे, क्यों तो ये गूंगे थे और कैसे बोल पड़े? यह तद्भवमोक्षगामी महामना इनका इतिहास मैं सुनना चाहता हूँ। भगवान की दिव्यध्वनि खिरी, वृषभसेन गणधर ने बताया–चक्रवर्ती भरत! सुनो, अनादिकाल से ये नित्य निगोद में थे। नित्य निगोद से निकले, स्थावरयोनि में आये। स्थावरयोनि में केवल कायबल, स्पर्शन इन्द्रिय, आयु और श्वासोच्छ्वास ये चार प्राण ही होते हैं। तो वहाँ इनको वचन बल मिला ही नहीं, जिह्वा ही नहीं मिली। फिर ये इस मनुष्ययोनि में आये तो गूंगे ही रहे, बोलना ही नहीं समझे और यह समवसरण का प्रभाव, यह महिमा है कि यहाँ आते ही बोल पड़े। यह तद्भवमोक्षगामी हैं, इसी भव से मोक्षप्राप्त करेंगे। चक्रवर्ती भरत यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। समवसरण की महिमा के बारे में क्या-क्या बताया जाये। आप जैन ग्रंथों का स्वाध्याय करें तब आपको पता चलेगा, एक मेंढक पहले राजगृही का सेठ था, पर वह पत्नी के मोह में विशेषरूप से लगा हुआ था। उसका चिन्तन, उसका उपयोग पत्नी की तरफ था अतः मर करके अपनी बावड़ी में मेढ़क हो गया। जब सेठानी पानी भरने जाती तो उस पर कूद पड़ता अतः एक दिन सेठानी ने गुरु से प्रश्न किया, तब गुरु ने बताया कि ये मेढ़क तुम्हारे पति का जीव है। तब सेठानी ने उसको सम्बोधा, जिससे उसको जातिस्मरण हो गया। वह मेढ़क एक दिन भगवान महावीर स्वामी के समवसरण के दर्शन के लिए कमल पांखुड़ी मुख में दबाकर चल पड़ा लेकिन हाथी के पैर के नीचे दबकर मर गया और मर करके उसी क्षण स्वर्ग में देव हो गया और वहाँ से आ करके भगवान की भक्ति करने लगा। कहाँ तो सेठ का जीव, अपनी पत्नी के ध्यान से–आर्तध्यान से मरकर के मेढ़क हुआ और कहाँ भगवान की भक्ति के भाव से–समवसरण की वंदना के भाव से मर करके स्वर्ग में देव हो गया! भगवान की भक्ति की ऐसी अचिन्त्य महिमा है!

मैं तो आप सभी को यही प्रेरणा दूँगी कि आप समवसरण में जो चार परकोटे हैं, पाँच वेदियाँ हैं, उनके अंतराल में आठ भूमियाँ हैं, 3 कटनी हैं, अंतिम कटनी पर भगवान विराजमान हैं आदि इस प्रकार से समवसरण का वर्णन जो आपने सुना है, पढ़ा है, बार-बार इसे सुनें और पढ़ें, एक बार सुनने से, पढ़ने से नहीं समझ में आयेगा। बार-बार सुनें या बार-बार आप पढ़ें, पढ़ करके चिन्तन करते हुए कभी कल्पद्रुम विधान का आनंद लें, समवसरण का विधान करें और साथ ही आँख बंद करके पद्मासन मुद्रा में बैठ करके कभी इस समवसरण का ध्यान करें। भगवान के समवसरण का ध्यान रूपस्थ ध्यान कहलाता है। भगवान के समवसरण का ध्यान करते-करते एक-एक भूमि का, एक-एक वेदी का, एक-एक परकोटे आदि का चिंतन करते-करते क्रम से आप समवसरण के ध्यान में निमग्न हो जायें पुनः आप एक क्षण के लिए चिंतन करें कि मैंने ध्यान के बल से घातिया कर्मों को नष्ट करके केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया है और मैं स्वयं समवसरण में गंधकुटी में विराजमान हूँ। मैं स्वयं अनन्त चतुष्टय स्वरूप हूँ। चूँकि समवसरण की विभूति तो बाह्य

विभूति है, अन्तरंग विभूति क्या है? अनन्तगुणों की प्राप्ति, उसमें अनन्त चतुष्टय नाम से चार गुण विशेष हैं–अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख और अनन्तवीर्य ये अनन्त चतुष्टय कहलाते हैं। ये अनन्त चतुष्टय अन्तरंग लक्ष्मी है, अन्तरंग विभूति हैं, अन्तरंग गुण ऐसे अनन्त प्रकट हो जाते हैं। इस प्रकार से मैं अनन्त चतुष्टय स्वरूप हूँ– **अनन्त ज्ञान स्वरूपोऽहं, अनन्तदर्शनस्वरूपोऽहं, अनन्त सौख्य स्वरूपोऽहं, अनन्त वीर्य स्वरूपोऽहं, तीर्थंकरोऽहं तीर्थंकरोऽहं तीर्थंकरोऽहं** ऐसा चिन्तन करते हुए आप स्वयं समवसरणस्वरूप ऐसे वैभव के मध्य गंधकुटी में विराजमान होकर स्वयं अपने आप को अर्हंत अवस्था में चिन्तन करें तो यह रूपस्थ ध्यान, भगवान के समवसरण का ध्यान, स्वयं के समवसरण को प्राप्त कराने वाला हो, स्वयं के अनंत गुणों को प्रकट कराने वाला, अनन्त गुणों की लक्ष्मी–अंतरंग लक्ष्मी और बहिरंग लक्ष्मी से अपनी आत्मा को विभूषित करने वाला, यह रूपस्थ ध्यान आपके लिए मंगलकारी हो, यही आप सबके लिए बहुत-बहुत मंगल आशीर्वाद।

व्यसन मुक्ति संदेश

(पूज्य अभयमती माताजी द्वारा व्यसनमुक्ति हेतु दिए गए प्रवचनांश)

व्यसन से हानि

बुरी आदतों को व्यसन कहते हैं। व्यसन सात होते हैं–1. जुआ खेलना 2. मांस खाना 3. शराब पीना 4. शिकार करना 5. वेश्या गमन करना 6. चोरी करना 7. परस्त्री सेवन करना।

कथा –एक ठाकुर थे। एक दिन दो सेव लाकर उन्होंने अपने नौकर को दिये और कहा–इन्हें छीलकर लाओ, मेरे मित्र भंडारी जी आने वाले हैं, हम साथ में खायेंगे।''

नौकर नियत का कच्चा था। जीभ को काबू में न रख सका, वह सेव काटता जाता और उसे खाता जाता। सेव इतना स्वादिष्ट था कि नौकर को मालूम ही नहीं पड़ा कि कब वह दोनों सेव चट कर गया, ऐसा व्यसन उसके अंदर था।

ठाकुर ने पुकारा तो घबरा कर बाहर निकला और बोला, ''चाकू खराब है, नये चाकुओं का थैला ले आता हूँ, कोई तेज चाकू निकाल दीजिए, तो सब को आसानी से छीलकर काट सकूँ''।

ठाकुर के जवाब की प्रतीक्षा किए बगैर ही नौकर नए चाकुओं का थैला ले आया और ठाकुर के सामने रख दिया।

ठाकुर ने थैले में भरे चाकुओं को जमीन पर फैलाया और एक-एक चाकू उठाकर वह उसकी धार जाँचने लगा। इसी बीच नौकर को भंडारी दरवाजे में घुसता नजर आया। वह दौड़कर उसके पास पहुँचा और कान में बोला, ''हुजूर! ठाकुर ने आज बहुत सारी शराब पी ली है। आपको बेहद गालियाँ बक रहा है और मुझसे कहा रहा है कि भंडारी को पकड़ कर रखना, मैं आज उसके दोनों कान काटूँगा। हुजूर यकीन न हो तो इस खिड़की में से

झांक कर देख लीजिए, वह आपके लिए तेज से तेज चाकू तलाश कर रहा है।''

भंडारी ने खिड़की में से झांका तो उसके प्राण सूख गए, सचमुच ठाकुर चाकुओं को उलट-पलट रहा था। वह सर पर पैर रखकर भागा। इधर नौकर की बुद्धि ने दूसरा पैंतरा बदला। उसने ठाकुर से कहा, ''हुजूर भंडारी जी आपके दोनों सेव ले भागे हैं। आज की तरह तो नशे में मैंने उन्हें कभी नहीं देखा था।''

ठाकुर ने भंडारी को भागते देखा तो उसे समझाने के लिए वह भी उसके पीछे भागा। भंडारी ने मुड़कर देखा तो उसके रहे सहे होश भी उड़ गये, उसने देखा कि ठाकुर के हाथों में तीन-चार चाकू हैं और वह चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा है, ''भंडारी जी, दो नहीं तो एक ही दे दे जाओ।''

ठाकुर का मतलब था कि दोनों सेब क्यों ले जाते हो, कम से कम एक तो मुझे देते जाओ किन्तु भंडारी के भयग्रस्त मानस ने समझा कि ठाकुर अब मेरा एक कान काटकर ही संतोष कर लेना चाहता है। वह और तेजी से भागा। आगे ठाकुर, पीछे भंडारी। नौकर खुशी में नाच-नाच कर अपनी पीठ थपथपाने लगा।

मनुष्य का मन जब चोर बन जाता है तो उसकी गति-मति भी इस कहानी के नौकर की सी हो जाती है। सच्चाई से बचने के लिए बहानों के सैकड़ों भूत खड़े कर दिये जाते हैं। मनुष्य से ही मनुष्य को नहीं, कभी-कभी तो राष्ट्र से भी राष्ट्रों को लड़ा दिया जाता है। अपनी कलई न खुले इसके लिए कितने ही दिलों में जहर घोल दिया जाता है। अपनी कटी नाक को शुभ ठहराने के लिए कितनों की नाकें तराश दी जाती हैं।

इस प्रकार यह व्यसन अपने मन का भ्रम, पूर्वाग्रह बनकर न जाने कितने अनर्थों और पापों को जन्म देता है, बढ़ाता है, इसी पर एक दृष्टांत और है। एक दुरात्मा था, वह सदा गुरु के पास जाता और पूछता–मेरी गलती कैसे छूटे? एक दिन गुरु हस्तरेखा देखकर बोले–अब तेरी मात्र एक माह की आयु रह गई है। दुरात्मा चिंता में डूब गया। एक माह दुःखमय और भजन में लगा रहा। भविष्य में होने वाली मृत्यु ही मस्तिक पर छाई रही। जब एक माह में एक दिन बाकी रहा, तब गुरुदेव ने उसे फिर बुलाया और पूछा–इस महीने में कितनी बार गलती हुई, कितनी बार पाप किये, उत्तर मिला–एक बार भी नहीं, चित्त पर तो हर समय मृत्यु भय छाया रहा। कहा भी है–

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलियो कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न कोय।।

इस प्रकार व्यसन की परिभाषा जानने के बाद अब आप सात व्यसनों में से क्रम-क्रम से एक-एक व्यसन के बारे में पढ़ें–

(1) जुआ खेलने से हानि

रुपया-पैसा-कौड़ी वगैरह से हार-जीत की शर्त लगाकर ताश आदि खेलना जुआ खेलना कहलाता है अतः जुआ खेलना सब अनर्थों की खान है। इसी पर एक कथा है–

हस्तिनापुर के राजा धृतराज के धृतराष्ट्र, पाण्डु, विदुर, ये 3 पुत्र थे। धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि 100 पुत्र हुए और पांडु के कुन्ती रानी से युधिष्ठिर आदि पाँचों पांडव कहलाते थे। ये सब एक जगह राज्य करते थे। कुछ दिन बाद कौरवों की पांडव के प्रति ईर्ष्या देखकर भीष्म पितामह ने दोनों में आधा-आधा राज्य बांट दिया। फिर भी दुर्योधन आदि को शांति नहीं थी। अपनी कूटनीति से पांडव को फँसा लिया।

एक समय युधिष्ठिर दुर्योधन के साथ जुआ खेलने लगे। खेल में सारी सम्पत्ति हारगये। अन्त में युधिष्ठिर ने द्रौपदी आदि को भी दांव पर रख दिया। दुर्योधन उन्हें भी जीत गये। इस हार से द्रौपदी, कुन्ती सबको अपमानित होना पड़ा। यहाँ तक दुःशासन ने कुन्ती का बीच सभा में अपमान किया। कुन्ती द्रौपदी के साथ पाँचों पाण्डवों को बारह वर्षों तक वनवास भी करना पड़ा। इस प्रकार जुआ बहुत बुरा व्यसन है। जो खेलता है उसका धन, सम्पत्ति, स्त्री आदि सब बिछुड़ जाते हैं और चारों तरफ अपमानित होना पड़ता है। बुद्धिमानों को कभी भी जुआ नहीं खेलना चाहिए और भी अनेक बुरी आदतें जुआ व्यसन के अन्तर्गत आती हैं

कई ऐसी प्रतिदिन की आदतें हैं जो जुआ व्यसन के ही अन्तर्गत आती हैं जैसे-सट्टा करना, हारजीत लगाना, लाटरी के टिकट खरीदना, हंसी मजाक में शर्तादि लगाना, चौपड़, ताश के पत्ते शतरंज आदि खेल जिनमें पैसे लगाकर हार-जीत लगाई जाती है, सब ही जुआ के अन्तर्गत हैं। इस प्रकार जुआ से दोनों लोकों में दुःख उठाना पड़ता है अतः जुआ को सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। इसी पर एक लौकिक कथा है–

एक सेठ जी के चार लड़के थे जिसमें तीन तो कमाऊ थे पर एक जुआरी था जिससे सब लोग बहुत परेशान थे। एक दिन तीनों भाइयों ने मिलकर कहा–पिताजी! ये कोई काम नहीं करता, जुआ खेलता रहता है इसलिए इसे घर से निकाल दो। पिताजी ने कहा–ठीक है एक बार मिलकर सब लोग यात्रा कर लें। फिर जैसा होगा, देख लेंगे। सभी लोग सकुशल यात्रा को निकले। यात्रा होने के बाद पिताजी ने अपने चारों पुत्रों को 20-20 रुपये देकर कहा–जाओ इससे कमाकर लाओ। भाग्य से चौथा पुत्र जुआरी जुआ में जीतने से सबसे अधिक कमाकर लाया और तीनों पुत्र वैसे ही लौटे। अब पिता के कहने से चारों भाई एक में रहते थे। एक दिन जुआरी जुआ में सब धन सम्पत्ति हार गया, जिससे उसने राजा के यहाँ खूब सारी चोरी कर डाली। राजा ने मृत्युदंड देने की नौकर को आज्ञा दी। अब उस जुआरी ने चारों रानी के चरणों में पड़कर मेरी रक्षा करो, ऐसी प्रार्थना की। तीन रानी ने तो उसे खूब संपत्ति दी लेकिन चौथी रानी ने पूछा–तुम्हें क्या चाहिए? जब उसने कहा– मुझे कुछ नहीं चाहिए, मुझे मृत्यु दंड से बचा दो। जब रानी ने कहा कि आप आजीवन जुआ खेलने का त्याग कर दो, तभी मृत्युदंड से बच सकते हो अन्यथा नहीं। तब उसने हमेशा के लिए जुआ खेलना त्याग कर दिया और चोरी आदि सभी पापों का भी त्याग दिया। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि जुआ खेलना महापाप है। कभी भूलकर भी किसी को जुआ नहीं खेलना चाहिए।

(2) मांस भक्षण से हानि

अनंत जीवों के कलेवर का नाम मांस है। यह प्रत्यक्ष में महानिंद्य एवं अपवित्र है। मांस जीवों का वध करके तैयार किया जाता है, कच्चे-पक्के-सूखे सभी तरह के मांस में अनंतानंत जीव उत्पन्न हो जाते हैं जिसके खाने से बुद्धि नष्ट हो जाती है, दुर्गति अर्थात् नरकादि में जाना पड़ता है। उनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके नारकी जबरन उसके मुख में ठूंसते हैं यह सब मांस खाने का फल है।

एक मांस लोलुपी की कहानी इस प्रकार है–बक नाम का एक राजा मांस लोलुपी था, वह प्रतिदिन मांस खाता था। एक दिन रसोईया ने एक मासूम बालक का मांस पकाकर उसे दिया। राजा को वह बहुत अच्छा लगा। प्रतिदिन ऐसा ही मांस भोजन में मुझे मिलना चाहिए, ऐसा उसने रसोइया से कहा। अब प्रतिदिन गाँव के छोटे-छोटे बच्चों को मारकर रसोइया राजा को मांस खिलाने लगा। एक मां का इकलौता पुत्र था, अब उसकी बारी थी, वह हृदय फाड़-फाड़कर करुण क्रंदन करती थी। भीम ने उसकी करुणापूर्ण आवाज सुनी और उसके संकट को दूर करने का संकल्प लिया। अर्थात् उस पुत्र के बदले इस संकट का निवारण करने के लिए भीम स्वयं वहाँ पर गये, भीम और बक राजा का आपस में युद्ध हुआ। दुष्ट मांसभक्षी को भीम ने क्रोध में आकर उसकी पीठ पर एक लात मारी, पश्चात् उसका पांव पकड़कर उसको पछाड़कर जमीन पर गिराया। मरकर वह तैंतीस सागर की आयु वाले घोर नरक में गया। मांस अण्डे तो क्या, शक्कर की बनी हुई मछली आदि आकार की बनी मिठाई भी खाने से मांस का दोष लगता है।

जैसे-बाजार की रबड़ी, चाट आदि जो रात-दिन खुले रहते हैं, कई दिन की बनी वस्तुएं जिस पर मच्छर-मक्खियाँ बैठते हैं, मर जाते हैं, सब मांस जैसे पिंड बन जाते हैं। इसके अलावा बहुत दिनों के बड़ी, पापड़, अचार, मुरब्बा भी खाने योग्य नहीं हैं। इसके अलावा बिस्कुट, डबल रोटी आदि भी वस्तुए हैं इन्हें खाने से मस्तिष्क कमजोर होता है। इस प्रकार मांस खाने वाले क्रूर हिंसक, निर्दयी कहलाते हैं। इसलिए माँस कभी नहींखाना चाहिए।

इसी पर एक लौकिक कथा है–

जंगल में मुनिराज जी उपदेश दे रहे थे कि हे संसार के प्राणियों! अगर तुम सुख चाहते हो तो मांस खाने का त्याग करो। महाराज जी का उपदेश सुनकर कई लोगों ने मांस खाने का त्याग कर दिया, वहीं पर एक भील बैठा हुआ उपदेश सुन रहा था। मुनिराज ने कहा–रे भील! तू भी मांस खाने का त्याग कर। उसने कहा कि हे स्वामिन्! मेरे तो मांस ही भोजन है, मांस के बिना मैं रह नहीं सकता हूँ। मुनिराज ने कहा कि तू कौवा का मांस खाने का त्याग कर, जीवन भर के लिए वह नियम लेकर घर गया और सुख से रहने लगा। कुछ दिनों बाद अशुभ कर्म का उदय आया कि वह बीमार पड़ गया, वैद्य जी आये, दवाई में कौवा का मांस बताया उसने कहा–मैंने तो मुनिराज जी से नियम लिया था, मैं मांस नहीं खाऊँगा। सबने समझाया लेकिन किसी की नहीं मानी। लोगों ने कहा कि उसके

साले को बुला दो, साला जंगल से आ रहा था कि एक देवी रो रही थी, उसने पूछा–हे देवी! क्यों रो रही है, उसने कहा कि जो कौवा का मांस त्याग किया है उस भाई को यदि कौवा का मांस खिलाओगे तो वह मेरा पति नहीं होगा, वह नीच गति में चला जायेगा। वहाँ पहुँचकर बहुत समझाया कि कौवा का मांस खा लो जीजा जी, उसने कहा–मैं नहीं खाऊँगा। तब वह साला बोला कि तुम कौवा का मांस त्याग करने से देव बनोगे। उसने कहा–मेरे सारे मांस का त्याग है, इतना कहते ही उसके प्राण निकल गये और ऊँचा देव हो गया। वह साला उसी जंगल में आया, वह देवी फिर रो रही थी। उसने पूछा–अब क्यों रो रही हो? उसने कहा कि तूने कौवे का मांस त्याग करने को कहा था सो उसने सारे मांस का त्याग कर दिया, इससे वह ऊँचा देव हो गया।

इससे आचार्य कहते हैं कि प्रत्येक प्राणियों को मांस का त्याग करना चाहिए।

(3) शराब पीने से हानि

गुड़, महुआ आदि मादक वस्तु को सड़ाकर जो बने, उसका नाम शराब है। इसमें प्रतिक्षण अनंत संमूर्च्छन त्रस जीव उत्पन्न होते रहते हैं। शराब अनंत जीवों के कलेवर से निकाला जूस है, इससे अनेकों हानियाँ हैं, इसको पीते ही मनुष्य उन्मत्त हो जाता है एवं बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।

किसी समय भगवान नेमिनाथ की दिव्यध्वनि से श्रीकृष्ण को मालूम हुआ कि 12 वर्ष के बाद शराब के निमित्त से द्वीपायन मुनि द्वारा द्वारिका नगरी भस्म हो जायेगी। तब श्री कृष्ण ने आकर सारी मदिरा को गांव के बाहर कंदराओं में फिकवा दिया पुनः 12 वर्ष बीत चुके, ऐसी भ्रांतिवश कुछ दिन पहले ही द्वीपायन मुनि द्वारिका के बाहर आकर ध्यान में लीन हो गये। इधर द्वारिकापुरी के राजकुमारों ने वनक्रीड़ा को जाते हुए प्यास से पीड़ित होकर मदिरा को पानी समझकर पी लिया और उन्मत्त होकर नाचते गाते हुए नगर को आ रहे थे कि मार्ग में द्वीपायन मुनि को देखकर उन पर पत्थरों की और खोटे शब्दों से गालियों की वर्षा की। मुनिराज ने बहुत कुछ सहन किया। अंत में क्रोध के वश तेजस पुतला द्वारा मुनि ने चारों ओर से द्वारिकापुरी को जला दिया और मरकर दुर्गति में गमन किया। यह सब शराब का ही दुष्फल है। उस समय वहाँ का दृश्य कितना दयार्द्र था, जिसका कोई वर्णन नहीं कर सकता। मात्र श्रीकृष्ण और बलभद्र ही वहाँ से निकलकर बचे थे। इस प्रकार शराब पीने से कैंसर, फेफड़ों में खराबी एवं नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं। पागल के समान घूमता हुआ व्यक्ति सत्य-असत्य को भी नहीं जान पाता है। ऐसे शराब को हमेशा के लिए त्याग कर देना चाहिए। इसी पर एक और कथा है–

एक व्यक्ति शराब पीकर मार्ग में जा रहा था, उधर से हाथी पर बैठे हुए राजा निकले। राजा को देखकर उसने कहा–अब हाथी बेचता है-इतने में ही राजा तलवार निकालकर उसे मारने चला, तब मंत्री ने रोक दिया–बोला–महाराज! यह व्यक्ति नहीं बोल रहा है

यह इसके शराब पीने का दोष है। मंत्री ने एक दिन उसी व्यक्ति को लाकर राजा के पास खड़ा कर दिया। कांपता हुआ भयभीत वह व्यक्ति बड़ी विनय से राजा को नमस्कार कर बैठ गया। राजा ने पूछा–अब हाथी लेता है क्या? उसने कहा–महाराज! मैं क्या हाथी खरीद सकता हूँ? इससे यह मालूम पड़ता है कि शराब के नशे में व्यक्ति क्या-क्या अनर्थ नहीं करता अर्थात् सब कुछ अनर्थ करता है। यदि मंत्री नहीं रोकता तो उस व्यक्ति की हत्या हो जाती अतः हर कार्य को खूब सोच समझकर करना चाहिए। जब एक-एक व्यसन इतने दुखदाई हैं फिर जो सातों व्यसनों को करेंगे, उनकी क्या दशा होगी? इसलिए सातों व्यसनों का त्याग करके सदाचारी जीवन को अपनाना चाहिए।

(4) शिकार खेलने से हानि

रसना इन्द्रिय की लोलुपता से या अपने मनोरंजन के लिए बाण, गोली आदि से बेचारे निरपराधी भयभीत ऐसे जंगली पशु-पक्षी एवं अन्य जीवों को मारना शिकार है इसका अनंतकाल तक दुःख है। इससे यह जीव प्रथम तो अपनी आत्मा का ही घात कर लेता है। दूसरे का घात हो चाहे न हो, इससे बुरी गति मिलती है तथा लोक में अपयश फैलता है।

उज्जयिनी के ब्रह्मदत्त नाम का एक राजा शिकारी था, ये शिकार खेलने के बड़े शौकीन थे। एक बार जंगल में एक ध्यानी मुनिराज शिलातल पर ध्यान लगाये बैठे थे। ब्रह्मदत्त राजा शिकार के लिए वन को गया पर मुनिराज के प्रभाव से उसे सफलता नहीं मिली। कई दिनों तक ऐसा होता रहा। मुनिराज पर उसे बहुत क्रोध हुआ। एक दिन मुनिराज आहार को गये तब उसने शिला को भयंकर अग्नि से तप्तायमान कर दिया। मुनिराज नियमानुसार जलती हुई उसी शिलातट पर ध्यान के लिए बैठ गये। ध्यान की विशुद्धता से मुनिराज को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। वे अंतकृत केवली होकर मोक्ष चले गये। इधर कुष्ट रोग से पीड़ित होकर राजा पुनः पुनः तिर्यंच होकर नरकों में गया। राजा मरकर पुनः सप्तम नरक में गया इसलिए शिकार कभी नहीं खेलना चाहिए। सदैव इससे दूर रहना चाहिए। अन्यथा नरक के दुःख उठाना पड़ेगा। इसी पर एक और कथा है–

एक बार कोई बादशाह शिकार खेलने जंगल में गया। साथ में मंत्री भी गया, एक हिरणी के पीछे उसने दौड़ लगाना शुरू कर दिया। हिरणी कुछ तो दौड़ी और बाद में उसने सोचा कि मैं बच थोड़े ही सकती हूँ सो एक दया भरी निगाह से बादशाह को देखने लगी, खड़ी हो गई वहाँ से न हटी। बादशाह मंत्री से कहता है कि देखो! यह हिरणी अपने प्राण गंवाने के लिए यहाँ खड़ी हुई है। मंत्री बोला–महाराज! यह हिरणी आपसे दया चाहती है। यह निवेदन कर रही है कि मेरे बच्चे दो दिन से बिना दूध पिये हुए भूखे पड़े हैं। उन्हें मैं दूध पिला लाऊं और इसी जगह अपने प्राण देने के लिए आ जाऊँगी। बादशाह बोला–यह कैसे हो सकता है? मंत्री ने कहा–महाराज! एक बार देख तो लो क्या हर्ज है? बहुत से शिकार हैं दूसरे को मार डालना। देख तो लो कि आखिर भाव ठीक है कि नहीं। कहा–जाओ, अपने बच्चों को दूध पिला आओ। दौड़कर अपने बच्चों के पास पहुँची, अपने बच्चों

से कहा–ऐ बच्चों! जल्दी दूध पियो, मैंने शिकार का वायदा किया है, तुम्हें दूध पिलाने के लिए शिकारी ने छोड़ दिया है। बच्चों ने कहा–जाओ! जल्दी मम्मी जावो, हमें दूध नहीं पीना है, हम भी तुम्हारे साथ प्राण देंगे। तुम जल्दी चलो, कहीं तुम्हारा वचन भंग न हो जाये, एक दिन हमने नहीं दूध पी लिया तो उससे क्या होगा? चलो, हम तुम जल्दी से शिकारी के पास पहुँचें। हिरणी तुरंत उसी स्थान पर बच्चों सहित पहुँची। बच्चे बोले–मामा! पहले मुझे खा लो, बाद में मम्मी को खा लेना। बादशाह ने यह दृश्य देखकर अपने हथियार नीचे डाल दिये और यह प्रण किया कि अब मैं कभी भी शिकार नहीं खेलूँगा।

(5) वेश्या गमन से हानि

काम वेदना से पीड़ित होकर सार्वजनिक व्यभिचारिणी स्त्रियों के पास जानोश्या सेवन है। वेश्यागामी लोग व्यभिचारी, लुच्चे, नीच, चाण्डालादि कहलाते हैं क्योंकि वेश्यसभी नीच लोगों के साथ समागम करती हैं। वे इस भव में कीर्ति-यश-धन का नाश करके दुर्गी में जाते हैं।

उदाहरण–चम्पापुर के सेठ भानुदत्त एवं स्त्री देवीला के एक धनाढ्य पुत्र चारुदत्त को कौन नहीं जानता? जो भोला भाला एवं धार्मिक संस्कारों से परिष्कृत था परन्तु कुछ निमित्तों को पाकर वेश्या व्यसनी बन गया अर्थात् चाचा विषयों में फंसाने हेतु वेश्या के पास ले गये। चारुदत्त पत्नी माता-पिता, मित्रादि के समझाने पर भी वेश्या व्यसन को नहीं छोड़ सका। उसे यह लगने लगा कि सिर्फ बसंतसेना वेश्या ही मुझे प्यार करती है, बाकी सब झूठा प्रेम करते हैं। जब चारुदत्त का सारा पैसा वेश्या ने अपने कब्जे में ले लिया ते धीरे-धीरे प्रीति कम करने लगी। एक दिन स्वयं को खतरा समझकर बसंतसेना कीमां ने रात्रि में सोते में बंधवाकर उसे पाखाने में डलवा दिया। सुबह नौकरों ने देखा कि सुअरउसका मुख चाट रहे हैं। उसे पाखाने से निकालकर खूब निंदा की अतः बंधुओं! तन-मन-धनतीनों को कष्ट देने वाले वेश्यागमन से सदा दूर रहना चाहिए। इसी पर एक लौकिक दृष्टांत है–

एक वेश्यागामी थानेदार था। उसका किसी वेश्या से घनिष्ट प्रेम हो गया तो एक वर्ष तो उस गांव में गुजर गया, बाद में तबादले का हुकम आ गया। अब वह था बड़ा परेशान, थानेदार उसे मनावे कि तू चल, कोई दूसरे के साथ कैसे चल दें। बड़ी चिंता में था कोई समझदार दूसरी औरत वहाँ रहती थी जिससे थानेदार का परिचय था। उस औरत से पूछा कि क्या बात है, क्यों दुखी हो? थानेदान ने सारी बात बता दी कि यह नहीं चलने को राजी होती है। अच्छा मै। समझा दूंगी उस कुटिल (वेश्या) के पास वह स्त्री गई। दो तीन दिन रही बड़ी सेवा की और एक दिन बड़ी उदास हो गई, उस कुटिला ने पूछा–आज क्यों उदास हो? वह बोली–तुम एक बात बतलाओ, जब हमारी भीतर की शल्य मिटेगी। बोली क्या? कहा–यह बतलाओ कि तुम्हारी किस-किस से प्रीति है? लिख दो फलाने प्रसाद, फलाने नाथ, ऐसे 50 नाम लिख दिये, फलाने नाथ इस प्रकार लिखते-लिखते 60 नाम हो गये और ख्याल कर लो।

60 नाम हो गये और भी ख्याल किया तो दो नाम उनमें और मिले, 62 हो गये सारी लिस्ट में उस थानेदार साहब का नाम ही नहीं आया। थानेदार के पास गई और कहती है कि मैं लिख देती कि पत्तर में तू सत्तर में न बहत्तर में यानि तू जिसके पीछे रात दिन स्वप्न देखा करता है उसके लिस्ट में तेरा नाम ही नहीं है। उसका ज्ञान जाग गया, समझ गया कि सब माया की बातें हैं वेश्या प्रेम बनावटी है अर्थात् जब तक धन है, तभी पुरुष से प्रेम करती है। निर्धन होने पर छोड़ देती है। अतः वेश्यागमन से सदा-सर्वदा दूर रहना चाहिए।

(6) चोरी करने से हानि

किसी की गिरी पड़ी भूली हुई वस्तु को उठा लेना चोरी है। चोरी करने वालों लोकों में अपयश एवं महान दुःख उठाना पड़ता है। किसी के यहाँ डाका डाल कर धोखा देकर उनकी वस्तुओं को हड़पना चोरी है। चोरी से अनेकों हानियाँ होती हैं। एक बहुचर्चित कथानक इस प्रकार है–

बनारस में एक शिवभूति नामक ब्राह्मण सत्यघोष नाम से प्रसिद्ध था। वह कहता था कि मैं असत्य कभी न बोलूँगा। यदि बोलूँगा तो छुरी से जिव्हा काट लूंगा। एकदिन एक सेठ उसकी सच्चाई से प्रसन्न होकर अपने कीमती चार रत्न उसके पास रखके व्यापार के लिए चला गया। बारह वर्ष बाद बहुत सा धन लेकर आ रहा था। उसकी नाव डूब गई, सब धन नष्ट हो गया। सेठ ने सत्यघोष के पास आकर अपने चार रत्न मांगे। पुरोहित ने पागल कहकर घर से निकाल दिया। न्याय हेतु राजा के पास गया। राजा ने कुछ न सुना परन्तु रानीने अपनी युक्ति से सत्यघोष की चोरी को पकड़ लिया और उसके घर से रत्न मंगवा लिये। राजा ने सत्यघोष के लिए गोबर भक्षण या मुक्के खाने का या सब धन लेने का दंड दिया।

सत्यघोष दोनों ही दण्ड सहन नहीं कर पाया, मरकर राजा के भण्डार में सर्प हुआ। इसलिए कभी भी चोरी नहीं करना चाहिए।

इसी पर एक लौकिक दृष्टांत है–

एक नगर में अचानक डाकुओं ने आक्रमण कर दिया। नगर के प्रतिष्ठित एक व्यक्ति जैन साहब थे। उनके पास लाखों की सम्पत्ति थी– हीरा, पन्ना, मोती, माणिक और जवाहरात से तिजोरियाँ भरी हुई थीं। डाकुओं के सरदार ने जैन साहब से कहा कि आप वैसे भी एक बहुमूल्य वस्तु इस घर से ले सकते हैं और सब हम ले जायेंगे– बोलो क्या ले जा रहे हो?

जैन साहब प्रसन्नता से एक स्वाध्याय ग्रंथ ले जाने लगे तो सरदार ने कहा– यह क्या-पोथी उठा लाये हो मैंने तो किसी बहुमूल्य रत्न को ले जाने के लिए कहा था।

जैन साहब बोले– मैं अपने घर में इससे बहुमूल्य अन्य रत्न नहीं समझता, यह रत्न आत्मिक शान्ति प्रदान करने वाला है और अन्य जो नाममात्र के रत्न हैं, अशान्ति को उत्पन्न करने वाले हैं। डाकुओं का सरदार आश्चर्यचकित रह गया उसने और अन्य डाकुओं ने जैन साहब की भूरि-भूरि प्रशंसा की। डाकूदल बिना लूटे ही नगर से लौट गया और सदा के लिए अशान्ति को उत्पन्न करने वाली सम्पत्ति को न लूटने का नियम ले लिया अर्थात् चोरी करने का त्याग कर दिया।

(7) परस्त्री सेवन से हानि

कामबाण से पीड़ित होकर विवाहिता स्त्री को छोड़कर अन्य स्त्रियों के पास जाना आना, उनके साथ रमण करना परस्त्री सेवन व्यसन है। इस परस्त्री सेवन में लंकाधिपति रावण प्रसिद्ध है। माता-पिता की आज्ञा से पालने वाले महापुरुष रामचन्द्र जी 14 वर्ष वनवास के लिए निकले। साथ में पत्नी सीता, भाई लक्ष्मण थे। परस्त्री के मोह में आसक्त होकर रावण सीता को छल से हरकर लंका ले गया। सीता को विषय भोगों के लिए बहुत मनाया पर शीलवती सीता दृढ़ थीं। रामचन्द्र जी से हनुमान जी ने सीताजी का पता लगाकर लंका पहुँचे। रावण को बहुत समझाया, सीता वापस कर दो। भाई विभीषण ने भी समझाया पर वह नहीं माना। अंत में भाई विभीषण भी राम की सेना में जा मिला। राम और रावण का घमासान युद्ध हुआ। अंत में रावण ने लक्ष्मण पर चक्ररत्न चला दिया। वह चक्ररत्न लक्ष्मण की प्रदक्षिणा देकर उनके हाथ में आ गया। उसी चक्ररत्न से लक्ष्मण ने रावण को मार दिया। वह मरकर नरक गया। वहाँ पर भयंकर दुखों को भोग रहा है। इस प्रकार रावण की बुद्धि परस्त्री के मोह में नष्ट हो गई थी। इस कारण हित के वचन भी उसे नहीं सुहाते थे। उसका तन-धन-जन सब नष्ट हो गया। अतएव बुद्धिमानों को परस्त्री को दूर से ही त्याग देना चाहिए। उन्हें मां, बहन, बेटी समझकर आदरपूर्वक व्यवहार करना चाहिए। पद्मपुराण में आचार्य रविसेन कहते हैं कि जिस दिन रावण की मृत्यु हुई, उसी दिन दोपहर बाद ही आचार्य अनंतवीर्य 56 हजार आकाशगामी मुनियों के साथ लंका में आये। उसी रात्रि में अनंतवीर्य मुनि को केवलज्ञान हो गया। यदि 2 घंटे पहले ये संघ आ जाता तो न युद्ध होता न रावण की मृत्यु होती। होनहार बड़ा बलवान है पुनः मंदोदरी ने गुरु से 48 हजार महिलाओं के साथ दीक्षा ले ली।

इसी तरह एक दृष्टांत और है–

एक राजपुत्र सेठ की बहू को देखकर काम से व्यथित हुआ और दासी को भेजकर कहलवाया, वह सेठानी चतुर थी। उसने खबर दे दी कि 15 दिन के बाद तुम आ जाना, वह राजपुत्र 15 दिन के बाद आया, उसी 15 दिन के बीच सेठ की बहू ने क्या किया, रोज जुलाब लेती रही और एक मटके में शौच करती रही, 15 दिन के जुलाब दस्तों में वे अत्यन्त दुर्बल हो गई, हड्डियाँ झलकने लगीं, शरीर अत्यन्त कुरूप पीला पड़ गया।

राजपुत्र जब आया, तब वह बहू को देखकर आश्चर्यचकित हुआ, ओह! मैंने तो तुमको किस रूप में देखा था। तो बहू बोलती है कि चकित मत होवो, हमारी आपसे बहुत प्रीति है आप चकित क्यों हो रहे हैं? जिस रूप पर आप मुग्ध थे, चलो! वह रूप हम तुम्हें दिखायें और तुम उस रूप का खूब भोग करो, बहू राजपुत्र को उस मटके के पासले गई और खोलकर बताया कि इसमें भरा है, मेरा रूप, राजपुत्र शर्मिन्दा होकर वापस चला गय।

अतः परस्त्री को दूर से ही त्याग कर देना चाहिए।

ध्यान-साधना

प्रस्तुति-आर्यिका चन्दनामती

ध्यान कैसे करें?

ध्यान का लक्षण–एकाग्रचिन्तानिरोध होना अर्थात् किसी एक विषय पर मन का स्थिर हो जाना ध्यान कहलाता है। यह ध्यान उत्तम संहनन वाले मनुष्य के अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त (48 मिनट) तक ही हो सकता है। ध्यान के चार भेद माने हैं। जिनके लिए कहा भी है–

आर्तं रौद्रं च दुर्ध्यानं, निर्मूल्य त्वत्प्रसादतः।
धर्मध्यानं प्रपद्याहं, लप्स्ये निःश्रेयसं क्रमात्।।

अर्थात् हे भगवन्! आर्त-रौद्र इन दो दुर्ध्यानों को आपके प्रसाद से निर्मूल करके मैं धर्मध्यान को प्राप्त करके क्रम से मोक्ष को प्राप्त करूँगा।

सारांश यह है कि आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल ये चार प्रकार के जो ध्यान हैं, वे चारों गतियों को प्राप्त कराने में अपना सहयोग प्रदान करते हैं अर्थात् आर्तध्यान से तिर्यंच–पशुगति, रौद्रध्यान से नरकगति, धर्मध्यान से देव और मनुष्य गति तथा शुक्लध्यान से सिद्धगति की प्राप्ति होती है।

पूर्ण ध्यान किसे हो सकता है?–उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार तो संसार के प्रत्येक प्राणी को हर समय कोई न कोई ध्यान रहता ही है, तथापि इनमें प्रारंभ के दो (आर्त-रौद्र) ध्यान संसार के कारण हैं और **''परे मोक्ष हेतू''** सूत्र से धर्मध्यान चतुर्थ गुणस्थान से लेकर सातवें गुणस्थान तक होता है। धवला ग्रंथ में दशवें गुणस्थान तक भी धर्मध्यान माना है और शुक्लध्यान तो उत्तम संहननधारी महामुनियों के तथा केवली भगवान के ही होता है।

गृहस्थजन भी ध्यान का अभ्यास कर सकते हैं!–ज्ञानार्णव ग्रंथ में श्री शुभचन्द्राचार्य ने कहा है कि **''आकाश में पुष्प खिल सकते हैं और गधे के सींग हो सकते हैं किन्तु किसीभी देश या काल में गृहस्थाश्रम में ध्यान की सिद्धि नहीं हो सकती है।''**फिर भी धर्मध्यान की सिद्धि के लिए गृहस्थाश्रम में भी ध्यान का अभ्यास और भावना तो करनी ही चाहिए।

संसार में अनेक प्रकार की भौतिक चिन्ताओं में उलझे मन को कुछ विश्रान्ति देने के लिए श्रावकों को पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत इन ध्यानों का अभ्यास करना चाहिए। यद्यपि इन पिण्डस्थ आदि ध्यानों की सिद्धि तो कठिन है फिर भी प्रतिदिन किया गया अभ्यास, भावना, संतति और चिन्तन इन नामों की सार्थकता को तो प्राप्त कर ही लेता है और कालान्तर में वही अभ्यास ध्यान की सिद्धि में सहायक बन जाता है।

ऊपर कहे गये धर्मध्यान के अंतिम भेद संस्थान-विचय के ही ये पिण्डस्थ आदि चार भेद माने गये हैं सो यहाँ क्रमानुसार पिण्डस्थ ध्यान के बारे में ही बताया जा रहा है।

कहाँ बैठकर ध्यानाभ्यास करें?–मन चूँकि अत्यन्त चंचल है अतः उसे नियंत्रित करने एवं ध्यान की ओर उन्मुख करने के लिए जिनमंदिर पूर्ण उपयुक्त स्थान होते हैं। यदि

मंदिर की सुविधा उपलब्ध नहीं है, तो घर के किसी एकांत स्थान (पूजाघर-चैत्यालय) में बैठ सकते हैं अन्यथा किसी पार्क आदि खुले स्थान का कोई हिस्सा भी ध्यान करने के लिए उचित रहेगा। जहाँ आप 5 मिनट से लेकर शक्ति अनुसार 1 घंटे तक भी बैठने में स्वाधीनता और निर्विकल्पता का अनुभव कर सकें उस स्थान का चयन कर लें तथा भूमि पर चटाई या दर्भासन (डाभ या शुद्ध आसन) बिछाकर ध्यान करने हेतु बैठ जावें। केवल भूमि पर बैठकर ध्यान न करें।

ध्यान के समय मुख पूर्व दिशा या उत्तर दिशा की ओर करें क्योंकि पूर्व से निकलने वाले सूर्य की तेजस्वी किरणों की तरंगें प्रत्यक्ष-परोक्ष दोनों प्रकार से मन-मस्तिष्क को और ऊर्जा प्रदान करती हैं जो आत्मा में तेजस्विता के साथ-साथ शारीरिक स्वस्थता को भी देने वाली हैं। इसी प्रकार उत्तर दिशा मनोरथसिद्धि में सहायक मानी गई है जो अपनी ओर अभिमुख हुए मानव की समस्त समस्याओं का समाधान करके उसमें नवजीवन का संचार करती है।

किस मुद्रा में बैठें?– ध्यान के लिए पद्मासन मुद्रा सर्वश्रेष्ठ मानी गई है, वह ब्रह्मचर्यसिद्धि के लिए रामबाण औषधि के समान है। इसके लिए पहले बायाँ पैर दाहिनी जाँघपर रखते हैं पुनः दाहिना पैर बायीं जाँघ पर रखकर, बाएँ हाथ की हथेली पर दायें हाथ की हथेली रखकर भगवान के समान शांत मुद्रा में बैठकर आँखों को कोमलता से बंद करें।

यदि इस पद्मासन से बैठने में अधिक तकलीफ महसूस हो तो अर्धपद्मासन (बायाँ पैर नीचे और दाहिना पैर उसकी जाँघ पर रखकर) से बैठें अथवा सुखासन से भी बैठकर ध्यानाभ्यास किया जा सकता है।

ध्यान का शुभारंभ ॐ की ध्वनि से करें– शरीर की सुषुम्ना नाड़ी एवं मस्तक के ब्रह्म भाग को जागृत करने हेतु "ॐ" बीजाक्षर का नाद परम आवश्यक है। ध्यान को प्रारंभ करने हेतु सर्वप्रथम स्थिरतापूर्वक नौ बार इस ॐकार की ध्वनि करें। ध्वनि के उच्चारण में जहाँ कंठ, तालु, होंठ, नासिका आदि इन्द्रिय एवं उपांगों का अवलम्बन लेना होता है, वहीं ध्वनि के उन क्षणों में अपनी अन्तर्दृष्टि नाभिस्थान पर होनी चाहिए। उस समय अनुभव में नाभिस्थान से उठते हुए आध्यात्मिक तेजपुंज की एक लकीर ऊपर उठती हुई धीरे-धीरे ॐ के साथ मस्तक के रन्ध्र (ब्रह्म) भाग तक जाएगी, यही आध्यात्मिक ऊर्जा आत्मिक शक्ति को प्रदान करती है।

ॐ की यह ध्वनि यदि दिन में तीन बार पूर्ण विधि के साथ की जाए तो माइग्रेन, साइनस, ब्लडप्रेशर आदि अनेक बीमारियों का इलाज बिना दवाई लिए हो जाता है। इसके कई साक्षात् उदाहरण भी देखने को मिले हैं। इस ध्वनि के पश्चात् आत्मिक शान्ति हेतु ध्यान के कुछ सूत्रपदों का उच्चारण करें–

(1) ज्ञानानन्दस्वरूपोऽहं (शक्तिरूप में मेरी आत्मा अनन्तज्ञानरूप है)

(2) परमानन्दस्वरूपोऽहं (मेरी आत्मा में परम आनंद का स्रोत प्रवाहित हो रहा है)

(3) चिच्चैतन्यस्वरूपोऽहं (शुद्ध चैतन्य स्वभाव से युक्त मेरी आत्मा है)

(4) चिन्मयज्योतिस्वरूपोऽहं (चैतन्य की परमज्योति से मैं समन्वित हूँ)

(5) चिच्चिंतामणिरूपोऽहं (चैतन्यरूप चिन्तामणिरत्न से युक्त मेरी आत्मा है)

(6) शुद्धबुद्धस्वरूपोऽहं (शुद्धबुद्ध स्वभाव से मैं समन्वित हूँ)

(7) नित्यनिरंजनरूपोऽहं (निश्चयनय से समस्त कर्मरूपी अंजन-कालिमा से मैं रहित हूँ)

पुनः अपने मन में पूर्ण स्वस्थता का अनुभव करते हुए पिण्डस्थ ध्यान के लिए तैयार हो जाएँ अर्थात् पिण्ड – शरीर में स्थित आत्मा का चिन्तन करना, पिण्डस्थ ध्यान कहलाता है। इसमें पार्थिवी, आग्नेयी, श्वसना, वारुणी और तत्त्वरूपवती ये पाँच धारणाएँ होती हैं।

पार्थिवी धारणा (चित्त की चंचलता में रुकावट) – शरीर पर कम से कम परिग्रह हो और निराकुल चित्त होकर पद्मासन, अर्धपद्मासन अथवा सुखासन से चटाई पर बैठकर इस धारणा के अन्तर्गत विचार कीजिए –

मध्यलोकप्रमाण एक राजु (असंख्यातों मील का) विस्तृत बहुत बड़ा गोल क्षीरसमुद्र है अर्थात् जम्बूद्वीप से लेकर अंतिम स्वयंभूरमणसमुद्रपर्यन्त असंख्यात योजन का क्षीरसागर ध्यान में देखें। दूध के समान सफेद जल से वह समुद्र लहरा रहा है और समुद्र के बीचोंबीच में एक लाख योजन (40 करोड़ मील) विस्तार वाला खिला हुआ एक दिव्य कमल है जिसमें एक हजार पत्ते हैं, वे सब पत्ते सुवर्ण के समान चमक रहे हैं। कमल के बीच की कर्णिका सुमेरुपर्वत के समान ऊँची उठी हुई है, वह पीले रंग की है और अपनी पराग से दशों दिशाओं को पीत प्रभा से सुशोभित कर रही है।

भव्यात्माओं! जैन आगम की भाषा में ऊपर समुद्र और कमल आदि का प्रमाण बताया है, इसका सारांश यह है कि आप अपने चिन्तन में जितना बड़ा से बड़ा समुद्र देख सकें, देखें और उसके बीच में एक हजार आठ पंखुड़ियों का कमल देखें। मन को सुमेरु के समान ऊँचा मानकर कमल की कर्णिका को ऊँची उठी हुई देखें।

पुनः आप देखिए कि उस कर्णिका पर एक श्वेत वर्ण का ऊँचा सिंहासन है, उस पर मैं भगवान आत्मा के रूप में विराजमान होकर ध्यान में तल्लीन हूँ। यहाँ भावों की उच्चता ही कर्मों की निर्जरा कराएगी, आध्यात्मिक ज्योति से आत्मा प्रकाशित हो जाएगी। यही आध्यात्मिक ऊर्जा है जिससे शारीरिक और मानसिक शक्ति प्राप्त होती है।

इस समय आप मन ही मन निम्न पंक्तियाँ पढ़ें –

मेरा तनु जिनमंदिर उसमें, मन कमलासन शोभे सुन्दर।
उस पर मैं ही भगवान स्वयं, राजित हूँ चिन्मय ज्योतिप्रवर।।
मैं शुद्ध बुद्ध हूँ सिद्ध सदृश, कर्मांजन का कुछ लेप नहीं।
मैं नमूँ उसी शुद्धात्मा को, मेरा पर से संश्लेष नहीं।।

(इसके साथ ही शांति और शिथिलता का सुझाव दीजिए। शान्त.....शिथिल.....)

अनंतर आप ऐसा चिंतवन कीजिए कि मेरी आत्मा सम्पूर्ण राग-द्वेषमय संसार को और समस्त कर्मों को नष्ट करने में सक्षम है। ऐसा बार-बार विचार करते हुए अपने उपयोग को उसी में तन्मय कर दीजिए। यहाँ ध्यान के निम्न सूत्र पदों को पढ़ लीजिए –

''ज्ञानपुंजस्वरूपोऽहं, नित्यानंदस्वरूपोऽहं, सहजानंदस्वरूपोऽहं, परमसमाधि-स्वरूपोऽहं, परमस्वास्थ्यस्वरूपोऽहं।''

इस चिन्तनधारा के साथ प्रथम पार्थिवी धारणा समाप्त हुई और अब द्वितीय धारणा के लिए अगला दिन निर्धारित कीजिए ताकि एक दिन का अभ्यास दीर्घकालीन न होने पाए, अन्यथा मस्तिष्क पर भार अनुभव होने लगेगा।

''आग्नेयी धारणा'' (कर्मों को जलाने की एक प्रक्रिया)—इस धारण के अन्तर्गत चिन्तन कीजिए कि मेरे नाभिस्थान में सोलह दलों वाला खिला हुआ एक सफेद कमल है। उस कमल की कर्णिका पर ''हँ'' बीजाक्षर पीली केशर से लिखा हुआ देखिए पुनः दिशा के क्रम से प्रत्येक दलों (पत्तों) पर केशर से ही अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, इन सोलहों स्वरों को लिख लें। पुनः इन सोलहों स्वर एवं हँ बीजाक्षर पर अपने मन को केन्द्रित करके इनका ध्यान कीजिए।

मन को अशुभ से शुभ की ओर ले जाने की यह एक उत्तम प्रक्रिया है, उस समय शारीरिक और मानसिक स्थिरता की परम आवश्यकता है अतः चंचल चित्तरूपी बंदर को एकदम अनुशासित रखिए, तब आपको ये अक्षर और कर्णिका का महामंत्र स्पष्ट दिखने लोगा। इसके आगे आप देखें कि इसी कमल के ठीक ऊपर हृदय स्थान पर औंधा मुँह करके (नीचे को लटकता हुआ) एक मटमैले रंग का आठ दल का कमल बना हुआ है, उसके आठों दल पर क्रम से ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय कर्म, वेदनीय कर्म, मोहनीय कर्म, आयुकर्म, नामकर्म, गोत्रकर्म और अन्तराय कर्म इन आठों कर्मों के नाम काले रंग से लिखे हुए हैं।

पुनश्च ध्यान की अगली शृँखला में देखें और अनुभव करें कि नाभिकमल की कर्णिका के ''हँ'' महामंत्र के रेफ से धुँआ निकल रहा है, कुछ ही क्षणों में उस धुँए में से अग्नि के स्फुलिंगे (चिंगारियाँ) निकलने लगीं, तब अग्नि की लौ ऊपर को उठकर आठ कर्म वालेकमल को जलाने लगी और धीरे-धीरे वही अग्नि ज्वाला बनकर मस्तक के ऊपर पहुँच गई, पुनः वह अग्नि त्रिकोणाकार मण्डल के आकार में परिवर्तित हो गई अर्थात् अग्नि की एक लकीर मस्तक के दाईं ओर, एक बाईं ओर गई और नीचे दोनों लकीरों के मिल जाने से शरीर का त्रिकोणाकार अग्निमंडल बन जाता है। इस समय यह चिन्तन करें कि धधकती हुई यह अग्नि अंदर में तो कमलों को जला रही है और बाहर में औदारिक शरीर को भस्म कर रही है।

चिन्तन के इन क्षणों में घबड़ाहट बिल्कुल नहीं होना चाहिए क्योंकि इस ध्यान के माध्यम से अनेक भवों में संचित पापकर्म तो नष्ट होंगे ही, साथ में तमाम शारीरिक रोगों का विनाश होकर स्वस्थता का अनुभव भी होगा।

अब आगे देखें कि अग्नि मंडल के त्रिकोणाकार की तीनों लकीरों में ''रं रं रं'' ऐसे अग्निबीजाक्षर लिखे हुए हैं और तीनों कोणों पर स्वस्तिक बने हैं तथा स्वस्तिकके पास भीतरी भाग में ''ॐ रँ'' ऐसे बीजाक्षर लिखे हुए हैं। पुनः चेतावनी दी जा रही है कि जलती हुई अग्नि को देखकर मन को विचलित नहीं करना है क्योंकि आत्मा चिच्चैतन्यस्वरूप अमूर्तिक है अतः अग्नि के द्वारा वह कभी जल नहीं सकती है, यह तो अशुभ कर्मों को जलाने का एक तरीका है और

इसमें सफलता प्राप्त करते ही आपको परमस्वस्थता की अनुभूति होगी।

इस धारणा में ध्यान की समापन बेला में अब पुनः देखिए कि वह अग्नि धीरे-धीरे शांत हो गई है, जिससे हमारी आत्मा पर राख का पुंज इकट्ठा हो गया है पुनः पाँच दीर्घ श्वास लेते हुए आज के ध्यान को तीन बार निम्न वाक्य बोलते हुए समाप्त कीजिए–

''मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ, मुझे कोई रोग नहीं है।''

इस प्रकार पिण्डस्थ ध्यान के प्रकरण में दो धारणाओं का यहाँ वर्णन किया गया है। आगे की धारणाएँ अगले दिन के ध्यान में करें।

नोट–उपर्युक्त ध्यान के प्रयोग से अनेक भाइयों को ब्लडप्रेशर, शुगर एवं हार्ट की बीमारियों में आशातीत लाभ मिला है एवं कई बहनों ने माइग्रेन, सिरदर्द, साइनस एवं शरीर के दर्दों में काफी आराम का अनुभव किया है अतः पाठकगण भी इसे दिन में एक, दो अथवा तीन समय प्रयोग करके अपने अनुभव से हमें अवगत करावें तो ध्यान की सार्थकता का परिचय अन्य लोगों को भी प्राप्त हो सकेगा।

अब इसी शृँखला में प्रस्तुत हैं पिण्डस्थ ध्यान की अगली धारणाएँ–

1. सर्वप्रथम आप मंदिर जी की स्वाध्यायशाला में अथवा घर के किसी एकांत स्थान में स्थिरचित्त होकर ध्यान के लिए पद्मासन, अर्धपद्मासन या सुखासन से बैठकर आँखें कोमलता से बंद करें।

2. बाएँ हाथ की हथेली पर दाएँ हाथ की हथेली रखकर शरीर को तनावमुक्त करें। पृष्ठ रज्जु बिल्कुल सीधी हो, न अधिक अकड़न न अधिक झुकाव हो, किन्तु निराकुल, शान्तचित्त होकर बैठें।

3. इसके पश्चात् ॐ की नव बार ध्वनि निकालते हुए दीर्घ श्वांस का अभ्यास करें। पुनः मानसिक स्थिरता के लिए ध्यान के कुछ सूत्रपदों का उच्चारण कीजिए–

अनन्तज्ञानस्वरूपोहं, अनन्तदर्शनस्वरूपोहं, अनन्तवीर्यस्वरूपोहं, सहजानन्दस्वरूपोहं।

अब ध्यान की धारा में अपने चित्त को प्रवाहित कीजिए और पार्थिवी तथा आग्नेयी धारणा के अन्तर्गत जो-जो आपने चिन्तन किया था कि क्षीरसागर के मध्य ऊँचे कमल की कर्णिका पर एक सिंहासन के ऊपर मैं एक स्वच्छ अन्तरात्मा के रूप में विराजमान हूँ और चिन्तन के आधार पर मुझे अपने को परमात्मा बनाना है।

श्वसना (वायवी) धारणा–अब आप देखिए कि आकाश में चारों तरफ से प्रलयकारी तेज हवा चलने लगी। यह हवा मेरूपर्वत को भी प्रकम्पित कर देने को आतुर है किन्तु आप चिन्ता मत कीजिए क्योंकि आपकी ध्यानस्थ आत्मा को यह वायु अणुमात्र भी हिला नहीं सकती है। वायुमण्डल गोल आकाररूप से परिणत हो गया है, इस मण्डल में जगह-जगह 'स्वाय-स्वाय' ये वायु के बीजाक्षर सफेद रंग से लिखे हैं।

आगे देखें कि वह प्रलयंकारी वायु मेरे शरीर में प्रविष्ट हो गई है और वह त्रिकोणाकार शरीर पर ढकी हुई भस्म को उड़ा रही है अर्थात् इस हवा से कर्मों की रज उड़ गई और आत्मा स्वच्छ हो गई है। इस वायवी धारणा के समय निम्न मंत्र का चिन्तन कीजिए।

''ॐ ह्रीं अर्हम् श्रीजिनप्रभंजनाय कर्मभस्मविधूननं कुरू कुरू स्वाहा।''

पुनः अनुभव करें कि यह वायु रुक गई है और हवा की हलचल समाप्त हो गई है। मैं अब ज्ञान का पुंज बन गया हूँ, सम्पूर्ण अज्ञानता मेरे हृदय से दूर हट गई है।

इतना चिन्तन भी आपको बहुत शांति तथा सुख प्रदान करेगा अतः मात्र यह अनुभव कीजिए कि–मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ मुझे कोई रोग नहीं है। तीन बार पुनः महामंत्र का स्मरण करते हुए तीन बार दीर्घ स्वासोच्छ्वास लें और आँख खोलकर, हाथ जोड़कर, पंचपरमेष्ठियों को नमन करते हुए निम्न पद्य बोलें-

संसार के भ्रमण से अतिदूर हैं जो, ऐसे जिनेन्द्रपद को नित ही नमूँ मैं।
सम्पूर्ण सिद्धगण को सब साधुओं को, वंदूँ सदा सकल कर्म विनाश हेतू।।1।।

पुनः अगली वारूणी धारणा में प्रवेश करें।

वारूणी धारणा–अब चिंतन करें कि आकाश में बादल छा गए हैं, बिजली चमक रही है और देखते ही देखते मूसलाधार बरसात शुरू हो गई है। आकाशमण्डल में चारों ओर ''पं पं पं'' बीजाक्षर लिखे हुए हैं।

वर्षा की अमृत सदृश बूँदें मेरी आत्मा का प्रक्षालन कर रही हैं। इस दृश्य का चिन्तन करते हुए निम्न मंत्र पढ़ें–

''ॐ ह्रीं अर्हम् श्रीजिनपर्जन्याय कर्ममलप्रक्षालनं कुरू कुरू स्वाहा।''

इस प्रकार वर्षा से शुद्ध होकर मेरी आत्मा स्फटिक के समान शुद्ध हो रही है। मंत्र पढ़िए–**ॐ ह्रीं शुद्धात्मने नमः, ॐ ह्रीं विश्व-रूपात्मने नमः, ॐ ह्रीं परमात्मने नमः।** अब आगे पंचम तत्त्वरूपवती धारणा का अवलम्बन लीजिए-

तत्त्वरूपवती धारणा–उपर्युक्त मंत्रों के उच्चारण के पश्चात् शरीर में शिथिलता एवं शांति का सुझाव देते हुए मन को स्थिर करें पुनः चिन्तन करें कि मेरी आत्मा सप्तधातु से रहित पूर्णचन्द्र के समान प्रभाव वाली सर्वज्ञ के सदृश बन गई है। अब मैं अतिशय से युक्त, पंचकल्याणकों की महिमा से समन्वित होकर देव, दानव, धरणेन्द्र आदि से पूजित हो गया हूँ। अनन्तर मैं आठ कर्मों से रहित निर्मल पुरुषाकार नित्य निरंजन परमात्मा बन गया हूँ। यह चिन्तन करते-करते आप पिण्डस्थ ध्यान की चरम सीमा तक पहुँच गये हैं।

अपने पिण्ड–शरीर के अंदर स्थित आत्मा का ध्यान ही पिण्डस्थ ध्यान है। इसका निश्चल ध्यान करने वाले योगीजन अन्य लोगों से दुःसाध्य ऐसे मोक्षसुख को भी प्राप्त कर लेते हैं तो अन्य शारीरिक सुखों की तो बात ही क्या है। जिस प्रकार से सूर्य के उदित होते ही उल्लू पलायमान हो जाते हैं उसी प्रकार से इस पिण्डस्थ ध्यानरूपी धन के समीप होने पर विद्या, मण्डल, मंत्र, यंत्र, इंद्रजाल के आश्चर्य, सिंह, सर्प तथा दैत्य आदि निःसारता को प्राप्त हो जाते हैं एवं भूत, पिशाच, ग्रह, राक्षस आदि कुछ भी उपद्रव करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। ऐसा इस ध्यान का अचिन्त्य प्रभाव जानना चाहिए।

मेरे हृदयाम्बुज में नितप्रति, चिन्मय ज्योती भगवान रहे।
मेरे अन्तर में आनंदघन, अमृतमय पूर्ण प्रवाह बहे।।

वह ही आनन्द घनाघन हो, कलिमल को दूर करे क्षण में।
सब दूरित सूर्य का ताप शमन, कर शाश्वत शांति भरे मुझमें।।

पुनः आँखें खोलकर हाथ जोड़कर परमात्मा को नमन करते हुए ध्यान को सम्पन्न कीजिए।

अब पदस्थ ध्यान का वर्णन प्रारंभ किया जाता है।

पदस्थ ध्यान क्या है?–पवित्र मंत्रों के अक्षर पदों का अवलम्बन लेकर उसमें तल्लीन हो जाना पदस्थ ध्यान कहलाता है। इसके बहुत भेद हो जाते हैं जो कि विभिन्न मंत्रों पर आधारित हैं।

पिण्डस्थ ध्यान को पदस्थ से पूर्व क्यों बतलाया है?–गृहस्थाश्रम के अनेकों प्रपंचों में उलझे हुए मन को कोई भी एक मंत्र पर किंचित् क्षण के लिए भी टिका नहीं सकता है और मन को खाली बैठना भी आता नहीं, अतः वह इधर-उधर के चक्कर में ही पुनः घूमने लगता है। अतः उसके लिए जितनी भी सामग्री दी जाएगी, उतना ही अच्छा है क्योंकि उतनी देर तक तो कम से कम वह बाहर के विषयों से अपने को हटाकर इन धारणाओं के चिन्तन में ही उलझेगा, जो अच्छा ही है। यदि एक पद पर ही मन को स्थिर करना सरल होता तो आचार्य पहले पदस्थ ध्यान को कहकर फिर पिण्डस्थ को कहते। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पिण्डस्थ ध्यान का ही पहले अभ्यास करना चाहिए। अनन्तर उसमें परिपक्व हो जाने के बाद पदस्थ ध्यान का अभ्यास करना चाहिए।

ॐ का ध्यान

पदस्थ ध्यान कैसे प्रारंभ करें?–सर्वप्रथम आप शुद्धमन से शुद्धवस्त्र धारण कर किसी एकांत स्थान अथवा पार्क जैसे खुले स्थान पर पद्मासन, अर्धपद्मासन अथवा सुखासन से बैठ जाएँ। शरीर पर पहने हुए वस्त्रों के अतिरिक्त समस्त परिग्रह को त्यागकर स्वाधीनता का अनुभव करते हुए तन-मन में शिथिलता का सुझाव दें और हाथ जोड़कर प्रार्थना करें–

तर्ज-मैं चंदन बनकर तेरे.....

'हे प्रभु! मैं अपने आतम, में ऐसा रम जाऊँ।
संसार के बंधन से, मैं मुक्त हो जाऊँ।। हे प्रभु.।।
संकल्प विकल्पों का यह, सागर संसार है।
सागर की तरंगों से अब, मैं ऊपर उठ जाऊँ।। हे प्रभु.।।1।।
दुःखों की पर्वतमाला, कब टूट पड़ेगी मुझ पर।
उस पर्वत पर हे भगवन्! मैं कैसे चढ़ पाऊँ।। हे प्रभु.।।2।।
आतम सुख के अमृत में, मैं डूब गया अब स्वामी।
उसका आस्वादन लेकर, ''चन्दनामती'' सुख पाऊँ।। हे प्रभु.।।3।।

इसके पश्चात् बाएँ हाथ की हथेली पर दाहिने हाथ की हथेली रखकर, आँखें कोमलता से बंद करके भगवान के समान शान्तमुद्रा में बैठ जाएं और ॐकार का नाद करते हुए निम्न मंत्रों का उच्चारण करते हुए आत्मशांति का अनुभव करें–

1. ॐ अर्हत्स्वरूपोऽहं 2. ॐ तीर्थस्वरूपोऽहं 3. ॐ जिनस्वरूपोऽहं 4. ॐ सिद्धस्वरूपोऽहं 5. ॐ आत्मस्वरूपोऽहं।

पुनः अपनी अन्तर्यात्रा प्रारंभ कर दें, इस यात्रा का लक्ष्य बिन्दु है-ॐ बीजाक्षर। कल्पना कीजिए कि मेरे ठीक सामने केशरिया वर्ण का एक ''ॐ'' मंत्र विराजमान है। इसी ॐ पर मन को केन्द्रित करें, ॐ के प्रत्येक अवयव में केशरिया रंग भरा हुआ देखें। अनुभव करें.....मन को बाहर न जाने दें.....शिथिलता का सुझाव देते हुए ध्यान की अगली शृँखला में प्रवेश करें और चिन्तन करें कि–

''ॐ'' यह प्रणवमंत्र है, यह पंचपरमेष्ठीवाचक मंत्र समस्त द्वादशांग का वाचक है। इसमें यथास्थान पाँचों परमेष्ठियों को विराजमान करते हुए उनके दर्शन करें–ॐ के अंदर प्रथम सिरे पर ''अरिहंत'' भगवान को देखें और ''णमो अरिहंताणं'' पद का स्मरण करते हुए भावों से ही अरिहंत परमेष्ठी को नमन करें और आगे चलें अर्धचन्द्राकार सिद्धशिला पर, जहाँ सिद्ध भगवान विराजमान हैं। आठों कर्मों से रहित, निराकार-अशरीरी सिद्ध भगवान की प्रतिमा पर मन को एकाग्र करते हुए आप ''णमो सिद्धाणं'' पद का स्मरण करें और उन्हें नमन करते हुए अपने मनवांछित कार्य की सिद्धि करें।

पुनश्च तीसरे परमेष्ठी आचार्य देव हैं, उनके दर्शन करने के लिए ॐ के मध्यभाग पर मन को लाएं और चिन्तन करें कि पिच्छी-कमण्डलु से सहित एक दिगम्बर मुनिराज यहाँ विराजमान हैं, ये ही चतुर्विध संघ के नायक आचार्यपरमेष्ठी कहलाते हैं। इनके चरणों में श्रद्धापूर्वक नमन (भावों से ही) करें और ''णमो आइरियाणं'' पद का मानसिक उच्चारण करते हुए ''ॐ'' की मात्रा अर्थात् बड़े ऊ के आकार में लिखा गया जो ओकार है उसमें चतुर्थ उपाध्याय परमेष्ठी को दिगम्बर मुनि मुद्रा में अध्ययन-अध्यापन करते हुए देखें। इनके दर्शन से अज्ञान का नाश एवं ज्ञान का विकास होगा, ''णमो उवज्झायाणं'' के उच्चारणपूर्वक उनके चरणों में नमस्कार करें और अंतिम परमेष्ठी सर्वसाधुओं के दर्शन करने हेतु ''ॐ'' के निचले भाग में अपनी यात्रा का पड़ाव डालें। पुनः चिन्तन करें कि यहाँ सामायिक अवस्था में लीन महान सन्त-साधु विराजमान हैं, जो संसार-शरीर-भोगों से पूर्ण विरक्त हैं। उनके दर्शन करते हुए मन को केन्द्रित कर दें उनकी वीतरागी मुद्रा पर और निम्न पंक्तियाँ पढ़ते हुए तल्लीन हो जायें ताकि मन कहीं बाहर न जाने पावे–

हे गुरुवर! तेरी प्रतिमा ही, तेरा अन्तर दर्शाती है।
यह नग्न दिगम्बर मुद्रा ही, प्राकृतिक रूप दर्शाती है।।

अर्थात् जिनकी काया से ही बिना कुछ बोले भी मोक्षमार्ग का दिग्दर्शन हो रहा है ऐसे साधुपरमेष्ठी के चरणों में नतमस्तक होकर ''णमो लोए सव्वसाहूणं'' का उच्चारण करें और अपनी आत्मा में ये विलक्षण आध्यात्मिक ऊर्जा की प्राप्ति का अनुभव करें। दो मिनट के लिए मन को यहीं स्थिर कर दें, शरीर में शिथिलता एवं शांति का सुझाव दें, पुनश्च–

परमेष्ठियों की शक्ति से समन्वित अनन्तशक्तिमान् ॐ मंत्र के चारों ओर एक गोलाकार से निकलती हुई सूर्य की किरणों का दर्शन करें अर्थात् एक सूर्य बिम्ब में विराजमान ॐ

बीजाक्षर पर चित्त को केन्द्रित करें, तब सूर्य जैसा प्रकाश मन-मस्तिष्क में भरता महसूस होगा एवं उस समय अनुभव करें–

''मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ, मुझे कोई रोग नहीं है'' (तीन बार इस वाक्य को बोलें) पुनः महामंत्र के स्मरणपूर्वक तीन बार दीर्घ श्वासोच्छ्वास लें और आँखों को अभी बंद रखते हुए निम्न श्लोक का उच्चारण करें–

अर्हन्तो मंगलं कुर्युः, सिद्धा कुर्युश्च मंगलम्।
आचार्याः पाठकाश्चापि, साधवो मम मंगलम्।।

इस मंगलपाठ के अनन्तर हाथ जोड़कर पंचपरमेष्ठियों को नमस्कार करते हुए आँखें खोलें। इस प्रकार पदस्थ ध्यान में ॐ बीजाक्षर की यह संक्षिप्त ध्यान प्रक्रिया बतलाई गई है। आगे इसी तरह से ह्रीं, क्लीं, अर्हं, असिआउसा आदि बीजाक्षरों को भी अपने उत्तमांगों में स्थापित करके इनका ध्यान भी किया जा सकता है।

ह्रीं का ध्यान

ध्यान की उपयोगिता–स्वास्थ्य का पहला लक्षण मेरुदण्ड लचीला और स्वस्थ रहे। मेरुदण्ड को लचीला रखने के लिए मेरुदण्ड की क्रियाएँ और सीधा बैठना आवश्यक है। मेरुदण्ड के मात्र सीधा रहने से प्राण-धारा का सन्तुलन होने लगता है, जिससे व्यक्ति शक्तिशाली और प्राणवान बनता है। दीर्घश्वास से एकाग्रता आती है और गुस्सा शांत होता है। योगनिन्द्रा से तनाव में कमी और शांति मिलती है। विधायक सोच और मंगल भावना से मैत्री का विकास होता है। योग और मुद्राओं से स्वभाव बदलता है।

ह्रीं क्या है? ह्रीं एक बीजाक्षर वर्ण है। इस एक ह्रीं के अन्दर चौबीस तीर्थंकर समाहित हैं जो कि भिन्न-भिन्न वर्ण के हैं–

वरनाद दुतीया चंद्र सदृश, बिंदू नीली है कला लाल।
ईकार हरित ह्र पीत इन्हीं में, उन-उन वर्णी जिन कृपालु।।
चंदाप्रभु पुष्पदंत शशि में, विन्दू में नेमी मुनिसुव्रत।
श्री पद्मप्रभु जिन वासुपूज्य हैं, कमलवर्ण सम कलामध्य।।1।।
ई मात्रा मध्य सुपार्श्व पार्श्व, ह्र बीज में सोलह तीर्थंकर।
ऋषभाजित संभव अभिनंदन, सुमती शीतल श्रेयोजिनवर।।
श्री विमल अनंत धर्म शांती, कुंथू अर मल्लि नमी सन्मति।
ये ह्रीं मध्य चौबिस जिनवर, इनको वंदूँ ध्याऊँ नितप्रति।।2।।

ध्यान प्रारंभ करें, सर्वप्रथम आप शुद्धमन से शुद्धवस्त्र धारण कर किसी एकांत स्थान अथवा पार्क जैसे खुले स्थान पर पद्मासन, अर्धपद्मासन अथवा सुखासन से बैठ जाएं। शरीर पर पहने हुए वस्त्रों के अतिरिक्त समस्त परिग्रह को त्यागकर स्वाधीनता का अनुभव करते हुए तन-मन में शिथिलता का सुझाव दें और हाथ जोड़कर प्रार्थना करें–

तर्ज-आवाज देकर तुम्हें....

चलो मन को अन्तर की यात्रा कराएं।
भटकते विचारों को मन से हटाएँ।।
मेरी आतम सत्य शिव सुन्दरम् है।
कुसंगति से उसमें हुआ मति भरम है।।
पुरुषार्थ कर शुद्ध आतम को ध्याएँ।
भटकते विचारों को मन से हटाएं।।1।। चलो.....
न हम हैं किसी के न कोई हमारा।
सभी से जुदा आतमा है निराला।।
उसे ''चन्दनामति'' स्वयं निज में पाएँ।
भटकते विचारों को मन से हटाएं।।2।। चलो.....

इसके पश्चात् बाएं हाथ की हथेली पर दाहिने हाथ की हथेली रखकर आँखें कोमलता से बंद करके भगवान के समान शांत मुद्रा में बैठ जाएं और ऊँकार का नाद करते हुए निम्न मंत्रों का उच्चारण करते हुए आत्म शांति का अनुभव करें–

1. श्री सुखसम्पन्नोऽहं 2. ह्री गुणसम्पन्नोऽहं 3. धृतिगुणसम्पन्नोऽहं 4. श्रीगुणसम्पन्नोऽहं 5. कीर्तिसम्पन्नोऽहं।

पुनः अपनी अन्तर्यात्रा प्रारंभ कर दें, इस यात्रा का लक्ष्य बिन्दु है-ह्रीं बीजाक्षर। चौबीस तीर्थंकरों को नमन करते हुए ध्यान का प्रथम चरण प्रारंभ करें–

1. ध्यान का प्रथम चरण–सबसे पहले चित्त के द्वारा 'ह्रीं' पद लिखें। ह्र, ई की मात्रा, कला (लाइन) चन्द्राकार, बिन्दु। पूरा ह्रीं देखें.... अनुभव करें...दिख रहा है। शांत...दर्शन करें। (2 मिनट)

2. ध्यान का द्वितीय चरण–यह ह्रीं पद पाँच रंगों से युक्त है। कहाँ कौन सा वर्ण है, देखें.....लाल वर्ण की कला देखकर पुनः सर्वप्रथम पीत वर्ण का ह्र देखें। दो लाइनों में लिखे गए ह्र के अन्दर तपाए हुए स्वर्ण के समान पीला-पीला रंग भरा हुआ है। देखें.....अनुभव करें....दिख रहा है। शांत.....दर्शन (1 मिनट)।

पुनः ईकार की मात्रा हरे रंग की देखें। दो लाइनों में खींची हुई इस मात्रा के अंदर मरकत मणि के समान हरा रंग भरा हुआ है। देखें.....दिख रहा है.....अनुभव करें.....शांत....दर्शन (1 मिनट)

इसके पश्चात् लाइन (कला) लाल वर्ण की देखें। दो लाइनों से युक्त इस कला के अंदर मूँगे के समान लाल-लाल रंग भरा हुआ है। देखें...अनुभव करें...दिख रहा है...शांत..दर्शन (1 मिनट)

अब आगे चित्त को सभी बाह्य विकल्पों से खींचकर अंदर की ओर ले आएं और ह्रीं के दाईं ओर ऊपर श्वेत वर्ण का अर्ध चन्द्र देखें। चमकता हुआ अर्ध चन्द्रमा बिल्कुल दूध जैसा सफेद। अनुभव करते हुए देखें.....दिख रहा है। इस चन्द्रमा को देखने से चित्त–हृदय धवल चाँदनी के सदृश स्वच्छ-निर्मल हो जाएगा। शांत.....दर्शन (1 मिनट)

अब श्वेत चन्द्रमा के ऊपर गोल नीली बिन्दु देखें जिसके अंदर नीलमणि के समान नीला रंग भरा हुआ है। म् का उच्चारण कराने वाली गोल बिन्दी पूर्ण मनोयोग से देखने का प्रयास करें। देखें.....दिख रहा है। शांत.....दर्शन (1 मिनट)

यह पूरी पंचवर्णी ह्रीं एक बार पूरी तौर से देख जाएं। शांत.....दर्शन।

3. ध्यान का तृतीय चरण–पंचवर्णी ह्रीं में क्रम-क्रम से चौबीसों तीर्थंकर विराजमान करें। सर्वप्रथम पीले 'ह्र' के अंदर पीतवर्ण के सोलह तीर्थंकर हैं। देखें....ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमति, शीतल, श्रेयांस, विमल, अनंत, धर्म, शांति, कुंथु, अरह, मल्लि, नमि और वर्धमान। चित्त को एकाग्र करके सोलह तीर्थंकरों को देखने का प्रयास करें। देखें.....दिख रहे हैं....शांत.....।

पुनः हरी ईकार मात्रा के अंदर हरितवर्ण के 2 तीर्थंकर–सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ को विराजमान करें। देखें....अनुभव करें। दिख रहा है.....शांत.....दर्शन।

इसके पश्चात् क्रमानुसार लालवर्ण की कला (लाइन) के अंदर लाल वर्ण के दो तीर्थंकर–पद्मप्रभु और वासुपूज्य भगवान को विराजमान करें। देखें.....अनुभव करें.....शांत.....दिख रहा है।

अब श्वेत वर्ण के अर्ध चन्द्र में चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत इन दो तीर्थंकरों को विराजमान करके देखें। शांत.....देखें.....दिख रहा है।

अन्त में नीली बिन्दु में नीलवर्ण के तीर्थंकर नेमिनाथ, मुनिसुव्रत को विराजमान करें। देखें.....दिख रहा है।

इस प्रकार क्रम से पूरी पंचवर्णी ह्रीं के अंदर क्रम-क्रम से विराजमान समस्त तीर्थंकरों को एक बार देख जाएं। शांत.....शांत.....। चित्त की यात्रा पूरी होने वाली है। देखें....अनुभव करें.....पूरा ह्रीं दिख रहा है।

ध्यान का अंतिम चरण–'मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ मुझे कोई रोग नहीं है'' (तीन बार इस वाक्य को बोलें पुनः महामंत्र के स्मरणपूर्वक तीन बार दीर्घश्वासोच्छ्वास लें। श्वास छोड़ते समय पेट अंदर और श्वांस भरते समय पेट बाहर और आँखों को अभी बंद रखते हुए निम्न श्लोक का उच्चारण करें–)

शिवं शुद्ध बुद्धं, परं विश्वनाथम्।
न देवो न बंधुः न कर्ता न कर्म।।
न अंगं न संगं न इच्छा न कायं।
चिदानंद रूपं नमो वीतरागम्।।

इस मंगलपाठ के अनन्तर हाथ जोड़कर पंचपरमेष्ठियों को नमस्कार करते हुए आँखें खोलें। इस प्रकार पदस्थ ध्यान में ह्रीं बीजाक्षर की यह संक्षिप्त ध्यान प्रक्रिया बतलाई गई है।

आप उपर्युक्त ध्यान प्रक्रिया से शारीरिक एवं आत्मिक लाभ प्राप्त करें, यही हार्दिक भावना है।

इस पदस्थ ध्यान में इन मंत्रों का ध्यान करना ही कहा है अर्थात् इन मंत्रों को हृदय, ललाट, नाभि, मस्तक, कंठ आदि स्थानों में स्थापित करके उस पर उपयोग को स्थिर करना चाहिए।

जाप्य—यदि आप ऐसा ध्यान करने में असमर्थ हैं तो आप इन मंत्रों की जाप्य भी कर सकते हैं। जाप्य करने के वाचक, उपांशु और मानस ऐसे तीन भेद हैं। वाचक जाप में शब्दों का उच्चारण स्पष्ट होता है। उपांशु में भीतर ही भीतर शब्द कंठ स्थान में गूंजते रहते हैं, बाहर नहीं निकल पाते हैं किन्तु मानस जाप में बाहरी और भीतरी शब्दोच्चारण का प्रयास रुक जाता है, हृदय में ही मंत्राक्षरों का चिंतवन चलता रहता है। यही क्रिया ध्यान का रूप धारण करती है। वाचक जाप से सौ गुणा अधिक पुण्य उपांशु जाप से होता है और उससे हजार गुणा अधिक पुण्य मानस जाप से होता है।

महामंत्र के जाप में प्राणायाम विधि का विधान है। अर्थात् णमोकार मंत्र के तीन अंश करिये ''णमो अरहंताणं'' इस पद के उच्चारण के साथ श्वासवायु को अंदर ले जाइये और 'णमो सिद्धाणं'' इस पद के उच्चारण के साथ श्वास वायु को बाहर निकालिये। इसी तरह 'णमो आइरियाणं' में श्वास खींचना और 'णमो उवज्झायाणं' में श्वास को छोड़ना तथा 'णमो लोए' में श्वास लेना और 'सव्व साहूणं' पद में छोड़ना। इस तरह एक गाथा महामंत्र के उच्चारण में तीन श्वासोच्छ्वास होते हैं।

मुनि-आर्यिकाओं की देववंदना, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय आदि प्रत्येक क्रियाओं में स्वासोच्छ्वास की गणना से ही महामंत्रपूर्वक कायोत्सर्ग करने का विधान है तथा श्रावकों के लिए भी ऐसा ही विधान है अतः इस महामंत्र का नव बार जाप करने से 27 बार उच्छ्वास होते हैं एवं 108 जाप करने से 300 उच्छ्वास हो जाते हैं। यह महामंत्र सर्वश्रेष्ठ अपराजित मंत्र है। ऐसे ही 'अरहंत सिद्ध' 'अ सि आ उ सा' 'नमः सिद्धेभ्यः' आदि अनेकों मंत्र हैं।

शांतिमंत्र—ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथाय जगत् शांतिकराय सर्वोपद्रव शांतिं कुरु कुरु ह्रीं नमः।

शांति की इच्छा करते हुए सदैव इस मंत्र का जाप करना चाहिए। अंगुलियों पर जाप करना या मणियों की अथवा सूत की माला पर भी जाप करना चाहिए। प्लास्टिक या लकड़ी की माला से जाप नहीं करना चाहिए। यह जाप पदस्थ ध्यान नहीं है किन्तु उस ध्यान के लिए प्रारंभिक साधन मंत्र हैं।

रूपस्थध्यान—अरिहंत भगवान के स्वरूप का विचार करना, अर्थात् भगवान समवसरण में द्वादश सभाओं के मध्य विराजमान हैं। उनका ध्यान करना रूपस्थ ध्यान है।

रूपातीत—सिद्धों के गुणों का चिंतन करना, अर्थात् सिद्ध भगवान अमूर्तिक, चैतन्यस्वरूप, पुरुषाकार निरंजन परमात्मा हैं, वे लोकाग्र में विराजमान हैं। तत्पश्चात् अपने आपको सिद्धस्वरूप समझकर उसी में लीन हो जाना, सो यह रूपातीत ध्यान है।

इस प्रकार पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत इन चारों प्रकार के ध्यानों का अभ्यास करते हुए शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता प्राप्त होती है।

ध्यानसूत्र
(श्री माघनंदिआचार्यविरचित)

(सामायिक में ध्यान के पूर्व इन सूत्रों का भी चिंतवन कीजिए। ये सूत्रमंत्र निश्चयनय की अपेक्षा से शुद्धात्मा की भावनास्वरूप हैं।)

1. रागद्वेष-मोह रहितोऽहं 2. क्रोध-मान-माया-लोभ रहितोहं 3. पंचेन्द्रियविषयव्यापार-शून्योहं 4. मनोवचनकायक्रियारहितोहं 5. द्रव्यकर्मभावकर्मनोकर्मरहितोहं 6. ख्यातिपूजालाभादि-विभावभावरहितोहं 7. दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षा रहितोहं 8. शल्यत्रयरहितोहं 9. गारवत्रय-रहितोहं 10. दंडत्रयरहितोहं 11. विभावपरिणामशून्योहं 12. निजनिरंजनस्वरूपोहं 13. स्वशुद्धात्म-सम्यक्श्रद्धानपरिणतोहं 14. भेदज्ञानानुष्ठानपरिणतोहं 15. अभेदरत्नत्रयस्वरूपोहं 16. निर्विकल्प समाधिसंजातोहं 17. वीतरागसहजानंदस्वरूपोहं 18. अत्यानंदस्वरूपोहं 19. स्वसंवेदन-ज्ञानामृतभरितोहं 20. ज्ञायकैकस्वभावोहं 21. सहजशुद्धपारिणामिकस्वभावरूपोहं 22. सहजशुद्धज्ञानानंदैकस्वभावोहं 23. महाचलननिर्भरानंदस्वरूपोहं 24. चिन्मात्रमूर्तिस्वरूपोहं 25. चैतन्यरत्नाकरस्वरूपोहं 26. चैतन्यामरद्रुमस्वरूपोहं 27. चैतन्यामृताहारस्वरूपोहं 28. ज्ञानपुंजस्वरूपोहं 29. ज्ञानामृतप्रवाहस्वरूपोहं 30. चैतन्यरसरसायनस्वरूपोहं 31. चैतन्यचिन्मयस्वरूपोहं 32. चैतन्यकल्याणवृक्षस्वरूपोहं 33. ज्ञानज्योतिःस्वरूपोहं 34. ज्ञानार्णवस्वरूपोहं 35. निरूपमनिर्लेपस्वरूपोहं 36. निरवद्यस्वरूपोहं 37. शुद्धचिन्मात्रस्वरूपोहं 38. अनंतज्ञान स्वरूपोहं 39. अनंतदर्शनस्वरूपोहं 40. अनंतवीर्य स्वरूपोहं 41. अनंतसुख स्वरूपोहं 42. सहजानंद स्वरूपोहं 43. परमानंद स्वरूपोहं 44. परमाक्षानंद स्वरूपोहं 45. सदानंद स्वरूपोहं 46. चिदानंद स्वरूपोहं 47. नित्यानंद स्वरूपोहं 48. सहजसुखानंद स्वरूपोहं 49. निजानंद स्वरूपोहं 50. शुद्धात्म स्वरूपोहं 51.परमज्योतिः स्वरूपोहं 52. स्वात्मोपलब्धि स्वरूपोहं 53. शुद्धात्मसंवित्ति स्वरूपोहं 54. भूतार्थ स्वरूपोहं 55. परमार्थ स्वरूपोहं 56. समयसारसमूहस्वरूपोहं 57. अध्यात्मसार स्वरूपोहं 58. परममंगल स्वरूपोहं 59. परमोत्तम स्वरूपोहं 60. सकलकर्मक्षयकारण-स्वरूपोहं 61. परमाद्वैतस्वरूपोहं 62. शुद्धोपयोगस्वरूपोहं 63. निश्चयषडावश्यकस्वरूपोहं 64. परमसमाधि स्वरूपोहं 65. परमस्वास्थ्य स्वरूपोहं 66. परमस्वाध्याय स्वरूपोहं 67. परमभेदज्ञान स्वरूपोहं 68. परमसंवेदन स्वरूपोहं 69. परमसमरसीभाव स्वरूपोहं 70. केवलज्ञान स्वरूपोहं 71. केवलदर्शन स्वरूपोहं 72. अनंतवीर्य स्वरूपोहं 73. परमसूक्ष्म स्वरूपोहं 74. अवगाहन स्वरूपोहं 75. अगुरुलघुस्वरूपोहं 76. अव्याबाधस्वरूपोहं 77. अष्टविधकर्म रहितोहं 78. निरंजन स्वरूपोहं 79. नित्योहं 80. अष्टगुणसहितोहं 81. कृतकृत्योहं 82. लोकाग्रनिवास्यहं 83. अनुपमोहं 84. अचिन्त्योहं 85. अतर्क्योहं 86. प्रमेयस्वरूपोहं 87. अतिशय स्वरूपोहं 88. अक्षय स्वरूपोहं 89. शाश्वतोहं 90. शुद्धस्वरूपोहं 91. सिद्ध स्वरूपोहं 92. सत्तात्मक-सिद्धस्वरूपोहं 93. अनुभवात्मकसिद्धस्वरूपोहं 94. सोऽहं 95. शुद्धोहं 96. चित्कला स्वरूपोहं 97. चैतन्यपुंज स्वरूपोहं 98. सदानंद स्वरूपोहं 99. परमशरण्योहं 100. स्वयंभूरहं 101. अतिशयाति अभूतानंत सुखस्वरूपोहं।

व्रत-विधि

यहाँ पर पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा बतलाये गये कुछ व्रत प्रस्तुत किए जा रहे हैं, व्रत करने के इच्छुक भक्तगण इन व्रतों को करके अपने जीवन को संयमी बनाएँ, यही मंगलभावना है।

(i)

अक्षय तृतीया व्रत

(श्री ऋषभदेव-आहार व्रत)

भगवान ऋषभदेव ने चैत्र कृष्णा नवमी को प्रयाग में वटवृक्ष के नीचे जैनेश्वरी दीक्षा ली थी। छह माह तक प्रभु ध्यान में लीन रहे, अनंतर आहार की चर्या दिखलाने के लिए भगवान चांद्रीचर्या से आहार हेतु निकले किन्तु उन दिनों किसी को भी नवधाभक्तिपूर्वक आहार देने की विधि मालूम नहीं थी अतः प्रभु के पुनः छह माह से अधिक निकल गये। पुनः भगवान चांद्रीचर्या से भ्रमण करते हुए हस्तिनापुर आये। वहाँ के राजा सोमप्रभ के भ्राता श्रेयांस युवराज को सात स्वप्न हुए अनंतर प्रभु के दर्शन करते ही उन्हें आठ भव पूर्व का जातिस्मरण हो गया जबकि उन्होंने रानी श्रीमती और राजा वज्रजंघ के रूप में युगलमुनि चारण ऋद्धिधारियोंको आहार दिया था। उसी की सारी विधि ज्ञात हो गई और उन्होंने जान लिया कि ये भगवन ऋषभदेव आठ भव पूर्व मेरे पति राजा वज्रजंघ थे और मैं इनकी रानी श्रीमती था आदि..।

तत्क्षण ही युवराज श्रेयांस ने अपने भ्राता के साथ-साथ प्रभु का पड़गाहन किया और नवधाभक्तिपूर्वक प्रभु को इक्षुरस का आहार दिया। उसी क्षण आकाश से देवों ने पंचाश्चर्य वृष्टि करके विशेष जयजयकारा किया था। वह तिथि वैशाख शुक्ला तीज थी जो कि आज भी ''अक्षयतृतीया'' के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त है एवं जिसके नीचे प्रभु ने दीक्षा ली थी, वह वृक्ष 'अक्षयवटवृक्ष' के नाम से आज भी प्रयाग-इलाहाबाद में विद्यमान है।

व्रत की विधि-इन्हीं प्रभु की प्रथम पारणा के उपलक्ष्य में यह व्रत करना चाहिए। इसकी विधि इस प्रकार है-

चैत्र कृ. 9 को उपवास करके आगे दशमी को पारणा करें अर्थात् दो बार भोजन करें। एक वर्ष चालीस दिन तक रात्रि में चतुर्विध आहार का त्याग रखें। जिस दिन पारणा हो, दिन में दो बार भोजन, जल एवं औषधि ले सकते हैं। इस तरह एक दिन व्रत-उपवास या एकाशन करें। अगले दिन पारणा में दो बार भोजन करें, इस प्रकार एक व्रत-एक पारणा, एक व्रत-एक पारणा करते हुए अक्षयतृतीया के एक दिन पहले वैशाख शु. द्वितीया तक व्रत करके हस्तिनापुर पहुँचकर अक्षयतृतीया के दिन जम्बूद्वीप में विराजमान भगवान ऋषभदेव की आहार मुद्रा की प्रतिमा को इक्षुरस का आहार देकर स्वयं इक्षुरस से पारणा उस दिन एकाशन-एक बार ही भोजन करके व्रत को पूर्ण करें।

भगवान ने वटवृक्ष के नीचे दीक्षा लेकर छह महीने का योग धारण किया था अतः छह माह–चैत्र कृ. 9 से आश्विन कृ. नवमी तक निम्न मंत्र का जाप्य करें–

प्रथम मंत्र–**ॐ ह्रीं प्रयागतीर्थे वटवृक्षतले दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय ध्यानमग्न-श्रीऋषभदेवाय नमः।**

पुनः आश्विन कृ. दशमी से वैशाख शु. 3–अक्षयतृतीया तक छह माह चालीस दिन निम्न मंत्र का जाप्य करें–

द्वितीय मंत्र–**ॐ ह्रीं चान्द्रीचर्याप्रकाशकाय प्रथमतीर्थंकर श्रीऋषभदेवाय नमः।**

व्रत के दिन श्री ऋषभदेव का अभिषेक करके श्री ऋषभदेव की पूजा करें एवं उपर्युक्त ऋषभदेव के मंत्र का जाप करें। व्रत के पूर्ण होने पर उद्यापन में श्री ऋषभदेव की प्रतिमा की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करावें। श्री ऋषभदेव की जन्मभूमि अयोध्या, दीक्षा एवं केवलज्ञान भूमि प्रयाग-इलाहाबाद तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली के दर्शन करें पुनः हस्तिनापुर प्रथम पारणा भूमि के दर्शन करके श्री ऋषभदेव विधान करके यथाशक्ति मुनि-आर्यिका आदि को आहार, औषधि आदि दान देकर मंदिर में 9-9 उपकरण आदि रखकर दीन-दुःखियों को करुणादान आदि देकर व्रत पूर्ण करें। इस व्रत के प्रभाव से अक्षय धन-धान्य के साथ-साथ अक्षय पुण्य संपादित कर अक्षयमोक्षधाम को प्राप्त करेंगे।

यदि एक वर्ष 40 दिन का यह व्रत एकान्तरा से नहीं कर सकते हैं तो लघुव्रत भी करके अपनी भावना को सफल कर सकते हैं।

व्रत की लघु विधि (मात्र 40 दिन में करने वाला)–चैत्र कृ. 9 को उपवास करके अगले दिन पारणा करे पुनः एक उपवास या एकाशन एवं एक पारणा, एक उपवास या एकाशन एवंएक पारणा ऐसे वैशाख शु. द्वितीया तक मात्र 39 दिन का व्रत करके चालिसवें दिन 'अक्षयतृतीया' को हस्तिनापुर में आकर भगवान की मूर्ति-आहारमुद्रावाली को इक्षुरस का आहार देकर व्रत की पारणा करके उस दिन एकाशन–एक बार ही भोजन करके यथाशक्ति उद्यापन करके व्रत पूर्ण करें। इस व्रत में उपर्युक्त दो मंत्रों में से द्वितीय मंत्र का जाप्य करना चाहिए।

प्रथम उत्तम–उत्कृष्टव्रत एक वर्ष चालीस दिन का है और द्वितीय लघुव्रत मात्र चालीस दिन का है। इन व्रतों को करके भक्तगण संपूर्ण मनोरथों को सफल करें।

卐 卐 卐

(ii)

रक्षाबंधन व्रत

हस्तिनापुर में आज से लगभग 12 लाख वर्ष पूर्व श्री अकंपनाचार्य आदि सात सौ मुनियों का उपसर्ग दूर हुआ था। श्री विष्णुकुमार महामुनि ने विक्रियाऋद्धि के प्रभाव से उज्जयिनी से आकर बलि आदि मंत्रियों के द्वारा किये गये उपसर्ग को दूर कर मुनियों की रक्षा की थी, वह तिथि 'श्रावण शुक्ला पूर्णिमा' थी, तभी से आज तक यह तिथि

'रक्षाबंधन' पर्व के नाम से सारे भारत में विख्यात है। भले ही आज यह पर्व मात्र भाई-बहन के पर्व के रूप में प्रसिद्ध है, फिर भी गुरुओं की रक्षा ही इसका मुख्य उद्देश्य है।

व्रत की विधि—श्रावण शु. 13 से पूर्णिमा तक 3 दिन यह व्रत करना चाहिए। त्रयोदशी को एकाशन करके चतुर्दशी को उपवास करें। व्रत के दिन मंदिर में पंचपरमेष्ठी की प्रतिमा का पंचामृत अभिषेक करके, यदि श्री अकंपनाचार्य और विष्णुकुमार मुनियों की प्रतिमाएं हों, तो उनका अभिषेक करें या युगल मुनियों के चरणों का अभिषेक करकेपंचपरमेष्ठी की पूजा श्री अकंपनाचार्य व विष्णुकुमार मुनि की पूजा करें। निम्न जाप्य करें-

ॐ ह्रीं श्री अकंपनाचार्यादि-सप्तशतमुनिभ्यो नमः।

अथवा

ॐ ह्रीं अर्हं महोपसर्गविजयि श्रीअकंपनाचार्यादिसप्तशतमुनिभ्यो नमः।

व्रतों के दिन रक्षाबंधन की एवं श्री विष्णुकुमार मुनि की कथा अवश्य पढ़ें। पुनः श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के दिन हस्तिनापुर आकर श्री अकंपनाचार्य और श्री विष्णुकुमार महामुनियों की पूजा करके वहाँ पर विराजमान साधुओं को आहार दान देकर स्वयं खीर आदि का भोजन लेकर एकाशन करें अर्थात् एक बार भोजन करें एवं धर्मध्वज स्तंभ में रक्षासूत्र बांधें तथा साधर्मियों को धर्म की एवं धर्मायतन की रक्षा हेतु रक्षासूत्र बांधें। उपर्युक्त दो में से एक जाप्य करके—**ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार महामुनये नमः।** मंत्र की भी जाप्य करें। पुनः भाद्रपद कृ. प्रतिपदा को व्रत पूर्ण करें। इस प्रकार यह व्रत सात वर्ष तक करके यथाशक्ति उद्यापन करें। इन मुनियों के चरण बनवाकर या प्रतिमा बनवाकर विधिवत् प्रतिष्ठा कराकर मंदिर में विराजमान करें।

इस व्रत के प्रभाव से अनेक प्रकार की दुर्घटना,रेल, मोटर आदि के एक्सीडेंट आदि का निवारण होगा, अकाल मृत्यु टलेगी। अनेक प्रकार के कष्ट दूर होंगे और सब प्रकार से सुख, शांति, यश, संपत्ति, संतति आदि की वृद्धि होगी।

卐卐

(iii)

नवनिधि व्रत

हस्तिनापुर में भगवान शांतिनाथ, भगवान कुंथुनाथ एवं भगवान अरनाथ ये तीन तीर्थंकर जन्मे हैं। ये तीनों ही तीर्थंकर तीन-तीन पद के धारक हुए हैं। ये ही इन तीनों तीर्थंकर भगवन्तों की एवं हस्तिनापुर तीर्थ की विशेषता है। इन तीनों तीर्थंकरों के तीन-तीन पदों की अपेक्षा यह 'नवनिधि व्रत' किया जाता है। इस व्रत के प्रभाव से नवनिधि-ऋद्धि से भंडार भरेगा। सर्व लौकिक संपत्ति के साथ-साथ अलौकिक आध्यात्मिक संपत्ति भी प्राप्त होगी।

व्रत की उत्तम विधि–आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास में आष्टान्हिक पर्व में एक दिन पहले सप्तमी से पूर्णिमा तक नवदिन व्रत करना–उत्तम विधि नव उपवास करना, मध्यम में अल्पाहार और जघन्य में एकाशन–एक बार शुद्ध भोजन करना है। व्रत के दिन भगवान शांतिनाथ, कुंथुनाथ और अरहनाथ तीर्थंकरों की समुच्चय पूजन या पृथक्-पृथक् पूजन करके उनके जीवन चरित्र को पढ़ना है।

अथवा लघु व्रत विधि–इस व्रत में लगातार 9 माह तक प्रत्येक माह में तिथि का कोई नियम न करके एक-एक व्रत कर लेना, यह सर्वजघन्य विधि है। ऐसे मात्र नव व्रत करना है।

मंत्र इस प्रकार हैं–

समुच्चय मंत्र–

ॐ ह्रीं अर्हं तीर्थंकरचक्रवर्तिकामदेवपदधारक शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरनाथतीर्थंकेभ्यो नमः।

प्रत्येक व्रत के पृथक्-पृथक् मंत्र–

1. **ॐ ह्रीं अर्हं षोडशतीर्थंकरपदप्राप्तश्रीशांतिनाथाय नमः।**
2. **ॐ ह्रीं अर्हं पंचमचक्रवर्तिपदप्राप्तश्रीशांतिनाथाय नमः।**
3. **ॐ ह्रीं अर्हं द्वादशकामदेवपदप्राप्तश्रीशांतिनाथाय नमः।**
4. **ॐ ह्रीं अर्हं सप्तदशतीर्थंकरपदप्राप्तश्रीकुंथुनाथाय नमः।**
5. **ॐ ह्रीं अर्हं षष्ठचक्रवर्तिपदप्राप्तश्रीकुंथुनाथाय नमः।**
6. **ॐ ह्रीं अर्हं त्रयोदशकामदेवपदप्राप्तश्रीकुंथुनाथाय नमः।**
7. **ॐ ह्रीं अर्हं अष्टादशतीर्थंकरपदप्राप्तश्रीअरनाथाय नमः।**
8. **ॐ ह्रीं अर्हं सप्तमचक्रवर्तिपदप्राप्तश्रीअरनाथाय नमः।**
9. **ॐ ह्रीं अर्हं चतुर्दशकामदेवपदप्राप्तश्रीअरनाथाय नमः।**

व्रत पूर्ण करके तीर्थंकर श्री शांतिनाथ भगवान की या तीनों तीर्थंकर भगवन्तों की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करावें। हस्तिनापुर तीर्थ और सम्मेदशिखर तीर्थ की वंदना करके श्री शांतिनाथ का सोलह दिन का महाविधान करके उद्यापन पूर्ण करें और भी अपनी शक्ति के अनुसार 9-9 उपकरण आदि मंदिर में प्रदान करें। मुनि-आर्यिका आदि गुरुओं को आहारदान, पिच्छी-कमण्डलु, शास्त्र दान देवें। इस विधि से इस 'नवनिधि व्रत' को करने वाले नियम से संसार के समस्त सुखों का अनुभव कर चक्रवर्ती, कामदेव, तीर्थंकर आदि पदों को प्राप्त कर अक्षय-अतीन्द्रिय मोक्षसुख को प्राप्त करेंगे, यही इस व्रत का फल है।

(iv)

शांतिनाथ व्रत

(शांति भक्ति व्रत)

व्रत विधि–श्री शांतिनाथ भगवान सोलहवें तीर्थंकर हैं, साथ ही पाँचवें चक्रवर्ती एवं बारहवें कामदेव भी हुए हैं। इस प्रकार ये भगवान तीन पद के धारक महान हुए हैं। श्री पूज्यपाद स्वामी द्वारा रचित शांतिभक्ति साधुगण एवं श्रावकगण सभी में प्रसिद्ध है। उस शांतिभक्ति का ही यह व्रत है। इसमें सोलह काव्य हैं वे सभी एक से एक महिमापूर्ण हैं। उन एक-एक काव्य का आश्रय कर यह व्रत करना चाहिए। इस व्रत के प्रसाद से स्वयं को शांति, सर्व व्याधियों का विनाश एवं सर्व कष्ट,संकट, आपदाओं का निवारण होगा। सर्वत्र मंगल होगा, घर में, परिवार में मंगल, क्षेम होगा, देश में सुभिक्ष होगा, राजा-प्रजा में धार्मिक भावनाएँ बनेंगी व बढ़ेंगी अतः यह व्रत बहुत ही महत्वपूर्ण है।

श्री पूज्यपाद स्वामी, जो कि हजार वर्ष पूर्व हुए हैं, एक समय उनकी नेत्र की ज्योति मंद हो गई, उसी क्षण उन्होंने शांतिनाथ चैत्यालय में बैठकर इस शांतिनाथ की भक्ति की रचना की, आठवें काव्य को पढ़ते ही **''दृष्टिं प्रसन्नां कुरु''** बोलते ही उनकी आँख की रोशनी वापस आ गई। इस वाक्य में श्लेषालंकार है कि हे भगवन्! आप मुझ पर अपनी दृष्टि प्रसन्न करो अथवा मुझ पर प्रसन्न होवो अर्थात् मेरी दृष्टि–नेत्र ज्योति, प्रसन्न-स्वच्छ-स्वस्थ-निर्मल करो। ऐसे दो अर्थ होते हैं।

व्रत विधि–इस व्रत को शुक्ला अष्टमी से प्रारंभकर लगातार प्रत्येक मास की दो-दो अष्टमी ऐसे 16 अष्टमी तक यह व्रत करना चाहिए। अथवा खुली तिथि में कभी भी कर सकते हैं। व्रत की उत्तम विधि उपवास, मध्यम अल्पाहार और जघन्य में एक बार शुद्ध भोजन करना एवं व्रत के दिन शांतिभक्ति का 16 बार या कम से कम एक बार पाठ करना है।

व्रत पूर्ण कर उद्यापन में शांतिविधान करना, भगवान शांतिनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित कराना, शांति भक्ति का 16 दिन अखंड पाठ करना आदि, अपनी शक्ति के अनुसार 16-16 उपकरण मंदिर में भेंट करना आदि है। व्रत पूर्ण कर भगवान की चार कल्याणक भूमि हस्तिनापुर एवं निर्वाणभूमि सम्मेदशिखर की वंदना करना चाहिए।

व्रतों के मंत्र निम्न प्रकार हैं–

समुच्चय मंत्र–

ॐ ह्रीं जगदापद्विनाशनाय सर्वशांतिकराय श्रीशान्तिनाथाय नमः।

प्रत्येक 16 मंत्र–

1. ॐ ह्रीं संसारदुःखभीतभव्यगणशरण्याय श्रीशांतिनाथाय नमः।

2. ॐ ह्रीं सर्वविघ्नशांतिकराय श्रीशांतिनाथाय नमः।

3. ॐ ह्रीं प्रणतजनकष्टनिवारकाय श्रीशांतिनाथाय नमः।
4. ॐ ह्रीं स्तोतव्यां मृत्युंजयपदप्रदायकाय श्रीशांतिनाथाय नमः।
5. ॐ ह्रीं चरणाम्बुजस्तुतिकर्तृणां सर्वरोगविनाशकाय श्रीशांतिनाथाय नमः।
6. ॐ ह्रीं स्तवनप्रसादात् स्तोतव्यां अचिन्त्यसारसौख्यप्रदायकाय श्रीशांतिनाथाय नमः।
7. ॐ ह्रीं चरणकमलाश्रितजनसर्वपापप्रणाशकाय श्रीशांतिनाथाय नमः।
8. ॐ ह्रीं स्वपादपद्माश्रयिशान्त्यर्थिभाक्तिकानां दृष्टिप्रसन्नविधायकाय श्रीशांतिनाथानमः।
9. ॐ ह्रीं शीलगुणव्रतसंयमपात्राय श्रीशांतिनाथाय नमः।
10. ॐ ह्रीं पंचमचक्रिषोडशतीर्थंकराय श्रीशांतिनाथाय नमः।
11. ॐ ह्रीं अशोकवृक्षाद्यष्टप्रातिहार्यसमन्विताय श्रीशांतिनाथाय नमः।
12. ॐ ह्रीं सर्वगणाय स्तुतिपाठकाय मह्यं च परमशांतिकराय श्रीशांतिनाथाय नमः।
13. ॐ ह्रीं शक्रादिभिः स्तुतपादपद्माय सततशान्तिकराय श्रीशांतिनाथाय नमः।
14. ॐ ह्रीं संपूजक-प्रतिपालक-यतीन्द्रगण-देश-राष्ट्र-पुर-नृपतिगणशांतिकराय श्रीशांतिनाथाय नमः।
15. ॐ ह्रीं क्षेम-धार्मिकनृपति-समयसमयवृष्टिकारकाय व्याधिदुर्भिक्षचौरिमारिकष्ट-निवारकाय सर्वसौख्यकरधर्मचक्रप्रवर्तकाय श्रीशांतिनाथाय नमः।
16. ॐ ह्रीं केवलज्ञानभास्कर-जगत् शांतिकारकवृषभादि तीर्थंकरसमन्विताय श्रीशांतिनाथाय नमः।

(v)

शारदा व्रत

शारदा–सरस्वती की आराधना, उपासना, भक्ति आदि से भव्यजीव समीचीन ज्ञान की वृद्धि करते हुए परम्परा से श्रुतकेवली, केवली पद को प्राप्त करेंगे। यह व्रत ज्येष्ठ मास में शुक्लपक्ष में एकम से आषाढ़ कृष्णा एकम तक सोलह दिन करना है। इसी प्रकार आश्विन मास में शुक्ला एकम से कार्तिक कृ. एकम तक पुनः माघ मास में शुक्ला एकम से फाल्गुन कृ. एकम तक, ऐसे वर्ष में तीन बार व्रत करना है। इस व्रत में शास्त्रों की पूजा-द्वादशांग जिनवाणी की पूजा, सरस्वती की मूर्ति की पूजा–जिनके मस्तक पर भगवान अर्हंतदेव की मूर्ति विराजमान हैं ऐसी सरस्वती–शारदा देवी की पूजा करना।

इस व्रत में ज्येष्ठ शु. 5, आश्विन शु. 5 और माघ शु. 5 को व्रत, उपवास या एकाशन करना और उन दिनों विशेषरूप से सरस्वती की आराधना करना है तथा शेष दिनों में एक बार अन्न का भोजन करना, शक्ति के अनुसार दूसरी बार अल्पाहार–फल-दूध, औषधि आदि लेना चाहिए। रात्रि में चतुर्विध आहार का त्याग करना है। प्रतिदिन सरस्वती के

साथ-साथ महालक्ष्मी देवी की तथा चक्रेश्वरी, पद्मावती आदि शासन देवियों की भी आराधना करना है।

'सरस्वती महापूजा' नाम से पुस्तक जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर से मंगाकर उसमें लिखे अनुसार सरस्वती के 108 मंत्र आदि विधि से 'महाआराधना' करना चाहिए।

इस व्रत में ज्येष्ठ शु. पूर्णिमा, आश्विन शु. पूर्णिमा–शरद पूर्णिमा और माघ शु. पूर्णिमा को उपवास या एकाशन से व्रत करके हस्तिनापुर, अयोध्या, प्रयाग आदि तीर्थों पर जाकर उन-उन केवलज्ञान भूमि की पूजा करके सरस्वती की विशेष आराधना करें। आज उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ–षट्खण्डागम ग्रंथों की पूजा करके अगले दिन एकम–प्रतिपदा को पारणा करना है। यह व्रत सम्यग्ज्ञान की वृद्धि में तो निमित्त है ही, इसके प्रभाव से तत्काल में सांसारिक नाना प्रकार के सुख, शांति, सम्पत्ति, संतति आदि की वृद्धि होती है और आगे परम्परा से द्वादशांग का ज्ञान प्राप्त कर नियम से केवलज्ञान को तथा मोक्ष को प्राप्त करेंगे।

इसका मंत्र–

ॐ ह्रीं द्वादशांगवाणीसरस्वतीदेव्यै नमः।

अथवा

ॐ ह्रीं श्रीं वद वद वाग्वादिनि भगवति सरस्वति ह्रीं नमः।

लक्ष्मी मंत्र–

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूँ ऐं महालक्ष्म्यै नमः।

चक्रेश्वरी मंत्र–

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं श्री चक्रेश्वरी देव्यै नमः।

पद्मावती मंत्र–

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं श्री पद्मावती देव्यै नमः मम ईप्सितं कुरु कुरु स्वाहा।

इस प्रकार से जाप्य करें। सरस्वती के 108 मंत्रों से विधान-आराधना आदि करें।

एक वर्ष में तीन बार इस व्रत को करके बड़े रूप में सरस्वती की आराधना करके सरस्वती की प्रतिमा बनवाकर मंदिरों में विराजमान करें। यह व्रत सब प्रकार के मनोरथों को सफल करने वाला है।

पंचम अध्याय

आर्यिकाओं के २८ मूलगुण

लेखिका-गणिनी ज्ञानमती

स्वयंसिद्ध जैनधर्म अनादिनिधन है, इसको किसी ने स्थापित नहीं किया है। अनंतानंत काल व्यतीत हो चुका है और आगे भी अनंतानंत प्रमाण काल आवेगा तथा जो वर्तमान काल चल रहा है इन तीनों कालों में और तीनों लोकों में यह प्राणीमात्र का हित करने वाला है अतएव यह सार्वधर्म भी कहलाता है। अर्थात् 'कर्मारातीन् जयतीति जिनः' जो कर्म शत्रुओं को जीतते हैं वे 'जिन' कहलाते हैं और 'जिनो देवता अस्येति जैनः' जिन देवता हैं जिसके वह जैन कहलाता है। तथा **'सर्वेभ्यो हितं सार्वः'** इस निरूक्ति के अनुसार यह सबका हित करने वाला होने से ही सार्वधर्म है।

वैराग्य भावना–इस जैन सिद्धान्त के अनुसार जब किसी भी बालिका, सौभाग्यवती महिला या विधवा को संसार, शरीर और भोगों से वैराग्य हो जाता है तब वह विचार करती है कि यह संसार अनादि निधन है। इसमें अनादिकाल से प्रत्येक जीवात्मा के साथ कर्म का संबंध हो रहा है। उस कर्मोदय के निमित्त से प्रत्येक जीव कभी एकेन्द्रियपर्याय में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि शरीरों को धारण करता है। कभी दो इंद्रिय आदि में लट, चिंवटी, मक्खी, पशु-पक्षी आदि योनियों में चला जाता है, तो कभी मनुष्य पर्याय, स्त्री, पुरुष या नपुंसक अवस्था को प्राप्त कर लेता है अथवा कदाचित् देवगति में जाकर देवों के या देवांगनाओं के सुन्दर शरीर को प्राप्त कर सुखों का भी अनुभव करता है किन्तु फिर भी वहाँ से च्युत होकर संसार में भटकता रहता है। जब कोई जीव पुरुषार्थ के बल से कर्मों का नाश कर देता है तब वही पूर्व का संसारी आत्मा मुक्त होकर सिद्ध परमात्मा बन जाताहै। जैन मत के अनुसार प्रत्येक जीवात्मा परमात्मा बनने की शक्ति से सहित है।

मेरी आत्मा स्त्री नहीं है न मनुष्य ही है किन्तु चैतन्यस्वरूप है यद्यपि यह व्यवहारनय से स्त्री- पर्याय को धारण किये है फिर भी निश्चयनय से मेरी आत्मा सिद्धों के सदृश शुद्ध है। अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंतवीर्य से संयुक्त है अर्थात् शक्तिरूप से ये अनंतचतुष्टय मेरे में विद्यमान हैं। जैसे बीज में अंकुर की शक्ति है, दूध में घी शक्तिरूप में विद्यमान है वैसे ही इस देहरूपी देवालय में भगवान आत्मा शक्तिरूप से विराजमान है। यह शरीर महान् अपवित्र विनाशीक है, पुद्गल से रचा गया है। मेरी आत्मा अशरीरी, पवित्र और शाश्वत है एक शरीर के छूटने के बाद द्वितीय शरीर को ग्रहण कर लेता है किन्तु मरता नहीं है।

इस प्रकार से चिंतवन करते हुये उसके मन में सहसा आत्मा को शरीर से पृथक् करने के लिये पुरुषार्थ करने का भाव उमड़ आता है। तब वह महिला अपने माता-पिता अथवा

पति, पुत्रादि कुटुंबियों से आज्ञा मांगती है और अब तक के हुये छोटे या बड़े अपराधों की क्षमा कराती है तथा स्वयं भी क्षमा करती है। यदि अज्ञानी या मोही कुटुंबीजन आज्ञा नहीं देते हैं तो भी यदि वह दृढ़प्रतिज्ञ है तो दीक्षा लेने के लिये गुरू के पास जाकर उनके चरणों का आश्रय ग्रहण करती है।

वास्तव में संसार में अनंतानंत काल तक भ्रमण करते हुये इस जीव ने किसकोतो अपना माता-पिता नहीं बनाया है या किसको कौन सा संबंधी नहीं बनाया है अथवाकिनके साथ कौन सा संबंध प्राप्त नहीं किया है अर्थात् सभी के साथ सभी कुछ संबंध हो चुकेहैं। इस जीव ने भव-भव में इतने माता-पिता पुत्रादिकों को रोते हुये छोड़े हैं और स्वयं भी इनलोगों के लिये रोया है कि यदि वह अश्रुजल इकट्ठा किया जावे तो लवण-समुद्र से भी अधिक हो जावे।

दीक्षा—ऐसा विचार करते हुये वह वैराग्यशील महिला किसी के प्रति मोह न रखते हुये आचार्य संघ में प्रवेश करती है। संघ में जो प्रमुख-गणिनी आर्यिका हैं उनके शासन में अपने को समर्पित करके उनसे प्रार्थना करती है कि हे मातः! अब आप मुझे हस्तावलंबन देकर मेरी आत्मा का कल्याण कीजिये।

ऐसा इसलिये है कि गणिनी की जिम्मेदारी के बिना आचार्य देव स्त्रियों कोदीक्षा नहीं प्रदान कर सकते हैं क्योंकि स्त्रियों की सुरक्षा स्त्रियों पर ही निर्भर है। वे आचार्यवृद्ध उम्र के धारक, गंभीर, महामना, सर्वशास्त्र में निपुण और शास्त्र की मर्यादा के सच्चे प्रतिपालकहोते हैं।

जब गणिनी आर्यिका उस नववैराग्यशालिनी महिला को कुछ दिन अपने पास मेंरखकर उसके मन की दृढ़ता को, शारीरिक क्षमता को और उसमें आर्यिका दीक्षा कीयोग्यता को देख लेती हैं तब वे स्वयं उसको साथ लेकर आचार्यश्री के पास जाकर निवेदन करती हैं कि हे भगवन्! यह भव्य आत्मा संसार समुद्र से पार होने के लिये जहाज के समान ऐसीदीक्षा को चाहती है अतः आप इसे दीक्षा देकर अनुगृहीत करें। भविष्य में मैं इसका संरक्षण करूंगी और विद्या-शिक्षा में निपुण करके स्वपर कल्याण करने में कुशल बना दूंगी।

अनंतर आचार्य महाराज शुभ मुहूर्त में दीक्षा देने की घोषणा कर देते हैं। तब भाक्तिक धर्म- स्नेही श्रावक या उस दीक्षार्थी के कुटुंबीजन कुछ दिन पूर्व से ही धर्म उत्सव प्रारंभ कर देते हैं। जिसमें जिनमंदिर में सिद्धचक्र विधान, चारित्रशुद्धि, रत्नत्रय या गणधरवलय विधान की पूजा कराई जाती है जिसमें वह दीक्षार्थिनी भी भाग लेती है अथवा यदि वह पूर्व में संपन्न परिवार की है तो स्वयं अपने द्रव्य से पूजन विधान करती है।

इससे पूर्व यदि तीर्थ यात्राओं की इच्छा है तो तीर्थ यात्रा कर लेती है पुनः उत्तमादि पात्रों को इच्छानुसार और शक्ति के अनुसार चतुर्विध दान देकर अपने मन को पवित्रबना लेती है।

कहीं-कहीं श्रावक लोग दीक्षार्थिनी की शोभायात्रा निकालकर शहर में धर्म की प्रभावना करते हुये यह प्रगट कर देते हैं, कि यह बहन अमुक दिन साध्वी के पद पर आरोहण करने वाली हैं पुनः कोई एक श्रावक दीक्षा दिलाने के लिये निश्चित किये जाते हैं वे सपत्नीक विधान आदि उत्सवों में भाग लेते हुये अपनी धार्मिक भावना व्यक्त करते हैं।

दीक्षा के शुभमुहूर्त के अवसर पर विशाल सभामंडप में सौभाग्यवती महिलायें दीक्षार्थिनी को मंगल स्नान कराकर गणिनी को आगे करके उत्सव के साथ सभा मंडप में लाती हैं। वहां पर सौभाग्यवती महिलायें तंदुल का चौक पूरकर उस पर पीले तंदुल से स्वस्तिक बनाकर उस पर नूतन, श्वेत शुचिवस्त्र को बिछा देती हैं।

दीक्षार्थिनी महिला वहीं पर सभा मंडप में विराजमान देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान की पूजादि करके हाथ में श्रीफल लेकर आचार्यश्री से दीक्षा ग्रहण करने के लिए प्रार्थना करती हैं कि हे भगवन्! इस संसार के परिभ्रमण से अब मेरा जी ऊब चुका है, अब मुझे चारित्ररूपी जहाज पर बिठाकर आप कर्णधार होइये।

उस समय आचार्य महाराज पहले उस दीक्षार्थी से कहते हैं कि तुम्हें संघ की मर्यादामें और गणिनी के अनुशासन में रहना होगा, एकाकिनी विहार नहीं करना होगा इत्यादि। जब वह दीक्षार्थिनी महिला सभी बातों को स्वीकार कर लेती है तब आचार्य महोदय अपने संघस्थ साधु-साध्वी वर्गों से, उनके कुटुंबियों से और वहां पर उपस्थित सभी श्रावक-श्राविकाओं से पूछते हैं कि क्या इसे दीक्षा दी जावे? तब सभी साधुवर्ग भी धर्म वृद्धि से हर्षितमना होते हुये सहर्ष स्वीकृति देते हैं और श्रावकगण व दीक्षार्थिनी के कुटुंबीवर्ग भी दुःखमिश्रित हर्षपूर्वक जय-जयकार की ध्वनि से सभा को गुंजायमान करते हुये स्वीकृति देते हैं।

बस फिर क्या है, गणिनी उस दीक्षार्थी महिला को मंगल चौक पर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बिठा देती हैं और आप भी वहीं पर बैठकर अन्य साध्वियों की सहायता से सबसे प्रथम उसका केशलोंच प्रारंभ कर देती हैं।

अनंतर 'क्रियाकलाप, में मुद्रित बृहद्दीक्षा विधि के द्वारा आचार्य महाराज उसका संस्कार करते हैं अथवा आचार्य की आज्ञा से प्रमुख आर्यिका संस्कार करती हैं, उसके मस्तक पर बीजाक्षर लिखकर पीले तंदुल और लवंग से उसके मस्तक पर मंत्रों का आरोपण करती हैं। उसके हाथ में बीजाक्षर लिखकर तथा दोनों हाथों की अंजुली में तंदुल भरकर उसमें श्रीफल आदि द्रव्य रखकर पुनः उन्हें अट्ठाईस मूलगुण प्रदान करती हैं।

पुनः गुर्वावली को पढ़कर नामकरण करके मंत्रों द्वारा ही संयम के उपकरणरूप मयूर पंख की पिच्छिका, शौच के लिये उपकरणस्वरूप काष्ठ या नारियल का कमंडलु और ज्ञान के लिए उपकरण-स्वरूप शास्त्र देती हैं। शिष्या भी विनयपूर्वक दोनों हाथों से पिच्छिका को, बायें हाथ से कमंडलु को और दोनों हाथों से शास्त्र को ग्रहण करती हैं।

पुनः नवदीक्षिता साध्वी गुरूभक्ति से गुरू को नमोस्तु करके अन्य मुनियों को नमोस्तु एवं अपनी गणिनी आर्यिका आदि सभी आर्यिकाओं को 'वंदामि' करके बैठ जाती है। जब तक व्रतारोपण विधि नहीं होती है, तब तक सभी आर्यिकायें प्रतिवंदना नहीं करती हैं।

सभी प्रमुख श्रावकगण श्रीफल आदि चढ़ाकर उस नवदीक्षिता को नमस्कार करते हैं। आचार्य महोदय अथवा अन्य मुनि या आर्यिकायें सभा में उपदेश के द्वारा दीक्षा के महत्त्व को और व्रतों के महत्त्व को समझाते हुये दर्शकों के मन को कुछ क्षण के लिये वैराग्य से

ओत-प्रोत कर देते हैं। इस प्रकार यह वैराग्यपूर्ण दृश्य सभी दर्शकों के मन में वैराग्य की लहर दौड़ा देता है। अनन्तर उसी पक्ष में या द्वितीय पक्ष में व्रतारोपण विधि करने के लिये रत्नत्रय की पूजा कराके पाक्षिक प्रतिक्रमण पढ़कर पूर्ववत् व्रतों को दिया जाता है और उसके साथ कोई एक पल्यविधान, कर्मदहन आदि व्रत देते हैं। दातार जनों को भी कुछ न कुछ व्रतादि देते हैं। अनंतर बड़ी आर्यिकायें प्रतिवंदना विधि करती हैं।

दीक्षा के दिन दीक्षार्थी महिला का उपवास रहता है। द्वितीय दिवस गुरुओं के आहार के लिये निकल जाने के बाद गणिनी आदि मुख्य आर्यिकाओं के पीछे वह आहार के लिये श्रावकों के यहाँ जाती है। वहाँ पर श्रावक विधिवत् पड़गाहन करके नवधाभक्ति से आहार दान देकर अपना जन्म सफल समझते हैं। अब इनके अट्ठाईस मूलगुण, दैनिक चर्या और विहार आदि व्यवस्थायें तथा इनके निषिद्ध कार्यों का क्रम से वर्णन किया जावेगा।

अट्ठाईस मूलगुण—मुनियों के प्रधान आचरण को मूलगुण कहते हैं। मूल शब्द के अनेक अर्थ होते हैं फिर भी यहां मूल का प्रधान या मुख्य ऐसा अर्थ लेना चाहिये। गुण शब्द से भी यहां पर आचरण विशेष अर्थ लेना है। ये मूलगुण इस लोक और परलोक में हितकर हैं। इस लोक में सर्वजन मान्यता, गुरूपना, सर्वजनों के साथ मैत्रीभाव आदि गुण होते हैं और परलोक में देवों का ऐश्वर्य, तीर्थंकर पद, चक्रवर्ती पद आदि प्राप्त होते हैं।

मूलगुण अट्ठाईस होते हैं—पांच महाव्रत, पांच समिति, पांच इन्द्रियनिरोध, षट् आवश्यक क्रिया तथा लोच, आचेलक्य, स्नान का त्याग, क्षितिशयन, दंतधावनत्याग, स्थिति भोजन और एक भक्त। मूलगुणों की वृद्धि करने वाले उत्तर गुण कहलाते हैं। ये उत्तर गुण चौंतीस हैं—बारह तप और बाईस परीषहजय।

मूलव्रतों को महाव्रत कहते हैं। महान् का अर्थ है प्रधान और व्रत अर्थात् हिंसादि पापों का त्याग करना। तीर्थंकरादि महापु!षों द्वारा पाले जाने से अथवा जो स्वतः मोक्ष प्राप्ति करने में हेतु होने से महान् हैं ऐसे व्रतों को महाव्रत कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह, इनका पूर्णतया त्याग करने से पाँच महाव्रत हो जाते हैं।

1. अहिंसा महाव्रत—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस ये छह काय हैं, इन छह कायिक जीवों की हिंसा का मन-वचन-काय से पूर्णतया त्याग कर देना अहिंसा महाव्रत है। इस महाव्रत वाले संपूर्ण आरंभ और परिग्रह से रहित दिगम्बर मुनि होते हैं और एक साड़ी मात्र परिग्रह वाली आर्यिकायें होती हैं।

2.सत्य महाव्रत—राग, द्वेष, मोह, क्रोध आदि दोषों से भरे हुये असत्य वचनों का त्याग करना और ऐसा सत्य भी नहीं बोलना कि जिससे प्राणियों का घात होता है सोसत्य महाव्रत है।

3.अचौर्य महाव्रत—ग्राम, शहर, आदि में किसी की भूली, रखी या गिरी हुई वस्तु को स्वयं नहीं लेना, दूसरों के द्वारा संग्रहीत शिष्य, पुस्तक आदि को भी न लेना तथा दूसरों के दिये बिना योग्य वस्तु को भी नहीं लेना अचौर्य महाव्रत है।

4.ब्रह्मचर्य महाव्रत—रागभाव को छोड़कर पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहना, बालिका, युवती

और वृद्धा में पुत्री, बहन और माता के समान भाव रखना त्रैलोक्यपूज्य ब्रह्मचर्य व्रत है।

5.परिग्रहत्याग महाव्रत–धन-धान्य आदि दश प्रकार के बहिरंग तथा मिथ्यात्व, वेद आदि चौदह प्रकार के अंतरंग परिग्रह का त्याग करना, वस्त्राभूषण, अलंकार आदि का पूर्णतया त्याग कर देना, यहाँ तक कि लंगोटीमात्र भी नहीं रखना अपरिग्रह महाव्रत है। आर्यिकाओं के लिये दो साड़ी रखने का विधान है।

आगम में कहे अनुसार गमनागमन, भाषण आदि में सम्यक् प्रवृत्ति करना समिति है। इसके भी पाँच भेद हैं–ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और उत्सर्ग।

1. ईर्यासमिति–निर्जंतुक मार्ग से सूर्योदय होने पर चार हाथ आगे जमीन देखकर एकाग्रचित्त करके तीर्थयात्रा, गुरूवंदना आदि धर्मकार्यों के लिये गमन करना ईर्यासमिति है।

2.भाषासमिति–चुगली, हंसी, कर्कश, पर-निंदा आदि से रहित हित, मित और असंदिग्ध वचन बोलना भाषा समिति है।

3.एषणासमिति–छ्यालीस दोष और बत्तीस अंतराय से रहित नव कोटि से शुद्ध, श्रावक के द्वारा दिया गया ऐसा प्रासुक, निर्दोष पवित्र आहार लेना एषणासमिति है।

4.आदाननिक्षेपण समिति–पुस्तक, कमंडलु आदि को रखते या उठाते समय कोमल मयूर पंख की पिच्छिका से परिमार्जन करके रखना, उठाना, तृण-घास, चटाई, पाटे आदि को भी सावधानी से देखकर पिच्छिका से परिमार्जन करके ग्रहण करना या रखना, आदाननिक्षेपण समिति है।

5.उत्सर्ग समिति–हरी घास, चिंवटी आदि जीव जंतु से रहित प्रासुक, ऐसे एकांत स्थान में मल-मूत्रादि विसर्जन करना यह उत्सर्ग या प्रतिष्ठापन समिति है।

स्पर्शन, रसना आदि पांचों इन्द्रियों को वश में रखना, इनको शुभ ध्यान में लगा देना पंचेंद्रिय निरोध होता है। इसके भी पांच इन्द्रियों की अपेक्षा से पांच भेद होते हैं।

1. स्पर्शन इन्द्रिय निरोध–सुखदायक, कोमल स्पर्शादि में या कठोर कंकरीली भूमि आदि के स्पर्श में आनंद या खेद नहीं करना।

2. रसनेंद्रिय निरोध–सरस-मधुर भोजन में या नीरस, शुष्क भोजन में हर्ष-विषाद नहीं करना।

3. घ्राणेंद्रिय निरोध–सुगंधित पदार्थ में या दुर्गन्धित वस्तु में राग-द्वेष नहीं करना।

4. चक्षु इंद्रिय निरोध–स्त्रियों के सुंदर रूप या विकृत वेष आदि में राग भाव नहीं करना और द्वेष भाव भी नहीं करना।

5. कर्णेन्द्रिय निरोध–सुंदर-सुंदर गीत, वाद्य तथा असुंदर-निंदा, गाली आदि के वचनों में हर्ष-विषाद नहीं करना। यदि कोई मधुर गीतों से गान करता हो तो उसे राग भाव से नहीं सुनना।

जो अवश–जितेन्द्रिय मुनि का कर्तव्य है वह आवश्यक कहलाता है। उसके छह भेद है–समता, स्तुति, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग।

1. समता–जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, सुख-दुःख आदि में हर्ष-विषाद नहीं करना,

समान भाव रखना समता है। इसी का नाम सामायिक है। त्रिकाल में देववंदना करना यह भी सामायिक व्रत है। प्रातः, मध्यान्ह और सायंकाल में विधिवत् कम से कम एक मुहूर्त–48 मिनट तक सामायिक करना होता है।

2.स्तुति–ऋषभ आदि चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति करना स्तुति नाम का आवश्यक है।

3.वंदना–अरिहंतों को, सिद्धों को, उनकी प्रतिमा को, जिनवाणी को और गुरुओं को कृतिकर्मपूर्वक नमस्कार करना वंदना है।

4. प्रतिक्रमण–अहिंसादि व्रतों में जो अतिचार आदि दोष उत्पन्न होते हैं, उनको निंदा-गर्हापूर्वक शोधन करना–दूर करना प्रतिक्रमण है। इसके भी सात भेद हैं–ऐर्यापथिक, दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक और उत्तमार्थ।

गमनागमन से हुए दोषों को दूर करने के लिए ''पडिक्कमामि भंते! इरियावहियाए विराहणाए'' इत्यादि दण्डकों का उच्चारण करके कायोत्सर्ग करना ऐर्यापथिक है। दिवस संबंधी दोषों को दूर करने के लिए सायंकाल में 'जीवे प्रमादजनिता' इत्यादि पाठ करना दैवसिक, रात्रि संबंधी दोषों के निराकरण हेतु रात्रि के अंत में प्रतिक्रमण करना रात्रिक, प्रत्येक मास की चतुर्दशी या पूर्णिमा या अमावस्या को करना पाक्षिक, कार्तिक और फाल्गुन मास के अंत में करना चातुर्मासिक, आषाढ़ की अंतिम चतुर्दशी या पूर्णिमा को करना सांवत्सरिक तथा मरण काल में करना उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है।

5. प्रत्याख्यान–मन, वचन, काय से भविष्य के दोषों का त्याग करना प्रत्याख्यान है। आहार ग्रहण के अनंतर गुरू के पास अगले दिन आहार ग्रहण करने तक के लिए जो चतुराहार का त्याग किया जाता है, वह प्रत्याख्यान कहलाता है।

6. कायोत्सर्ग–दैवसिक, रात्रिक आदि क्रियाओं में पच्चीस या सत्ताईस उच्छ्वास प्रमाण से तथा चौवन, एक सौ आठ आदि श्वासोच्छ्वासपूर्वक णमोकार मंत्र का स्मरण करना। काय–शरीर से उत्सर्ग–ममत्त्व का त्याग करना कायोत्सर्ग है।

यहां तक इक्कीस मूलगुण हुए हैं अब शेष सात को भी स्पष्ट करते हैं–

1. लोच–अपने हाथ से अपने शिर, दाढ़ी और मूंछ के बाल उखाड़ना केशलोंच मूलगुण है। केश में जूं आदि जीव पड़ जाने से हिंसा होगी या उन्हें संस्कारित करने के लिए तेल, साबुन आदि की जरूरत होगी जो कि साधु पद के विरूद्ध होगा। अतः दीनता, याचना, परिग्रह, अपमान आदि दोषों से बचने के लिए यह क्रिया है। लोंच के दिन उपवास करना होता है और लोंच करते या कराते समय मौन रखना होता है। इसके उत्तम, मध्यम और जघन्य ऐसे तीन भेद हैं–दो महीने पूर्ण होने पर उत्तम, तीन महीने में मध्यम और चार महीने पूर्ण होने पर जघन्य केशलोंच कहलाता है। चार महीने के ऊपर हो जाने पर साधु प्रायश्चित्त का भागी होता है।

2.अचेलकत्व–सूती, रेशमी आदि वस्त्र, पत्र, वल्कल आदि का त्याग कर देना, नग्न वेष धारण करना अचेलकत्व है। यह महापुरुषों द्वारा ही स्वीकार किया जाता है, तीनों जगत् में वंदनीय महान पद है। वस्त्रों के ग्रहण करने से परिग्रह, आरंभ, धोना,

सुखाना और याचना करना आदि दोष होते हैं अतः निष्परिग्रही साधु के यह व्रत होता है।

3.अस्नानव्रत–स्नान, उबटन आदि से शरीर के संस्कारों का त्याग करना, अस्नान व्रत है। धूलि से धूसरित, मलिन शरीरधारी मुनि कर्ममल को धो डालते हैं। चांडालादि अस्पृश्यजन, हड्डी, चर्म, विष्ठा आदि का स्पर्श हो जाने से वे मुनि दंडस्नान करके गुरू से प्रायश्चित्त ग्रहण करते हैं।

4 .भूमिशयन–निर्जंतुक भूमि में, घास या पाटा अथवा चटाई पर शयन करना भूमिशयन व्रत है। ध्यान, स्वाध्याय आदि से या गमनागमन से थककर स्वल्प निद्रा लेना होता है।

5. अदंतधावन–नीम की लकड़ी, ब्रुश आदि से दांतौन नहीं करना। दांतों को नहीं घिसने से इंद्रियसंयम होता है, शरीर से विरागता प्रगट होती है और सर्वज्ञदेव की आज्ञा का पालन होता है।

6. स्थिति भोजन–खड़े होकर अपने दोनों हाथों की अंजुलि बनाकर श्रावक के द्वारा दिया हुआ आहार ग्रहण करना स्थिति–भोजन है।

7.एकभक्त–सूर्योदय के अनंतर तीन घड़ी के बाद और सूर्यास्त के तीन घड़ी पहले तक दिन में सामायिक काल के सिवाय कभी भी एक बार आहार ग्रहण करना एकभक्त है। आजकल प्रायः नौ बजे से ग्यारह बजे तक साधुजन आहार को जाते हैं। कदाचित् एक बजे से भी जा सकते हैं। दिन में एक बार ही आहार को निकलना चाहिए। कदाचित् लाभ न मिलने पर उस दिन पुनः आहारार्थ नहीं जाना चाहिए।

इस प्रकार जो साधु इन मूलगुणों का पालन करते हैं वे जगत् में पूज्य होते हुए क्रम से मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। आर्यिकाओं को भी इन्हीं मूलगुणों का पालन करना होता है।

समाचार विधि–सं–सम्यक् निरतिचार मूलगुणों का आचार–आचरण समाचार है अथवा सभी साधुओं के साथ समान आचार समाचार कहलाता है। इसके दो भेद हैं– औघिक और पदविभागिक। सामान्य आचार को औघिक समाचार कहते हैं। इसके दस भेद हैं तथा सूर्योदय से लेकर अहोरात्र तक मुनियों का जितना भी आचार है, वह पदविभागी है, उसके अनेक भेद हैं।

औघिक समाचार के दश भेद–

1. इच्छाकार–सम्यग्दर्शनादि इष्ट को हर्ष से स्वीकार करना।

2. मिथ्याकार–व्रतादि में अतिचारों के होने पर 'मेरा दुष्कृत मिथ्या हो' कहना और उनसे हटना।

3. तथाकार–गुरू से सूत्रार्थ सुनकर 'यही ठीक है' ऐसा अनुराग व्यक्त करना तथाकार है।

4. आसिका–जिनमंदिर, वसतिका आदि से निकलते समय 'असही' शब्द से वहां के व्यंतर आदि से पूछकर जाना।

5. निषेधिका–जिनमंदिर, वसतिका आदि में प्रवेश के समय 'निसही' शब्द से वहां के व्यंतरादि से पूछकर प्रवेश करना।

6. आपृच्छा—गुरू आदि से वंदनापूर्वक प्रश्न करना।

7. प्रतिपृच्छा—कोई बड़े कार्य के समय गुरू, आचार्य आदि को बार-बार पूछना।

8. छंदन—उपकरण आदि ग्रहण करने में या वंदना आदि क्रियाओं में गुरूओं के अनुकूल प्रवृत्ति करना।

9. निमंत्रणा—गुरूओं से विनयपूर्वक पुस्तकादिकों की याचना करना।

10. उपसंपत्—गुरू के चरणमूल में अपने को समर्पण करना, गुरू के अनुकूल भक्तिपूर्वक प्रवृत्ति करना।

पदविभागी—कदाचित् अपने गुरू से शास्त्रज्ञान ग्रहणकर विशेष सूत्राध्ययन की इच्छा से बार-बार गुरू से पूछकर योग्य संघ में अध्ययन हेतु जाना। उस समय कम से कम दो साधु मिलकर ही जाना। एकाकी विहार नहीं करना।

अन्य संघ के आगंतुक साधुओं का अन्य संघ के साधुगण बहुत विनय वैयावृत्ति आदि करते हैं। परस्पर में तीन दिन तक परीक्षा वगैरह करके उनकी पूरी व्यवस्था करके आत्मीयता प्रदान करना आदि पदविभागी समाचार कहलाता है।

पाँच आधार—आचार्य—दीक्षादिदायक, उपाध्याय—अध्यापक मुनि, प्रवर्तक—सभी साधुओं को चर्यादि में प्रवृत्ति कराने वाले, स्थविर—बाल वृद्धादि मुनि को सर्वज्ञाज्ञानुकूल उपदेश देने वाले, गणधर—सर्व संघ का पालन करने वाले, ऐसे पांच आधार जिस संघ में रहते हैं, वही संघ रहने के लिए योग्य[2] है। ऐसे ही आर्यिकाओं में भी व्यवस्था होती है।

आर्यिका की सभी चर्या मुनि के सदृश ही है—"मूलगुणों[3] के अनुरूप आचरण को समाचार कहते हैं। अर्थात् मुनि के समाचार का इससे पूर्व में जैसा वर्णन किया है, वैसा ही आर्यिका के समाचार का भी वर्णन समझना चाहिए अर्थात् दिवस और रात्रिसंबंधी सभी क्रियायें मुनियों के सदृश ही हैं। अंतर इतना ही है कि वृक्षमूल योग, आतापन योग, अभ्रावकाश योग ऐसे योगादिक[4] आचरण का आर्यिकाओं के लिए निषेध है, क्योंकि वह उनकी आत्मशक्ति के बाहर है।"

आचारसार में भी कहा है-"जिस[5] प्रकार यह समाचार नीति मुनियों के लिए बतलाई गई है, उसी प्रकार लज्जादि गुणों से विभूषित आर्यिकाओं को भी इन्हीं समस्त समाचार नीतियों का पालन करना चाहिए।"

तथा प्रायश्चित ग्रन्थ में भी आर्यिकाओं को मुनियों के बराबर प्रायश्चित्त का विधान है तथा क्षुल्लकादि को उनसे आधा इत्यादिरूप से है। जैसे—

"जैसा प्रायश्चित्त साधुओं के लिए कहा गया है वैसा ही आर्यिकाओं के लिए कहा गया है विशेष इतना है कि दिनप्रतिमा, त्रिकालयोग चकार शब्द से अथवा ग्रन्थांतरोंके अनुसार पर्यायच्छेद (दीक्षाच्छेद) मूलस्थान तथा परिहार ये प्रायश्चित भी आर्यिकाओं के लिए नहीं है।"

आर्यिकाओं के लिए दीक्षा विधि भी अलग से नहीं है। मुनिदीक्षा विधि से ही इन्हें दीक्षा दी जाती है। इन सभी कारणों से स्पष्ट है कि आर्यिकाओं के व्रत, चर्या आदि मुनियों के सदृश हैं।

विशेष इनकी चर्या क्या है? वह भी स्पष्ट करते हैं–आर्यिकायें[7] वसतिका में परस्पर में अनुकूल मत्सरभाव रहित, परस्पर में रक्षण के अभिप्राय में पूर्ण तत्पर, रोष, वैर, माया जैसे विकारों से रहित, लोकापवाद और निंदा से डरती हुई, उभय कुल के अनुरूप, लज्जा, मर्यादा और क्रियाओं से अपने चारित्र की रक्षा करती हुई एक साथ रहती हैं। अध्ययन, पुनरावृत्ति, श्रवण, कथन, अनुप्रेक्षाओं के चिंतन, तप, विनय, संयम तथा ज्ञानाभ्यास में सतत तत्पर रहती हुई मन, वचन, काय से शुभाचरण करती हैं।

निर्विकार वस्त्र तथा वेश धारण करती हुई, साज श्रृंगार से रहित, जल्ल और मल से युक्त रहती हैं। धर्म, कुल, कीर्ति और दीक्षा के अनुरूप निर्मल आचरण करती हैं।

रोना, बालक आदि को स्नान कराना, भोजन कराना, रसोई बनाना, वस्त्र सीना, सूत कातना तथा छह प्रकार का आरम्भ आदि कार्य नहीं करती हैं। मुनियों के पैरों में तेल लगाना, धोना, गीत गाना, आदि कार्य भी वे नहीं करती हैं।

वसतिका स्थान–जो[8] स्थान साधुओं के निवास स्थान से दूर हों, गृहस्थों के स्थान से न अति दूर हो न अति पास हो, जहां व्यसनी, चोर आदि का प्रवेश न हो, ऐसे स्थान में दो, तीन या तीस चालीस तक भी आर्यिकायें रहती हैं क्योंकि आर्यिकाओं को अकेली कभी नहीं रहना चाहिए। कम से कम दो अवश्य होना चाहिए। तीन, पाँच या सात मिलकर आपस में एक दूसरे की रक्षा करते हुए वृद्ध आर्यिकाओं के साथ-साथ निकलकर आहार के लिए श्रावक के यहां प्रवेश करती हैं। गृहस्थों के घर में कभी नहीं जाती हैं केवल आहार के समय ही जाती हैं। कभी कोई विशेष धर्मकार्य होने पर अथवा किसी को सल्लेखना आदि कराने के लिए साध्वी गृहस्थ के घर जा सकती हैं अन्यथा नहीं। उसमें भी गणिनी को पूछकर दो तीन आदि मिलकर ही जाना चाहिए।

आर्यिकाओं के अट्ठाईस मूलगुण कैसे?

प्रश्न–जब आर्यिकाओं के सभी व्रत मुनियों के सदृश हैं पुनः वे वस्त्र कैसे रखती हैं?

इस पर आचार्यों ने ऐसा कहा है कि - "आर्यिकाओं को अपने पहनने के लिए दो साड़ी रखना चाहिए। इन दो वस्त्रों के सिवाय तीसरा वस्त्र रखने पर उसके लिए प्रायश्चित होता है।"

इन दो वस्त्रों का ऐसा मतलब है कि दो साड़ी लगभग 16-16 हाथ[10] की रखती हैं। एक बार में एक ही पहनना होता है, दूसरी को धोकर सुखा देती हैं जो कि द्वितीय दिवस बदली जाती है।

आचार्य वीरसागर जी महाराज[11] कहते थे कि दो साड़ी रखने से आर्यिका का एक मूलगुण कम नहीं होता है किन्तु उनके लिए आगम की आज्ञा होने से यही मूलगुण है। हां! तृतीय साड़ी रखने से अवश्य ही मूलगुण में दोष आता है। मुनिराज खड़े होकर आहार ग्रहण करते हैं और आर्यिकाओं को बैठकर आहार लेना होता है। यह भी शास्त्र की आज्ञा होने से उनका मूलगुण ही है। इसलिए उनके भी अट्ठाईस मूलगुण मानने में कोई बाधा नहीं है। यही कारण है कि आर्यिकाओं के महाव्रतों को उपचार संज्ञा दी गई है। यथा–

"गणधर[12] आदि देवों ने उन आर्यिकाओं की सज्जाति आदि को सूचित करने के लिए उनमें उपचार से महाव्रत का आरोपण करना बतलाया है अर्थात् साड़ी धारण करने से आर्यिकाओं में देशव्रत ही होते हैं परन्तु सज्जाति आदि कारणों से गणधर आदि देवों ने उनके देशव्रतों में उपचार से महाव्रतों का आरोपण किया है।"

ये उपचार से महाव्रती हैं अतएव एक साड़ी धारण करते हुए भी लंगोटीमात्र अल्पपरिग्रह धारक ऐलक[13] के द्वारा पूज्य हैं। यथा-

"[14]अहो! आश्चर्य है कि ऐलक लंगोटी में ममत्त्व परिणाम होने से उपचार से भी महाव्रती नहीं हो सकता है किन्तु आर्यिका साड़ी धारण करने पर भी ममत्त्व परिणाम रहित होने से उपचार से महाव्रतिनी कहलाती है।" अर्थात् ऐलक लंगोटी त्याग कर सकता है फिर भी ममत्त्व आदि कारणों से धारण किए है किन्तु आर्यिका तो साड़ी का त्याग करने में समर्थ नहीं है।

आर्यिकाओं की यह साड़ी बिना सिली हुई होनी चाहिए अर्थात् सिले हुए वस्त्र पहनने का उनके लिए निषेध है।

निष्कर्ष यह निकला कि ये आर्यिकायें एक श्वेत साड़ी पहनती हैं, हाथ में मयूर पंख की पिच्छी रखती हैं तथा शौच के लिए काठ या नारियल का कमंडलु रहता है। ज्ञान साधना के लिए शास्त्र को रखती हैं। सोने या बैठने में बिछाने के लिए घास, पाटा या चटाई भी रख सकती हैं। बाकी कुछ भी परिग्रह उनके पास नहीं रहता है।

पठन-पाठन में या ग्रन्थ के लिखने आदि के लिए कलम, स्याही, कागज आदि[15] भी रख सकती हैं। मुनियों की अपेक्षा मूलगुणों के पालन में दो ही बातों का अंतर है–एक तो एक साड़ी पहनना और दूसरा बैठकर आहार करना।

जैसे मुनियों में आचार्यपद है ऐसे ही आर्यिकाओं में "गणिनी" पद है। इसकी दीक्षा विधि आचार्य दीक्षा विधि के समान है। ये गणिनी माताजी आर्यिकाओं को दीक्षा और प्रायश्चित्त देने की अधिकारिणी हैं। इनके 36 मूलगुण आचार्यों के मूलगुण के समान हैं। इसका वर्णन चौथे अधिकार में आ चुका है।

दैनिक चर्या–मुनि-आर्यिकाओं के दैनिक अट्ठाईस कायोत्सर्ग होते हैं, जो कि पिछली रात्रि से पूर्वरात्रि तक किये जाते हैं। उनका स्पष्टीकरण–पूर्वान्ह, मध्यान्ह, पूर्वरात्रिक और अपररात्रिक। इन चार काल के स्वाध्याय के 12 कायोत्सर्ग होते हैं, दैवसिक और रात्रिक प्रतिक्रमण के 8, त्रैकालिक देववंदना के 6, रात्रियोग प्रतिष्ठापना और निष्ठापना में 2, ऐसे 28 कायोत्सर्ग होते हैं।

पिछली रात्रि में अपररात्रिक स्वाध्याय होता है। निद्रा से उठकर हाथ-पैर आदि शुद्ध करके स्वाध्याय शुरू करना चाहिये। स्वाध्याय प्रारंभ करने से पहले श्रुतभक्ति और आचार्यभक्तिसंबंधी दो कायोत्सर्ग होते हैं। अनंतर स्वाध्याय के बाद श्रुतभक्तिसंबंधी एक कायोत्सर्ग होता है, ऐसे एक स्वाध्यायसम्बन्धी तीन कायोत्सर्ग हुये। पुनः सूर्योदय के 2 घड़ी आदि से पहले रात्रिसम्बन्धी दोष का शोधन करने के लिए प्रतिक्रमण करना होत है। उसमें

सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, वीर भक्ति और चतुर्विंशति तीर्थंकरभक्तिइन चार भक्तिसम्बन्धी चार कायोत्सर्ग होते हैं पुनः रात्रियोग- निष्ठापनसम्बन्धी एक कायोत्सर्ग होता है।

अनंतर पूर्वान्ह सामायिक (देववंदना) में चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्तिसम्बन्धी दो कायोत्सर्ग होते हैं पुनः लघु सिद्धभक्ति और लघु आचार्यभक्तिपूर्वक आचार्य वंदना की जाती है। अनंतर सूर्योदय के दो घड़ी बाद पौर्वाण्हिक स्वाध्याय होता है उसमें भी पूर्वोक्त तीन कायोत्सर्ग हो जाते हैं।

पुनः[16] यदि आचार्य के संघ में आर्यिकायें हैं तो शुद्ध वस्त्र बदलकर आचार्यश्री के समीप मंदिर में आ जाती हैं। आचार्य श्री के और क्रम से सभी मुनियों के आहारार्थ[17] निकलने के बाद गणिनी आर्यिका निकलती हैं। उनके पीछे-पीछे सभी आर्यिकायें क्रम से आहार के लिये निकल जाती हैं। आहार से आकर गुरू के पास प्रत्याख्यान ग्रहण करके अपने स्थान पर चली जाती हैं।

पुनः मध्यान्ह[18] में सामायिक करती हैं। अनंतर मध्यान्ह की चार घड़ी बीत जाने पर अपरान्हिक स्वाध्याय किया जाता है। जो नवदीक्षित हैं, अल्पज्ञ हैं, वे विद्यार्थिनी के रूप में अपनी गुर्वानी से या उनकी आज्ञानुसार अन्य विद्वानों से गुर्वानी के पास बैठकर अध्ययन करती हैं। व्याकरण, न्याय, सिद्धान्त, छंद, अलंकार आदि ग्रन्थों को पढ़ती हैं। विदुषी आर्यिकायें भी पढ़ाती हैं। अनंतर दिवस- सम्बन्धी दोषों का शोधन करने के लिये सभी साधु-साध्वी मिलकर प्रतिक्रमण करते हैं। बाद में आचार्य की वंदना करते हैं। अनंतर मुनि अपने स्थान पर तथा आर्यिकायें अपनी वसतिका में जाकर रात्रियोगप्रतिष्ठापन करने में योगभक्तिसम्बन्धी कायोत्सर्ग करती हैं। रात्रियोग का मतलब यह है कि 'मैं आज रात्रि में इस वसतिका में ही निवास करूँगा' क्योंकि साधुजन रात्रि में यत्र-तत्र विचरण नहीं कर सकते हैं। मलमूत्रादि विसर्जन के लिये भी दिन में जगह देख लेते हैं जो कि वसतिका से अति दूर नहीं है, वहीं पर जाते हैं।

अनंतर आर्यिकायें सूर्यास्त काल में अपरान्हिक सामायिक शुरू करती हैं। सामायिक के बाद पुनः पूर्वरात्रिक स्वाध्याय करना होता है। जो शिष्यायें अध्ययन करने वाली हैं, वे अपना पाठ याद करती हैं। बाद में णमोकार मंत्र का स्मरण करते हुये चटाई-पाटा आदि पर सोती हैं। आर्यिका अकेली शयन नहीं कर सकती है चूंकि लोकापवाद का भय रहता है। दो-चार आदि आर्यिकायें एक कमरे में सोती हैं। दिन में भी मिलकर ही रहती हैं। संक्षिप्त में यह दिगम्बर जैन संप्रदाय वाली आर्यिकाओं की चर्या है।

जो आर्यिकायें विदुषी होती हैं, वे प्रातः या मध्यान्ह में अपने स्वाध्याय से समय निकालकर श्रावक-श्राविकाओं की सभा में धर्मोपदेश भी देती हैं।

आर्यिकाओं के लिये कर्तव्य-अकर्तव्य – आर्यिकायें गुरू की वंदना को अकेली नहीं जा सकती हैं। गणिनी के साथ अथवा दो-चार मिलकर ही जाती हैं। अकेले बैठकर दिगम्बर मुनियों से चर्चा, वार्तालाप आदि नहीं कर सकती हैं। मुनियों की सेवा, वैयावृत्ति आदि भी नहीं कर सकती हैं। गीत गाना, रोना, बुहारी देना, वस्त्र सीना आदि कोई भी

कार्य नहीं कर सकती हैं। गृहस्थों के बच्चों को लाड़-प्यार नहीं करती हैं। गृहस्थ महिलाओं से गृहस्थ के विवाह, व्यापार, रसोई, खान-पान आदि सम्बन्धी चर्चा भी नहीं करती हैं। प्रत्युत् इन्हें धर्म की, वैराग्य की शिक्षा देती हैं। नाटक, उपन्यास, श्रृंगारसम्बन्धी पुस्तकें नहीं पढ़ती हैं। राजनैतिक चर्चाओं में भाग नहीं लेती हैं। केवल परलोक सिद्धि के लिए धर्माराधन में तत्पर रहती हैं, लौकिक प्रपंच आदि में नहीं पड़ती हैं। आपस में ईर्ष्या, द्वेष, कलह से दूर रहती हैं। एक दूसरे की अनुकूलता रखते हुये पठन-पाठन में अपना समय व्यतीत करती हैं। आर्यिकाएं कुछ भी आरंभ नहीं करती हैं जैसे-पानी गरम करना, छानना, लाना, भरना आदि। गृहस्थसम्बन्धी कार्यों का त्याग रहता है। बीमारी में भी अपने हाथ से औषधि नहीं बनाती हैं। श्रावक-श्राविकायें शुद्ध काष्ठादि प्रासुक औषधि तैयार करके आहार के समय ही आहार में दे देते हैं अथवा लगाने के लिए शुद्ध तेल, घी आदि का प्रयोग कर लेती हैं।

श्रावक इनके कमंडलु में गरम जल भर देते हैं। वे अपनी साड़ी को एक कमंडलु के जल से धो सकती हैं। बिना गरम किया हुआ कच्चा जल हाथ से नहीं छूती हैं। या तो श्राविकायें छने जल से इनकी साड़ी धोकर सुखा देती हैं। आर्यिकाएं साबुन आदि वस्तुओं का भी प्रयोग नहीं कर सकती हैं। वे आहार के लिए मन-वचन-काय से कुछ भी नहीं कहती हैं। श्रावकों के यहाँ जैसा मिला, वैसा दोषों से रहित प्रासुक आहार होना चाहिए; नीरस हो या सरस, उन्हीं के द्वारा दिया गया आहार अपने हाथों की अंजुली में ग्रहण करती हैं। वे मुनि के समान दो, तीन या चार महीने में केशलोंच करती हैं। मुनियों की वसतिका में आर्यिकाओं का रहना, लेटना, बैठना, स्वाध्याय करना आदि वर्जित है।

मासिक धर्म की अवस्था में आर्यिकायें तीन दिन तक मौन से रहती हैं। जिनमन्दिर से अलग वसतिका में रहती हैं। किसी को भी स्पर्श नहीं करती हैं, न कोई पुस्तक आदि ही छू सकती हैं। मौनपूर्वक केवल मन में णमोकार मंत्र और बारह भावनाओं का चिंतवन करती हैं। षट् आवश्यक क्रियायें, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि भी केवल मन में चिंतवनरूप से करती हैं। ओष्ठ, जिह्वा आदि न हिलने पाये, ऐसा मंत्र स्तोत्रादि का चिंतवन भी चलता है।

यदि उपवास करने की शक्ति है तो तीन दिन उपवास अन्यथा एक या दो उपवास कर लेती हैं। शक्ति न होने से तीनों दिन छहों रस[19] रहित नीरस आहार[20] कर लेती हैं। जो श्राविकायें आहार कराती हैं वे इनका स्पर्श नहीं करती हैं। तीन दिन के बाद श्राविकायें इन्हें गरम जल से स्नान करा देती हैं तब आर्यिका गणिनी के पास आकर, यदि आचार्य संघ में हैं तो गणिनी के साथ आचार्य के पास जाती हैं, गणिनी आचार्य द्वारा इन्हें प्रायश्चित्त दिला देती हैं अथवा आचार्य के न होने पर गणिनी ही प्रायश्चित्त देती हैं।

चतुर्विध संघ—मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका इनके समूह को चतुर्विध संघ कहते हैं। संघ के जो नायक होते हैं, जिन्हें गुरू ने विधिवत् आचार्यपद प्रदान किया है, ऐसे वे आचार्य कहलाते हैं। जिस संघ में आर्यिकायें, क्षुल्लिकायें, ब्रह्मचारिणी, श्राविकायें आदि रहती हैं उस संघ के आचार्य चिरकाल[21] से दीक्षित, प्रौढ़, गम्भीर, दूरदर्शी, जितेन्द्रिय,

सर्वशास्त्र में निपुण आदि गुणों से सहित होना चाहिये। इन गुणों से शून्य नवदीक्षित व छोटी उम्र वाले साधु यदि आर्यिकाओं का नेतृत्व करते हैं तो वे आगम के विरूद्ध है, क्योंकि वे निंदा के भाजन बन सकते हैं।

आर्यिका संघ–आर्यिकाओं का संघ अलग भी होता है। इसमें प्रमुख गणिनी आर्यिका के अनुशासन में सभी आर्यिकायें रहती हैं। क्षुल्लिकायें, श्राविकायें, अध्ययनशील बालिकायें आदि भी रहती हैं।

आर्यिकायें और क्षुल्लिकायें पैदल ही विहार करती हैं। दिन में सामायिक के समय को छोड़कर प्रासुक मार्ग से चार हाथ आगे जमीन देखते हुए चलती हैं। आर्यिका हरीघास पर नहीं चलती हैं। यदि कदाचित् पानी में चलना पड़े तो घुटने तक पानी में से चलकर पुनः प्रासुक जल से पैर धोकर कायोत्सर्ग करती हैं। इससे अधिक जल में चलने से गुरू से प्रायश्चित्त लेना होता है। अस्वस्थ अवस्था में कदाचित् डोली में बैठने से भी प्रायश्चित्त लेना होताहै।

संघ के विहार की व्यवस्था भी श्रावक करते हैं। आर्यिकायें विहार में अपने हाथमें पिच्छी, कमंडलु मात्र ही रखती हैं। कदाचित् कमंडलु को कोई श्रावक या श्राविकायें भक्तिलेकर इनके साथ चलते हैं। बाकी शास्त्र, चटाई आदि सामान श्रावक अपने वाहन आदि व्यवस्था से अगले स्थान तक पहुँचाते हैं। उन्हें वे साथ में या हाथ में लेकर नहीं चलती हैं। जहाँ श्रावकोंके घर होते हैं, वहां वे विधिवत् आहार देते हैं अन्यथा मार्ग में अन्य नगरों के श्रावक आकर आहार की व्यवस्था बनाकर आहार देते हैं। ये भिक्षा से माँगकर या लाकर आहार नहीं करती हैं।

आहार विधि–श्रावक-श्राविकाएँ अपनी दान की सद्भावनापूर्वक अपने लिए भोजन बनाते हैं। उसमें हाथ का पिसा हुआ आटा, मसाला आदि रहता है। शुद्ध कुएँ, बावड़ी आदि का जल रहता है। शुद्ध, दूध, घी आदि मर्यादित वस्तुएँ रहती हैं। भोजन तैयार करने के बाद दम्पत्ति या कोई भी दातार अपने दरवाजे पर श्रीफल आदि लेकर खड़े हो जाते हैं। जब ये आर्यिकाएँ जिनमंदिर से दर्शन करके आहारार्थ निकलती हैं, उस समय वे श्रावकजन पड़गाहन करते हैं–

हे माताजी! वंदामि अत्र तिष्ठ तिष्ठ! जब वे एक-दो आदि आर्यिकाएँ वहाँ खड़ी हो जाती हैं, तब वे दातार उनकी तीन प्रदक्षिणा देकर घर में ले जाते हैं। चौके में स्वच्छ पाटे पर उन्हें बैठने के लिए प्रार्थना करते हैं। गरम जल से उनके चरण धोकर गंधोदक मस्तक पर चढ़ाते हैं। अष्टद्रव्य से पूजा करके नमस्कार करते हैं पुनः महिलाएँ थाली में सभी भोजन परोसकर सामने लाकर दिखलाती हैं। आर्यिकाश्री का जो भी त्याग होता है, उसे वे निकलवा देती हैं। तब दातार मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि और आहार जल शुद्ध है, भोजन ग्रहण कीजिए, ऐसा कहते हैं।

इस प्रकार नवधा[22] भक्ति होने के बाद वे दातार उनके हाथ धुलाते हैं। हाथ धोने के बाद वे सिद्धभक्तिपूर्वक प्रत्याख्यान निष्ठापन क्रिया करके अपने हाथों की अंजुली बनाकर आहार शुरू करती हैं। जल, दूध, रोटी, भात आदि जो कुछ भी लेना है अथवा

किसी रोग के निमित्त से औषधि आदि लेना है, वे सब कुछ उसी समय में ले सकती हैं पुनः हाथ प्रक्षालन कर सिद्धभक्तिपूर्वक प्रत्याख्यान ग्रहण कर लेती हैं और कमंडलु में गरम जल भराकर वहाँ से आ जाती हैं। साथ में कोई श्रावक-श्राविका आदि उनके स्थान तक पहुँचाने के लिये उनके साथ आते हैं। वे आर्यिका गुरू के पास पुनः प्रत्याख्यान—अगले दिन आहार ग्रहण तक चतुराहार का त्याग कर देती हैं और पुनः अपनी वसतिका में पहुँच जाती हैं। यदि अगले दिन उपवास करना हुआ तो गणिनी की आज्ञा लेकर गुरू से उपवास ग्रहण कर लेती हैं अथवा आचार्य के न रहने पर गणिनी से ही उपवास या प्रत्याख्यान आदि लेती हैं।

आहार के छ्यालीस दोष—उद्गम दोष, उत्पादन दोष, एषणा दोष, संयोजनादोष, प्रमाणदोष, इंगालदोष, धूमदोष और कारणदोष इन आठ दोषों से रहित आहारशुद्धि होती है। दातार के निमित्त से हुये दोष उद्गमदोष हैं। साधु के द्वारा आहार में हुये दोष उत्पादन संज्ञक हैं। आहारसम्बन्धी दोष एषणादोष हैं। संयोग से होने वाला दोष संयोजनादोष है। प्रमाण से अधिक आहार लेना प्रमाणदोष है। लंपटता से आहार लेना इंगालदोष है। निंदा करकेआहार लेना धूमदोष है और विरुद्ध कारणों से बना हुआ आहार लेना कारण दोष है।

इनमें से उद्गम के 16, उत्पादन के 16, एषणा के 10 तथा संयोजना, प्रमाण, इंगाल और धूम ये 46 दोष होते हैं।

इन सबसे अतिरिक्त एक अधःकर्म दोष है जो महादोष कहलाता है। इसमें कूटना, पीसना, रसोई करना, पानी भरना और बुहारी देना ऐसे पंचसूना नाम के आरम्भ से षट्कायिक जीवों की विराधना होने से यह दोष गृहस्थाश्रित है। इसको करने वाले साधु या साध्वी उस साधुपद में नहीं माने जाते हैं।

आर्यिकायें आपस में बड़े प्रेम से धर्माराधना करते हुए रहती हैं। एक दूसरे की अनुकूलता रखते हुये आगम और लोक की मर्यादा को निभाती हैं। ईर्ष्या, द्वेष, मत्सर, झूठ, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि दुर्भावों से अपने संयम को और मन को मलिन नहीं करती हैं। किसी आर्यिका के अस्वस्थ होने पर अन्य आर्यिका उसे धर्मरूपी अमृत को पिलाती रहती हैं और श्राविकाओं द्वारा अनुकूल प्रासुक औषधि की व्यवस्था कराकर आहार काल में पहुँचवाती हैं। नवदीक्षिताओं को संयम में, धर्म में स्थिर करती हैं। जिनके निमित्त से मोक्ष मार्ग प्राप्त हुआ है या जिनसे वैराग्य अथवा सम्यग्ज्ञान मिला है अथवा जिनसे धर्म ग्रन्थों का अध्ययन किया है उनके उपकार को सर्वोपरि मानकर सतत मन, वचन, काय से उनकी सेवा, आराधना, अर्चना, भक्ति और उपासना करती हैं। अपने पद के विरुद्ध श्रावकोचित ऐसे कार्यों को नहीं करती हैं। जिनेन्द्र भगवान की भक्ति में लीन होकर स्तोत्र पाठ, भक्ति पाठ, जाप्य आदि करती हैं। पिंडस्थ, पदस्थ आदि ध्यान का भी अभ्यास करती हैं। आज भी ऐसे हीन दुःषम काल में एक-एक महीने तक भी उपवास करने वाली आर्यिकायें हो चुकी हैं। अभी भी आठ, दस, सोलह उपवास, एकांतर उपवास आदि से शरीर को क्षीण करने वाली तथा वैराग्य मार्ग को प्रशस्त बनाने वाली आर्यिकायें विद्यमान

हैं। ये सम्यक्त्व सहित निर्दोषतया व्रतों का पालन करते हुये निश्चित ही स्त्री पर्याय से छूटकर स्वर्ग के सुखों का अनुभव करेंगी। वहाँ पर सम्यक्त्व के प्रभाव से जिनेंद्रदेव के पंचकल्याणकों में जाकर व अकृत्रिम जिन चैत्यालय की वंदना करते हुए तथा समवसरण में जिनेन्द्र देव का साक्षात् दिव्य उपदेश सुनते हुए कालयापन करके वहाँ से आकर मनुष्य भव को प्राप्त कर निर्ग्रंथ दीक्षा लेकर कर्मों का नाशकर मोक्ष प्राप्त करेंगी।

पंचमकाल के अंत में वीरांगज मुनि और सर्वश्री आर्यिका, अग्निदत्त श्रावक और पंगुश्री श्राविका होंगे। वे कल्की राजा द्वारा टैक्स में हाथ के प्रथम ग्रास के मांगे जाने पर सल्लेखना विधि से मरण करके सौधर्म स्वर्ग में उत्पन्न होंगे। इसलिये भगवान महावीर के शासन में आज तक 2534 वर्ष तक अक्षुण्ण जैन शासन और मुनि तथा आर्यिकाओं की परम्परा चली आ रही है और आगे पंचमकाल के अंत तक यह अक्षुण्ण परम्परा चलती रहेगी, इसमें कोई संदेह नहीं है।

टिप्पणी-

1. आठ वर्ष की उम्र के बाद अणुव्रत अथवा दीक्षा ले सकती हैं ऐसी आगम की आज्ञा है।
2. तत्थ ण कप्पइ वासो जत्थ इमे णत्थि पंच आधारा।
   आइरिय उवज्झाया पव्वत्तथेरा गणधरा य''।।34।। (मू. कुंद.)
3. एसो अज्जाण पि य समाचारो जहाक्खिओ पुव्वं।
   सव्वह्मि अहोरत्ते विभासिदव्वो जहाजोग्गं।।67।। (मूलाचार-श्री कुंदकुंदकृत)
4. वर्षाऋतु में वृक्ष के नीचे ध्यान में खड़े हो जाना वृक्षमूल है। गर्मी में पर्वत की चोटी पर ध्यान करना आतापन है और ठंडी में खुले मैदान में ध्यान करना अभ्रावकाश है तथा दिन में सूर्य की तरफ मुख कर खड़े होकर ध्यान करना आदि।
5. लज्जाविनय-वैराग्य-सदाचार-विभूषिते।
   आर्याव्रते समाचारः संयतेष्विव किन्त्विह।।81।। (आचारसार पृ. 42)
6. साधूनां यद् वदुद्दिष्टोवमार्यागणस्य च।
   दिनस्थानत्रिकालोनं प्रायाश्चित्तं समुच्यते।।114।। (प्राय.)
7. ''अण्णोण्णणुकूलाओ अण्णोण्णहिरक्खणाभिजुत्ताओ।
   गयरोसवेरमाया सलज्जमज्जाद-किरियाओ।।68।।
   अज्झयणे परियट्टे सवणे कहणे तहाणुपेहाय।
   तव-विणय-संजमेसु य अविरहिदुवजोगजुत्ताओ।।69।।
   अविकार-वत्थ-वेसा जल्लमलविलितचत्तदेहाओ।
   धम्मकुल-कित्तिदिक्खापडिरूव विसुद्ध चरियाओ।।70।।
   रोदणण्हावण-भोयण-पयणं सुत्तं च छब्बिहारंभे।
   विरदाण पादमक्खण-धोवण-गोयं च ण वि कुज्जा।।73।। (मूलाचार-श्री कुंदकुंदकृत)
8. वस्त्रयुग्मं सुवीभत्स-लिंग-पृच्छादनाय च।
   आर्याणां संकल्पेन तृतीय मूलमिष्यते।।119।। (प्राय.)

9. अग्निहत्थमिस्सणिलये असण्णिवाए विसुद्ध संचारे।
दो तिण्णि वा अज्जाओ वहुगीओ वा सहत्थिंति।।71।।
तिण्णि व पंच व सत्त व अज्जाओ अण्णमण्णरक्खाओ।
थेरेहिं संहतरिता भिक्खाय समोदरंति सदा।।74।।
ण य परगेहमकज्जे गच्छे कज्जे अवस्स गमणिज्जे।
गणिणीमापुच्छित्ता संघाडेणेव गच्छेज्ज।।72।। (मूला. कुंद.)
10. सोलह हाथ की साड़ी के विषय में आगम में कहीं नहीं मिला है। मात्र गुरु-परम्परा से यह व्यवस्था चली आ रही है। आगम में केवल दो साड़ी मात्र का उपदेश है।
11. चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज के पट्टशिष्य।
12. देशव्रतान्वितैस्तासामारोप्यंते बुधैस्ततः।
महाव्रतानि सज्जातिज्ञप्त्यर्थमुपचारतः।।89।। (आचारसार)
13. श्रावकों की ग्यारह प्रतिमाओं में से अंतिम ग्यारहवीं प्रतिमाधारी के दो भेद हैं-क्षुल्लक और ऐलक। क्षुल्लक के पास लंगोटी और चद्दर ये दो वस्त्र रहते हैं किन्तु ऐलक के पास लंगोटी मात्र रहती है।
14. कौपीनेऽपि समूर्च्छत्वान्नार्हत्यार्यो महाव्रतं।
अपि भाक्तममूर्च्छत्वात् साटकेऽप्यार्यिकार्हति।।36।। (सागार. पृ. 518)
15. नेत्रज्योति कमजोर हो जाने से पढ़ने के लिए, ईर्यापथ शुद्धि से चने के लिएऔर आहार को देखने शोधने के लिए कदाचित् चश्मा भी ले सकती है। (यह व्यवस्था गुरु परम्परागत है)
16. दश बजे के लगभग.....।
17. आहारचर्या आगे है।
18. शास्त्रों में मध्यान्ह की सामायिक के बाद साधु-साध्वियों को आहार के लिए जाने का विधान है किन्तु वर्तमान में सामायिक के पहले 9 बजे से 11 बजे तक के काल में ही आहार के लिए साधु निकलते हैं। चूँकि श्रावक के भोजन का यही समय उपयुक्त है और पौने ग्यारह बजे के पूर्व मध्यान्ह सामायिक का समय नहीं बन पाता है।
19. घी, मीठा, नमक, दूध, दही और तेल ये छह रस माने गये हैं।
20. ऋतौ स्नात्वा तु तुर्येन्हि शुद्धं त्यरस भुक्त्यः।
कृत्वा त्रिरात्रमेकांतरं वा सज्जपसंयुताः।।90।। (आचारण)
21. गंभीरो दुद्धरिसो मिदवासी अप्प को दुहल्लो य।
चिरपव्वइदो गिहिदत्थो अज्जाणं गणधरो होदि।।68।।
एवं गुणवदिरित्तो जदि गणधारित्तं करेदि अज्जाणं।
चत्तारि कालगा से गच्छादि विराहणा होज्ज।।64।। (मूल. कुंदकुंदकृत)
22. पड़गाहन करना, उच्च स्थान देना, चरण धोना, पूजन करना, नमस्कार करना, मन, वचन, काय और आहार इन चारों की शुद्धि करना यह नवधाभक्ति है।